BC-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

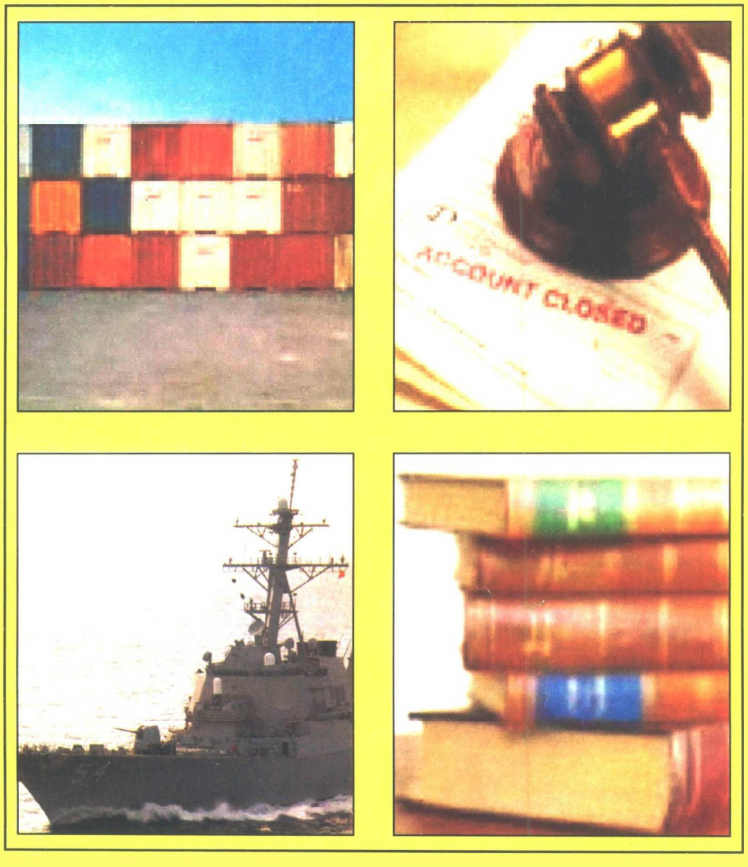

व्यावसायिक कानून

BC-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

व्यावसायिक कानून

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो.(डॉ.)नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राजस्थान)

संयोजक/सदस्य

संयोजक

प्रो. (डॉ.) एम. डी. अग्रवाल

से. नि. आचार्य(वाणिज्य)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य सचिव

प्रो. (डॉ.) अनाम जैतली

निदेशक (अकादमिक)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय

सदस्य

1. **प्रो.(डॉ.)आर. के. दीक्षित**
   आचार्य एवं अध्यक्ष, ई. ए. एफ. एम. विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर
2. **प्रो.(डॉ.) एस. जे. लालवानी**
   आचार्य, व्यावसायिक वित्त एवं अर्थशास्त्र
   वाणिज्य एवं प्रबन्ध संकाय
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
3. **प्रो. (डॉ.) आई. वी. त्रिवेदी**
   आचार्य, बैंकिंग एण्ड बिजनेस इकोनॉमिक्स
   मोहन लाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
4. **डॉ. एस. जी. शर्मा**
   सह-आचार्य एवं अध्यक्ष, ए. बी. एस. टी. विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर
5. **डॉ. पुखराज दाधीच**
   राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

संपादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

प्रो. (डॉ.) एम. पी. बंसल

आचार्य,व्यावसायिक प्रशासन विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर

लेखक (इकाई सं.)

1. **डॉ. डी. आर. सैनी (1,2,3,4,5)**
   व्याख्याता,व्यावासायिक प्रशासन विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, नीम का थाना
2. **डॉ. ए. एन. शर्मा (6,7,8,9,10)**
   सहायक आचार्य व्यावासायिक प्रशासन विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
3. **डॉ. ज्योति गुप्ता (11,12,13,14)**
   व्याख्याता,व्यावासायिक प्रशासन विभाग
   वैदिक कन्या महाविद्यालय,जयपुर
4. **डॉ. प्रियंका व्यास (15,16,17,18)**
   व्याख्याता, व्यावासायिक प्रशासन विभाग
   इन्टरनेशनल कॉलेज फॉर गर्ल्स, जयपुर
5. **डॉ. उम्मेद सिंह (19)**
   व्याख्याता, व्यावासायिक प्रशासन विभाग
   राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय,कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ) नरेश दाधीच	प्रो. (डॉ.) एम. के. घडोलिया	योगेन्द्र गोयल
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	संकाय विभाग	पाठ्य सामाग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - जून 2011 **ISBN No.- 13/978-81-8496-193-5**

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु.वि., कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

व्यावसायिक कानून

इकाई व इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
ब्लॉक-I भारतीय अनुबन्ध नियम-I, 1872	
इकाई 1-अनुबन्ध की प्रकृति,अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण एवं परिभाषा	7-23
इकाई 2- प्रस्ताव एवं स्वीकृति	24-43
इकाई 3- पक्षकारों मे अनुबन्ध करने की क्षमता	44-57
इकाई 4- पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति	58-79
इकाई 5- उद्देश्य एवं प्रतिफल की वैधता तथा व्यर्थ ठहराव	80-97
ब्लॉक-II भारतीय अनुबन्ध नियम-, 1872	
इकाई 6- अनुबंधों का निष्पादन एवं समाप्ति व अनुबन्ध खण्डन के उपचार	98-117
इकाई 7- अर्द्ध अनुबन्ध	118-123
इकाई 8- हानि रक्षा व प्रत्याभूति अनुबन्ध	124-138
इकाई 9- निक्षेप एवं गिरवी	139-163
इकाई 10- एजेन्सी के अनुबन्ध	164-187
ब्लॉक-III वस्तु विक्रय नियम-, 1930	
इकाई 11-वस्तु विक्रय अनुबन्ध की प्रकृति तथा क्षेत्र	188-200
इकाई 12-शर्तें तथा आश्वासन	201-212
इकाई 13- स्वामित्व का हस्तान्तरण तथा सुपुर्दगी	213-223
इकाई 14- अदत्त विक्रेता	224-235
ब्लॉक-IV विनिमय साध्य विलेख नियम,1872	
इकाई 15- विनिमय साध्य विलेख एवं इनके पक्षकार	236-245
इकाई 16- प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय विपत्र व चैक	246-254
इकाई 17- चैक का रेखांकन, चैक रेखांकन के प्रकार एवं प्रभाव	255-260
इकाई 18- परक्रामण,प्रस्तुति एवं दायित्व से मुक्ति	261-271
ब्लॉक-V उपभोक्ता संरक्षण नियम,1986	
इकाई-19 उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1986	272-287

इकाई 1

अनुबन्ध की प्रकृति, अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण तथा वर्गीकरण

(Nature of contract, Essential elements of contract and classification of contracts)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 आधारभूत परिभाषाएँ

1.4 अनुबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा

1.5 वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण अथवा तत्व

1.6 ठहराव एवं अनुबन्ध में अन्तर

1.7 अनुबन्धों का वर्गीकरण अथवा प्रकार.

1.7.1 प्रवर्तनीयता के आधार पर वर्गीकरण

1.7.2 उत्पत्ति के आधार पर वर्गीकरण

1.7.3 निष्पादन के आधार पर वर्गीकरण

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 स्वपरख प्रश्न

1.11 उपयोगी पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य होंगे कि :

- ❖ अनुबन्ध अधिनियम में प्रयुक्त तकनीकी अथवा आधारभूत शब्दों का अर्थ बता सकेंगे ।
- ❖ अनुबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा बता सकेंगे,
- ❖ एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों अथवा तत्वों को समझा सकेंगे,
- ❖ विभिन्न प्रकार के अनुबन्धों का अर्थ बता सकेंगे

1.2 प्रस्तावना

राज्य अथवा सरकार द्वारा सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रुप से संचालित करने हेतु तथा मानवीय आचरण एवं व्यवहारों को व्यवस्थित तथा क्रियान्वित करने के उद्देश्य से जो नियम बनाये जाते हैं, उन्हें सन्नियम या राजनियम कहा जाता है । **सालमण्ड** (Salmond) के अनुसार,

' 'सन्नियम या राजनियम से आशय राज्य द्वारा स्वीकृत एवं प्रवर्तित उन सिद्धान्तों के समूह से हैं जिनका उपयोग उसके द्वारा न्याय प्रशासन के लिए किया जाता है । "

व्यापारिक सन्नियम में उन अधिनियमों को सम्मिलित किया जाता है जो व्यवसाय एवं वाणिज्यिक क्रियाओं के नियमन एवं नियन्त्रण के लिए बनाये जाते हैं । **ए.के.सेन** के अनुसार, "व्यापारिक या व्यावसायिक सन्नियम के अन्तर्गत वे राजनियम आते हैं जो व्यापारियों, बैंकर्स तथा व्यवसायियों के साधारण व्यवहारों से सम्बन्धित हैं और जो सम्पत्ति के अधिकारों एवं वाणिज्य में संलग्न व्यक्तियों से सम्बन्ध रखते हैं । " भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, व्यापारिक अथवा व्यावसायिक सन्नियम की एक महत्वपूर्ण शाखा है, क्योंकि अधिकांश व्यापारिक व्यवहार चाहे वे साधारण व्यक्तियों द्वारा किये जायें या व्यवसायियों द्वारा किये जायें, 'अनुबन्धों' पर ही आधारित होते हैं । भारतीय **अनुबन्ध** अधिनियम 25 अप्रैल, 1872 को पारित किया गया था और 1 सितम्बर, 1872 से लागू हुआ था ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम को दो भागों में बांटा जा सकता है । इसमें प्रथम भाग में धारा 1 से 75 तक है जो अनुबन्ध के सामान्य सिद्धान्तों से सम्बन्धित हैं और सभी प्रकार के अनुबन्धों पर लागू होती हैं । द्वितीय भाग में धारा 76 से 266 तक है जो विशिष्ट प्रकार के अनुबन्धों जैसे वस्तु विक्रय, क्षतिपूर्ति एवं गारण्टी, निक्षेप, गिरवी, एजेन्सी तथा साझेदारी से सम्बन्धित हैं । 1930 में वस्तु विक्रय से सम्बन्धित धाराओं को निरस्त करके पृथक से वस्तु विक्रय अधिनियम बनाया गया है । इसी प्रकार 1932 में साझेदारी अनुबन्धों से सम्बन्धित धाराओं को इस अधिनियम में से निरस्त कर दिया गया और पृथक साझेदारी अधिनियम बनाया गया ।

इस इकाई में अनुबन्ध अधिनियम में प्रयुक्त तकनीकी एवं आधारभूत शब्दों की परिभाषा, अनुबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा, वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों तथा अनुबन्धों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में बतलाया जायेगा ।

1.3 आधारभूत परिभाषाएँ

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों को समझने के लिए आवश्यक है कि उन तकनीकी अथवा आधारभूत शब्दों का अर्थ भली प्रकार समझ लिया जाये जिनका प्रयोग बार-बार होगा । इस अधिनियम की धारा 2 में इन आधारभूत शब्दों को परिभाषित किया गया है:

(1) **प्रस्ताव (Proposal) :**"जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के सम्मुख किसी काम को करने अथवा न करने के सम्बन्ध में अपना विचार इस उद्देश्य से प्रकट करता है कि उस व्यक्ति की सहमति उस कार्य को करने अथवा न करने के सम्बन्ध में प्राप्त हो जाये, तो कहा जाता है कि पहले व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव किया है । "

[धारा 2 (a)]

(2) **वचन (Promise)** : "वह व्यक्ति जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया गया है, उसके प्रति अपनी सहमति दे देता है, तो प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है । एक प्रस्ताव जब स्वीकार कर लिया जाता है, तो वह वचन कहलाता है । "

[धारा 2 (b)]

(3) **वचनदाता एवं वचनग्रहीता (Promisor and Promises) :** "प्रस्ताव करने वाले व्यक्ति को प्रस्तावक अथवा प्रतिज्ञाकर्ता अथवा वचनदाता कहते हैं तथा उस प्रस्ताव को स्वीकार करने वाले व्यक्ति को वचनग्रहीता अथवा स्वीकर्ता कहते हैं । "

[धारा 2(c)]

(4) **प्रतिफल (Consideration)** : "जब वचनदाता की इच्छा पर वचनग्रहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति ने कोई कार्य किया है अथवा करने से विरत रहा है; अथवा कोई कार्य करता है अथवा करने से विरत रहता है; अथवा कोई कार्य करने अथवा विरत रहने का वचन देता है तो ऐसा कार्य या विरति या वचन उस वचन का प्रतिफल कहलाता है ।"

[धारा 2 (d)]

(5) **ठहराव (Agreement)** : "प्रत्येक वचन या वचनों का प्रत्येक समूह जो एक दूसरे का प्रतिफल हो, ठहराव कहलाता है ।"

[धारा 2(e)]

(6) **पारस्परिक वचन (Reciprocal Promises)** : "ऐसे वचन जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल अथवा आंशिक प्रतिफल होते हैं, पारस्परिक वचन कहलाते हैं ।"

[धारा 2 (f)]

(7) **व्यर्थ ठहराव (Void Agreement)** : "वह ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही होता है, व्यर्थ ठहराव कहलाता है ।"

[धारा 2 (g)]

(8) **अनुबन्ध (Contract) :**"एक ऐसा ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय हो 'अनुबन्ध' कहलाता है ।"

[धारा 2(h)]

(9) **व्यर्थनीय अनुबन्ध (Voidable Contract)** : "ऐसा ठहराव जो उसके एक या अधिक पक्षकारों की इच्छा पर प्रवर्तनीय हो, किन्तु दूसरे पक्षकार या पक्षकारों की इच्छा पर प्रवर्तनीय नहीं होता है, व्यर्थनीय अनुबन्ध कहलाता है ।"

[धारा 2(i)]

(10) **व्यर्थ अनुबन्ध (Void Contract)** : "एक अनुबन्ध जब वह राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हो पाता है, उस समय व्यर्थ हो जाता है, जब वह इस प्रकार प्रवर्तनीय नही हो पाता है ।"

(धारा 2(j)]

1.4 अनुबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा

अनुबन्ध (Contract) शब्द की उत्पति लेटिन शब्द कॉन्ट्रैक्टम (Contracturm) से हुई है, जिसका अर्थ है 'आपस में मिलाना' । सामान्य शब्दों में अनुबन्ध से आशय दो या अधिक व्यक्तियों को किसी कार्य को करने अथवा न करने हेतु आपस में मिलाने वाले समझौते अथवा ठहराव से है । वैधानिक दृष्टिकोण से अनुबन्ध का अर्थ विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी

परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है । अनुबन्ध की प्रमुख परिभाषायें निम्न प्रकार है :

(1) **न्यायाधीश सालमण्ड (Salmond) के अनुसार,** "अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव है जो पक्षकारों के बीच दायित्व उत्पन्न करता है और उनकी व्याख्या करता है । "

इस परिभाषा का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि अनुबन्ध में दो या अधिक पक्षकार होते हैं; पक्षकारों के बीच एक ठहराव या समझौता होता है; इस ठहराव से पक्षकारों के मध्य दायित्व उत्पन्न होता है और यह ठहराव पक्षकारों के दायित्वों की व्याख्या करता है ।

(2) **सर विलियम एन्सन (Sir William Anson) के अनुसार,** "अनुबन्ध दो या दो से अधिक पक्षकारों के बीच किया गया ऐसा ठहराव है जिसको राजनियम द्वारा प्रवर्तित कराया जा सकता है तथा जिसके अन्तर्गत एक या अधिक पक्षकारों को दूसरे पक्षकार या पक्षकारों के विरुद्ध कुछ अधिकार प्राप्त हो जाते हैं । "

सर विलियम एन्सन की परिभाषा की व्याख्या करने से स्पष्ट होता है कि अनुबन्ध एक ठहराव होता है जिसमें दो या दो से अधिक पक्षकार होते हैं और यह ठहराव राजनियम के प्रावधानों के अधीन प्रवर्तनीय कराया जाता है । इस ठहराव के आधीन पक्षकारों को किसी कार्य को करने अथवा न करने के बारे में, एक दूसरे के विरुद्ध कुछ वैधानिक अधिकार प्राप्त होते हैं ।

(3) **लीक (Leake) के अनुसार**"अनुबन्ध 'वैधानिक अनुबन्ध' होने की दृष्टि से ऐसा ठहराव है जिसके द्वारा एक पक्षकार कुछ निष्पादन करने के लिए बाध्य होगा और जिसको प्रवर्तित कराने का दूसरे पक्षकार को वैधानिक अधिकार होगा । "

लीक द्वारा दी गयी परिभाषा से स्पष्ट होता है कि अनुबन्ध एक ठहराव है जो वैधानिक आधार पर किया जाता है और उसके दो पक्षकार होते हैं । इस ठहराव के अनुसार एक पक्षकार निश्चित दायित्व का निष्पादन करने के लिए बाध्य होता है और दूसरे पक्षकार को यह वैधानिक अधिकार होता है कि वह पहले पक्षकार से उसके दायित्व का निष्पादन करा सके ।

(4) **लार्ड हाल्सबरी (Lord Halsbury) के अनुसार,** "अनुबन्ध दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच एक ठहराव है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तित कराने के उद्देश्य से किया जाता है और जिसका निर्माण एक पक्षकार द्वारा किसी कार्य को करने अथवा करने से दूर रहने के दूसरे पक्षकार के प्रस्ताव की स्वीकृति देने के परिणामस्वरुप होता है । "

इस परिभाषा में बतलाया गया है कि अनुबन्ध दो या दो से अधिक पक्षकारों के बीच किया गया एक ठहराव होता है जो कानून द्वारा प्रवर्तित कराने के उद्देश्य से किया जाता है ।अनुबन्ध का निर्माण एक पक्षकार द्वारा किसी कार्य को करने अथवा न करने के बारे में प्रस्ताव करने तथा दूसरे पक्षकार द्वारा उस प्रस्ताव को स्वीकार करने के परिणामस्वरुप होता है ।

(5) **सर फ्रेडरिक पोलक (Sir Fredrick Pollock) के अनुसार,** "प्रत्येक ठहराव एवं वचन जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय हो, अनुबन्ध होता है । "

सर फ्रेडरिक पोलक द्वारा दी गयी परिभाषा संक्षिप्त एवं पूर्ण है । इस परिभाषा में सार रुप में यह कहा गया है कि जो ठहराव राजनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रवर्तनीय कराया जा सकता है, वही अनुबन्ध हो सकता है ।

(6) **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (h) के अनुसार,** "अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव है, जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है । "

यह परिभाषा भी संक्षिप्त किन्तु पूर्ण है जिसके अन्तर्गत कहा गया है कि अनुबन्ध बनने के लिए किसी ठहराव का राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होना आवश्यक है । जो ठहराव राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही होता है, वह अनुबन्ध नही बन सकता है ।

सर फ्रेडरिक पोलक एवं भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (h) मे दी गयी परिभाषाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि अनुबन्ध के निर्माण करने के लिए दो बातों का होना आवश्यक है: प्रथम, पक्षकारों के बीच ठहराव अथवा समझौते का होना, तथा द्वितीय, उस ठहराव या समझौते का राजनियम द्वारा लागू होना । अब प्रश्न यह उठता है कि एक ठहराव को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कब कराया जा सकता है? **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 10 में** उन सभी लक्षणों को बताया गया है, जो एक ठहराव को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराने के लिए आवश्यक होते हैं । इस धारा के अनुसार, "सभी ठहराव अनुबन्ध है, यदि वे उन पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति से किये जाते हैं, जिनमें अनुबन्ध करने की क्षमता है, जी वैधानिक प्रतिफल के लिए तथा वैधानिक उद्देश्य से किये जाते हैं और जो इस अधिनियम द्वारा स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित नही किये गये हैं । इसके अतिरिक्त यदि भारत में प्रचलित किसी विशेष राजनियम द्वारा अनिवार्य हो तो ठहराव लिखित हो, अथवा साक्षियों द्वारा प्रमाणित हो अथवा रजिस्टर्ड हो । "

उपर्युक्त वर्णित सभी परिभाषाओं के विवेचन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि अनुबन्ध से आशय उस ठहराव से है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सकता है और जिसके अन्तर्गत एक पक्षकार का किसी काम को करने अथवा न करने के लिए वैधानिक दायित्व उत्पन्न होता है तथा दूसरे पक्षकार को पहले पक्षकार के विरुद्ध वैधानिक अधिकार प्राप्त होते ।

1.5 वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण अथवा तत्व

अनुबन्ध की विभिन्न विधिवेत्ताओं द्वारा एवं भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में दी गयी उपरोक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से एक अनुबन्ध के निम्नलिखित लक्षण अथवा तत्व प्रकट होते हैं जिनका होना अनुबन्ध की वैधता के लिए नितान्त आवश्यक है :

(1) दो या दो से अधिक पक्षकारों का होना
(2) ठहराव. प्रस्ताव एवं स्वीकृति
(3) पक्षकारों की आपस में वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा
(4) पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता
(5) पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति
(6) वैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य

(7) ठहराव का स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित न होना

(8) यदि आवश्यक हो तो लिखित, प्रमाणित एवं रजिस्टर्ड होना

इन सभी लक्षणों का संक्षिप्त विवेचन नीचे किया गया है :

(1) **दो या दो से अधिक पक्षकारों का होना (Two or more parties)** - एक वैध अनुबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि उसमे दो या दो से अधिक पक्षकार होने चाहिए । कम से कम दो पक्षकारों का होना इसलिए आवश्यक होता है कि एक पक्षकार किसी कार्य को करने अथवा न करने के लिए प्रस्ताव करता है और दूसरा पक्षकार उस पर अपनी सहमति व्यक्त करता है । जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि अनुबन्ध में एक पक्षकार का दायित्व उत्पन्न होता है और दूसरे पक्षकार को कुछ वैधानिक अधिकार प्राप्त होते हैं । कोई भी एक व्यक्ति स्वयं ही प्रस्ताव एवं स्वीकृति दोनों कार्य एक साथ नही कर सकता है ।

(2) **ठहराव : प्रस्ताव एवं स्वीकृति (Agreement : Proposals and Acceptance)** - दो या दो से अधिक पक्षकारों के बीच ठहराव या समझौता होना आवश्यक होता है । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(e) के अनुसार, "प्रत्येक वचन या वचनों को प्रत्येक समूह जिसमें एक वचन दूसरे का प्रतिफल होता है, ठहराव कहलाता है ।" जब एक पक्षकार द्वारा किया गया प्रस्ताव दूसरे पक्षकार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह वचन बन जाता है । ठहराव के दोनों ही पक्षकार एक दूसरे को प्रतिफल के रुप में वचन देते हैं । इस प्रकार हम कह सकते हैं' कि प्रस्ताव एवं स्वीकृति ठहराव के अनिवार्य तत्व हैं । पक्षकारों के मध्य जो भी ठहराव किया जावे वह सुनिश्चित होना चाहिए तथा निष्पादन योग्य होना चाहिए ।

उदाहरण के लिए, राम, श्याम को उसका स्कूटर 15000 रुपये में खरीदने का प्रस्ताव करता है और श्याम इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है, तो यह इन दोनों पक्षकारों के बीच ठहराव होगा क्योंकि राम 15000 रुपये देने का वचन देता है और श्याम स्कूटर देने का वचन देता है । ये दोनों ही वचन एक दूसरे के प्रतिफल के रुप में हैं ।

(3) **पक्षकारों की आपस में वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा (Intention of the parties to create Legal Relations)** - वैध अनुबन्ध के लिए ठहराव के पक्षकारों की आपस में वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा होना आवश्यक है । एक व्यक्ति द्वारा अपने मित्र के यहां भोजन का आमन्त्रण स्वीकार करना अनुबन्ध नही हो सकता है । **लॉर्ड स्टोवेल(Lord Stowell)**ने एक विवाद के निर्णय में लिखा है कि, "अनुबन्ध एक खाली समय का खेल नही होना चाहिए; यह केवल आनन्द एवं हंसी-मजाक की वस्तु नही होना चाहिए जिसमें गम्भीर परिणामों की पक्षकारों द्वारा कभी इच्छा न की गयी हो ।" अनुबन्ध करते समय पक्षकारों के मस्तिष्क में यह बात उत्पत्र होना आवश्यक है कि उनके एक-दूसरे के प्रति वैधानिक दायित्व उत्पत्र हुए हैं एवं उन्हें एक; दूसरे के विरुद्ध उन दायित्वों को पूरा कराने के लिए वैधानिक अधिकार भी प्राप्त हुए हैं जिनका उपयोग वे आवश्यकता पड़ने पर कर सकते हैं । उदाहरणार्थ,

सामान का क्रय-विक्रय करने सम्बन्धी ठहराव अनुबन्ध का रुप लेते हैं क्योंकि इन ठहरावों में पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं ।

(4) **पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता (Contractual Capacity of the Parties)** - अनुबन्ध की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार केवल वे व्यक्ति ही अनुबन्ध करने की क्षमता रखते हैं जो वयस्क हैं, स्वस्थ मस्तिष्क के हैं और राजनियम द्वारा अनुबन्ध के लिए अयोग्य घोषित नही किये गये हैं । यदि किसी ठहराव का कोई पक्षकार अवयस्क है, अथवा अस्वस्थ मस्तिष्क का है, अथवा राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया है तो वह ठहराव अनुबन्ध का रुप धारण नहीं कर सकता है, क्योंकि इन व्यक्तियों का ठहराव के सम्बन्ध में व्यक्तिगत रुप से कोई दायित्व उत्पन्न नहीं होता है । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि एक अवयस्क या अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति या राजनियम द्वारा अनुबन्ध के लिए अयोग्य घोषित व्यक्ति जैसे राष्ट्रपति, विदेशी राजदूत तथा दिवालिया आदि पर वचन को पूरा करने के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है ।

(5) **पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति (Free Consent of the Parties)** - अनुबन्ध के सभी पक्षकारों की ठहराव की बातों के सम्बन्ध में स्वतन्त्र सहमति होनी चाहिए । सहमति से आशय ठहराव के पक्षकारों का समान विचार रखते हुए सभी बातों के लिए आपस में सहमत होने से है । जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत होते हैं तो इसे सहमति कहते हैं । वैध अनुबन्ध के लिए केवल पक्षकारों की सहमति ही पर्याप्त नहीं है, अपितु वह सहमति पूर्णतः स्वतन्त्र होनी चाहिए । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित तत्वों के आधार पर प्राप्त सहमति स्वतन्त्र नही मानी जाती है :

(i) उत्पीड़न
(ii) अनुचित प्रभाव
(iii) कपट
(iv) मिथ्या-वर्णन अथवा मिथ्या-कथन
(v) गलती ।

ठहराव की सभी बातें स्पष्ट एवं सुनिश्चित होनी चाहिए तथा पक्षकारों की सहमति उपर्युक्त पाँच तत्वों को छोड़कर स्वतन्त्र रुप से प्राप्त की जानी चाहिए ।

(6) **वैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य (Lawful Consideration and object)** - अनुबन्ध के राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होने के लिए वैधानिक प्रतिफल का होना आवश्यक होता है । प्रतिफल से तात्पर्य वचनग्रहीता द्वारा वचनदाता की इच्छा पर किये गये कार्य अथवा कोई कार्य करने अथवा कार्य करने से विरत रहने के लिए दिये गये वचन से है । ठहराव में प्रतिफल ही इस बात का स्वयंसिद्ध प्रमाण है कि पक्षकार आपस में वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा रखते हैं । इसके अतिरिक्त ठहराव का उद्देश्य भी न्यायोचित होना चाहिए । ठहराव देश में प्रचलित किसी भी राजनियम के प्रावधानों को निष्फल करने वाला अथवा उन पर प्रतिकूल प्रभाव

डालने वाला नही होना चाहिए । उस ठहराव का उद्देश्य कपटपूर्ण, अनैतिक तथा लोकनीति के विरुद्ध नही होना चाहिए ।

(7) **ठहराव का स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित न होना (Agreement must not be expressly declared void)** - अनुबन्ध की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि वह ठहराव स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित किये गये ठहरावों में से नही होना चाहिए । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा निम्नलिखित ठहरावों को स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित किया गया है जिनको सामान्य परिस्थिति में राजनियम द्वारा प्रवर्तित नही कराया जा सकता है :

(i) अनुबन्ध के अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये ठहराव ।

(ii) जब ठहराव के दोनों पक्षकार ठहराव के किसी आवश्यक तथ्य के विषय में गलती पर हों।

(iii) अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य वाले ठहराव ।

(iv) कुछ अपवादों को छोड़कर बिना प्रतिफल वाले ठहराव ।

(v) अवयस्क के अतिरिक्त विवाह में रुकावट डालने वाले ठहराव ।

(vi) व्यापार में रुकावट डालने वाले ठहराव ।

(vii) वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाले ठहराव ।

(viii) अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव ।

(ix) बाजी के ठहराव ।

(x) असम्भव कार्य को करने के ठहराव ।

(8) **यदि आवश्यक हो तो लिखित प्रमाणित एवं रजिस्टर्ड होना** - वैध अनुबन्ध का एक आवश्यक लक्षण यह है यदि भारतीय अनुबन्ध अधिनियम अथवा देश में प्रचलित किसी अन्य राजनियम द्वारा अनिवार्य हो तो ठहराव लिखित अथवा साक्षियों द्वारा प्रमाणित अथवा रजिस्टर्ड होना चाहिए । यदि इन वैधानिक औपचारिकताओं का पालन नही किया गया तो वह ठहराव राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता है ।

कुछ प्रमुख अनुबन्ध जिनका राजनियम द्वारा लिखित होना अनिवार्य है, निम्नलिखित है:

(i) बीमा अनुबन्ध;

(ii) पंचनिर्णय का समझौता;

(iii) अवधि वर्जित ऋण के भुगतान का वचन;

(iv) कम्पनी के पार्षद सीमानियम एवं पार्षद अन्तर्नियम;

(v) तीन वर्ष से अधिक अवधि के लिए किये गये पट्टे के ठहराव;

(vi) चैक, बिल, प्रतीज्ञा-पत्र एवं हुण्डी आदि विनियमसाध्य प्रलेख ।

निम्नलिखित कुछ ऐसे ठहराव हैं जो राजनियम द्वारा लिखित एवं रजिस्टर्ड होने आवश्यक हैं:

(i) स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण निकट सम्बन्धियों के बीच बिना प्रतिफल के लिए किया गया अनुबन्ध;

(ii) कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनी के पार्षद् सीमानियम, पार्षद् अन्तर्नियम तथा चलायमान प्रभारों का रजिस्ट्रेशन;

(iii) सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम 1882 के अन्तर्गत 100 रुपये से अधिक मूल्य की अचल सम्पत्ति के हस्तान्तरण सम्बन्धी अनुबन्ध;

(iv) ऐसे प्रलेख जिनका रजिस्ट्रेशन, रजिस्ट्रेशन अधिनियम 1908 के अन्तर्गत आवश्यक है जैसे - अचल सम्पत्ति को भेंट करने सम्बन्धी प्रलेख, एवं किसी बच्चे को गोद लेन सम्बन्धी प्रलेख आदि ।

(9) **निश्चितता (Certainty)** - वैध अनुबन्ध का एक आवश्यक लक्षण यह भी है कि उसमें निश्चितता का गुण होना चाहिए । जिन ठहरावों में अर्थ, विषयवस्तु, निष्पादन का तरीका, वस्तु का मूल्य आदि निश्चित नही है अथवा निश्चित किया जाना सम्भव नहीं है, उनको राजनियम द्वारा प्रवर्तित नही कराया जा सकता है । इस प्रकार के ठहराव अनुबन्ध नही हो सकते हैं ।

(10) **निष्पादन की सम्भावना (Possibility of Performance)** - प्रत्येक ठहराव का मुख्य उद्देश्य उसका निष्पादन करना होता है । अत: यह आवश्यक है कि पक्षकारों द्वारा ठहराव के अन्तर्गत उत्पत्र दायित्वों का निष्पादन किया जाना सम्भव होना चाहिए । यदि ठहराव ऐसा है जिसका निष्पादन किया जाना सम्भव नहीं है तो वह ठहराव वैध अनुबन्ध नहीं बन सकता है । कुछ ठहराव ऐसे होते हैं जिनका निर्माण के समय तो निष्पादन किया जाना सम्भव होता है परन्तु बाद में कुछ कारणों से निष्पादन किया जाना असम्भव हो जाता है जैसे - विषयवस्तु का नष्ट हो जाना, युद्ध या आन्तरिक अशान्ति की स्थिति उत्पन्न होना तथा राजनियम में परिवर्तन होना आदि; उर। समय व्यर्थ हो जाता है । अत: एक वैध अनुबन्ध के लिए ठहराव का निष्पादन किया जाना सम्भव होना चाहिए ।

1.6 ठहराव एवं अनुबन्ध में अन्तर

वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि अनुबन्ध के निर्माण के लिए ठहराव का होना आवश्यक है, परन्तु प्रत्येक ठहराव अनुबन्ध हो, यह आवश्यक नहीं है । जिस ठहराव में एक वैध अनुबन्ध के सभी लक्षण पाये जाते हैं, वह ठहराव अनुबन्ध माना जायेगा । इसके विपरीत जिस ठहराव में वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों में से एक या अधिक का अभाव होगा, वह ठहराव अनुबन्ध नहीं होगा । इस सम्बन्ध में यह कथन पूर्णतः सही है कि ' 'समस्त अनुबन्ध ठहराव हैं, किन्तु समस्त ठहराव अनुबन्ध नहीं होते । " इस कथन का विश्लेषण करने से तीन बातें स्पष्ट होती है :

(1) ठहराव अनुबन्ध की आधारशिला होती है क्योंकि बिना ठहराव के अनुबन्ध हो ही नहीं सकता है । अनुबन्ध के निर्माण के लिए ठहराव का होना आवश्यक है । अत: समस्त अनुबन्ध ठहराव होते हैं ।

(2) ठहराव का क्षेत्र अनुबन्ध की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है । जिन ठहरावों में प्रवर्तनीयता का गुण पाया जाता है, केवल वे ठहराव ही अनुबन्ध होते हैं । इसके विपरीत ऐसे ठहराव भी होते हैं जिनको राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता है, जैसे - सामाजिक ठहराव, पारिवारिक ठहराव, राजनैतिक ठहराव, धार्मिक ठहराव,

अनुबन्ध करने के अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये ठहराव, बिना प्रतिफल वाले ठहराव, अवैधानिक उद्देश्य एवं प्रतिफल वाले ठहराव, स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित ठहराव इत्यादि । अत: समस्त ठहराव अनुबन्ध नहीं होते हैं ।

(3) ठहराव एवं अनुबन्ध में अन्तर होता है । इन दोनों में निम्नलिखित आधारों पर अन्तर किया जा सकता है

ठहराव एवं अनुबन्ध में अंतर

अंतर का आधार	ठहराव	अनुबन्ध
1. परिभाषा	प्रत्येक वचन या वचनों का समूह जिसमें वचन एक दूसरे के लिए प्रतिफल होते हैं, ठहराव कहलाता है।	अनुबन्ध वह ठहराव है जिसे राजनियम द्वारा प्रवर्तित कराया जा सकता है ।
2. निर्माण	ठहराव का निर्माण प्रस्ताव एवं स्वीकृति से मिल कर होता है ।	अनुबन्ध का निर्माण ठहराव एवं प्रवर्तनीयता दोनों मिलने से होता है।
3. प्रकृति	ठहराव वैधानिक एवं अवैधानिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं ।	केवल वैधानिक ठहराव ही अनुबन्ध होते है ।
4. क्षेत्र	ठहराव वैधानिक एवं अवैधानिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं ।	अनुबन्ध का क्षेत्र संकुचित होता है क्योंकि सभी ठहराव अनुबन्ध नही होते हैं । केवल वे ठहराव ही अनुबन्ध बनते हैं जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होते है ।
5. प्रवर्तनीयता	केवल उन्ही ठहरावों को प्रवर्तनीय कराया जा सकता है जिनमें वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण होते हैं।	सभी अनुबन्ध राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होते हैं ।
6. प्रभाव	जिन ठहरावों को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता है, वे पक्षकारों का दायित्व उत्पन्न नही करते हैं।	अनुबन्ध के अन्तर्गत दोनों पक्षकारों का वैधानिक दायित्व उत्पन्न होता है जिसे पूरा करना आवश्यक होता है ।
7. आधार	ठहराव का आधार प्रस्ताव एवं स्वीकृति होता है ।	अनुबन्ध का आधार ठहराव होता है।
8. वैधानिक आवश्यकताएँ	एक ठहराव के लिए केवल प्रस्ताव एवं स्वीकृति का होना ही पर्याप्त होता है ।	एक अनुबन्ध के लिए कई बातों का होना आवश्यक है जैसे -ठहराव, पक्षकारों में अनुबन्ध, करने की क्षमता. पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति तथा वैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य आदि ।

1.7 अनुबन्धों का वर्गीकरण अथवा प्रकार

अनुबन्ध अनेक प्रकार के होते हैं जिनको निम्नलिखित तीन आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है -

I. प्रवर्तनीयता के आधार पर :
   (1) वैध अनुबन्ध (Valid Contracts)
   (2) व्यर्थ अनुबन्ध (Void Contracts)
   (3) व्यर्थनीय अनुबन्ध (Voidable Contracts)
   (4) अवैध अनुबन्ध(Contracts)
   (5) अप्रवर्तनीय अनुबन्ध (Unenforceable Contracts)

II. उत्पत्ति के आधार पर :
   (1) स्पष्ट अनुबन्ध (Express Contracts
   (2) गर्भित अनुबन्ध (Implied Contracts)

III. निष्पादन के आधार पर :
   (1) निष्पादित अनुबन्ध (Executed Contracts)
   (2) निष्पादनीय अनुबन्ध (Executory Contracts)

इन सब प्रकार के अनुबन्धों का विस्तृत विवेचन इस प्रकार है ।

प्रवर्तनीयता के आधार पर अनुबन्धों के प्रकार है:-

(1) **वैध अनुबन्ध (Valid Contracts)** - वैध अनुबन्ध से आशय उस अनुबन्ध से है जिसको राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सकता है । वैध अनुबन्ध में इस अधिनियम की धारा 10 में वर्णित सभी आवश्यक तत्वों का समावेश होता है जिन सबका विस्तृत विवेचन हम "वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण" शीर्षक के अन्तर्गत पहले कर चुके हैं । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वैध अनुबन्ध वह अनुबन्ध है जो अनुबन्ध की क्षमता रखने वाले पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति से किया जाता है, जिसका वैधानिक प्रतिफल एवं न्यायोचित उद्देश्य होता है, जो स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित नहीं किया गया है और जो अन्य सभी प्रकार की वैधानिक औपचारिकताओं को भी पूरा करता है ।

(2) **व्यर्थ अनुबन्ध (Void Contracts)** - भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(j) के अनुसार "वह अनुबन्ध जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होता है व्यर्थ होता है । जब से वह राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं रहता है, तब से व्यर्थ हो जाता है ।" राजनियम की दृष्टि से इस प्रकार के अनुबन्ध का कोई प्रभाव नहीं होता है । ये अनुबन्ध अपनी रचना अथवा निर्माण के समय तो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होते हैं, परन्तु बाद में किन्हीं कारणों से अप्रवर्तनीय हो जाते है, उस समय व्यर्थ हो जाते हैं जब उनका प्रवर्तनीय होना असम्भव हो जाता है । एक अनुबन्ध निम्न में से किसी भी कारण से व्यर्थ हो सकता है :

(i) **किसी प्रकार की आकस्मिक असंभवता के कारण -** उदाहरण के लिए, राम अपनी कार मोहन को 20 दिसम्बर से किराये पर देने का अनुबन्ध करता है । 15 दिसम्बर को एक दुर्घटना में कार पूर्णतः नष्ट हो जाती है । राम और मोहन के बीच का अनुबन्ध व्यर्थ होगा क्योंकि अनुबन्ध की विषयवस्तु नष्ट हो जाने के कारण 20 दिसम्बर को इसे प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है ।

(ii) **वैधानिक परिवर्तन के कारण -** उदाहरणार्थ राम, मोहन से 100 क्विंटल चीनी एक निश्चित भाव पर खरीदने का अनुबन्ध करता है और 15 अक्टूबर को माल की सुपुर्दगी एवं मूल्य का भुगतान किया जाना निश्चित हुआ। 5 अक्टूबर को सरकार ने एक अध्यादेश जारी कर 10 क्विंटल से अधिक चीनी के क्रय-विक्रय पर प्रतिबन्ध लगा दिया । यह अनुबन्ध भी राजनियम में परिवर्तन के कारण व्यर्थ हो गया ।

(iii) **व्यर्थनीय अनुबन्ध उस समय व्यर्थ हो जाता है जब उसको निरस्त करने का अधिकार रखने वाला व्यक्ति उसे निरस्त कर देता है ।** उदाहरण के लिए, नरेन्द्र सुरेन्द्र के बच्चे का अपहरण करने की धमकी देकर उसका 8,00,000 का मकान 5,00,000 में क्रय करने के लिए उसकी सहमति प्राप्त कर लेता है । यह अनुबन्ध सुरेन्द्र की इच्छा पर व्यर्थनीय है अर्थात् वह चाहे तो उसको निष्पादित कर सकता है अथवा निरस्त कर सकता है । यदि सुरेन्द्र अनुबन्ध निरस्त कर देता है तो यह अनुबन्ध व्यर्थ अनुबन्ध कहलायेगा और नरेन्द्र मकान प्राप्त नही कर सकता है ।

(iv) **किसी विशिष्ट घटना के घटित होने पर किसी काम को करने अथवा न करने का सांयोगिक अनुबन्ध उस समय व्यर्थ हो जाता है जब उस घटना के घटित होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है ।** उदाहरण के लिए, रमेश सुरेश को 10,000 रुपये के आयातित विद्युत उपकरण बेचने के लिए सहमत हो जाता है, यदि उसका जहाज 15 अगस्त तक बन्दरगाह तक पहुँच जाये । जहाज समुद्र में डूब जाता है और 15 अगस्त को बन्दरगाह पर नही पहुँचता है । रमेश और सुरेश के बीच हुआ यह अनुबन्ध व्यर्थ कहलायेगा ।

(3) **व्यर्थनीय अनुबन्ध (Voidable Contracts) - भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(i)**के अनुसार ' 'ऐसा कोई भी अनुबन्ध जो एक या एक से अधिक पक्षकारों की इच्छा पर प्रवर्तनीय हो परन्तु दूसरे पक्षकार या पक्षकारों की इच्छा पर प्रवर्तनीय न हो, व्यर्थनीय अनुबन्ध कहलाता है । " व्यर्थनीय अनुबन्ध एक त्रुटिपूर्ण अनुबन्ध होता है जिसमें एक पक्षकार (पीड़ित पक्षकार) को अनुबन्ध को प्रवर्तनीय कराने अथवा निरस्त कराने का विकल्प प्राप्त होता है । वह चाहे तो दोषी पक्षकार से अनुबन्ध को प्रवर्तनीय करा सकता है और चाहे तो उसे निरस्त कर सकता है । परन्तु यदि उसने एक बार अनुबन्ध की पुष्टि कर दी है अथवा उचित समय में अनुबन्ध भंग करने के अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करता है तो वह अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने वचन को पूरा करने के लिए बाध्य होगा । व्यर्थनीय अनुबन्ध का अर्थ स्पष्ट करते हुए **आर. डब्ल्यू. हॉलैण्ड (R.W Holland)** ने लिखा है कि " व्यर्थनीय अनुबन्ध वह होता है जिसके मूलभूत तत्वों में किसी प्रकार की कमी के कारण एक पक्ष को क्षति या पीड़ा होने की सम्भावना होती है तथा ऐसे पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध भंग करने या कमी रहते हुए भी उसका प्रवर्तन

कराने का विकल्प प्राप्त होता है, किन्तु दोषी पक्षकार को इस प्रकार का कोई विकल्प प्राप्त नहीं होता है । "

एक अनुबन्ध निम्न दो परिस्थितियों में व्यर्थनीय हो सकता है -

(i) जब अनुबन्ध करते समय किसी पक्षकार की सहमति उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट एवं मिथ्यावर्णन के आधार पर प्राप्त की गयी हो ।

(ii) पारस्परिक वचनों वाला अनुबन्ध उस समय व्यर्थनीय हो जायेगा जब एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को उसका वचन पूरा करने से रोकता है, तो इस प्रकार रोके गये पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय होगा ।

(iii) व्यर्थ एवं व्यर्थनीय अनुबन्धों में निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर अन्तर समझा जा सकता है ।

व्यर्थ एवं व्यर्थनीय अनुबंध में अन्तर

अन्तर का आधार	व्यर्थ अनुबन्ध	व्यर्थनीय अनुबन्ध
1. परिभाषा	ऐसा ठहराव जिसको राजनियम द्वारा प्रवर्तित नही कराया जा सकता है 'व्यर्थ अनुबन्ध' कहलाता है ।	ऐसा ठहराव जो एक या एक से अधिक पक्षकारों की इच्छा पर प्रवर्तनीय हो, परन्तु दूसरे पक्षकार या पक्षकारों की इच्छा पर प्रवर्तनीय न हो,'व्यर्थनीय अनुबन्ध' कहलाता है ।
2. वैधानिकता	राजनियम की दृष्टि से इस प्रकार के अनुबन्ध का कोई अस्तित्व नही होता है ।	यह तब तक वैध रहता है जब तक पीड़ित पक्षकार इसको निरस्त या रद्द नही कर देता है ।
3. प्रवर्तनीयता	यह अनुबन्ध किसी भी पक्षकार द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता है ।	इस अनुबन्ध को पीड़ित पक्षकार द्वारा निरस्त न किये जाने तक प्रवर्तनीय कराया जा सकता है ।
4. स्वरुप में परिवर्तन	व्यर्थ अनुबन्ध का स्वरूप कभी भी नही बदलता है । वह सदैव ही व्यर्थ बना रहता है ।	व्यर्थनीय अनुबन्ध का स्वरूप बदल सकता है । यह व्यर्थ या वैध दोनो में से किसी भी प्रकार के अनुबन्ध का रूप ले सकता है ।
5. मान्यता	न्यायालय व्यर्थ अनुबन्ध को मान्यता नही देता है ।	न्यायालय द्वारा पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय अनुबन्ध को मान्यता प्रदान की जा सकती है ।
6. क्षतिपूर्ति	व्यर्थ अनुबन्ध में किसी भी प्रकार को क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार नही होता है ।	व्यर्थनीय अनुबन्ध में पीड़ित पक्षकार को क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होता है, यदि वह अनुबन्ध को निरस्त कर देता है ।

7. प्राप्त वस्तु का हस्तान्तरण	व्यर्थ अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त वस्तु का हस्तान्तरण करने पर तीसरे पक्षकार को अच्छा स्वामित्व प्राप्त नही होता है ।	व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त वस्तु का हस्तान्तरण पीड़ित पक्षकार द्वारा अनुबन्ध के निरस्त करने से पूर्व किया जाता है तो तीसरे पक्षकार को अच्छा स्वामित्व प्राप्त होगा, यदि उसने वस्तु को सद्भावना से प्राप्त किया हो ।

(4) **अवैध अनुबन्ध (Illegal Contracts)** - अवैध अनुबन्ध वह होता है जो अनुबन्ध अधिनियम अथवा देश में प्रचलित किसी भी अन्य राजनियम की व्यवस्थाओं का उल्लंघन करने वाला होता है । यह अनुबन्ध देश की सरकारी व्यवस्था तथा लोकनीति के विरुद्ध होता है । कुछ लोग अवैध ठहराव एवं अवैध अनुबन्ध को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करते हैं, परन्तु वास्तव में इन दोनों में अन्तर होता है । अवैध ठहराव तो प्रारम्भ से ही राजनियम की व्यवस्थाओं को निकल करने वाला होता है, लेकिन अवैध अनुबन्ध बाद में चलकर राजनियम में परिवर्तन होने अथवा किसी सरकारी आदेश से अवैध होता है । अवैध ठहराव तो अनुबन्ध का रुप धारण ही नही कर पाता है ।

(5) **अप्रवर्तनीय अनुबन्ध (Unenforceable Contracts) -**अप्रवर्तनीय अनुबन्ध वे होते हैं जिनको न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता है । इस प्रकार के अनुबन्ध में सभी आवश्यक लक्षण पाये जाते हैं और अनुबन्ध वैध होता है किन्तु कुछ तकनीकी कमियों के कारण जिनको न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता है । इस प्रकार के अनुबन्ध में सभी आवश्यक लक्षण पाये जाते हैं और अनुबन्ध वैध होता है किन्तु कुछ तकनीकी कमियों के कारण इसको प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है । ये अनुबन्ध व्यर्थ होते हैं । पर्याप्त मात्रा में स्टाम्प न लगाया जाना, रजिस्टर्ड न होना, लिखित न होना तथा साक्षियों द्वारा प्रमाणित न होना आदि वैधानिक कमियों के कारण अनुबन्ध अप्रवर्तनीय होता है । इन वैधानिक औपचारिकताओं को पूरा करने पर ही इस प्रकार के अनुबन्धों को प्रवर्तित कराया जा सकता है, अन्यथा नही ।

उत्पत्ति की विधि के अनार पर अनुबन्धों के प्रकार :

(1) **स्पष्ट अनुबन्ध (Express Contracts) -**जब अनुबन्ध के पक्षकार स्पष्ट रुप से प्रस्ताव एवं स्वीकृति के समय अनुबन्ध की विषयवस्तु एवं शर्तों के बारे में लिखित अथवा मौखिक रुप से एक-दूसरे के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत करते हैं एवं सहमति व्यक्त करते हैं तो वह स्पष्ट अनुबन्ध कहलाता है । उदाहरण के लिए, राम अपनी कार सोहन को 4 लाख रुपये में बेचने का पत्र द्वारा प्रस्ताव करता है और सोहन उस पर अपनी सहमति भी पत्र द्वारा भेजता है तो यह दोनों पक्षकारों के बीच स्पष्ट अनुबन्ध माना जायेगा ।

(2) **गर्भित अनुबन्ध (Implied Contracts) -**गर्भित अनुबन्ध वे होते हैं जिनकी उत्पत्ति स्पष्ट प्रस्ताव एवं स्वीकृति द्वारा न होकर, पक्षकारों के आचरण द्वारा होती है । जब पक्षकारों के विचार, काम करने का ढंग एवं व्यवहार इस प्रकार का होता है कि बाहर से उन दोनों के बीच अनुबन्ध हुआ प्रतीत होता है और राजनियम भी उसको मान्यता देता है तो वह गर्भित अनुबन्ध

कहलायेगा । उदाहरण के लिए, बस आकर रुकती है और राम उस बस में बैठ जाता है । यहाँ बस के स्टैण्ड पर रुकने तथा राम के बस में चढने से गर्भित अनुबन्ध का निर्माण हुआ माना जायेगा और राम किराया चुकाने के लिए बाध्य होगा ।

निष्पादन के आधार पर अनुबन्धों के प्रकार

(1) **निष्पादित अनुबन्ध (Executed Contracts) -**जब अनुबन्ध के सभी पक्षकार अनुबन्ध द्वारा उत्पन्न अपने-अपने वचन का निष्पादन कर देते हैं तो वह निष्पादित अनुबन्ध कहलाता है । इस प्रकार के अनुबन्ध में किसी भी पक्षकार का कोई दायित्व शेष नहीं रहता है । उदाहरण के लिए, सुरेश अपनी साइकिल महेश को 1250 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है । महेश उसी समय सुरेश को व 250 रुपये का भुगतान करके साइकिल की सुपुर्दगी ले लेता है तो यह निष्पादित अनुबन्ध कहलायेगा ।

(2) **निष्पादनीय अनुबन्ध (Executed Contracts) -**जब अनुबन्ध के एक अथवा दोनों पक्षकारों ने अपने-अपने वचन को पूरा नहीं किया तथा भविष्य में अपना दायित्व पूरा करेंगे, तो इसे निष्पादनीय अनुबन्ध कहा जायेगा । निष्पादनीय अनुबन्ध पुन: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(i) **एकपक्षीय अनुबन्ध (Unilateral Contracts) -**इस अनुबन्ध का एक पक्षकार तो अनुबन्ध के अन्तर्गत उत्पन्न हुए अपने दायित्व को पूरा कर देता है परन्तु दूसरे पक्षकार को अपना दायित्व पूरा करना शेष है तो इसे एकपक्षीय अनुबन्ध कहते हैं । उदाहरण के लिए, सुरेश, महेश से 20 क्विंटल चावल दो महीने की उधार पर खरीदता है तो यह एकपक्षीय अनुबन्ध

(ii) **द्विपक्षीय अनुबन्ध (Bilateral Contracts)** - जब अनुबन्ध के दोनों ही पक्षकारों को अपने-अपने दायित्व को पूरा करना शेष है तो यह द्विपक्षीय अनुबन्ध होगा । उपर्युक्त उदाहरण में यदि सुरेश और महेश 10 जनवरी को यह अनुबन्ध करते हैं कि 20 जनवरी को माल की सुपुर्दगी और भुगतान साथ-साथ किये जायेंगे तो यह द्विपक्षीय अनुबन्ध कहलायेगा ।

1.8 सारांश

व्यवसाय करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को व्यवसाय से सम्बन्धित राजनियम अथवा सन्नियमों का ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि विभिन्न प्रकार के अधिनियमों के प्रावधानों को ध्यान में रखकर ही व्यवसाय का संचालन किया जा सकता है । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम व्यावसायिक सन्नियमों में सबसे महत्वपूर्ण राजनियम है । व्यवसायी हो अथवा सामान्य व्यक्ति, दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार के ठहराव एवं अनुबन्ध करते हैं ।

जब भी कोई व्यक्ति किसी कार्य को करने अथवा न करने के सम्बन्ध में दूसरे व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव करता है और वह दूसरा व्यक्ति उस पर अपनी सहमति देता है तो ठहराव का निर्माण होता है । जब ठहराव राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है तो वह अनुबन्ध बन जाता है । इस प्रकार अनुबन्ध वह ठहराव होता है जिसको राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सकता है । ठहराव एवं अनुबन्ध में पर्याप्त अन्तर होता है । ठहराव का निर्माण प्रस्ताव एवं स्वीकृति से होता है जबकि अनुबन्ध के लिए ठहराव होना आवश्यक है और वह राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय भी होना चाहिए । ठहराव का क्षेत्र व्यापक होता है और अनुबन्ध का क्षेत्र संकुचित होता है । इसलिए यह

कहा जाता है कि ' 'सभी अनुबन्ध ठहराव होते हैं, किन्तु सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते हैं । '' केवल वे ठहराव ही अनुबन्ध होते हैं जिनमें एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण होते हैं जैसे - दो या दो से अधिक पक्षकारों का होना, ठहराव. प्रस्ताव एवं स्वीकृति, पक्षकारों में आपस में वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा, पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता, पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति, ठहराव का स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित न होना, यदि आवश्यक हो तो ठहराव का लिखित, साक्षियों द्वारा प्रमाणित एवं रजिस्टर्ड होना, निश्चितता तथा निष्पादन की सम्भावना । जिस ठहराव में ये सभी लक्षण अथवा तत्व विद्यमान होते हैं, वह राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है और अनुबन्ध होता है । जिस ठहराव में इनमें से किसी एक अथवा अधिक लक्षणों का अभाव होता है, वह राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता है ।

अनुबन्धों का वर्गीकरण, प्रवर्तनीयता उत्पत्ति की विधि तथा निष्पादन के आधार पर किया जा सकता है । प्रवर्तनीयता के आधार पर अनुबन्ध चार प्रकार के होते हैं - वैध अनुबन्ध, व्यर्थ अनुबन्ध, व्यर्थनीय अनुबन्ध, एवं अवैध अनुबन्ध । वैध अनुबन्ध वह अनुबन्ध होता है जिसको राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सकता है । व्यर्थ अनुबन्ध वह अनुबन्ध होता है जिसको राजनियम द्वारा प्रवर्तित कराना सम्भव न हो । व्यर्थनीय अनुबन्ध ऐसा अनुबन्ध है जो एक पक्षकार की इच्छा पर तो प्रवर्तनीय होता है, परन्तु दूसरे पक्षकार की इच्छा पर प्रवर्तनीय नहीं होता है । अवैध अनुबन्ध वह होता है जो राजनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करने वाला होता है । उत्पत्ति अथवा निर्माण की विधि के आधार पर अनुबन्ध दो प्रकार का होता है - प्रथम स्पष्ट अनुबन्ध जिसमें स्पष्ट रुप से प्रस्ताव एवं स्वीकृति होती है । द्वितीय गर्भित अनुबन्ध जिसमें पक्षकारों द्वारा प्रस्ताव एवं स्वीकृति नहीं होती है, परन्तु उनके आचरण या व्यवहार से उनके बीच अनुबन्ध हुआ माना जाता है । निष्पादन के आधार पर अनुबन्ध दो प्रकार के होते हैं- निष्पादित अनुबन्ध एवं निष्पादनीय अनुबन्ध । निष्पादित अनुबन्ध वह होता है जिसमें दोनों पक्षकार अपने-अपने वचनों का निष्पादन कर देते हैं । निष्पादनीय अनुबन्ध वह होता है जिसमें एक अथवा दोनों पक्षकारों द्वारा अपने वचन का निष्पादन किया जाना शेष होता है ।

1.9 शब्दावली

प्रस्ताव : जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सम्मुख किसी काम को करने या न करने की इच्छा व्यक्त करता है तो यह प्रस्ताव कहलाता है ।

स्वीकृति : जिस व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव किया गया है, वह उसके लिए अपनी सहमति व्यक्त कर देता है तो इसे स्वीकृति कहा जाता है ।

वचन : जब प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो वह वचन कहलाता है ।

ठहराव : जब दो पक्षकार आपस में एक-दूसरे को प्रतिफल के रुप में वचन देते हैं तो वह ठहराव कहलाता है ।

अनुबन्ध : वह ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है, अनुबन्ध कहलाता है ।

पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता :

वे व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता रखते हैं जो वयस्क हैं, स्वस्थ मस्तिष्क के हैं तथा देश में प्रचलित किसी राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नहीं किये गये हैं ।

सहमति : जब ठहराव या अनुबन्ध के पक्षकार एक ही बात पर, एक ही भाव (अर्थ) में आपस में सहमत होते हैं तो वह सहमति कहलाती है ।

स्वतन्त्र सहमति : जब पक्षकारों की सहमति उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, मिथ्यावर्णन एवं गलती से प्रभावित नहीं होती है तो वह स्वतन्त्र सहमति कहलाती है ।

प्रतिफल : जब अनुबन्ध का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा पर कोई काम करता है, या करने से विरत रहता है या कोई काम करने या करने से विरत रहने का वचन देता है तो इस प्रकार किया गया कार्य, विरति या वंचन दूसरे पक्षकार के वचन का प्रतिफल होता है ।

व्यर्थ ठहराव : वह ठहराव जो निर्माण के समय से ही राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही होता है, व्यर्थ ठहराव होता है ।

व्यर्थ अनुबन्ध : वह अनुबन्ध जो निर्माण के समय तो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय था, परन्तु बाद में उसका प्रवर्तनीय होना असम्भव हो जाता है, व्यर्थ अनुबन्ध कहलाता है ।

प्रवर्तनीय होना : कानून या राजनियम द्वारा लागू किया जाना ।

व्यर्थनीय अनुबन्ध : व्यर्थनीय अनुबन्ध वह है जो पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर तो प्रवर्तनीय होता है परन्तु दोषी पक्षकार की इच्छा पर प्रवर्तनीय नहीं होता है ।

1.10 स्वपरख प्रश्न :

1. अनुबन्ध क्या है? एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण संक्षेप में स्पष्ट कीजिए ।
2. "अनुबन्ध वह ठहराव है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है । " इस कथन की व्याख्या कीजिए और एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों को संक्षेप में समझाइए ।
3. अनुबन्ध कितने प्रकार के होते हैं ' उनका वर्णन कीजिए ।
4. निम्न में अन्तर स्पष्ट कीजिए :
   (i) ठहराव एवं अनुबन्ध ।
   (ii) व्यर्थ अनुबन्ध एवं व्यर्थनीय अनुबन्ध ।
5. "सभी अनुबन्ध ठहराव होते है किन्तु सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते हैं" उपरोक्त कथन की व्याख्या करते हुए ठहराव एवं अनुबन्ध में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

इकाई 2

प्रस्ताव एवं स्वीकृति (Offer and Acceptance)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 प्रस्ताव का अर्थ एवं परिभाषा

2.4 प्रस्ताव के लक्षण

2.5 प्रस्ताव सम्बन्धी वैधानिक नियम

2.6 स्वीकृति का अर्थ एवं परिभाषा

2.7 स्वीकृति सम्बन्धी वैधानिक नियम

2.8 प्रस्ताव का संवहन

2.9 स्वीकृति का संवहन

2.10 प्रस्ताव का खण्डन

2.11 स्वीकृति का खण्डन

2.12 सारांश

2.13 शब्दावली

2.14 स्वपरख प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य होंगे कि :

- ❖ प्रस्ताव का अर्थ, परिभाषा, लक्षण एवं वैधानिक नियम बता सकेंगे,
- ❖ स्वीकृति का अर्थ, परिभाषा एवं उससे सम्बन्धित नियम बता सकेंगे,
- ❖ यह स्पष्ट कर सकते हैं कि प्रस्ताव एवं स्वीकृति का संवहन कब पूरा होता है, इसके बारे में बता सकेंगे,
- ❖ यह स्पष्ट कर सकते हैं कि प्रस्ताव एवं स्वीकृति का खण्डन कब और किस प्रकार किया जा सकता है, इसके बारे में बता सकेंगे,

2.2 प्रस्तावना

इकाई 1 के अध्ययन से आपको अनुबन्ध तथा इसके आवश्यक लक्षणों के बारे में स्पष्ट जानकारी हो गई है । एक वैध अनुबन्ध के लिए पक्षकारों के मध्य ठहराव होना आवश्यक है जिसका निर्माण प्रस्ताव एवं स्वीकृति से होता है । इस इकाई में प्रस्ताव एवं स्वीकृति के अर्थ, लक्षण तथा इससे सम्बन्धित वैधानिक प्रावधानों के बारे में बतलाया गया है । इसके साथ ही प्रस्ताव एवं स्वीकृति का संवहन कब पूरा हुआ माना जाता है और इनका खण्डन कब और कैसे किया जा सकता है को भी स्पष्ट किया गया है ।

2.3 प्रस्ताव का अर्थ एवं परिभाषा

प्रस्ताव की प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं सामान्य शब्दों में जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सम्मुख किसी काम को करने या न करने की इच्छा व्यक्त करता है तो प्रस्ताव कहलाता है:-

(1) **चेट्टी (Chetty) के अनुसार'** "प्रस्ताव किसी काम को करने या न करने का वचन है । " इस परिभाषा के अनुसार प्रस्ताव एक वचन होता है जो किसी, कार्य को करने अथवा न' करने के बारे में हो सकता है ।

(2) **सर फ्रेडरिक पोलक (Sir Fredric Pollack) के अनुसार**"किसी व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से निश्चित शर्तों के आधार पर, किसी ठहराव का पक्षकार बनने की इच्छा व्यक्त करना 'प्रस्ताव' कहलाता है ।

(3) **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 2 (a) के अनुसार**' 'जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के सम्मुख किसी काम को करने अथवा न करने के विषय में अपना विचार इस उद्देश्य से प्रकट करता है कि उस व्यक्ति की सहमति उस कार्य को करने अथवा न करने के विषय में प्राप्त हो जाये, तो यह कहा जाता है कि पहले व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के सामने प्रस्ताव रखा है । "

इस प्रकार प्रस्ताव में दो बातों का समावेश होता है **(1)** एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के सम्मुख किसी कार्य को करने अथवा न करने के लिए अपनी इच्छा प्रकट करना । **(2)** इस इच्छा प्रकट न करने का उद्देश्य दूसरे व्यक्ति की सहमति प्राप्त करना । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा **2(c)** के अनुसार जो व्यक्ति प्रस्ताव करता है, उसे **'प्रस्तावक'** या **'वचनदाता'** (Promisor) कहते हैं तथा जिस व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव रखा जाता है उसे **'स्वीकर्ता'** या **'वचनगृहीता'** (Promises)कहते हैं ।

2.4 प्रस्ताव के लक्षण

प्रस्ताव के निम्नलिखित तीन प्रमुख लक्षण होते हैं.

(1) **दो पक्षकारों का होना -** प्रस्ताव के लिए यह आवश्यक है कि कम से कम दो पक्षकार होने चाहिए । एक पक्षकार वह जो प्रस्ताव करता है तथा दूसरा पक्षकार वह जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया जाता है । कोई भी व्यक्ति स्वयं से ही कोई प्रस्ताव नहीं कर सकता है । **फोकनर बनाम लोवे** के विवाद में विद्वान न्यायाधीश ने अपने निर्णय में कहा था कि ' 'कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने अधिकारों के सम्बन्ध में अपने प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकता है । " अत: प्रस्ताव के लिए दो व्यक्तियों का होना आवश्यक है ।

(2) **प्रस्तावक द्वारा किसी कार्य को करने या न करने की इच्छा प्रकट करना -** प्रस्तावक द्वारा वचनगृहीता के समक्ष किसी कार्य को करने अथवा न करने की इच्छा से ही प्रस्ताव किया जाता है । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रस्ताव कोई काम करने के लिए भी हो सकता है अथवा किसी कार्य को करने से विरत रहने के लिए भी हो सकता है । उदाहरण के लिए, राम, मोहन को अपनी साइकिल 1300 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है ।यह प्रस्ताव किसी कार्य को

करने के सम्बन्ध मे है । इसके विपरीत राम, मोहन से कहता है कि यदि मोहन उसको 500 रुपये दे तो राम एक निश्चित नीलामी में बोली नहीं लगायेगा । यह किसी कार्य को करने से विरत रहने का प्रस्ताव है ।

(3) **प्रस्ताव का उद्देश्य दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करना होना चाहिए-** प्रस्तावक द्वारा प्रस्ताव करते समय उसकी इच्छा दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करना होना चाहिए । दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से यदि प्रस्ताव नहीं किया जाता है तो वह प्रस्ताव नहीं हो सकता है और उसको स्वीकार भी नहीं किया जा सकता है । प्रस्ताव करने की इच्छा तथा प्रस्ताव करने का निमन्त्रण, प्रस्ताव से भिन्न होते हैं । इसका विवेचन निम्न प्रकार है :

(i) **प्रस्ताव और प्रस्ताव करने की इच्छा में अन्तर -** प्रस्ताव करने की इच्छा को, प्रस्ताव नहीं कहा जा सकता है । यदि एक पक्षकार प्रस्ताव करने की घोषणा करता है तो ऐसी घोषणा प्रस्ताव नहीं मानी जा सकती है और न ही ऐसी घोषणा को स्वीकार किया जा सकता है । **एन्सन (Anson)**के शब्दों में, "आपसी वार्तालाप के दौरान एक पक्षकार द्वारा प्रस्ताव करने की इच्छा प्रकट करने से बाध्य करने योग्य वचन उत्पन्न नहीं होता है, चाहे जिस व्यक्ति के सम्मुख ऐसी इच्छा प्रकट की गयी हो, और उसने उसके अनुसार कार्य ही क्यों न कर लिया हो । "

नीलामी करने के विज्ञापन प्रस्ताव न होकर प्रस्ताव करने की इच्छा मात्र ही होते हैं । **हेरिस बनाम निकरसन** के विवाद में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है । इस विवाद में प्रतिवादी (निकरसन) ने कुछ वस्तुएँ लन्दन से दूर एक निश्चित स्थान पर नीलामी द्वारा बेचने का विज्ञापन समाचार-पत्रों में प्रकाशित करवाया । विज्ञापन के आधार पर वादी (हेरिस) उस स्थान पर निश्चित दिन को पहुँचा, वहाँ उसे मालूम हुआ कि नीलामी रद्द कर दी गयी है । हेरिस ने अनुबन्ध खण्डन के आधार पर क्षतिपूर्ति के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया । न्यायालय ने निर्णय दिया कि प्रतिवादी द्वारा प्रकाशित विज्ञापन प्रस्ताव की इच्छा मात्र था जिसकी स्वीकृति देकर वैधानिक दायित्व उत्पन्न नहीं किया जा सकता है । एक अन्य विवाद **माँण्ट्रियल गैस कम्पनी बनाम वेसी** में एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को पत्र में लिखा था कि यदि उसके साथ किये गये विद्यमान अनुबन्ध से वह सन्तुष्ट रहा, तो वह उस अनुबन्ध को भविष्य में जारी रखने के प्रार्थना पत्र पर विचार करेगा । न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय में यह माना गया कि यह कोई प्रस्ताव नहीं था, जिसको स्वीकार करके ठहराव माना जा सकता था । यह तो उस व्यक्ति के प्रस्ताव करने की इच्छा मात्र है ।

(ii) **प्रस्ताव और प्रस्ताव करने के लिए निमन्त्रण में अन्तर है -** प्रस्ताव और प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण में भी अन्तर होता है । कई बार एक पक्षकार द्वारा दिये गये कथन का स्वभाव ऐसा होता है कि ऊपरी तौर पर वह प्रस्ताव प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में वह 'प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण' मात्र होता है । इन दोनों की भिन्नता पक्षकारों के अभिप्राय पर निर्भर करती है, जिसको मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही निश्चित किया जा सकता है । मूल रुप से 'प्रस्ताव' और 'प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण' में दो प्रमुख अन्तर होते हैं - प्रथम, 'प्रस्ताव' पक्षकार को बाध्य करने के उद्देश्य से किया जाता है और 'प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण' दूसरे पक्षकार को बाध्य करने के उद्देश्य से नहीं किया जाता है । द्वितीय, प्रस्ताव में स्वीकृति की योग्यता है, किन्तु प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण को स्वीकार करने का कोई प्रभाव नहीं होता है ।

विभिन्न महत्वपूर्ण निर्णयों के आधार पर यह निश्चित हो चुका है कि निम्नलिखित 'प्रस्ताव' नहीं हैं अपितु 'प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण' मात्र हैं ।

1) **निविदा अथवा टेण्डर मांगना** - वस्तुओं को खरीदने के लिए अथवा बेचने के लिए अथवा किसी कार्य को पूरा कराने के लिए जब कोई पक्षकार टेण्डर मांगता है तो यह टेण्डर मांगना प्रस्ताव न होकर प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण माना जाता है । टेण्डर के विज्ञापन के आधार पर टेण्डर भर कर भेजना प्रस्ताव होता है जिसको स्वीकार करना या न करना टेण्डर मांगने वाले की इच्छा पर निर्भर करता है ।

2) **मूल्य सूचियाँ, सूचीपत्र तथा वातायन सजावट** - मूल्य सूचियाँ (Price Lists) एवं सूची पत्र (Catalogue) छपवाना अथवा खिड़की में मूल्य के टेग लगाकर सजावट (Window Display) करना प्रस्ताव न होकर प्रस्ताव का निमन्त्रण मात्र है । मूल्य सूची में या मूल्य के टेग पर छपी हुई कीमत पर सामान बेचने के लिए दुकानदार बाध्य नहीं है ।

3) **रेल्वे की समय-सारणी** - रेल्वे बोर्ड द्वारा रेल्वे स्टेशन पर लगायी गयी समय-सारणी एक प्रस्ताव का निमन्त्रण मात्र है । रेल्वे बोर्ड द्वारा अनुसूचित समय पर रेलें चलाने का प्रस्ताव नहीं है । समय सारणी लगाकर रेल्वे बोर्ड जनसाधारण को यात्रा करने के लिए टिकट खरीदने के लिए आमन्त्रित करता है ।

4) **कम्पनी का प्रविवरण** - कम्पनियों द्वारा अंश व ऋण पत्र बेचने के लिए जो प्रविवरण प्रकाशित किया जाता है, वह कम्पनी की ओर से अंशों या ऋण पत्रों को निश्चित मूल्य पर बेचने का प्रस्ताव नहीं है । इसके द्वारा सामान्य जनता को अंश खरीदने के लिए प्रस्ताव करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है जिसको कम्पनी अंश आवंटन द्वारा स्वीकार करती है ।

5) **बीमा के प्रस्ताव** - बीमा कम्पनी अथवा उसके एजेण्ट द्वारा बीमा करवाने के लिए व्यक्तियों को छपा हुआ 'प्रस्ताव पत्र' उपलब्ध कराया जाता है । यह बीमा कम्पनी की ओर से बीमा कराने वाले को 'प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण' होता है, प्रस्ताव नहीं । जब बीमा कराने 'वाला व्यक्ति प्रस्ताव पत्र को भरकर प्रस्तुत करता है तो उसको स्वीकार करना या नहीं करना बीमा कम्पनी पर निर्भर करता है ।

6) **नीलामी सम्बन्धी विज्ञापन** - किसी माल या सम्पत्ति को 'नीलामी' द्वारा बेचने का विज्ञापन प्रस्ताव न होकर, 'प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण' होता है । नीलामी के समय कोई भी व्यक्ति माल या सम्पत्ति क्रय करने के लिए बोली लगाकर प्रस्ताव करता है जिसको नीलामीकर्ता द्वारा स्वीकार किया जाता है ।

7) **पूछताछ के उत्तर-** वस्तुओं के मूल्यों के बारे में ग्राहक द्वारा दुकानदार से पूछताछ की जाती है और दुकानदार एक निश्चित कीमत बतलाता है । यह उन मूल्यों पर वस्तुओं को बेचने का प्रस्ताव नहीं है । उदाहरण के लिए, सोहन एक दुकानदार से पूछता है कि चीनी का क्या भाव है ' दुकानदार चीनी की कीमत 1800 रुपये प्रति क्विंटल बतलाता है । सोहन एक क्विंटल चीनी का आदेश देता है, परन्तु दुकानदार मना कर देता है । सोहन न्यायालय में चीनी के लिए दुकानदार पर वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है ।

8) **सस्ती वस्तुएँ बेचने का विज्ञापन -** अनेक बार व्यापारी सस्ती वस्तुएँ बेचने के विज्ञापन प्रकाशित करते हैं । कानून की दृष्टि से यह प्रस्ताव न होकर लोगों के लिए वस्तुएँ खरीदने का निमन्त्रण है जिसको स्वीकार करना या न करना व्यापारी पर निर्भर है ।

2.5 प्रस्ताव सम्बन्धी वैधानिक नियम

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार तथा विभिन्न न्यायाधीशों द्वारा दिये गये निर्णयों के आधार पर प्रस्ताव के सम्बन्ध में निम्नलिखित वैधानिक नियम महत्वपूर्ण है जिनका पालन करना प्रस्ताव करते समय आवश्यक होता है

(1) **प्रस्ताव का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होना चाहिए -** प्रस्ताव का उद्देश्य पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होना चाहिए । यदि प्रस्ताव इस प्रकृति का है कि उससे पक्षकारों का वैधानिक दायित्व उत्पन्न नहीं होता है तो वह प्रस्ताव एक वैध अनुबन्ध का निर्माण नहीं कर सकता है । उदाहरण के लिए, रमेश, महेश को सपरिवार भोजन पर आमन्त्रित करता है । महेश किसी कारण से भोजन करने नहीं जाता है और रमेश का नुकसान होता है । इसकी क्षतिपूर्ति के लिए रमेश वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है क्योंकि पक्षकारों का उद्देश्य कोई वैधानिक दायित्व उत्पन्न करना नहीं था ।

(2) **प्रस्ताव की शर्तें निश्चित होनी चाहिए -** प्रस्ताव की शर्तें तथा उससे सम्बन्धित सभी बातें निश्चित एवं स्पष्ट होनी चाहिए । अनिश्चित शर्तों वाला प्रस्ताव राजनियम की दृष्टि से प्रस्ताव नहीं माना जाता है । उदाहरण के लिए राम एक तेल का व्यापारी है जो अनेक प्रकार के तेलों का व्यापार करता है; श्याम उसको प्रस्ताव करता है कि उसको 100 टिन तेल बाजार मूल्य पर भेजे । यहां पर प्रस्ताव अनिश्चित है कि कौन सा तेल श्याम को भेजा जाये । अत: पक्षकारों के मध्य अनुबन्ध नहीं होगा ।

(3) **प्रस्ताव विनय के रुप में होना चाहिए, आज्ञा के रुप में नहीं -** एक प्रस्तावक प्रस्ताव करते समय स्वीकृति के सम्बन्ध में कोई भी शर्त निश्चित कर सकता है परन्तु उस प्रस्ताव को अस्वीकार करने के बारे में कोई भी शर्त निश्चित नहीं कर सकता है । प्रस्तावक को हमेशा विनय के रुप में ही प्रस्ताव वचनगृहीता के समक्ष करना चाहिए । ऐसी कोई भी बात नहीं होनी चाहिए जिसमें आज्ञा झलकती हो । उदाहरण के लिए- सुरेश, महेश को उसका स्कूटर 20,000 रुपये में खरीदने का प्रस्ताव करता है और कहता है कि यदि 15 दिनों में पत्र का उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो प्रस्ताव स्वीकृत समझा जावेगा । यह एक वैध प्रस्ताव नहीं है । इसी उदाहरण में यदि सुरेश, महेश को प्रस्ताव करते समय कहता है कि स्वीकृति तार द्वारा ही दी जावे तो यह प्रस्ताव मान्य होगा ।

(4) **प्रस्ताव विशिष्ट अथवा सामान्य हो सकता है -** जब कोई प्रस्ताव किसी व्यक्ति विशेष के समक्ष या व्यक्तियों के एक निश्चित समूह के समक्ष किया जाता है, तो उसे विशिष्ट प्रस्ताव कहते हैं । जब कोई प्रस्ताव सामान्य जनता को अथवा व्यक्तियों के एक अनिश्चित समूह को किया जाता है, तो इसे सामान्य प्रस्ताव कहते हैं । वैधानिक नियम यह है कि विशिष्ट प्रस्ताव को केवल वही व्यक्ति स्वीकार कर सकता है जिसके सम्मुख वह प्रस्ताव किया गया है । सामान्य प्रस्ताव को जनता का कोई भी व्यक्ति स्वीकार कर सकता है । उदाहरण के लिए-प्रकाश, प्रभात को एक निश्चित सामान क्रय करने का प्रस्ताव करता है तो यह विशिष्ट प्रस्ताव होगा ।

विज्ञापन द्वारा जनसामान्य के सम्मुख किया गया प्रस्ताव सामान्य प्रस्ताव होता है जिसको हम **कारलिल बनाम कारबोलिक स्मोक बाल कम्पनी** के विवाद के निर्णय से स्पष्ट कर सकते हैं । इस विवाद में प्रतिवादी कारबोलिक स्मोक बाल कम्पनी ने समाचार पत्रों में यह विज्ञापन प्रकाशित किया कि जो भी व्यक्ति कम्पनी द्वारा निर्मित 'स्मोक बाल' दवा का प्रयोग प्रतिदिन तीन बार दो सप्ताह तक करेगा और उसके बाद भी यदि उसको जुकाम या इन्फ्लुएन्जा हो जायेगा तो कम्पनी उसको 100 पौण्ड ईनाम देगी । वादी श्रीमती कारलिल ने कम्पनी द्वारा निश्चित विधि के अनुसार दवा का प्रयोग किया, फिर भी उसको इन्फ्लुएन्जा हो गया । उसने न्यायालय में 100 पौण्ड के लिए वाद प्रस्तुत किया । कम्पनी की ओर से यह तर्क दिया गया कि स्वीकृति की सूचना कम्पनी को सीधे नहीं मिली थी और कम्पनी का प्रस्ताव मात्र.. एक विज्ञापन था, जिस पर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति गम्भीरता से विचार नहीं करता है । न्यायालय ने वादी श्रीमती कारलिल के पक्ष में निर्णय देते हुए कहा कि यह विज्ञापन द्वारा सामान्य प्रस्ताव था, जिसकी स्वीकृति कोई भी व्यक्ति शर्तों का पालन करके दे सकता है । इसमें अलग से स्वीकृति देने की आवश्यकता नहीं होती है । इस वाद में श्रीमती कारलिल को 100 पौण्ड का भुगतान कराया गया।

(5) **प्रस्ताव स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है -** प्रस्ताव स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है । जब प्रस्ताव लिखित या मौखिक रुप से स्पष्ट शब्दों में किया जाता है तो स्पष्ट प्रस्ताव कहलाता है । जब प्रस्ताव शब्दों के अतिरिक्त अन्य किसी ढंग से अर्थात् प्रस्तावक के व्यवहार से होता है तो गर्भित प्रस्ताव कहलाता है । उदाहरण के लिए, रेल्वे स्टेशन पर रेलगाड़ी का निश्चित समय पर आकर रुकना यात्रियों को बैठाने का गर्भित प्रस्ताव है ।

(6) **प्रस्ताव का संवहन होना आवश्यक है -** प्रस्ताव का संवहन होना अति आवश्यक होता है अर्थात् प्रस्ताव उस पक्षकार की जानकारी में आना आवश्यक है जिसको यह प्रस्ताव किया जाता है, तभी वैध अनुबन्ध का निर्माण हो सकता है । किसी व्यक्ति द्वारा अनजाने में प्रस्ताव की शर्तों के अनुरूप कार्य करने मात्र से ही प्रस्ताव को स्वीकार हुआ नहीं माना जा सकता है ।

लार्ड लिण्डले (Lord Lindlay)के अनुसार, "जब तक एक व्यक्ति के मस्तिष्क के विचारों का ज्ञान दूसरे व्यक्ति को नहीं हो जाता है, तब तक उनके मध्य किसी प्रकार का व्यवहार नहीं हो सकता । " प्रस्ताव के संवहन का नियम विशिष्ट और सामान्य दोनों ही प्रकार के प्रस्तावों पर समान रुप से लागू होता है । इस सम्बन्ध में "**लालमन शुक्ल बनाम गोरीदत्त**" का विवाद महत्वपूर्ण है । प्रस्तुत विवाद में लालमन शुक्ल, गोरीदत्त का मुनीम था । एक बार प्रतिवादी गोरीदत्त का भतीजा कही खो गया । वादी लालमन शुक्ल को बच्चे को खोजने के लिए हरिद्वार भेजा गया । उसके चले जाने के बाद प्रतिवादी ने विज्ञापन द्वारा 501 रुपये के ईनाम की घोषणा की, कि जो भी कोई उस बच्चे को ढूंढकर लायेगा, उसको यह ईनाम दिया जायेगा । लालमन शुक्ल को बच्चा विज्ञापन की जानकारी होने से पूर्व ही मिल गया, लेकिन उसने ईनाम की राशि की मांग की, जिसके लिए प्रतिवादी इन्कार हो गया । लालमन शुक्ल ने न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया । प्रतिवादी के पक्ष में निर्णय देते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री बनर्जी ने कहा कि लालमन शुक्ल ईनाम की राशि प्राप्त नहीं कर सकता है क्योंकि उसको विज्ञापन के प्रस्ताव की जानकारी नहीं थी ।

(7) **प्रस्ताव के साथ विशिष्ट शर्तों का संवहन भी आवश्यक है -** यदि प्रस्ताव की कोई विशिष्ट शर्त हैं तो वे भी प्रस्ताव के साथ-साथ दूसरे पक्षकार को जानकारी में होनी चाहिए । इस सम्बन्ध में निम्न बातें महत्वपूर्ण है :

(i) यदि प्रस्ताव की विशिष्ट शर्तों की जानकारी स्वीकर्ता को स्वीकृति देने से पूर्व नहीं होती है तो वह उन शर्तों को मानने के लिए बाध्य नहीं होता है ।

(ii) यदि प्रस्तावक, प्रस्ताव की विशिष्ट शर्तों की जानकारी देने का पूर्ण प्रयास करता है, परन्तु स्वीकर्ता उन शर्तों पर ध्यान नहीं देता है तो वह उन शर्तों को मानने के लिए बाध्य होगा ।

(iii) प्रस्ताव की विशिष्ट शर्तों की जानकारी हो जाने के बाद भी स्वीकर्ता स्वीकृति देते समय इन शर्तों का प्रतिरोध नहीं करता है अथवा ठहराव के अनुसार लाभ प्राप्त करता है तो यह माना जायेगा कि उसने उन शर्तों को स्वीकार कर लिया है ।

(iv) यदि स्वीकृति देने वाला व्यक्ति ऑखों की कमजोरी अथवा भाषा की कठिनाई के कारण प्रस्ताव की शर्तों को पढ़ नहीं पाता है तो भी शर्तों का संवहन हुआ माना जायेगा ।

(v) यदि विशिष्ट शर्तें किसी टिकट या प्रस्ताव पत्र की पीठ पर लिखी हों और मुख पृष्ठ पर इस बात का कोई संकेत नहीं दिया जाता है कि शर्तें पीछे लिखी हुई है तो शर्तों का संवहन हुआ नहीं माना जायेगा और स्वीकर्ता उन शर्तों से बाध्य नहीं होगा ।

(vi) कई बार प्रस्तावक प्रस्ताव की शर्तों का उल्लेख टिकटों अथवा रसीदों पर नहीं करता है और काउण्टर या कार्यालय में पोस्टर या बोर्ड पर लिखकर या सूची पत्र आदि में इन शर्तों का वर्णन करता है । स्वीकृति देने वाला पक्षकार इन शर्तों को पढ़ने में मल करता है तो भी वह उन शर्तों से बाध्य होता है ।

(8) **'प्रस्ताव करने की इच्छा** तथा **'प्रस्ताव करने के लिए निमन्त्रण'** को प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि इसमें एक पक्षकार की इच्छा दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करना नहीं होती है ।

(9) **प्रस्ताव 'स्थायी' अथवा 'खुला प्रस्ताव हो सकता है -** प्रस्ताव 'स्थायी' अथवा 'खुला प्रस्ताव' हो सकता है । स्थायी प्रस्ताव अथवा खुला प्रस्ताव अथवा चालू प्रस्ताव एक ऐसा प्रस्ताव है जिसको एक निश्चित समय के अन्दर स्वीकार किया जा सकता है । इस प्रकार के प्रस्ताव की स्वीकृति मिलने पर वह ठहराव का रुप ले लेता है । ऐसे प्रस्ताव में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को यह विकल्प देता है कि वह अपनी इच्छानुसार प्रस्ताव की स्वीकृति देकर अनुबन्ध का निर्माण कर ले । जब किन्हीं विशिष्ट वस्तुओं को एक निश्चित मूल्य पर, एक निर्धारित अवधि तक आपूर्ति (Supply) करने के लिए जब पूर्तिकर्ता द्वारा टेण्डर भर कर दिया जाता है तो यह एक खुला प्रस्ताव होता है जिसके अन्तर्गत टेण्डर स्वीकार करने वाला पक्षकार वस्तुओं की आपूर्ति का आदेश देकर प्रस्ताव को स्वीकार करता है । उदाहरण के लिए, प्रभात, प्रकाश एण्ड कम्पनी को 500 टन तक कोयला किसी भी मात्रा में 2000 रुपये प्रति टन की दर से एक वर्ष तक सप्लाई करने का वचन देता है । यह एक खुला प्रस्ताव है । प्रकाश एण्ड कम्पनी द्वारा दिया गया प्रत्येक आदेश इरा प्रस्ताव की स्वीकृति होगी और वह एक अनुबन्ध होगा ।

(10) **प्रस्ताव के संवहन का कोई भी माध्यम हो सकता है -** प्रस्ताव का संवहन किसी भी माध्यम अथवा तरीके से किया जा सकता है । प्रस्ताव का संवहन लिखित, मौखिक अथवा सांकेतिक हो सकता है । प्रस्ताव का संवहन के लिए पत्र, टेलीफोन, टेलीग्राम, रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार पत्र आदि किसी भी माध्यम का उपयोग किया जा सकता है ।

(11) **प्रति-प्रस्ताव को प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है -** जब दो व्यक्ति एक दूसरे द्वारा किये गये प्रस्तावों से अनभिज्ञ रहते हुए एक जैसे ही प्रस्ताव एकदूसरे को करते हैं, तो उनके द्वारा किये गये प्रस्ताव प्रति-प्रस्ताव (Counter offer or Gross offer) कहलाते हैं । प्रति-प्रस्ताव को एक दूसरे की स्वीकृति नहीं माना जा सकता है । उदाहरण के लिए, राम अपना स्कूटर 15000 रुपये में मोहन को बेचने का प्रस्ताव करता है । दूसरी तरफ मोहन इसकी जानकारी होने से पूर्व ही राम को उसका स्कूटर 15000 रुपये में खरीदने का प्रस्ताव करता है । दोनों पक्षों द्वारा किये गये प्रस्ताव ही प्रति-प्रस्ताव हैं और वैध अनुबन्ध का निर्माण नहीं कर सकते हैं ।

2.6 स्वीकृति का अर्थ एवं परिभाषा

जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति द्वारा किये गये प्रस्ताव की शर्त रहित स्वीकृति दे देता है तो इसे स्वीकृति या सहमति कहते हैं । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(b) के अनुसार, जब वह व्यक्ति जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा जाता है, उसके प्रति अपनी सहमति दे देता है जो प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है ।" **मैकोनल (Meconnell)** के शब्दों में, "स्वीकृति, प्रस्तावक की प्रार्थना की, शर्त रहित सहमति है । " इस प्रकार प्रस्ताव बिना स्वीकृति के महत्वहीन होता है । जब भी प्रस्ताव दूसरे पक्षकार द्वारा स्वीकार किया जाता है, वह उसी रुप में स्वीकार किया जाना चाहिए, जिस रुप में प्रस्ताव किया गया है । किसी प्रकार की कोई अतिरिक्त बात स्वीकृति के समय नहीं जोड़ी जानी चाहिए ।

2.7 स्वीकृति सम्बन्धी वैधानिक नियम

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की व्यवस्थाओं तथा विभिन्न न्यायाधीशों द्वारा दिये गये महत्वपूर्ण निर्णयों के आधार पर वैध स्वीकृति के लिए निम्नलिखित नियमों का होना आवश्यक होता है -

(1) **प्रस्ताव की स्वीकृति उसी व्यक्ति द्वारा होनी चाहिए जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया गया है -** स्वीकृति के सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्ताव की स्वीकृति किसके द्वारा हो । विशिष्ट प्रस्ताव में तो स्वीकृति उसी व्यक्ति द्वारा दी जा सकती है जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया गया है । अन्य कोई भी व्यक्ति उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता है ।

इस सम्बन्ध में **बोल्टन बनाम जोन्स** का विवाद उल्लेखनीय है । प्रस्तुत विवाद में एक व्यापारी ने अपना कारोबार अपने मैनेजर बोल्टन को बेच दिया जिसकी सूचना ग्राहकों को नहीं दी गयी । जिस दिन कारोबार बेचा गया, उसी दिन शाम को व्यापारी के एक पुराने ग्राहक जोन्स ने कुछ वस्तुएँ खरीदने के लिए मूल व्यापारी के व्यक्तिगत नाम से आर्डर भेजा । व्यवसाय के नये स्वामी बोल्टन ने स्वामित्व परिवर्तन की जानकारी दिये बिना ही आर्डर के अनुसार माल भेज

दिया । वस्तुओं का मूल्य प्राप्त न होने पर बोल्टन ने भुगतान के लिए जोन्स पर न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया । न्यायालय ने प्रतिवादी के पक्ष में निर्णय देते हुए कहा कि बोल्टन, जोन्स से वस्तुओं का मूल्य प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि प्रस्ताव व्यवसाय के पुराने स्वामी के सम्मुख किया गया था, अत: बोल्टन द्वारा माल भेजकर दी गयी स्वीकृति का कोई वैधानिक महत्व नहीं है ।

(2) **स्वीकृति पूर्ण एवं शर्त रहित होनी चाहिए -** प्रस्ताव की स्वीकृति पूर्ण एवं शर्त रहित होनी चाहिए । प्रस्ताव की सभी शर्तें ज्यों की त्यों स्वीकार की जानी चाहिए । यदि स्वीकृति में प्रस्ताव की शर्तों से कुछ भिन्नता है तो वह स्वीकृति न होकर एक प्रति-प्रस्ताव माना जायेगा । इस सम्बन्ध में **जॉर्डन बनाम नार्टन** का विवाद उल्लेखनीय है । इस विवाद में नार्टन ने जॉर्डन की घोड़ी निश्चित मूल्य पर तथा इस शर्त पर कि घोड़ी जोतने पर स्वस्थ और शान्त स्वभाव की होने पर खरीदने का प्रस्ताव किया । जॉर्डन ने निश्चित मूल्य पर घोड़ी को बेचने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और आश्वासन दिया कि घोड़ी स्वस्थ है और दूसरे घोड़े के साथ जोतने पर शान्त रहती है । जॉर्डन ने **'स्वस्थ और शान्त'** की शर्त बदल कर 'दूसरे घोड़े के साथ जोतने पर शान्त रहने' की नयी शर्त लगा दी । न्यायालय ने निर्णय दिया कि जॉर्डन द्वारा प्रस्ताव की वैध स्वीकृति नहीं दी गयी, अपितु एक प्रति-प्रस्ताव किया गया था, जिसको नार्टन द्वारा स्वीकार करने पर ही अनुबन्ध बन सकता था ।

(3) **स्वीकृति प्रस्तावक द्वारा निश्चित अथवा उचित ढंग से होनी चाहिए -**भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा **7 (2)** के अनुसार, स्वीकृति चाहता है तो वह और उचित ढंग से होनी चाहिए । यदि प्रस्तावक एक निश्चित विधि से ही स्वीकृति चाहता है तो वह स्वीकृति उसी निश्चित ढंग से होनी चाहिए । उदाहरण के लिए, प्रस्तावक तार द्वारा स्वीकृति देने का ढंग निश्चित करता है तो स्वीकर्ता को अपनी सहमति तार द्वारा ही देनी चाहिए । यदि वह स्वीकृति पत्र द्वारा दी जाती है तो प्रस्तावक उसको मानने के लिए बाध्य नहीं होता है, परन्तु यदि वह पत्र द्वारा दी गयी स्वीकृति को उचित समय तक रह नहीं करता है तो स्वीकृति वैधानिक होगी । अगर प्रस्तावक ने स्वीकृति का कोई ढंग निश्चित नहीं किया है तो उचित विधि से ही प्रस्ताव स्वीकार किया जाना चाहिए । यह उचित विधि क्या है, यह तो विवाद विशेष की परिस्थितियों पर निर्भर करता है, परन्तु पत्र द्वारा किये गये प्रस्ताव की स्वीकृति पत्र द्वारा देना उचित विधि है ।

(4) **स्वीकृति का सवंहन होना आवश्यक है -** एक प्रस्ताव को स्वीकार करना ही पर्याप्त नहीं होता है अपितु स्वीकृति का संवहन करना भी आवश्यक होता है । यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति द्वारा किये -गये प्रस्ताव को स्वीकार करने की बात अपने मन में सोच लेता है और उसका सम्प्रेषण प्रस्तावक को नहीं करता है तो वह स्वीकृति वैध नहीं होगी । इसलिए हम कह सकते हैं कि ' 'वैधानिक दृष्टि से उस मानसिक अथवा मौन स्वीकृति को स्वीकृति नहीं माना जा सकता है, जिसे शब्दों अथवा आचरण द्वारा प्रकट नहीं किया गया है । '' इस सम्बन्ध में **ब्रागडन बनाम मैट्रोपॉलीटन रेल्वे कम्पनी** का विवाद उल्लेखनीय है । इस विवाद में रेल्वे कम्पनी के मैनेजर के पास कोयले की सप्लाई के सम्बन्ध में एक ठहराव का प्रारुप (Draft Agreement) स्वीकृति के लिए भेजा । मैनेजर ने उस पर स्वीकृत शब्द लिखकर इस उद्देश्य से अपनी टेबिल की दराज में रख दिया कि कम्पनी के वकील से अनुबन्ध का प्रारुप तैयार करवाकर कोयला पूर्ति करने वालों

के पास भिजवा देगा, परन्तु वह उसको तैयार करवाकर भेजना भूल गया । न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह केवल मानसिक स्वीकृति थी, इससे अनुबन्ध का निर्माण नहीं होता है ।

(5) **स्वीकृति का संवहन अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही होना चाहिए -** स्वीकृति की सूचना ऐसे व्यक्ति द्वारा भेजी जानी चाहिए जिसको स्वीकृति देने का अधिकार हो । यदि स्वीकृति अधिकृत व्यक्ति से प्राप्त नहीं होती है तो वह स्वीकृति मान्य नहीं होती है । उदाहरण के लिए, **'पावेल बनाम ली'**के मामले में पावेल ने एक शिक्षण संस्था में प्रधानाध्यापक के पद के लिए आवेदन किया था । शिक्षण संस्था की प्रबन्ध समिति ने पावेल को नियुक्ति देने का प्रस्ताव पारित कर दिया, किन्तु नियुक्ति की सूचना पावेल को नहीं भेजी । इसी दौरान प्रबन्ध समिति के एक सदस्य ने पावेल को अनौपचारिक रुप से इस नियुक्ति की सूचना दे दी । बाद में प्रबन्ध समिति ने पावेल की नियुक्ति के प्रस्ताव को रह कर दिया । पावेल ने अनुबन्ध भंग के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया । न्यायालय ने निर्णय दिया कि स्वीकृति का संवहन अधिकृत व्यक्ति द्वारा नहीं किया गया था, अत: अनुबन्ध का निर्माण नहीं हुआ और उसको प्रबन्ध समिति के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है ।

(6) **स्वीकृति निर्धारित समय अथवा उचित समय में होनी चाहिए -** जब प्रस्तावक ने प्रस्ताव में स्वीकृति देने का समय निश्चित कर दिया है तो उस निर्धारित समय के अन्दर ही स्वीकृति दी जानी चाहिए । यदि उस निश्चित अवधि में स्वीकृति नहीं दी जाती है तो प्रस्ताव का अन्त हो जायेगा जिसको बाद में स्वीकार नहीं किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, राम ने श्याम का घोड़ा 11,500 रुपये में खरीदने का प्रस्ताव किया और कहा कि 15 दिन के अन्दर-अन्दर अपनी स्वीकृति भेजे । इस प्रस्ताव को 15 दिन की अवधि में ही स्वीकार किया जा सकता है ।

जब स्वीकृति के लिए कोई अवधि निश्चित नहीं की गयी है तो उचित अवधि में ही स्वीकृति दी जानी चाहिए । यह उचित समय क्या है, यह पक्षकारों की इच्छा तथा विवाद की परिस्थितियों पर निर्भर करता है । उदाहरण के लिए, एक पुस्तक विक्रेता, प्रकाशक से 10 अगस्त को एक निश्चित मात्रा में पुस्तकें भेजने का प्रस्ताव करता है और प्रकाशक 15 दिसम्बर को आर्डर की पुस्तकें भेजता है तो यह स्वीकृति वैध नहीं है, क्योंकि अगस्त माह में पुस्तक विक्रेताओं के लिए 5 या 8 दिन की अवधि उचित अवधि होती है ।

(7) **स्वीकृति आचरण द्वारा अथवा प्रस्ताव की शर्तों का पालन करके हो सकती है -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 8 के अनुसार, जब कोई व्यक्ति प्रस्ताव की स्पष्ट रुप से स्वीकृति नहीं देता है, अपितु प्रस्ताव की शती का निष्पादन कर देता है तो यह एक वैध स्वीकृति मानी जायेगी । उदाहरण के लिए, सुरेश, महेश से 100 बोरी चीनी 1800 रुपये प्रति क्विंटल की दर से खरीदने का प्रस्ताव करता है । महेश शब्दों द्वारा कुछ नहीं कहता है, परन्तु सुरेश को 100 क्विंटल चीनी भिजवा देता है । यह आचरण द्वारा या प्रस्ताव की शर्तों के पालन के द्वारा स्वीकृति मानी जायेगी और एक वैध अनुबन्ध की उत्पत्ति होगी । इस सम्बन्ध में **कारलिल बनाम कारबोलिक स्मोक बाल कम्पनी** का विवाद महत्वपूर्ण है ।

(8) **एक बार अस्वीकृत प्रस्ताव पुन: प्रस्तुत किये बिना स्वीकार नहीं किया जा सकता है -** अगर कोई प्रस्ताव एक बार अस्वीकार कर दिया गया है तो वह प्रस्ताव बाद में पुन: प्रस्तुत किये

बिना स्वीकार नहीं किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, प्रदीप ने अपनी कार रोहित को 2,40,000 में बेचने का प्रस्ताव किया । रोहित ने इस प्रस्ताव के उत्तर में लिखा कि वह कार 2,35,000 रुपये में खरीदने को तैयार है । फिर कुछ दिनों बाद दूसरा पत्र लिखता है कि अब वह कार 2,40,000 रुपये में खरीदने को तैयार है । रोहित द्वारा दी गयी यह स्वीकृति वैध नहीं है क्योंकि प्रस्ताव पहले ही अस्वीकार हो गया था ।

(9) **प्रस्ताव को जाने बिना स्वीकृति देने का कोई महत्व नहीं होता है -** जब कोई व्यक्ति प्रस्ताव को जाने बिना ही ऐसा कोई कार्य करता है और उस कार्य की प्रकृति प्रस्ताव की स्वीकृति के समान ही है, तो इसको वैध स्वीकृति नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि प्रस्ताव की जानकारी के बिना स्वीकृति दी ही नहीं जा सकती है । उदाहरण के लिए, रविन्द्र का बैग रास्ते में कहीं खो जाता है, जिसके लिए वह समाचार पत्रों में खोजने वाले को ईनाम देने का विज्ञापन प्रकाशित करता है । प्रदीप को वह बैग रास्ते में पड़ा मिलता है और उसमें रखी डायरी में पता देखकर वह विज्ञापन की जानकारी के बिना ही बैग रविन्द्र के घर पहुँचा देता है । यहां पर प्रदीप ईनाम की राशि प्राप्त नहीं कर सकता है क्योंकि प्रदीप को ईनाम की जानकारी नहीं थी । इस सम्बन्ध में **लालमन शुक्ल बनाम गोरीदत्त** का विवाद महत्वपूर्ण है ।

(10) **स्वीकृति स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकती है -** जब स्वीकृति लिखित अथवा मौखिक शब्दों द्वारा दी जाती है तो इसे स्पष्ट स्वीकृति कहते हैं । इसके अतिरिक्त प्रस्ताव की शर्तों का पालन करने अथवा प्रस्ताव के अनुरूप कार्य करके जो स्वीकृति दी जाती है, वह गर्भित स्वीकृति कहलाती है । राजनियम की दृष्टि से स्पष्ट एवं गर्भित स्वीकृति में कोई अन्तर नहीं होता है । दोनों का एक समान ही प्रभाव होता है । कारलिल बनाम कारबोलिक स्मोक बाल कम्पनी के विवाद में कारलिल द्वारा दी गयी स्वीकृति गर्भित स्वीकृति ही थी । प्रस्ताव की स्वीकृति के सम्बन्ध में स्वीकर्ता का केवल मौन रहना ही पर्याप्त नहीं होता अपितु उसे स्पष्ट या गर्भित रुप से कुछ करना चाहिए ।

(11) **स्वीकृति प्रस्ताव का अन्त होने अथवा खण्डन होने से पूर्व होनी चाहिए -** प्रस्ताव की स्वीकृति प्रस्ताव का अन्त होने या प्रस्तावक द्वारा अपना प्रस्ताव वापिस लेने से पहले ही दी जानी चाहिए । प्रस्ताव का अन्त होने अथवा खण्डन होने के बाद दी गयी स्वीकृति का कोई महत्व नहीं होता है । उदाहरण के लिए, प्रकाश अपनी कार प्रवीण को 2,45,000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है और स्वीकृति के लिए 15 दिन का समय निश्चित करता है । प्रवीण 25वे दिन इस प्रस्ताव की स्वीकृति देता है तो प्रकाश को कार बेचने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह स्वीकृति प्रस्ताव का अन्त होने के बाद में दी गयी है जिससे अनुबन्ध की उत्पत्ति नहीं होती है ।

(12) **सामान्य प्रस्ताव की स्वीकृति का संवहन आवश्यक नहीं है -** जब प्रस्तावक ने जन सामान्य के सम्मुख सामान्य प्रस्ताव किया है तो ऐसे प्रस्ताव की शर्तों का पालन करके कोई भी व्यक्ति स्वीकृति दे सकता है । इस प्रकार के सामान्य प्रस्तावों की स्वीकृति का संवहन होना आवश्यक नहीं होता है । इस प्रकार के प्रस्ताव की शर्तों के अनुरूप कार्य करना ही पर्याप्त है । इसकी सूचना प्रस्तावक को दिये बिना ही स्वीकृति मान ली जाती है और वैध अनुबन्ध का निर्माण हो जाता है ।

(13) **प्रति-प्रस्ताव अथवा स्थानापन्न प्रस्ताव स्वीकृति नहीं है -** जब दो व्यक्ति एक दूसरे को एक समय पर एक ही विषय के सम्बन्ध में प्रस्ताव करते हैं तो इन प्रति-प्रस्तावों को स्वीकृति नहीं माना जा सकता है, भले ही पक्षकारों का दृष्टिकोण अथवा मानसिक स्थिति एक जैसी ही क्यों न रही हो ।

(14) **सामान्य प्रस्ताव की स्वीकृति किसी भी व्यक्ति द्वारा दी जा सकती है -** सामान्य प्रस्ताव जन सामान्य या समूह के सम्मुख किया जाता है । अत: इन प्रस्तावों की स्वीकृति किसी भी व्यक्ति द्वारा शर्तों का पालन करते हुए दी जा सकती है ।

(15) **मौन रहना स्वीकृति नहीं है -** प्रस्तावक द्वारा प्रस्ताव करते समय स्वीकृति देने की विधि निश्चित की जा सकती है और स्वीकृति उसी विधि से ही दी जानी चाहिए । स्वीकृति देने वाला व्यक्ति प्रस्ताव को जानकर अथवा सुनकर मौन रहता है और किसी भी तरीके से अपनी स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता है तो उस 'मौन रहने' को स्वीकृति नहीं माना जा सकता है । उदाहरण के लिए, मोहन अपना स्कूटर 11,000 रुपये में सोहन को बेचने का प्रस्ताव करता है और लिखता है कि 'यदि 10 दिन में मुझे उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो मैं यह समझूंगा कि आप स्कूटर खरीदने के लिए सहमत हैं । सोहन कोई उत्तर नहीं देता है । यहां पर सोहन का मौन रहना स्वीकृति नहीं है ।

(16) **जब प्रस्तावक ने प्रस्ताव अपने एजेण्ट के माध्यम से किया है तो उस प्रस्ताव की स्वीकृति उस एजेण्ट को दी जा सकती है ।** उदाहरण के लिए, रमेश, महेश के द्वारा प्रकाश के पास प्रस्ताव की सूचना भेजता है और प्रकाश भी अपनी स्वीकृति रमेश के एजेण्ट महेश को ही दे देता है तो यह वैध स्वीकृति मानी जायेगी ।

2.8 प्रस्ताव का संवहन

प्रस्ताव का उस समय तक कोई महत्व नहीं होता है, जब तक कि वह उस पक्षकार मई जानकारी में न आ जाये जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया जा रहा है । जब प्रस्ताव, स्वीकृति देने वाले पक्षकार की जानकारी में आ जाता है तो इसे प्रस्ताव का संवहन कहते हैं । **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 4** के अनुसार, ' 'किसी प्रस्ताव का संवहन उस समय पूर्ण माना जाता है जब वह उस व्यक्ति की जानकारी मे आ जाये जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा गया है । '' उदाहरण के लिए, नवीन अपना मकान प्रवीण को 25 लाख रुपये में बेचने का प्रस्ताव पत्र द्वारा करता है । इस प्रस्ताव का संवहन उस समय पूरा होगा, जब प्रवीण को वह पत्र प्राप्त होगा ।

प्रस्ताव के सभी तथ्यों एवं विषयवस्तु का संवहन आवश्यक-प्रस्ताव के संवहन में प्रस्ताव की जानकारी ही दूसरे पक्षकार को होना पर्याप्त नहीं है, अपितु उस प्रस्ताव की सभी तथ्य तथा विषयवस्तु भी उस पक्षकार की जानकारी में आनी चाहिए, जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा जा रहा है । **लालमन शुक्ल बनाम गोरीदत्ते** के विवाद में यही तथ्य सामने आया कि खोई हुई वस्तु प्राप्त करने वाले व्यक्ति की जानकारी में पुरस्कार देने का प्रस्ताव नहीं आता है तो वह खोई हुई वस्तु को प्राप्त करने के उपरान्त भी पुरूस्कार की राशि प्राप्त नहीं कर सकता है ।

प्रस्ताव मे विशेष शर्तों का संवहन भी आवश्यक है - जब प्रस्तावक प्रस्ताव के साथ कुछ विशेष शर्त रखता है तो प्रस्ताव के संवहन के साथ उन शर्तों का भी संवहन होना चाहिए । अनेक

बार व्यावहारिक जीवन में हम देखते हैं कि प्रपत्रों, टिकटों तथा रसीदों के ऊपर या पीछे अनेक शर्तों छपी होती हैं, जिनको हम लापरवाही के कारण से नहीं पढ़ते हैं । यदि ये शर्तें भ्रमात्मक या कपटपूर्ण नहीं हैं तथा परिपत्र, टिकट या रसीद बेचने या देने वाले व्यक्ति ने इन शर्तों को बतलाने की पूरी कोशिश की है तो उसका धारक इन शर्तों के लिए बाध्य होगा । ऐसी स्थिति में वह यह कहकर दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता है कि उसने शर्तों को अज्ञानवश पढ़ा नहीं है ।

इस सम्बन्ध में **"पारकर बनाम एस.ई.आर. कम्पनी"** का विवाद उल्लेखनीय है । प्रस्तुत विवाद में पारकर ने रेल्वे कम्पनी के क्लॉक रूम में अपना थैला जमा कराया । थैला खो गया और पारकर ने कम्पनी पर 24 पौण्ड 10 शिलिंग का वाद प्रस्तुत किया । रेलवे कम्पनी ने अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए क्लॉक रूम की रसीद के पिछले भाग पर छपी हुई शर्त का हवाला दिया, जिसके अनुसार कम्पनी 10 पौण्ड से अधिक कीमत वाली वस्तुओं के लिए अतिरिक्त किराया देने पर ही उत्तरदायी ठहरायी जा सकती है । रसीद पर पीछे देखिये शब्द भी लिखा था । पारकर ने इसे देखा भी था, परन्तु इन शर्तों को पढ़ा नहीं और अतिरिक्त किराया भी नहीं दिया । न्यायालय द्वारा वाद को रह कर दिया गया और अपने निर्णय में कहा कि कम्पनी ने विशेष शर्तों की पर्याप्त सूचना दी है । अगर कोई व्यक्ति अज्ञानतावश इन शर्तों को नहीं पढ़ता है तो वह स्वयं उत्तरदायी होता है । इसके विपरीत **हेन्डरसन बनाम स्टीवेंसन** के विवाद में न्यायालय ने जहाजी कम्पनी को क्षतिपूर्ति हेतु उत्तरदायी ठहराया गया क्योंकि टिकट पर पीछे देखिये शब्द नहीं लिखा गया था जबकि सभी शर्तें पीछे लिखी हुई थी ।

2.9 स्वीकृति का संवहन

वैध स्वीकृति के लिए यह आवश्यक होता है कि स्वीकृति का संवहन हो । केवल मानसिक स्वीकृति जो प्रस्ताव करने वाले पक्षकार को सम्प्रेषित नहीं की जाती है, ठहराव की उत्पत्ति नहीं कर सकती है । एन्सन (Anson) के अनुसार "स्वीकृति से तात्पर्य सामान्यत: संवाहित स्वीकृति (Communicated Acceptance) से होता है । " **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 4 के अनुसार,**स्वीकृति के सवंहन के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं -

(1) **प्रस्तावक विरुद्ध (अर्थात् प्रस्तावक को बाध्य करने के लिए) -** स्वीकृति का संवहन उस समय पूरा माना जाता है, जब स्वीकर्ता स्वीकृति की सूचना, प्रस्तावक के पास पहुँचाने के लिए डाक में डाल देता है अथवा इस प्रकार प्रेषित कर देता है कि जहाँ से पुन: वापिस लेना उसकी शक्ति के बाहर हो जाये ।

(2) **स्वीकर्ता के विरुद (अर्थात् स्वीकर्ता को बाध्य करने के लिए) -** स्वीकृति का संवहन उस समय पूरा माना जाता है जब स्वीकर्ता स्वीकृति की सूचना प्रस्तावक की जानकारी में आ जाती है । उदाहरण के लिए, यदि 'ब', 'अ' के प्रस्ताव को पत्र द्वारा स्वीकार करता है तो स्वीकृति का संवहन'अ' के विरुद्ध उस समय पूरा हो जाता है जब 'ब' स्वीकृति का पत्र डाक में डाल देता है । 'ब' के विरुद्ध स्वीकृति का संवहन उस समय पूरा होगा जब स्वीकृति का पत्र 'अ' को प्राप्त हो जाता है ।

न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों के आधार पर स्वीकृति के संवहन के सम्बन्ध में निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातें स्पष्ट होती हैं -

(1) प्रस्तावक को ठहराव के लिए बाध्य करने हेतु स्वीकृति की सूचना डाक में डालना पर्याप्त होता है । चूंकि डाक-घर प्रस्तावक के महत्वपूर्ण एजेण्ट की स्थिति में होता है । यदि किसी कारण से पत्र डाक में खो जाता है अथवा देरी से प्राप्त होता है तो भी प्रस्तावक उस स्वीकृति के लिए उत्तरदायी होगा । स्वीकृति पत्र को डाक में डाले जाने पर प्रस्ताव अनुबन्ध का रुप ले लेता है ।

हाउस होल्ड फायर इन्श्योरेन्स कम्पनी बनाम ग्रांट का विवाद भी यहां उल्लेखनीय है । इस विवाद में ग्रांट ने वादी कम्पनी के अंश क्रय करने हेतु आवेदन किया । कम्पनी ने प्रस्ताव को स्वीकार करके आवंटन पत्र डाक द्वारा प्रतिवादी के पते पर भेज दिया और यह पत्र कभी भी ग्रांट को प्राप्त नहीं हुआ । न्यायालय ने निर्णय दिया कि स्वीकृति पत्र डाक में डालते ही प्रस्ताव अनुबन्ध का रुप ले चुका था और प्रतिवादी इस स्वीकृति से बाध्य होगा क्योंकि जैसे ही कम्पनी द्वारा अंश आबंटन का पत्र डाक में डाला जाता है, ग्रांट (प्रस्तावक) के विरुद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा हुआ माना जाता है ।

(2) यदि स्वीकर्ता द्वारा स्वीकृति के पत्र पर गलत पता लिखकर डाक में डाला जाता है जिसके कारण पत्र प्रस्तावक को प्राप्त नहीं हो पाता है तो यहॉ स्वीकृति का संवहन प्रस्तावक के विरुद्ध पूरा हुआ नहीं माना जायेगा । यहां यह उल्लेखनीय है कि जब प्रस्तावक ने स्वयं ही गलत पता दिया है, जिस पर स्वीकृति का पत्र भेजा गया है तो प्रस्तावक उस स्वीकृति से बाध्य होगा ।

(3) जब एक व्यक्ति टेलीफोन पर दूसरे व्यक्ति को प्रस्ताव करता है और दूसरा पक्षकार भी अपनी स्वीकृति टेलीफोन पर ही देता है । बातचीत के बीच में लाइन कट जाने अथवा अन्य तकनीकी खराबी के कारण स्वीकृति सम्बन्धी बात प्रस्तावक नहीं सुन पाता है तो ऐसी स्वीकृति से प्रस्तावक बाध्य नहीं होता है । अगर स्वीकर्ता ने स्वीकृति का प्रस्तावक को पुन: स्मरण करा दिया है और प्रस्तावक उसको सुन लेता है तो स्वीकृति का संवहन पूर्ण माना जायेगा । इस सम्बन्ध में **भगवानदास गोवर्धनदास केडिया बनाम गिरधारीलाल पुरुषोत्तमदास एण्ड कम्पनी** का विवाद उल्लेखनीय है जिसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया कि टेलीफोन पर किये गये अनुबन्ध पक्षकारों द्वारा आमने सामने रह कर किये गये मौखिक अनुबन्धों के समान ही होते हैं किन्तु यह आवश्यक है कि दोनों पक्षकारों ने एक-दूसरे की बातों को स्पष्ट रुप से सुन लिया हो । टेलीफोन पर दी गयी स्वीकृति का खण्डन नहीं किया जा सकता है ।

(4) टेलेक्स पर किये गये प्रस्ताव की स्वीकृति का संवहन उस समय पूरा हुआ माना जाता है, जब स्वीकृति टेलेक्स पर आ जाती है । इसमें अनुबन्ध का स्थान वह माना जाता है, जहाँ स्वीकृति प्राप्त होती है ।

(5) न्यायालय के क्षेत्राधिकार का निर्धारण करने की दृष्टि से अनुबन्ध का स्थान निर्धारण करना महत्वपूर्ण होता है । इस सम्बन्ध में निम्नांकित नियम लागू होते हैं -

(i) यदि प्रस्तावक एवं स्वीकर्ता एक ही स्थान पर हैं तो वही अनुबन्ध का स्थान होता है ।

(ii) यदि प्रस्ताव एवं स्वीकृति डाक के माध्यम से पत्र द्वारा की गयी है तो जिस स्थान पर स्वीकृति पत्र डाक में डाला जाता है, वही अनुबन्ध का स्थान है ।

(iii) तार द्वारा स्वीकृति की दशा में तार देने का स्थान अर्थात् स्वीकर्ता का स्थान ही अनुबन्ध का स्थान माना जाता है ।

(iv) टेलीफोन पर किये गये प्रस्ताव एवं स्वीकृति की दशा में जिस स्थान पर स्वीकृति प्राप्त हुयी है अर्थात् प्रस्तावक का स्थान ही अनुबन्ध का स्थान माना जाता है ।

(v) यदि स्वीकृति टेलेक्स पर प्रदान की गयी है तो जिस स्थान पर स्वीकृति प्राप्त हुयी है अर्थात् प्रस्तावक का स्थान ही अनुबन्ध का स्थान माना जाता है ।

(6) यदि स्वीकृति मौखिक रुप से दी गयी है तो स्वीकृति देने का समय ही अनुबन्ध का समय होगा । डाक द्वारा स्वीकृति की दशा में स्वीकृति पत्र को डाक में डालने का समय ही अनुबन्ध का समय होगा । इसी प्रकार टेलीफोन या टेलेक्स पर स्वीकृति की दशा में अनुबन्ध का समय वह होगा जब प्रस्तावक को स्वीकृति की सूचना प्राप्त होती है ।

(7) जब एक व्यक्ति अपने एजेण्ट के माध्यम से प्रस्ताव करता है और स्वीकर्ता उसी एजेण्ट को स्वीकृति दे देता है तो प्रस्तावक को बाध्य करने के लिए स्वीकृति का संवहन पूर्ण माना जायेगा, भले ही एजेण्ट ने उस स्वीकृति की सूचना अपने नियोक्ता को दी हो अथवा न दी हो ।

2.10 प्रस्ताव का खण्डन

प्रस्ताव के खण्डन से आशय प्रस्ताव के अस्तित्व को समाप्त करना है । व्यावहारिक जीवन में अनेक परिस्थितियाँ ऐसी आती है जब एक व्यक्ति अपने द्वारा किये गये प्रस्ताव को समाप्त या खण्डन करना चाहता है । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 5 के अनुसार, "प्रस्ताव का खण्डन प्रस्तावक के विरुद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा होने से पूर्व कभी भी किया जा सकता है, परन्तु बाद में नहीं । " उदाहरण के लिए- राम अपना घोड़ा श्याम को 11000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है । श्याम इस प्रस्ताव की स्वीकृति का पत्र डाक से भेजता है । यहां पर राम अपने प्रस्ताव का खण्डन श्याम द्वारा स्वीकृति का पत्र डाक में डालने से पूर्व कभी भी कर सकता है ।

प्रस्ताव के खण्डन की विधियाँ -

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 6 के अनुसार प्रस्ताव का खण्डन अथवा समाप्ति निम्न प्रकार से हो सकती है -

(1) **प्रस्तावक द्वारा खण्डन की सूचना देकर -** स्वीकर्ता द्वारा स्वीकृति की सूचना को डाक में डालने से पूर्व अर्थात् प्रस्तावक के विरुद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा होने से पहले, प्रस्तावक अपने प्रस्ताव का खण्डन करने की सूचना स्वीकर्ता को देकर प्रस्ताव को समाप्त कर सकता है । यहां पर यह महत्वपूर्ण है कि खण्डन की सूचना स्वीकर्ता को मिलना आवश्यक है, अन्यथा इस सूचना का कोई प्रभाव नहीं होगा । इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि खण्डन की सूचना प्रस्तावक द्वारा या उसके अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही दी जानी चाहिए ।

(2) **निर्धारित अवधि के बीत जाने पर -** यदि प्रस्ताव की स्वीकृति देने के लिए कोई अवधि निश्चित की गयी है और इस निर्धारित अवधि में स्वीकर्ता अपनी सहमति नहीं देता है तो अवधि समाप्त होते ही प्रस्ताव अपने अपि समाप्त माना जायेगा । उदाहरण के लिए, **'हेड बनाम डीगलन'** के विवाद में प्रतिवादी ने वादी को बृहस्पतिवार को ऊन बेचने का प्रस्ताव किया और स्वीकृति के लिए तीन दिन का समय दिया । वादी ने अगले सोमवार को अपनी स्वीकृति दी । दूसरी तरफ डीगलन ने तीन दिन तक इन्तजार करके ऊन को किसी अन्य व्यक्ति को बेच दिया

। न्यायालय ने निर्णय दिया कि तीन दिन की अवधि- समाप्त होने पर प्रस्ताव का अन्त हो चुका था और स्वीकृति महत्वहीन हो गयी ।

(3) **उचित अवधि व्यतीत हो जाने पर -** जब प्रस्ताव में स्वीकृति के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं की है तो उचित अवधि में स्वीकृति न देने पर प्रस्ताव का अन्त हो जायेगा । उचित अवधि क्या है, यह एक तथ्य सम्बन्धी प्रश्न है जिसका निर्धारण प्रस्ताव की प्रकृति एवं व्यवहार की परिस्थितियों पर निर्भर करता है । **'राम्सगेट विक्टोरिया होटल कम्पनी बनाम मॉटीफिअर'** के विवाद में प्रतिवादी ने 8 जून को कम्पनी के अंश खरीदने के लिए आवेदन किया । कम्पनी ने 26 नवम्बर को आवेदन को स्वीकार करके अंशों का आवंटन किया । न्यायालय ने निर्णय दिया कि जून से नवम्बर तक का समय स्वीकृति देने का उचित समय नहीं माना जा सकता है । इसलिए प्रस्ताव का स्वतः ही खण्डन हुआ माना गया ।

(4) **स्वीकर्ता द्वारा किसी विशेष शर्त का पालन न करने पर -** जब प्रस्तावक ने अपने प्रस्ताव में किसी विशेष शर्त का उल्लेख किया है और स्वीकर्ता द्वारा स्वीकृति देते समय उस शर्त का पालन नहीं किया जाता है तो वह स्वीकृति मान्य नहीं होगी तथा प्रस्ताव अपने आप ही समाप्त माना जायेगा । उदाहरण के लिए, राम, मोहन को अपना स्कूटर 15000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है तथा प्रस्ताव स्वीकार करने पर 1000 रुपये अग्रिम भेजने की शर्त लगाता है । मोहन स्कूटर खरीदने के लिए तो स्वीकृति भेज देता है परन्तु अग्रिम राशि नहीं भेजता है तो यह स्वीकृति वैध नहीं मानी जायेगी । यहां विशेष शर्त का पालन न होने से प्रस्ताव का अन्त हुआ माना जायेगा ।

(5) **प्रस्तावक की मृत्यु या पागल होने की दशा में -** प्रस्ताव की स्वीकृति देने से पूर्व यदि प्रस्तावक की मृत्यु हो जाती है या वह पागल हो जाता है तो प्रस्ताव समाप्त हुआ माना जायेगा । यहां स्वीकृति देने से पूर्व प्रस्तावक की मृत्यु या पागल होने की जानकारी स्वीकर्ता को होनी आवश्यक है । यदि स्वीकर्ता को इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है और वह सद्भावना से प्रस्ताव को स्वीकार करता है तो स्वीकृति वैध होगी । इंगलिश राजनियम में इस सम्बन्ध में कुछ भिन्नता है । इंगलिश अधिनियम के अनुसार तो प्रस्तावक की मृत्यु या पागल होने के पश्चात् दी गयी स्वीकृति बेकार होती है चाहे इसकी जानकारी स्वीकर्ता को थी अथवा नहीं । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार स्वीकर्ता को प्रस्तावक की मृत्यु या पागलपन की जानकारी होना आवश्यक है ।

(6) **प्रति-प्रस्ताव की दशा में-**जब दो पक्षकार एक दूसरे द्वारा किये गये प्रस्ताव की जानकारी के बिना एक सा प्रस्ताव साथ-साथ करते हैं तो यह प्रति-प्रस्ताव माना जायेगा । इस प्रकार प्रति-प्रस्ताव दूसरे के प्रस्ताव की स्वीकृति नहीं होती है और प्रस्ताव का अन्त माना जाता है ।

(7) **स्वीकर्ता की मृत्यु या पागल होने की दशा में -** प्रस्ताव की स्वीकृति देने से पूर्व यदि स्वीकर्ता की मृत्यु हो जाती है या वह पागल हो जाता है तो प्रस्ताव समाप्त हो जायेगा क्योंकि भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार प्रस्ताव की स्वीकृति वही व्यक्ति दे सकता है जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया गया है । परन्तु यदि स्वीकृति देने के पश्चात् स्वीकर्ता की मृत्यु हो जाती है या वह पागल हो जाता है तो वह स्वीकृति वैध होगी और उसके उत्तराधिकारी वचन का निष्पादन करने के लिए उत्तरदायी होंगे ।

(8) **विषयवस्तु के नष्ट होने पर -** यदि प्रस्ताव की विषयवस्तु ही नष्ट हो जाती है तो प्रस्ताव का स्वतः ही खण्डन हुआ माना जाता है ।

(9) **कानून में परिवर्तन होने पर -** प्रस्ताव करने के पश्चात् यदि विद्यमान कानून में परिवर्तन हो जाता है अथवा सरकार द्वारा नया कानून बनाये जाने के परिणामस्वरुप अनुबन्ध के अन्तर्गत उत्पत्र दायित्व का निष्पादन करना असम्भव हो जाता है तो प्रस्ताव स्वतः ही निरस्त हुआ माना जाता है ।

2.11 स्वीकृति का खण्डन

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की 1872 धारा 5 के अनुसार, "स्वीकृति का खण्डन, स्वीकर्ता के विरुद्ध, स्वीकृति का संवहन पूरा होने से पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है किन्तु बाद में नहीं । " इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वीकृति की सूचना प्रस्तावक को मिलने से पहले ही स्वीकृति का खण्डन किया जा सकता है । उदाहरण के लिए- राजेश, लोकेश को अपना मकान 6 लाख रुपये मे बेचने का प्रस्ताव 10 जनवरी को करता है । लोकेश इस प्रस्ताव की स्वीकृति 20 जनवरी को पत्र द्वारा देता है । 22 जनवरी को लोकेश अपनी स्वीकृति का खण्डन तार द्वारा करता है । राजेश को स्वीकृति का पत्र मिलने से पहले ही खण्डन का तार प्राप्त हो जाता है । स्वीकृति का यह खण्डन वैध होगा ।

2.12 सारांश

वैध अनुबन्ध का निर्माण ठहराव से होता है और ठहराव के लिए प्रस्ताव एवं स्वीकृति दोनों का होना आवश्यक होता है । एक पक्षकार किसी काम को करने अथवा न करने के लिए दूसरे पक्षकार के सम्मुख प्रस्ताव करता है और दूसरा उसी भाव अथवा आशय से अपनी सहमति देता है तो ठहराव का निर्माण होता है ।

प्रस्ताव: प्रस्ताव के लिए दो पक्षकार होने चाहिए और प्रस्ताव का उद्देश्य किसी काम को करने अथवा न करने के सम्बन्ध में दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करना होता है । यहां पर ध्यान रखना आवश्यक है कि 'प्रस्ताव' **'प्रस्ताव करने की इच्छा'** एवं **'प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण'** से भिन्न होता है । निविदा या टेण्डर मांगना, मूल्य सूची या सूची पत्र जारी करना, रेल्वे समय सारणी, कम्पनी का प्रविवरण, व्यापारी द्वारा पूछताछ का उत्तर देना, बीमे के प्रस्ताव, नीलामी सम्बन्धी विज्ञापन तथा सस्ती वस्तुएँ बेचने का विज्ञापन आदि प्रस्ताव न होकर प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण मात्र है ।

प्रस्ताव के लिए निम्नलिखित वैधानिक नियमों का पालन किया जाना आवश्यक होता है

(1) प्रस्ताव का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होना चाहिए, (2) प्रस्ताव की शर्तें निश्चित होनी चाहिए, (3) प्रस्ताव विनय के रुप में होना चाहिए, आज्ञा के रुप में नहीं, (4) प्रस्ताव विशिष्ट अथवा सामान्य हो सकता है, (5) प्रस्ताव अथवा गर्भित हो सकता है, (6) प्रस्ताव का संवहन होना आवश्यक है, (7) प्रस्ताव के साथ विशिष्ट शर्तों का संवहन भी आवश्यक है (8) 'प्रस्ताव करने की इच्छा' तथा 'प्रस्ताव करने के लिए निमन्त्रण को प्रस्ताव नहीं माना जा

सकता है, (9) प्रस्ताव 'स्थायी' अथवा खुला प्रस्ताव हो सकता है, (10)प्रस्ताव के संवहन का कोई भी माध्यम हो सकता है (11) प्रति-प्रस्ताव को प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है ।

स्वीकृति - जिस व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव किया जाता है जब वह उस प्रस्ताव से सहमत हो जाता है तो इसे स्वीकृति कहा जाता है । स्वीकृति के सम्बन्ध में निम्नांकित वैज्ञानिक नियमों का पालन किया जाना चाहिए - (1) प्रस्ताव की स्वीकृति उसी व्यक्ति द्वारा होनी चाहिए जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया गया है (2) स्वीकृति पूर्ण एवं शर्त रहित होनी चाहिए, (3) स्वीकृति प्रस्तावक द्वारा निश्चित अथवा उचित ढंग से होनी चाहिए (4) स्वीकृति का संवहन होना आवश्यक है (5) स्वीकृति का संवहन अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही होना चाहिए, (6) स्वीकृति निर्धारित समय अथवा उचित समय में होनी चाहिए (7) स्वीकृति आचरण द्वारा अथवा प्रस्ताव की शती का पालन करके हो सकती है, (8) एक बार अस्वीकृत प्रस्ताव पुन: प्रस्तुत किये बिना स्वीकार नहीं किया जा सकता है, (9) प्रस्ताव को जाने बिना स्वीकृति देने का कोई महत्व नहीं होता है, (10) स्वीकृति स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकती है, (11) स्वीकृति प्रस्ताव का अन्त होने अथवा खण्डन होने से पूर्व होनी चाहिए, (12) सामान्य प्रस्ताव की स्वीकृति का संवहन आवश्यक नहीं है (13) प्रति-प्रस्ताव अथवा स्थानापन्न प्रस्ताव स्वीकृति नहीं है (14) सामान्य प्रस्ताव की स्वीकृति किसी भी व्यक्ति द्वारा दी जा सकती है, (15) मौन रहना स्वीकृति नहीं है, (16) जब प्रस्तावक ने प्रस्ताव एजेण्ट के माध्यम से किया है तो उस प्रस्ताव की स्वीकृति उस एजेण्ट को दी जा सकती है ।

प्रस्ताव एवं स्वीकृति का संवहन - प्रस्ताव का संवहन उस समय पूरा हुआ माना जाता है जब वह उस व्यक्ति की जानकारी में आ जाये जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया गया है । प्रस्ताव के साथ ही उसकी विशिष्ट शर्तों (यदि कोई हो तो) का संवहन होना भी आवश्यक है । प्रस्तावक के विरुद्ध स्वीकृति का संवहन उस समय पूरा हुआ माना जाता है जब स्वीकृति देने वाला व्यक्ति उसको सम्प्रेषण की ऐसी प्रक्रिया में डाल देता है जहाँ से वह बसे वापिस नहीं ले सकता है । स्वीकर्ता के विरुद्ध स्वीकृति का संवहन उस समय पूरा हो जाता है जब स्वीकृति की सूचना प्रस्तावक को मिल जाये ।

प्रस्ताव एवं स्वीकृति का खण्डन - प्रस्तावक अपने विरूद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा होने से पूर्व कभी भी प्रस्तावक खण्डन कर सकता है । प्रस्तावक को खण्डन की सूचना देकर, निर्धारित अवधि बीत जाने पर, उचित अवधी व्यतीत हो जाने पर, स्वीकर्ता द्वारा किसी विशेष शर्त का पालन न करने पर, प्रस्ताव की मृत्यु या पागल होने की दशा में, स्वीकर्ता की मृत्यु या पागल होने की दशा में, विषयवस्तु के नष्ट होने पर, कानून में परिवर्तन होने पर तथा प्रति-प्रस्ताव द्वारा प्रस्ताव का खण्डन किया जा सकता है ।

प्रस्ताव के समान स्वीकृति का भी खण्डन किया जा सकता है । स्वीकृति का खण्डन, स्वीकर्ता के विरुद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा होने से पूर्व कभी भी किया जा सकता है, किन्तु बाद में नहीं किया जा सकता है ।

2.13 शब्दावली

प्रस्ताव का संवहन : प्रस्ताव का स्वीकर्ता की जानकारी में आना ।

स्वीकृति का संवहन : स्वीकृति की जानकारी : प्रस्तावक को देन ।

प्रस्ताव का खण्डन : प्रस्ताव करने वाले व्यक्ति द्वारा अपने प्रस्ताव को वापिस लेन ।

स्वीकृति का खण्डन : स्वीकृति देने वाले व्यक्ति द्वारा अपनी सहमति की सूचना को वापस लेन।

2.14 स्वपरख प्रश्न :

1. प्रस्ताव क्या होता है? प्रस्ताव के मुख्य लक्षण बताइए । वैध प्रस्ताव सम्बन्धी नियमों की व्याख्या कीजिए ।
2. स्वीकृति से आपका क्या आशय है ?प्रस्ताव की स्वीकृति के सम्बन्ध में वैधानिक नियम बताइए ।
3. "केवल मानसिक सहमति जो शब्दों या आचरण द्वारा प्रमाणित नहीं की गयी है, राजनियम की दृष्टि रो स्वीकृति नहीं है । " विवेचना कीजिए और बतलाइए कि स्वीकृति का संवहन कब पूरा होता है?
4. प्रस्ताव और 'प्रस्ताव करने के निमन्त्रण' में क्या अन्तर है ' उदाहरण देकर समझाइए ।
5. प्रस्ताव एवं स्वीकृति का संवहन एवं खण्डन किस प्रकार किया जा सकता है? यह भी बताइए कि जब पक्षकार एक दूसरे से दूर रहते हैं तो प्रस्ताव का संवहन कब पूरा होता है?
6. प्रस्ताव का कैसे और किस आधार पर खण्डन किया जा सकता है ? क्या समय की ऐसी कोई परिसीमा है जिसके बाद प्रस्ताव और स्वीकृति का खण्डन नहीं किया जा सकता ?

व्यावहारिक समस्याएँ

1. राम विज्ञापन द्वारा प्रस्ताव करता है कि वह उस व्यक्ति को 1000 रुपये का ईनाम देगा, जो उसके खोये हुए बैग को लायेगा । श्याम जिसको विज्ञापन के विषय में जानकारी नहीं है, उसके बैग को लाता है और राम को सौंप देता है । क्या श्याम राम से ईनाम पाने का अधिकारी है?
2. मोहन अपना मकान 5 लाख रुपये में सोहन को बेचने का प्रस्ताव करता है और स्वीकृति की सूचना शीघ्र भेजने के लिए निवेदन करता है । पत्र द्वारा सोहन मकान क्रय करने के लिए अपनी सहमति देता है, परन्तु मूल्य 4.5 लाख करने की इच्छा व्यक्त करता है । सोहन को मोहन से आगे कोई पत्र प्राप्त नहीं होता है । बाद में सोहन मोहन को सूचित करता है कि वह मकान 5 लाख रुपये में खरीदने को तैयार है । क्या यह ठहराव हो गया ?
3. प्रदीप ने संदीप को अपना मकान 20 लाख रुपये में विक्रय करने का प्रस्ताव किया और संदीप ने डाक द्वारा प्रस्ताव की स्वीकृति भेजी । दूसरे दिन स्वीकृति का खण्डन करने के लिए संदीप ने एक तार भेजा जो प्रदीप को पत्र प्राप्त होने से पूर्व ही मिल गया । क्या स्वीकृति का खण्डन वैध है?
4. अंकित ने एक कार्यालय में लेखापाल के पद के लिए आवेदन किया और चयन समिति ने उसको नियुक्त करने का निर्णय ले लिया । अंकित को कोई अधिकृत सूचना प्राप्त नहीं हुयी, परन्तु चयन समिति के एक सदस्य ने निजी तौर पर अंकित को इस विषय में सूचित किया । बाद में अंकित की वह नियुक्ति रह कर दी गयी । उसने चयन समिति के विरुद्ध वाद प्रस्तुत किया । क्या वह सफल होगा?

5. प्रकाश रमेश को पत्र देता है, ' 'मैं आपको मेरी कार तीन लाख रुपये में बेच दूंगा । यदि इसके लिए आपसे कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ तो मैं यह मान लूंगा कि आपने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है । " रमेश ने कोई जवाब नहीं दिया । प्रकाश ने अनुबन्ध भंग के लिए रमेश पर वाद प्रस्तुत किया । क्या प्रकाश सफल होगा?

इकाई-3

पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता (Capacity of Parties to Contract)

इकाई की रूपरेखा:

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 अनुबन्ध करने की क्षमता से आशय

3.4 अवयस्क व्यक्ति

3.5 अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति

3.6 राजनियम द्वारा अयोग्य घोषित व्यक्ति

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 स्व-परख प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह स्पष्ट करने के योग्य होगे कि :

- ❖ पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता का क्या आशय है?
- ❖ किन-किन व्यक्तियों में अनुबन्ध करने की क्षमता होती है तथा कौन-कौन व्यक्ति अनुबन्ध करने के योग्य नहीं है ।
- ❖ अवयस्क कौन होता है और अवयस्क के साथ किये जाने वाले ठहरावों के सम्बन्ध में क्या नियम है ।
- ❖ अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति का आशय, अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों के प्रकार तथा उनके साथ किये जाने वाले ठहरावों से सम्बन्धित राजनियम क्या है?
- ❖ राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित व्यक्तियों एवं उनके साथ किये जाने वाले ठहरावों से सम्बन्धित नियमों की व्याख्या ।

3.2 प्रस्तावना

वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों में एक प्रमुख लक्षण यह है कि अनुबन्ध के पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए । ऐसे व्यक्ति में अनुबन्ध करने क्षमता होती है जो कि वयस्क है, स्वस्थ मस्तिष्क का है और किसी राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित नहीं किया गया है । इस इकाई में बतलाया जायेगा कि पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता से क्या आशय है और कौन-कौन व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता रखते हैं । अवयस्क व्यक्ति के साथ किये जाने वाले ठहरावों से सम्बन्धित वैधानिक नियमों के बारे में बतलाया जायेगा । अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों का आशय, उनके साथ किये जाने वाले ठहरावों से सम्बन्धित राजनियम के बारे में बतलाया जायेगा । इसके अतिरिक्त इस इकाई में यह भी

बतलाया जायेगा कि कौन-कौन व्यक्ति राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित किये गये हैं, उनके साथ किये गये ठहरावों का क्या प्रभाव होता है ।

3.3 अनुबन्ध करने की क्षमता से आशय

एक वैध अनुबन्ध के लिए यह आवश्यक होता है कि पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता हो । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार "प्रत्येक ऐसा व्यक्ति' अनुबन्ध करने की क्षमता रखता है जो (प) देश में प्रचलित राजनियम के अनुसार वयस्क है, (पप) स्वस्थ मस्तिष्क का है तथा (पपप) किसी भी अन्य प्रचलित राजनियम के अनुसार अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नहीं है । " इस धारा का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि अनुबन्ध केवल वे ही व्यक्ति कर सकते हैं जो (प) वयस्क है, (पप) स्वस्थ मस्तिष्क के है तथा (पपप) जिन्हें किसी भी राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नहीं किया गया है ।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि निम्नलिखित व्यक्ति अनुबन्ध करने के योग्य नहीं है :

(i) अवयस्क व्यक्ति,

(ii) अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति,

(iii) किसी अन्य राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्ति ।

साधारणतः राजनियम द्वारा यह माना जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अनुबन्ध करने के योग्य है । जब कोई व्यक्ति अनुबन्ध करने के अयोग्य होने के आधार पर अनुबन्ध के अन्तर्गत उत्पन्न अपने दायित्व से मुक्त होना चाहता है तो उसको अपनी अयोग्यता सिद्ध करनी होगी ।

3.4 अवयस्क व्यक्ति

भारतीय वयस्कता अधिनियम1875 की धारा 3 के अनुसार जिस व्यक्ति ने 18 वर्ष की आयु पूरी कर ली है, वयस्क माना जाता है परन्तु यदि किसी न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्ति के लिए कोई संरक्षक नियुक्त। किया गया है अथवा उसकी सम्पत्ति उक्त आयु से पहले ही कोर्ट ऑफ वार्डस के निरीक्षण में रखी गयी है तो ऐसे व्यक्ति को 21 वर्ष की आयु पूरी करने पर ही वयस्क माना जाता है । इस प्रकार जिस व्यक्ति ने सामान्य स्थिति में 18 वर्ष तथा न्यायालय द्वारा संरक्षक नियुक्ति किये जाने या कोर्ट ऑफ वार्डस के निरीक्षण में सम्पत्ति रखे जाने पर 21 वर्ष से कम आयु का व्यक्ति 'अवयस्क' होता है ।

अवयस्क होना अनुबन्ध करने के लिए अयोग्यता है परन्तु वास्तव में तो यह न्यायालयों द्वारा अवयस्कों के लिए प्रदान की गयी सुरक्षा है । इस सम्बन्ध में **सालमण्ड (Salmond)** ने उचित ही कहा है कि, "राजनियम अपने अवयस्कों की रक्षा करता है, उनकी सम्पत्ति और अधिकारों को सुरक्षित रखता है, उनके अभावों को क्षमा ' करता है, उनकी ओर से वैधानिक कार्यवाही में उनकी सहायता करता है, न्यायाधीश उनके सलाहकार होते हैं, नियुक्त पंच उनके सेवक होते हैं और राजनियम उनका संरक्षक होता है । "

अवयस्क द्वारा किये गये ठहरावों के सम्बन्ध में नियम - भारत में अवयस्क व्यक्ति द्वारा: किये गये ठहरावों के सम्बन्ध में निम्नलिखित वैधानिक नियम लागू होते हैं ।

(1) **अवयस्क के साथ किया गया ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होता है -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार अवयस्क व्यक्ति में अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं होती है । अवयस्क द्वारा वैध स्वीकृति नहीं दी जा सकती है । अत: उसके साथ किया गया ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होता है । अवयस्क ठहराव के अधीन उत्पन्न अपने दायित्व को पूरा करने अथवा प्राप्त धन को लौटाने के लिए उत्तरदायी नहीं होता है । अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः व्यर्थ होता है और वह स्वयं अवयस्क अथवा दूसरे पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय नहीं होता है, चाहे उसकी अवयस्कता की जानकारी दूसरे पक्षकार को थी अथवा नहीं ।

इस सम्बन्ध में मोहरी **बीबी बनाम धर्मोदास** घोष का विवाद महत्वपूर्ण है । इस विवाद में अवयस्क धर्मोदास ने अपनी सम्पत्ति का 20,000 रुपये का बन्धक पत्र लिखकर मोहरी बीबी के पति ब्रह्मोदत्त से 8000 रुपये उधार ले लिये । धर्मोदास ने न्यायालय में बन्धक पत्र को निरस्त करने के लिए वाद प्रस्तुत किया जिसके प्रत्युत्तर में ब्रह्मोदत्त ने यह तर्क दिया कि उसको इस बात की जानकारी नहीं थी, अत: अवयस्क से उसके 8000 रुपये वापस दिलाये जावें । न्यायालय ने अवयस्क धर्मोदास के पक्ष में निर्णय दिया कि अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः व्यर्थ होता है, अत: उससे 8000 रुपये भी वसूल नहीं किये जा सकते हैं । बाद में ब्रह्मोदत्त ने प्रिवी कौंसिल में अपील की और इस अपील की कार्यवाही के दौरान ही उसकी मृत्यु हो गयी और उसकी पत्नी मोहरी बीबी ने अपील की कार्यवाही को जारी रखा जिसके कारण यह विवाद **मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष** के नाम से जाना जाता है । प्रिवी कौंसिल ने भी निर्णय दिया कि अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः व्यर्थ है, अत: 8000 रुपये धर्मोदास से प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं ।

(2) **अवयस्कता के दौरान किये गये अनुबन्धों का वयस्क होने, पर पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता है -** चूंकि अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः व्यर्थ होता है । अत: एक अवयस्क व्यक्ति अपने द्वारा किये गये अनुबन्धों का वयस्क होने पर पुष्टिकरण (Ratification) नहीं कर सकता है । उदाहरण के लिए, राम एक अवयस्क व्यक्ति मोहन से 2000 रुपये ऋण लेता है । बाद में राम जब वयस्क होता है तो मोहन को उस ऋण के लिए प्रतिज्ञा पत्र लिख देता है । इस प्रतिज्ञा पत्र को राजनियम द्वारा प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है क्योंकि अवयस्कता में दिये गये प्रतिफल को इस प्रतिज्ञा पत्र का प्रतिफल नहीं माना जा सकता है और यह प्रतिज्ञा पत्र प्रतिफल के अभाव में बेकार होगा ।

(3) **अवयस्क के विरुद्ध अवरोध का सिद्धान्त (Doctrine of Estoppel) लागू नहीं होता है -** जब कोई अवयस्क छलकपट या मिथ्या वर्णन द्वारा अपने आप को वयस्क बतलाकर दूसरे पक्षकार के साथ कोई अनुबन्ध कर लेता है तो उस अनुबन्ध के निष्पादन के लिए भी उसको उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है । अर्थात एक अवयस्क के विरुद्ध अवरोध का सिद्धान्त लागू नहीं होता है ।

इसका आशय यह नहीं है कि अवयस्क कपट या धोखाधड़ी करके लोगों को लूटता रहे । अगर अवयस्क ने अपने आप को वयस्क बताकर किसी व्यक्ति से कोई ऋण प्राप्त किया है और उसमें से कुछ धनराशि या उससे खरीदा गया सामान मिल जाता है तो न्यायालय उसे वापिस लौटाने का आदेश दे सकता है । केवल उसके पास विद्यमान धनराशि अथवा उससे खरीदी गयी

वस्तुओं को ही प्राप्त किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं होता है।

उदाहरण के लिए, कमल एक अवयस्क अपने आप को वयस्क बतलाकर प्रभाकर से 1500 रुपये ऋण ले लेता है । बाद में प्रभाकर को जब मालूम होता है कि कमल तो वास्तव में अवयस्क है तो वह उस पर ऋण प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है । कमल 1000 रुपये तो खर्च कर चुका और उसके पास 500 रुपये शेष बचे है । प्रभाकर ये 500 रुपये ही प्राप्त कर सकता है ।

(4) **अवयस्क अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्पत्ति की जमानत पर ऋण ले सकता है -** सामान्यत: एक अवयस्क ऋण लेने, सम्पत्ति खरीदने आदि के वैध अनुबन्ध नहीं कर सकता है, किन्तु अवयस्क अपने जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी सम्पत्ति की जमानत पर क्या ले सकता है अथवा सामान उधार खरीद सकता है जो राजनियम की दृष्टि से वैध होता है । अवयस्क के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला या उसकी आवश्यकता की वस्तुएँ देने वाला व्यक्ति अवयस्क की सम्पत्ति से ही अपना ऋण अथवा वस्तुओं का मूल्य वसूल कर सक्ता है । अवयस्क व्यक्तिगत रुप से कभी भी उत्तरदायी नहीं होता है । इसका आशय यह है कि यदि अवयस्क के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति की गयी है और वह भुगतान नहीं कर पाता है तथा उसके पास कोई सम्पत्ति भी नहीं है तो सामान देने वाला व्यापारी अवयस्क पर व्यक्तिगत रुप से उत्तरदायी ठहराने के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है ।

अवयस्क के जीवन की आवश्यकताएँ उसकी आर्थिक स्थिति तथा रहन सहन के स्तर पर निर्भर करती हैं । अवयस्क की आर्थिक स्थिति तथा उसके जीवन स्तर के अनुसार उसके जीवन की आवश्यकताओं का स्तर भिन्न-भिन्न हो सकता है । जीवन की आवश्यकताएँ वे वस्तुएँ होती है जिनके द्वारा बिना अवयस्क अथवा उसके आश्रित व्यक्ति का जीवन निर्वाह करना कठिन हो जाता है । **पीटर्स बनाम फ्लेमिंग** के विवाद में निर्णय देते हुए न्यायाधीश **बैरन पार्क** ने लिखा है कि, "वे सभी वस्तुएँ जो केवल श्रृंगार एवं सजावट के लिए हैं, जीवन की आवश्यकतायें नहीं बन सकती हैं, चाहे वे वस्तुएँ उस व्यक्ति के जीवन की स्थिति, दशा एवं पद को बनाये रखने की आवश्यकता को पूरा करने के लिए ही क्यों न खरीदी गयी हों । " जो वस्तु किसी धनी व्यक्ति के लिए आवश्यकता है, वही वस्तु गरीब व्यक्ति के लिए विलासिता हो सकती है ।

एक अवयस्क के जीवन स्तर के आधार पर निम्न वस्तुएँ जीवन यापन के लिए आवश्यक समझी जाती है - भोजन, कपड़ा, मकान किराया, अवयस्क स्वयं, उसकी पत्नी तथा बच्चों के लिए दवाएँ, उसकी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए आवश्यक व्यय, आवश्यक जगह पर आने-जाने का यात्रा व्यय, अवयस्क के आश्रित के अन्तिम संस्कार का व्यय, स्वयं तथा उसके बच्चों की शिक्षा का व्यय तथा अपने जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीदना आदि ।

अवयस्क की आवश्यकताओं की पूर्ति के सम्बन्ध में इंगलिश राजनियम कुछ भिन्न है । इंगलिश अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार तो आवश्यकताओं की पूर्ति करने के अनुबन्धों के लिए तो अवयस्क स्वयं व्यक्तिगत रुप से उत्तरदायी होता है, परन्तु भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के

अनुसार केवल अवयस्क की सम्पत्ति ही उत्तरदायी होती है, वह स्वयं व्यक्तिगत रुप से उत्तरदायी नहीं होता है ।

(5) **अवयस्क अपने लाभ के लिए अनुबन्ध कर सकता है -** कोई भी ऐसा अनुबन्ध जिसके अन्तर्गत अवयस्क का कोई दायित्व उत्पन्न होता है, राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है, परन्तु भारतीय राजनियम में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके द्वारा अवयस्क को वचनगृहीता होने से रोका जा सके । दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि अवयस्क अपने लाभ के लिए अनुबन्ध कर सकता है और दूसरे पक्षकार को वह लाभ प्राप्त करने के लिए वैधानिक दृष्टि से बाध्य कर सकता है । यहां यह उल्लेखनीय है कि अवयस्क को उस अनुबन्ध के किसी भी दायित्व के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है । अपने हित में अवयस्क विनियम साध्य प्रलेख लिख सकता है और हस्तान्तरित कर सकता है जिसमें उसको स्वयं को छोड़कर शेष सभी पक्षकार उत्तरदायी होते हैं ।

(6) **अवयस्क के संरक्षक द्वारा किया गया अनुबन्ध वैध होता है -** अवयस्क के संरक्षक के साथ किया गया अनुबन्ध वैध होता है जिसको राजनियम द्वारा प्रवर्तित कराया जा सकता है । इस अनुबन्ध के लिए निम्न दो शर्तों का होना आवश्यक है -

(i) अवयस्क के संरक्षक को वैसा अनुबन्ध करने का अधिकार हो तथा वह अनुबन्ध करने की योग्यता रखता हो।

(ii) ऐसा अनुबन्ध अवयस्क के लाभ के लिए किया गया हो ।

उदाहरण के लिए, संरक्षक द्वारा अवयस्क की शिक्षा के लिए ऋण लेने का अनुबन्ध किया जाता है तो अवयस्क उसके लिए उत्तरदायी होगा, परन्तु यदि यह सिद्ध हो जाता है कि संरक्षक ने अनुबन्ध अवयस्क की भलाई के लिए नहीं किया है तो इस अनुबन्ध को प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है । अवयस्क का संरक्षक या उसके माता-पिता उसकी ओर से शादी का अनुबन्ध कर सकते हैं । अवयस्क के संरक्षक उसके लिए निम्न अनुबन्ध नहीं कर सकते हैं ।

(i) न्यायालय की अनुमति के बिना संरक्षक को अवयस्क के लिए अचल सम्पत्ति का क्रय करने का अधिकार नहीं है ।

(ii) अवयस्क का संरक्षक अथवा उसके माता-पिता अवयस्क की नौकरी का अनुबन्ध नहीं कर सकते हैं क्योंकि ऐसा अनुबन्ध प्रतिफल के अभाव में व्यर्थ होता है । इस सम्बन्ध में **राजरानी बनाम प्रेमादीब** का विवाद उल्लेखनीय है । इस विवाद में राजरानी के पिता ने प्रेमादीब पिक्चर्स के साथ एक ठहराव किया जिसके अनुसार प्रेमादीब ने राजरानी को अपने यहां 9500 रुपये वार्षिक वेतन पर कलाकार के रुप में नियुक्त किया । एक महीने बाद राजरानी को नौकरी से हटा दिया । उसने न्यायालय में क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत किया । न्यायालय ने प्रतिवादी के पक्ष में निर्णय देते हुए कहा कि एक अवयस्क लड़की के माता-पिता या संरक्षक द्वारा किया गया नौकरी का ठहराव प्रतिफल के अभाव में व्यर्थ होता है । अत: राजरानी को किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति नहीं करायी गयी ।

(7) **अवयस्क के कार्यों के लिए उसके माता-पिता का दायित्व नहीं होता है -** अवयस्क के साथ किये गये ठहरावों के लिए उसके माता-पिता उत्तरदायी। नहीं होते हैं, भले ही इस प्रकार ठहराव अवयस्क के जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं के लिए ही क्यों न किये गये हों । यह

बात सत्य है कि अवयस्क के माता-पिता उसकी सुरक्षा तथा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नैतिक रुप से बाध्य होते हैं, परन्तु उनका यह नैतिक दायित्व, वैधानिक दायित्व के रुप में परिवर्तित नहीं हो सकता है । इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि अवयस्क ने अपने माता-पिता के एजेण्ट की हैसियत से कोई कार्य किया है तो उसके लिए वे वैधानिक रुप से उत्तरदायी होंगे ।

(8) **अवयस्क दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है -** चूंकि एक अवयस्क अनुबन्ध करने के अयोग्य होता है और उसका कोई भी वैधानिक दायित्व उत्पन्न नहीं होता है । ऐसी स्थिति में वह देनदार भी नहीं हो सकता है । अत: उसको दिवालिया घोषित किये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता है ।

(9) **अवयस्क फर्म का साझेदार नहीं हो सकता है -** भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 30 के अनुसार एक अवयस्क व्यक्ति फर्म का साझेदार नहीं हो सकता है किन्तु वह अन्य सब साझेदारों की सर्वसम्मति से फर्म के लाभों में सम्मिलित किया जा सकता है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक अवयस्क फर्म के कार्यों तथा देनदारियों के लिए व्यक्तिगत रुप से उत्तरदायी नहीं होता है । वह केवल फर्म की सम्पत्तियों तथा लाभ में ही भागीदार बनाया जा सकता है ।

(10) **अवयस्क कम्पनी के अंशधारी के रुप में -** यदि कम्पनी के पार्षद् अन्तर्नियम अनुमति देते हैं तो अवयस्क को कम्पनी का अंशधारी बनाया जा सकता है, परन्तु अंशों पर शेष याचनाओं के लिए वह उत्तरदायी नहीं होगा । बाद में वयस्क होने पर यदि वह अपने पुराने अनुबन्ध को निरस्त नहीं करता है तो वह पूर्णरूप से कम्पनी का सदस्य हो जायेगा तथा सदस्यता के लिए व्यक्तिगत रुप से उत्तरदायी होगा । चूंकि अवयस्क से याचनाओं की राशि वसूल नहीं की जा सकती है, अत: उसे पूर्णदत्त अंश ही दिये जाने चाहिए ।

(11) **अवयस्क ऐजेण्ट नियुक्त किया जा सकता है -** अनुबन्ध अधिनियम की धारा, 184 के अनुसार एक अवयस्क व्यक्ति को एजेण्ट नियुक्त किया जा सकता है, क्योंकि तीसरे पक्षकार के प्रति एजेण्ट द्वारा किये गये कार्यों के लिए नियोक्ता उत्तरदायी होता है । यहां यह बात अधिक महत्वपूर्ण है कि उस अवयस्क एजेण्ट की लापरवाही, कार्य को पूरा न करने तथा धोखा-धड़ी के लिए नियोक्ता उससे क्षतिपूर्ति प्राप्त नहीं कर सकता है ।

(12) **विनियम साध्य लेख पत्रों के सम्बन्ध में अवयस्क की स्थिति -** एक अवयस्क व्यक्ति चैक, बिल तथा प्रतिज्ञा पत्र आदि विनियम साध्य लेख पत्र लिख सकता है, हस्तान्तरित कर सकता है तथा उनकी सुपुर्दगी दे सकता है, परन्तु इन लेख पत्रों के अप्रतिष्ठित होने पर उसका कोई व्यक्तिगत उत्तरदायित्व नहीं होगा, अपितु अन्य पक्षकार ही उसके लिए उत्तरदायी होंगे ।

(13) **दण्डनीय अपराध के लिए दोषी -** कानून अवयस्क को पूरा संरक्षण देता है तथा उसकी अज्ञानताओं एवं अनभिज्ञताओं को क्षमा भी करता है, परन्तु उसके ऐसे कार्यों को क्षमा नहीं करता है जिससे दूसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को नुकसान पहुँचता है । ऐसा कोई भी कार्य जो भारतीय दण्ड संहिता द्वारा वर्जित है, अवयस्क नहीं कर सकता है और करेगा तो दण्ड का भागी होगा । ऐसा अवयस्क व्यक्तियों में अपराध प्रवृति को रोकने के उद्देश्य से किया गया है ।

(14) **गारण्टी के अनुबन्ध में अवयस्क की स्थिति -** अवयस्क स्वयं किसी दूसरे व्यक्ति की गारण्टी नहीं दे सकता है । इसके विपरीत अवयस्क के कार्यों या ऋण के लिए दूसरा व्यक्ति

गारण्टी दे सकता है और अवयस्क द्वारा वचन पूरा न करने पर वह स्वयं उस वचन को पूरा करेगा । गारण्टी देने वाला व्यक्ति जब ऋणदाता को भुगतान कर देता है तो वह अवयस्क से वसूल नहीं कर सकता है । जीवन यापन की आवश्यकताएँ इसका अपवाद हैं, जिनकी पूर्ति अवयस्क की सम्पत्ति से की जा सकती है ।

(15) **प्रत्यास्थापना -** प्रत्यास्थापना से आशय है कि ठहराव के अधीन पक्षकार एक दूसरे को कोई वस्तु या धनराशि देते हैं और वह ठहराव किसी कारण से व्यर्थ हो जाता है तो पक्षकार अपने द्वारा दी गयी वस्तु या धनराशि दूसरे पक्षकार से वापिस प्राप्त कर सकते हैं । विशिष्ट सहायता अधिनियम, 1963 (Specific Relief Act, 1963) के अनुसार अवयस्क द्वारा किये गये ठहराव के लिए प्रत्यास्थापना के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान हैं :

(i) जब कोई अवयस्क स्वयं अनुबन्ध को व्यर्थ घोषित करवाना चाहता है तो न्यायालय उसे अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त सभी लाभों को लौटाने तथा दूसरे पक्षकार की उचित क्षतिपूर्ति करने का आदेश दे सकता है ।

(ii) जब कोई अवयस्क किसी वाद का अवयस्क होने के कारण विरोध करता है तो न्यायालय उसे केवल उन प्राप्त लाभों को लौटाने के लिए कह सकता है, जिनसे उसकी सम्पत्ति को लाभ पहुँचा है ।

(16) **निर्दिष्ट निष्पादन नहीं -** निर्दिष्ट निष्पादन से आशय है अनुबन्ध को उसकी शर्तों के अनुरूप पूरा करवाना । अनुबन्ध का निर्दिष्ट निष्पादन तभी करवाया जा सकता है जबकि अनुबन्ध वैध हो । एक अवयस्क द्वारा किया गया अनुबन्ध प्रारम्भ से ही व्यर्थ होता है । अत: अनुबन्ध का दूसरा पक्षकार अवयस्क से निर्दिष्ट निष्पादन की मांग नहीं कर सकता है, परन्तु अवयस्क अपने हित में अन्य पक्षकारों रो निर्दिष्ट निष्पादन की मांग कर सकता है ।

(17) **अवयस्क संयुक्त वचनदाता के रुप में -** जब कोई अवयस्क अन्य वयस्क वचनदाताओं के साथ मिलकर किसी अन्य व्यक्ति को वचन देता है तो उस अनुबन्ध में केवल वयस्क वचनदाताओं को ही वचनग्रहीता व उत्तरदायी ठहरा सकता है । अवयस्क वचनदाता से निष्पादन की मांग नहीं की जा सकती है ।

(18) **पट्टेधारी तथा अन्य व्यवसाय -** अवयस्क व्यक्ति के लिए उसका संरक्षक कोई सम्पत्ति पट्टे पर नहीं ले सकता है, और न ही पट्टे. की सम्पत्ति से कोई ऐसा व्यवसाय कर सकता है जिससे अवयस्क का कोई दायित्व उत्पत्र होने की सम्भावना हो ।

(19) **बन्धक अनुबन्ध -** अवयस्क द्वारा अपनी सम्पत्ति को बन्धक रखने का ठहराव नहीं किया जा सकता है । उसके द्वारा अपनी सम्पत्ति किसी अन्य व्यक्ति के पास बन्धक रखने का ठहराव व्यर्थ होता है, परन्तु वह अपने पास दूसरे की सम्पत्ति को प्रतिफल के बदले बन्धक रख सकता है ।

3.5 अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति

एक वैध अनुबन्ध के लिए आवश्यक है कि सभी पक्षकार स्वस्थ मस्तिष्क के होने चाहिए । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा व 2 के अनुसार, "अनुबन्ध करने के लिए प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ मस्तिष्क का कहा जा सकता है जो अनुबन्ध करने के समय उसको समझने

की क्षमता रखता हो और जो यह भी समझने की शक्ति रखता हो कि उस अनुबन्ध का उसके हितों पर क्या प्रभाव पड़ेगा । " इस धारा का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि स्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति में निम्न दो बातों का समावेश होना आवश्यक है - (1) वह व्यक्ति अनुबन्ध की विषय वस्तु, शर्तों तथा अन्य महत्वपूर्ण बातों को समझना कई । क्षमता रखता हो (2) वह व्यक्ति अनुबन्ध करते समय यह समझने की भी क्षमता रखता हो कि उस अनुबन्ध के करने का, उसके स्वयं के हितों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा अथवा खराब प्रभाव पड़ेगा ।

अधिनियम की धारा व 2 में यह बतलाया गया है कि एक व्यक्ति किस समय स्वस्थ मस्तिष्क का माना जाता है और अनुबन्ध कर सकता है -

(1) एक व्यक्ति जो प्राय: अस्वस्थ मस्तिष्क का रहता है, किन्तु कभी-कभी स्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है, उस समय अनुबन्ध कर सकता है, जब वह स्वस्थ मस्तिष्क का होता है । उदाहरण के लिए, संदीप एक पागल व्यक्ति है जो अधिकांश समय पागलपन की स्थिति में रहता है, परन्तु दिन में दो-चार घण्टे के लिए पूर्णतः स्वस्थ हो जाता है । संदीप जिस समय स्वस्थ हो जाता है, उस समय अनुबन्ध करने की योग्यता रखता है और उसके द्वारा किया गया अनुबन्ध वैध होगा ।

(2) एक व्यक्ति जो प्राय: स्वस्थ मस्तिष्क का रहता है किन्तु कभी-कभी अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है, उस समय अनुबन्ध नहीं कर सकता है, जब वह अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है । शेष समय में वह अनुबन्ध करने के योग्य माना जाता है । उदाहरण के लिए, प्रकाश एक स्वस्थ व्यक्ति है परन्तु उसको कभी-कभी मिर्गी के दौरे आते है जिस कारण वह अपनी सुध-बुध खो देता है । प्रकाश उस समय अनुबन्ध करने के अयोग्य माना जायेगा जिस समय उसको मिर्गी का दौरा आता है । उस समय प्रकाश के साथ किया गया ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होता है । शेष समय में प्रकाश के साथ किये गये अनुबन्ध वैध होते हैं ।

(3) **अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों के प्रकार -** सामान्यत: निम्न प्रकार के व्यक्तियों को अस्वस्थ मस्तिष्क का माना जाता है -

(i) **मूर्ख अथवा निर्बुद्धि व्यक्ति -** एक मूर्ख व्यक्ति वह होता है जिसका दिमाग हमेशा अस्थिर रहता है । ऐसे व्यक्ति में सोचने समझने की क्षमता नहीं होती है । एक मूर्ख व्यक्ति के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः: व्यर्थ होता है, किन्तु उसके जीवन-यापन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दिये गये सामान की कीमत केवल उसकी सम्पत्ति से वसूल की जा सकती है ।

(ii) **पागल -** पागल व्यक्ति वह होता है जो किसी मानसिक रोग के कारण अपनी सोचने-समझने की शक्ति खो देता है । ऐसे व्यक्ति का मस्तिष्क कभी-कभी ठीक हो जाता है तो उस समय उसके साथ अनुबन्ध किया जा सकता है । यदि न्यायालय ने किसी व्यक्ति को भारतीय पागलपन अधिनियम (Indian Lunacy Act) के अन्तर्गत पागल घोषित कर दिया है तो जब तक न्यायालय का आदेश रहेगा, उसके स्वस्थ मस्तिष्क का होने पर भी उसके साथ किया गया अनुबन्ध व्यर्थ होगा ।

पागल व्यक्ति के स्वस्थ मस्तिष्क का होने पर किया गया अनुबन्ध वैध होगा परन्तु पागलपन की अस्वस्थता के दौरान किया गया अनुबन्ध व्यर्थ होगा । एक पागल व्यक्ति के जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने की कीमत उसकी सम्पत्ति से वसूल की जा सकती है ।

(iii) **घोर शराबी या बेहोश व्यक्ति -** जब एक व्यक्ति अत्यधिक शराब पी लेने के कारण बेसुध हो जाता है और उस समय सोचने समझने की क्षमता खो देता है तो वह अस्वस्थ मस्तिष्क का माना जाता है । इस बेहोशी की स्थिति में उसके साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः व्यर्थ होता है ।

(iv) **जराग्रस्त या वृद्धावस्था से पीड़ित व्यक्ति (A Senile Person) -** बीमारी, तेज बुखार तथा वृद्धावस्था के कारण जब कोई व्यक्ति सोचने समझने की क्षमता खो देता है तो वह अनुबन्ध करने के अयोग्य माना जाता है । ऐसे व्यक्ति के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः व्यर्थ होता है ।

(v) **सम्मोहित व्यक्ति (Hypnotised Person) -**सम्मोहन से तात्पर्य किसी व्यक्ति को बाह्य प्रभाव से दूसरे व्यक्ति द्वारा अपने वश में करने से है । सम्मोहित व्यक्ति ठीक प्रकार से सोच समझ नहीं पाता है और उसका मस्तिष्क दूसरे द्वारा नियन्त्रित होता है । जिस समय कोई व्यक्ति सम्मोहन शक्ति से प्रभावित होता है, उस समय उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं होती है और उसके साथ किया गया ठहराव पूर्णत: व्यर्थ होता है ।

(4) **सिद्ध करने का भार एवं वैधानिक प्रावधान -** अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों के साथ हुए अनुबन्धों में सिद्ध करने के भार के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान हैं-

(i) **सभी व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क के होते हैं -** अनुबन्ध करने के लिए राजनियम की दृष्टि से सभी व्यक्तियों को स्वस्थ मस्तिष्क का माना जाता है ।

(ii) **स्वस्थता सिद्ध करने का भार -** जब अनुबन्ध के निष्पादन के सम्बन्ध में कोई विवाद उत्पन्न हो जाता है तो पक्षकारों को स्वयं की अथवा अन्य पक्षकार की स्वस्थता सिद्ध करने के लिए निम्नांकित नियमों का पालन करना होता है ।

1) जो व्यक्ति सामान्यत: स्वस्थ मस्तिष्क को होता है तथा कभी-कभी अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है और इस आधार पर अपने दायित्व से मुक्त होना चाहता है तो उसको स्वयं को यह सिद्ध करना होगा कि अनुबन्ध के समय वह अस्वस्थ मस्तिष्क का था ।

2) जो व्यक्ति सामान्यत: अस्वस्थ मस्तिष्क का होता है और कभी-कभी स्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है तो अनुबन्ध को लागू कराने के लिए दूसरे पक्षकार को यह सिद्ध करना होगा कि अनुबन्ध के समय वह व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क का था ।

(iii) **एक बार अस्वस्थ मस्तिष्क का सिद्ध होने पर पुन: स्वस्थ मस्तिष्क का सिद्ध करने का भार -** जब किसी व्यक्ति को एक बार अस्वस्थ मस्तिष्क का घोषित कर दिया जाता है तो ऐसे व्यक्ति को बाद में स्वयं को यह सिद्ध करना पड़ता है कि वह स्वस्थ मस्तिष्क का है ।

(iv) **अस्वस्थता प्रकट करने का दायित्व -** अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति के लिए अपनी अस्वस्थता प्रकट करने का दायित्व स्वयं उस पर नहीं होता है, अपितु दूसरे पक्षकार को

स्वयं यह जानकारी प्राप्त करनी होगी कि जिस व्यक्ति के साथ वह अनुबन्ध कर रहा है, वह स्वस्थ मस्तिष्क का है अथवा नहीं ।

(v) **अस्वस्थता के पहलू -** जब कोई व्यक्ति अस्वस्थता सिद्ध करना चाहता है तो उसे निम्नांकित मानसिक पहलुओं को सिद्ध करना होता है कि -

1) अनुबन्ध करते समय वह मानसिक कमजोरी से ग्रसित था और अनुबन्ध के तथ्यों को समझने में अयोग्य था।

2) वह अनुबन्ध के प्रभावों को समझ कर, विवेकपूर्ण निर्णय लेने में असमर्थ था ।

(5) **अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति के साथ किये गये ठहरावों का प्रभाव -** अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति के साथ किये गये ठहरावों का अग्रलिखित प्रभाव होता है -

(i) अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति जैसे - मूर्ख, पागल, शराबी आदि द्वारा किये गये अनुबन्ध पूर्णतः व्यर्थ होते हैं ।

(ii) यदि पागल व्यक्ति को कोई व्यक्ति उसके जीवन की आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराता है तो उसकी कीमत आपूर्तिकर्ता पागल व्यक्ति की सम्पत्ति से वसूल कर सकता है ।

(iii) अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति द्वारा किये गये ठहराव का बाद में, जब वह व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है, तब पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता है ।

3.6 राजनियम द्वारा अयोग्य घोषित व्यक्ति

पक्षकारों की अनुबन्ध करने की क्षमता के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति देश गे प्रचलित किसी भी राजनियम द्वारा अयोग्य घोषित किया हुआ नहीं होना चाहिए । कुछ व्यक्ति अपनी राजनैतिक स्थिति या अपने उच्च पेशे के कारण अथवा अपनी वैधानिक स्थिति के कारण अनुबन्ध अधिनियम या किसी अन्य अधिनियम के प्रभाव से अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित कर दिये गये हैं । इसके अन्तर्गत निम्नलिखित व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया है -

(1) राजनैतिक स्थिति के कारण अयोग्य व्यक्ति -

(i) **विदेशी शत्रु -** भारत के शत्रु राष्ट्र का कोई भी नागरिक भारतीय व्यक्ति के साथ अनुबन्ध नहीं कर सकता है और न ही सरकार की पूर्वानुमति के न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है । शत्रु राष्ट्र के नागरिक के साथ किया गया अनुबन्ध व्यर्थ एवं अवैधानिक होता है । शत्रु राष्ट्र के व्यक्ति के साथ युद्ध छिड़ने से पूर्व किये गये अनुबन्ध भी युद्ध के दौरान निष्पादन योग्य नहीं होते हैं और युद्ध समाप्ति के पश्चात् ही सरकार की अनुमति से प्रवर्तनीय कराये जाते हैं, बशर्ते की वे अवधि वर्जित न हो गये हों ।

(ii) **विदेशी नागरिक -** विदेशी नागरिकों के साथ भारतीय व्यक्तियों को अनुबन्ध करने की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं होती है । विदेशी नागरिकों के साथ अनुबन्ध करते समय भारत में राजनियम के अनुसार सरकार से अनुमति लेकर ही किसी प्रकार का अनुबन्ध किया जा सकता है । यदि किसी विदेशी नागरिक के साथ अनुबन्ध किया भी जाता है तो उसका निष्पादन भारत में ही कराया जा सकता है । कभी-कभी सरकार कुछ राजनैतिक कारणों से भी किसी विशेष देश के नागरिकों के साथ अनुबन्ध करने पर प्रतिबन्ध लगा देती है ।

(iii) **विदेशी सम्राट, राजदूत तथा प्रतिनिधि -** विदेशी सम्राट, राजदूत तथा उनके प्रतिनिधि अपनी विशेष स्थिति के कारण भारतीय न्यायालयों के कार्य क्षेत्र से बाहर हैं । इन लोगों पर अनुबन्ध को लागू कराने के लिए वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है । ये व्यक्ति चाहें तो भारत में अनुबन्ध कर सकते हैं और उसे प्रवर्तित भी करा सकते हैं । सिविल प्रोसिजर कोड की धारा 83 से 87 के अनुसार विदेशी सम्राट, राजदूत या प्रतिनिधि पर सरकार की पूर्व अनुमति लेकर ही वाद प्रस्तुत किया जा सकता है और यह अनुमति तभी मिलती है जब (1) वाद प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति पर विदेशी सम्राट या राजदूत ने भारतीय न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया हो, अथवा (2) विदेशी सम्राट या राजदूत भारतीय न्याय क्षेत्र में व्यापार कर रहा हो, अथवा (3) जब विदेशी सम्राट या राजदूत भारतीय न्याय क्षेत्र में विद्यमान अचल सम्पत्ति का स्वामी हो और उस पर रुपये बकाया होने का अपराध लगाया गया हो या अन्य किसी तरह से उस पर वाद प्रस्तुत किया जा सकता हो ।

(iv) **भारत का राष्ट्रपति -** भारतीय संविधान में राष्ट्रपति का सर्वोपरि स्थान होने के कारण उस पर किसी भी अनुबन्ध के अधीन न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है और न ही राष्ट्रपति को न्यायालय में बुलाया जा सकता है ।

(2) उच्च पेशे के कारण अयोग्य घोषित व्यक्ति -

(i) **बैरिस्टर -** इंग्लैण्ड में बैरिस्टर अपने पेशे की गरिमा के कारण फीस के लिए मुवक्किल के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है । भारत में भी 1927 से पूर्व वकील अपनी फीस के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता था । अब 'बार कौंसिल अधिनियम, 1927 ' के पारित होने के: पश्चात् पंजीकृत वकील फीस के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है ।

(ii) **चिकित्सक -** इंग्लैण्ड में 1858 से पूर्व चिकित्सक अपनी फीस के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकते थे । भारत में भी कुछ वर्षो पूर्व तक डाक्टर अपनी फीस के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकते थे परन्तु अब इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है । ऐसे चिकित्सक जिन पर सरकार अथवा नियोक्ता द्वारा इस सम्बन्ध में प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, अपनी फीस के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं ।

(3) वैधानिक स्थिति के कारण अयोग्य संस्थाएँ एवं व्यक्ति -

(i) **समामेलित कम्पनियाँ -** कम्पनी विधान द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति होती है जिसका केवल वैधानिक अस्तित्व ही होता है, शारीरिक नहीं । अत: कम्पनी अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से ही पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियमों के अन्तर्गत केवल व्यावसायिक अनुबन्ध ही कर सकती है । एक कम्पनी पार्षद सीमानियमों के बाहर किसी भी प्रकार का चाहे जैसा अनुबन्ध नहीं कर सकती है ।

(ii) **विवाहित स्त्रियाँ -** इंग्लैण्ड में 1935 से पूर्व विवाहित स्त्री किसी प्रकार का अनुबन्ध नहीं कर सकती थी और अनुबन्ध के प्रति उसका कोई वैधानिक दायित्व उत्पन्न नहीं, होता था । अब इंग्लैण्ड में स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान ही अनुबन्ध करने का अधिकार रखती है ।

भारतवर्ष में राजनियम द्वारा पुरुषों तथा स्त्रियों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं किया गया है । स्त्री चाहे विवाहित हो या अविवाहित, व्यक्तिगत रुप से अनुबन्ध कर सकती है । हमारे देश में सभी धर्मों की विवाहित स्त्रियाँ, विवाहित स्त्रियों की सम्पत्ति अधिनियम के अनुसार 'स्त्री

धन' रख सकती हैं और उसके सम्बन्ध में स्वतन्त्र रुप से अनुबन्ध कर सकती हैं । यदि कोई पति अपनी पत्नी के पालन-पोषण के लिए इन्कार कर देता है तो वह स्त्री अपने जीवन-यापन की वस्तुओं को खरीदने का अनुबन्ध कर सकती है, जिसके लिए उसका पति उत्तरदायी होता है । यहां यह ध्यान रखने योग्य बात है कि पति केवल अपने जीवन-स्तर के अनुरूप खरीदी गयी आवश्यक वस्तुओं के लिए ही उत्तरदायी होता है । अगर कोई पत्नी अपनी इच्छा से अपने पति से अलग हो जाती है और उसका सहारा छोड़ देती है तो उसके जीवन-यापन की वस्तुओं के लिए उसका पति उत्तरदायी नहीं होगा ।

(iii) **कैदी या अपराधी व्यक्ति -** एक अपराधी व्यक्ति को जब न्यायालय द्वारा जा सुना दी गयी है अथवा कारावास में भेज दिया गया है तो वह व्यक्ति उस समय तक कोई वैध अनुबन्ध नहीं कर सकता है जब तक कि उसके कारावास अथवा सजा की अवधि पूरी नहीं हो जाती है । सजा समाप्त होने पर या आजीवन कारावास या फाँसी की सजा में सरकार द्वारा क्षमा कर देने के बाद वह व्यक्ति पुन: वैध अनुबन्ध कर सकता है । अगर किसी अपराधी ने सजा मिलने के पहले वैध अनुबन्ध किया था तो सजा की अवधि में उस अनुबन्ध को पूरा करने के लिए वह प्रबन्धक (Administrator) नियुक्त कर सकता है ।

(iv) **दिवालिया -** एक दिवालिया घोषित किया हुआ व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखता है और उसके साथ किया गया ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होता है । यदि किसी व्यक्ति को दिवालिया घोषित करने की कार्यवाही न्यायालय में चल रही हो तो ऐसा व्यक्ति इस कार्यवाही के दौरान अनुबन्ध कर सकता है, परन्तु यदि ऐसा व्यक्ति दिवालिया घोषित होने से पूर्व कपटपूर्ण तरीके से सम्पत्ति के हस्तान्तरण का अनुबन्ध करता है तो वह अनुबन्ध व्यर्थ होगा ।

3.7 सारांश

पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होना एक वैध अनुबन्ध का महत्वपूर्ण लक्षण है । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार ऐसे व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता रखते हैं जो वयस्क है, स्वस्थ मस्तिष्क के है तथा जिनको किसी राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नहीं किया गया है । इस प्रकार अवयस्क व्यक्ति, अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति तथा राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखते हैं । ऐसे व्यक्तियों के साथ किया गया ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होता है ।

सामान्यत: अवयस्क व्यक्ति वह होता है जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है और जिसका संरक्षक न्यायालय द्वारा नियुक्ति किया गया है अथवा जिसकी सम्पत्ति कोर्ट ऑफ वार्डस के निरीक्षण में रखी गयी है, ऐसे व्यक्ति ने 21 वर्ष की आयु पूर्ण नहीं की है । अवयस्क व्यक्ति द्वारा किये गये ठहरावों के सम्बन्ध में प्रमुख नियम इस प्रकार हैं - (1) अवयस्क के साथ किया गया ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होता है, (2) अवयस्कता के दौरान किये गये अनुबन्धों का वयस्क होने पर पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता है, (3) अवयस्क के विरुद्ध अवरोध का सिद्धान्त (Doctrine of Estoppel) लागू नहीं होता है, (4) अवयस्क अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्पत्ति की जमानत पर ऋण ले सकता है, (5) अवयस्क अपने लाभ के लिए अनुबन्ध कर सकता है, (6) अवयस्क के संरक्षक द्वारा किया गया अनुबन्ध वैध होता है, (7)

अवयस्क के कार्यों के लिए उसके माता-पिता का दायित्व नहीं होता है, (8) अवयस्क दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है, (9) अवयस्क फर्म का साझेदार नहीं हो सकता है, (10) अवयस्क कम्पनी के अंशधारी के रुप में (11) अवयस्क ऐजेण्ट नियुक्त किया जा सकता हैं, (12) विनियम साध्य लेख पत्रों के सम्बन्ध में अवयस्क की स्थिति, (13) अवयस्क दण्डनीय अपराध के लिए दोषी होता है, (14) अवयस्क दूसरे व्यक्ति की गारण्टी नहीं दे सकता है, (15) अवयस्क दूसरे पक्षकार से प्रत्यास्थापना की मांग कर सकता है, (16) अवयस्क से निर्दिष्ट निष्पादन की मांग नहीं की जा सकती है, (17) संयुक्त वचनदाता के रुप में अवयस्क से निष्पादन की मांग नहीं की जा सकती है, (18) अवयस्क पट्टे धारी के रुप में व्यवसाय नहीं कर सकता है, तथा (19) अवयस्क अपनी सम्पत्ति को बन्धक नहीं रख सकता है ।

अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति वह होता है जो अनुबन्ध करते समय उसे समझने की क्षमता नहीं रखता है और जो यह भी नहीं समझता है कि उस अनुबन्ध से उसके हितों पर क्या प्रभाव पड़ेगा । जो व्यक्ति हमेशा अस्वस्थ मस्तिष्क का होता है किन्तु कभी-कभी स्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है तो स्वस्थता के समय अनुबन्ध कर सकता है, इसी प्रकार जो व्यक्ति हमेशा स्वस्थ मस्तिष्क का रहता है किन्तु कभी-कभी अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है उस समय अनुबन्ध नहीं कर सकता है, जब वह अस्वस्थ मस्तिष्क का होता है । अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों में पैदायशी मूर्ख, पागल, घोर शराबी, जराग्रस्त या वृद्धावस्था से पीड़ित व्यक्ति तथा सम्मोहित व्यक्ति को सम्मिलित किया जाता है । जो व्यक्ति कभी-कभी अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है, उसे अपने दायित्व से मुक्त होने के लिए स्वयं को सिद्ध करना होता है कि अनुबन्ध के समय वह स्वस्थ मस्तिष्क का नहीं था । इसके विपरीत - जो व्यक्ति कभी-कभी स्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है, उसके साथ किये गये अनुबन्ध को- लागू कराने के लिए दूसरे पक्षकार को सिद्ध करना होता है कि अनुबन्ध के समय वह स्वस्थ मस्तिष्क का था । अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों के साथ किये गये अनुबन्ध पूर्णतः व्यर्थ होते हैं और उनका बाद में पुष्टिकरण भी नहीं किया जा सकता है । पागल व्यक्ति को जीवन की आवश्यक वस्तुएँ -उपलब्ध कराने वाला व्यक्ति केवल उसकी सम्पत्ति में से मूल्य वसूल कर सकता है।

कुछ व्यक्ति अपनी राजनैतिक स्थिति या उच्च पेशे के कारण या अपनी वैधानिक स्थिति के कारण राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित कर दिये गये हैं । इन व्यक्तियों में विदेशी शत्रु, विदेशी नागरिक, विदेशी सम्राट या राजदूत या उनका प्रतिनिधि, भारत का राष्ट्रपति, बैरिस्टर, चिकित्सक, समामेलित कम्पनियाँ, कैदी या अपराधी व्यक्ति एवं दिवालिया व्यक्ति को सम्मिलित किया गया है ।

3.8 शब्दावली :

अनुबन्ध करने की क्षमता : अनुबन्ध करने की योग्यता

अवयस्क व्यक्ति : जिस व्यक्ति की आयु सामान्य परिस्थितियों में 18 वर्ष तथा न्यायालय द्वारा संरक्षक नियुक्ति करने अथवा जिसकी सम्पत्ति कोर्ट ऑफ वार्डस के निगरानी में रखने की दशा में 21 वर्ष से कम है ।

अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति : वह व्यक्ति जो अनुबन्ध की विषयवस्तु एवं उसके प्रभावों को समझने में असमर्थ रहता है ।

राजनियम द्वारा अयोग्य घोषित व्यक्ति: जिस व्यक्ति पर कानून द्वारा अनुबन्ध करने के लिए रोक लगा दी गयी हो ।

अवरोध का सिद्धान्त : जब कोई व्यक्ति अपने कार्य, भूल या आचरण से किसी अन्य व्यक्ति को किसी ऐसे तथ्य की सत्यता का विश्वास दिलाता है अथवा कर लेने देता है, जो सत्य नहीं है और दूसरा व्यक्ति इस विश्वास के आधार पर कोई कार्य कर लेता है तो ऐसा विश्वास दिलाने वाला व्यक्ति अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता है ।

प्रत्यास्थापना : अनुबन्ध या ठहराव के अधीन पक्षकारों द्वारा एक दूसरे से प्राप्त वस्तु या धन वापिस लौटाना और अनुबन्ध से पूर्व की स्थिति में आना ।

बन्धक अनुबन्ध : सम्पति की जमानत पर धनराशि प्राप्त करने का अनुबन्ध

पुष्टिकरण : किसी व्यक्ति द्वारा पूर्व में किये गये कार्य के लिए सहमति व्यक्त करना और उसका उत्तरदायित्व स्वीकार करना ।

3.9 स्वपरख प्रश्न

1. अनुबन्ध करने की क्षमता से आप क्या समझते हैं? राजनियम द्वारा कौन-कौन से व्यक्ति अनुबन्ध करने के योग्य समझे गये हैं?
2. अवयस्क के अनुबन्धों से सम्बन्धित भारतीय राजनियम की विवेचना कीजिए ।
3. अनुबन्ध करने की योग्यता से आप क्या समझते हैं? वे विभिन्न व्यक्ति कौन हैं जो राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य समझे जाते हैं ।
4. "एक अवयस्क दूसरों को बाध्य करता है किन्तु स्वयं दूसरों से कभी बाध्य नहीं होता है । " राजनियम की व्यवस्थाओं के आधार पर इस कथन की व्याख्या कीजिए ।
5. निम्न व्यक्तियों के साथ किये गये अनुबन्धों की वैधानिक स्थिति बतलाइए -
   (i) विवाहित रची (ii) अपराधी व्यक्ति
   (iii) विदेशी शत्रु (iv) पागल व्यक्ति ।

व्यावहारिक समस्याएँ

1. प्रदीप एक अवयस्क अपने आपको वयस्क बताकर एक व्यापारी से कुछ सामान उधार खरीद लेता है । क्या व्यापारी प्रदीप से मूल्य वसूल कर सकता है?
2. एक दुकानदार एक अवयस्क को उसके जीवन यापन की वस्तुएँ देता है । अवयस्क दुकानदार को एक प्रतिज्ञा पत्र लिखकर देता है । क्या दुकानदार उक्त प्रतिज्ञा पत्र के आधार पर भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी है?
3. सीता, जो राम की पत्नी है ने बिना उसकी स्वीकृति व ज्ञान के उसका फर्नीचर व पुस्तकालय की पुस्तकें श्याम के पास (प) जवाहरात व (पप) जीवन यापन के खाद्य पदार्थो की कीमत के लिए रहन रख दिए । श्याम के अधिकार बताइए।
4. मनोज प्रकाश को जो पागल है, जीवन की आवश्यकता की वस्तुएँ उपलब्ध कराता है । भुगतान नहीं होने पर क्या मनोज प्रकाश के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही कर सकता है?

इकाई-4

पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति (Free consent of Parties)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 स्वतन्त्र सहमति से आशय

4.4 उत्पीड़न

4.5 अनुचित प्रभाव

4.6 उत्पीड़न तथा अनुचित प्रभाव में अन्तर

4.7 कपट

4.8 मिथ्यावर्णन

4.9 कपट एवं मिथ्यावर्णन में अन्तर

4.10 गलती या भूल

4.10.1 तथ्य सम्बन्धी गलती

4.10.2 राजनियम सम्बन्धी गलती

4.11 सारांश

4.12 शब्दावली

4.13 स्वपरख प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य होंगे कि :

- ❖ सहमति का अर्थ बता सकें और यह बता सकें कि पक्षकारों की सहमति कब स्वतन्त्र होती है;
- ❖ उत्पीड़न का अर्थ एवं उसके आवश्यक लक्षणों को बता सकें;
- ❖ उत्पीड़न एवं अनुचित प्रभाव में अन्तर को स्पष्ट कर सकें;
- ❖ कपट का अर्थ एवं उसके आवश्यक लक्षणों को समझा सकें;
- ❖ मिथ्यावर्णन अथवा मिथ्याकथन के अर्थ एवं लक्षणों को बतला सकें;
- ❖ कपट एवं मिथ्यावर्णन के बीच के अन्तर को समझा सकें;
- ❖ अनुबन्ध के सम्बन्ध में पक्षकारों द्वारा की गयी गलती के विभिन्न प्रकारों के बारे में बता सकें और,
- ❖ अनुबन्ध की वैधता पर उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, मिथ्यावर्णन एवं गलती के प्रभाव के बारे में समझा सकें ।

4.2 प्रस्तावना

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत होते हैं तो उसे सहमति कहते हैं । एक वैध अनुबन्ध की रचना के लिए पक्षकारों की सहमति का स्वतन्त्र होना आवश्यक है । पक्षकारों की सहमति तब स्वतन्त्र मानी जाती है, जब वह उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, मिथ्यावर्णन तथा गलती या भूल में से किसी भी तत्व से प्रभावित, न हो । इस इकाई में इन तत्वों के अर्थ एवं आवश्यक लक्षणों के बारे में बतलाया जायेगा । इस इकाई में यह भी बतलाया जायेगा कि उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, मिथ्यावर्णन तथा गलती में से किसी भी आधार पर प्राप्त की गयी सहमति का अनुबन्ध की वैधता पर क्या प्रभाव पड़ेगा और यह सिद्ध करने का भार किरन पक्षकार पर होगा कि सहमति स्वतन्त्र है अथवा नहीं है ।

4.3 स्वतन्त्र सहमति से आशय

अनुबन्ध को राजनियम द्वारा प्रवर्तित कराने के लिए पक्षकारों की सहमति होनी चाहिए और वह सहमति स्वतन्त्र सहमति होनी चाहिए ।

सहमति के आशय - भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 13 के अनुसार "जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत होते हैं तो उसे सहमति कहते हैं । " इस प्रकार सहमति में दो बातों का समावेश होता है - (1) दो या दो से अधिक पक्षकार होने चाहिए (2) पक्षकार एक ही बात के लिए एक सा विचार रखते हुए सहमत होने चाहिए ।

सहमति को हम निम्नलिखित महत्वपूर्ण विवादों द्वारा अधिक स्पष्ट कर सकते हैं - **रैफिल्स बनाम विचिलहॉस** के विवाद में रैफिल्स ने विचिलहॉस से 125 रुई की गांठे खरीदने का अनुबन्ध किया, जो कि **'पीयरलेस'** नाम के जहाज से बम्बई आने वाली थी । पीयरलेस नाम के दो जहाज बम्बई से आने वाले थे - एक अक्टूबर में और दूसरा दिसम्बर में । रैफिल्स का विचार अक्टूबर में आने वाले जहाज की राई खरीदना था और विचिलहॉस का विचार दिसम्बर वाले ' जहाज में आने वाली रुई की सुपुर्दगी देना था । न्यायालय ने निर्णय दिया कि दोनों पक्षकारों के मध्य कोई अनुबन्ध हुआ ही नहीं था, क्योंकि - दोनों पक्षकार एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत नहीं थे । **शरतचन्द्र बनाम कनई लाल** के विवाद में एक पक्षकार ने यह झूठ बोलकर दूसरे पक्षकार के एक दानपत्र पर हस्ताक्षर करा लिए कि यह मुख्तारनामा है । दूसरे पक्षकार का आशय तो केवल गवाह के रुप में हस्ताक्षर करना था, जबकि पहले ' पक्षकार ने उस प्रलेख पर उसके एक पक्षकार के रुप में हस्ताक्षर करा लिए न्यायालय ने निर्णय दिया कि वह सहमति नहीं थी क्योंकि दोनों पक्षकार अलग-अलग विचार से सहमत हुए थे ।

स्वतन्त्र सहमति (Free Consent) - भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा व 4 के अनुसार, "सहमति को तभी स्वतन्त्र माना जा सकता है जबकि वह निम्नलिखित तत्वों में से किसी भी तत्व से प्रभावित नहीं हो ।

(1) उत्पीड़न
(2) अनुचित प्रभाव
(3) कपट
(4) मिथ्या वर्णन; तथा

(5) गलती अथवा भूल

इस धारा की व्याख्या करने से स्पष्ट होता है कि यह सहमति इन तत्वों में से किसी भी तत्व से प्रभावित नहीं है तो वह सहमति स्वतन्त्र मानी जायेगी और अनुबन्ध वैध होगा । इसके विपरीत यदि सहमति इनमें से किसी भी तत्व से प्रभावित है तो वह सहमति स्वतन्त्र नहीं मानी जायेगी । वह सहमति प्रथम चार तत्वों (उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट तथा मिथ्यावर्णन) से प्रभावित होने पर अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है तथा सहमति के गलती से प्रभावित होने पर अनुबन्ध व्यर्थ होता है ।

4.4 उत्पीड़न

सामान्य शब्दो में उत्पीड़न से आशय जोर-जबरदस्ती से लिया जाता है । **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा व 5 के अनुसार,** "किसी व्यक्ति के साथ ठहराव करने के उद्देश्य से ऐसा कोई कार्य करना अथवा करने की धमकी देना, जो भारतीय दण्ड संहिता द्वारा वर्जित है, अथवा किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाने के लिए किसी सम्पत्ति को अवैध रुप से रोकना या रोकने की धमकी देना उत्पीड़न कहलाता है । " इस धारा की व्याख्या में यह भी स्पष्ट किया गया है कि **यह महत्वहीन है कि जिस स्थान पर उत्पीड़न का प्रयोग किया गया है, वही पर भारतीय दण्ड संहिता लागू होती है अथवा नहीं ।** उदाहरण के लिए, राम समुद्री मार्ग में एक इंग्लिश जहाज पर ऐसा कोई कार्य करके जो भारतीय दण्ड संहिता द्वारा वर्जित है, श्याम की ठहराव के लिए सहमति प्राप्त कर लेता है । बाद में राम कलकत्ता में श्याम के विरुद्ध अनुबन्ध भंग का वाद प्रस्तुत करता है । राम ने उत्पीड़न का प्रयोग किया है यद्यपि उस समय और उस स्थान पर भारतीय दण्ड विधान लागू नहीं था ।

उत्पीड़न के लक्षण अथवा तत्व - उत्पीड़न के निम्न लक्षण अथवा तत्व होते हैं ।

(1) **भारतीय दण्ड संहिता द्वारा वर्जित कार्य करना या करने की धमकी देना -** भारतीय दण्ड संहिता में जिन कार्यो को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है, यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की ठहराव के लिए सहमति प्राप्त करने के लिए इनमें रो कोई कार्य करता है अथवा भविष्य में करने की धमकी देता है, तो इन सब कार्यों को उत्पीड़न की श्रेणी में माना जायेगा । इस सम्बन्ध में **रंगनायकम्मा बनाम अलवर सेट्टी** का विवाद महत्वपूर्ण है । इस विवाद में एक 13 वर्षीय स्त्री के पति की मृत्यु हो जाने पर उसके सम्बन्धियों ने धमकी दी कि जब तक वह एक विशेष बालक को गोद नहीं ले लेगी उसके पति का दाह संस्कार नहीं किया जायेगा । उसने अपनी सहमति दे दी, किन्तु बाद में न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया । न्यायालय ने निर्णय दिया कि ठहराव उत्पीड़न के आधार पर व्यर्थ है क्योंकि किसी व्यक्ति के दाह-संस्कार को रोकना दण्ड विधान द्वारा वर्जित है ।

अमीराज बनाम सीशम्मा के विवाद में एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी व पुत्र को आत्महत्या की धमकी देकर अपने भाई के लिए कुछ ऐसी सम्पत्ति का मुक्ति पत्र (Release deed) लिखवा लिया, जिसे वे अपनी बतलाते थे । न्यायालय ने इस मुक्ति पत्र को रह करते हुए निर्णय दिया कि पत्नी व पुत्र की सहमति उत्पीड़न के आधार पर ली गयी थी, अत: यह ठहराव व्यर्थ है।

(2) **किसी व्यक्ति की सम्पत्ति को अवैध रुप से रोकना या रोकने की धमकी देना -** जब कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति की ठहराव के लिए सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से उसकी सम्पत्ति को अवैध रुप से रोकता है या रोकने की धमकी देता है तो यह उत्पीड़न माना जाता है । उदाहरण के लिए, राम को प्रदीप एण्ड कम्पनी द्वारा निश्चित समय के लिए एजेण्ट नियुक्त किया जाता है । अवधि समाप्त होने पर राम अपने पास कम्पनी के महत्वपूर्ण दस्तावेज यह कहकर रोक लेता है कि जब तक कम्पनी उसको दायित्वों के लिए मुक्ति पत्र लिखकर ' नहीं देगी, तब तक वह आवश्यक कागज नहीं देगा । यह कार्य उत्पीड़न की श्रेणी में आता है ।

(3) **उत्पीड़न का उद्देश्य दूसरे पक्षकार की ठहराव के लिए सहमति प्राप्त करना होता है -** भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित कोई कार्य करने अथवा अवैधानिक रुप से किसी की सम्पत्ति को रोकने या रोकने की धमकी देने का उद्देश्य दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करना होना चाहिए तथा दूसरे पक्षकार द्वारा सहमति दी भी गयी हो । यदि दूसरे पक्षकार ने उत्पीड़न से प्रभावित होकर सहमति नहीं दी है तो उत्पीड़न नहीं कहलायेगा ।

(4) उत्पीड़न स्वयं पक्षकार अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है - उत्पीड़न सम्बन्धी कोई भी कार्य स्वयं पक्षकार द्वारा भी किया जा सकता है अथवा अन्य कोई व्यक्ति भी उत्पीड़न कर सकता है, किन्तु दूसरे व्यक्ति द्वारा किये गये उत्पीड़न का उद्देश्य भी उसी पक्षकार के लिए सहमति प्राप्त करना होना चाहिए ।

(5) **उत्पीड़न का प्रयोग स्वयं पक्षकार के विरुद्ध अथवा उसके निकट सम्बन्धी के विरुद्ध किया जा सकता है -** उत्पीड़न का प्रयोग स्वयं सहमति देने वाले पक्षकार अथवा उसके निकट सम्बन्धी के विरुद्ध किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, रवि ने शरत को धमकी दी कि यदि उसने अपना स्कूटर 3000 रुपये में बेचने की स्वीकृति नहीं दी तो उसके लड़के का अपहरण कर लिया जायेगा । शरत ने अपनी सहमति प्रदान कर दी । यह अनुबन्ध उत्पीड़न से प्रभावित माना जायेगा।

(6) **उत्पीड़न का स्थान -** जिस स्थान पर उत्पीड़न का प्रयोग किया जा रहा है, यह आवश्यक नहीं है कि वही पर भारतीय दण्ड विधान लागू हो । उस स्थान पर दण्ड विधान लागू न भी हो तो उत्पीड़न माना जायेगा।

सिद्ध करने का भार - उत्पीड़न के आधार पर अनुबन्ध को निरस्त करने के लिए पीड़ित पक्षकार को यह सिद्ध करना होगा कि उसके साथ उत्पीड़न का प्रयोग किया गया है और उसकी सहमति उत्पीड़न के द्वारा प्राप्त की गयी है ।

उत्पीड़न का प्रभाव - जब अनुबन्ध के किसी पक्षकार की सहमति उत्पीड़न के आधार पर प्राप्त की गयी है तो उसके निम्नांकित प्रभाव हो सकते है -

(1) **पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय -** अनुबन्ध अधिनियम की धारा 19 के अनुसार, उत्पीड़न के आधार पर किया गया अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है । दूसरे शब्दों में अनुबन्ध में जिस पक्षकार की सहमति उत्पीड़न के आधार पर प्राप्त की गयी है, वह पक्षकार चाहे तो अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है और यदि वह अपने हित में समझता है तो अनुबन्ध को प्रवर्तित करा सकता है ।

(2) **प्रत्यास्थापना -** उत्पीड़न के आधार पर हुए अनुबन्ध के अन्तर्गत यदि पक्षकारों ने कोई वस्तु या धनराशि एक दूसरे को दी है तो पीड़ित पक्षकार द्वारा अनुबन्ध को निरस्त करने अथवा व्यर्थ घोषित किये जाने पर वे प्राप्त वस्तु या धनराशि वापस लौटाने के लिए बाध्य है ।

4.5 अनुचित प्रभाव

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 16 (1) के अनुसार, "एक अनुबन्ध अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित उस समय माना जाता है, जब पक्षकारों के मध्य ऐसे सम्बन्ध हों कि उनमें से एक पक्षकार दूसरे की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में हो और वह दूसरे पक्षकार पर अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए उस स्थिति का प्रयोग करता है । "

इस परिभाषा का विवेचन करके हम कह सकते हैं कि अनुचित प्रभाव में दो बातों का समावेश होता है -

(1) पक्षकारों के मध्य ऐसे सम्बन्ध हों कि उनमें से एक पक्षकार दूसरे की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में हो ।

(2) इच्छा को प्रभावित करने वाले पक्षकार ने वास्तव में अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए अपनी स्थिति का प्रयोग किया हो ।

अनुचित प्रभाव के लक्षण या तत्व - अनुचित प्रभाव से प्रेरित अनुबन्ध के निम्नांकित लक्षण या तत्व होते हैं।

(1) **पक्षकारों के मध्य सम्बन्ध -** एक अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित तभी माना जायेगा जब पक्षकारों के बीच इस प्रकार के सम्बन्ध हों कि उनमें से एक पक्षकार दूसरे की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में हो । जब पक्षकारों के बीच किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है तो वह अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित नहीं माना जायेगा ।

(2) **एक पक्षकार द्वारा दूसरे की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति -** अनुबन्ध अधिनियम की धारा 16(2) के अनुसार एक पक्षकार दूसरे की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में निम्नलिखित परिस्थितियों में माना जाता है ।

(i) जब पक्षकारों के बीच ऐसे सम्बन्ध हों कि उनमें से एक पक्षकार दूसरे पर वास्तविक अथवा स्पष्ट अधिकार सत्ता रखता हो, जैसे आयकर अधिकारी और करदाता, नियोक्ता और कर्मचारी, पुलिस अधिकारी और अपराधी आदि ।

(ii) जब पक्षकारों के बीच विश्वासाश्रित सम्बन्ध हो जैसे - माता-पिता एवं सन्तान, गुरु एवं शिष्य, वकील और मुवक्किल आदि । विश्वासाश्रित सम्बन्धों के कारण एक पक्षकार दूसरे की इच्छा को प्रभावित कर सकता है । मन्नू सिंह बनाम उमादत्त पाण्डे के विवाद मे एक वयस्क व्यक्ति ने अपनी सारी सम्पत्ति दान पत्र द्वारा इसलिए दान कर दी कि उसकी आत्मा को दूसरे लोक में इस दान का लाभ प्राप्त होगा । न्यायालय ने इस अनुबन्ध को अनुचित प्रभाव के आधार पर निरस्त कर दिया ।

(iii) जब एक व्यक्ति किसी व्यक्ति से अनुबन्ध करता है ' जिसकी मानसिक स्थिति स्थायी या अस्थायी रुप से अधिक आयु, बीमारी अथवा मानसिक या शारीरिक कष्ट के कारण क्षीण हो गयी हो और जिसकी इच्छा को आसानी से प्रभावित किया जा सकता है ।

उदाहरण के लिए, एक रोगी लम्बी बीमारी से पीड़ित है और डाक्टर उसकी विक्षिप्त मानसिक स्थिति का फायदा उठा कर अनुचित रुप से अधिक फीस लेने का अनुबन्ध कर लेता है तो वह अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित माना जायेगा ।

(3) **आपसी सम्बन्धों का अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए उपयोग -** अनुचित प्रभाव का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि जो पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में है, उसने अपनी इस स्थिति का उपयोग अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए किया हो । जब अनुबन्ध में ऐसा पक्षकार अपनी इस स्थिति का प्रयोग नहीं करता है तो अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित नहीं माना जायेगा ।

(4) **अनुचित लाभ वास्तव में प्राप्त हुआ हो -** एक अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित है अथवा नहीं, इसका निर्धारण करने के लिए यह आवश्यक है कि एक पक्षकार ने दूसरे पक्षकार से अपनी स्थिति का दुरूपयोग करके वास्तव में अनुचित लाभ प्राप्त किया हो । एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का भय होने मात्र को अनुचित प्रभाव नहीं माना जा सकता है ।

अनुचित प्रभाव सिद्ध करने का भार - भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 16 (3) के अनुसार, "अनुबन्ध का जो पक्षकार अनुचित प्रभाव डालने की स्थिति में होता है, उसी को यह सिद्ध करना होता है कि उसने दूसरे पक्षकार से अनुचित लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने प्रभाव का कोई प्रयोग नहीं किया है । इसके लिए पीड़ित पक्षकार को तो केवल इतना ही कहना पड़ता है कि उस पर अनुचित प्रभाव का प्रयोग किया गया है।

अनुचित प्रभाव का प्रभाव- जब एक अनुबन्ध में किसी पक्षकार की सहमति अनुचित प्रभाव द्वारा ली गयी है तो उसके निम्नलिखित प्रभाव होते हैं -

(1) **पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय -** अनुचित प्रभाव से प्रेरित अनुबन्ध उस पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है जिसकी सहमति अनुचित प्रभाव का प्रयोग करके ली गयी है । पीड़ित पक्षकार चाहे तो अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है अथवा उस अनुबन्ध को पूरा करने के लिए दूसरे पक्षकार को बाध्य कर सकता है ।

(2) **उचित शर्तों पर अनुबन्ध निरस्त करना -** जब पीड़ित पक्षकार ने अनुबन्ध के अधीन कोई लाभ प्राप्त कर लिया है तो न्यायालय उन शर्तों पर उस अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है जो उसे उचित प्रतीत होती हैं । उदाहरण के लिए, रामधन नामक साहूकार ने पन्नालाल नामक किसान को 1000 रुपये का ऋण देकर अनुचित प्रभाव डालकर 2000 रुपये का 10 प्रतिशत ब्याज पर प्रतिज्ञा पत्र लिखवा लिया । ऐसी दशा में न्यायालय 1000 रुपये एवं उचित ब्याज देने के लिए आदेश देकर प्रतिज्ञा पत्र को निरस्त करने का आदेश दे सकता है ।

नृशंस अथवा अनुचित व्यवहार - जब किसी ऐसे व्यक्ति की असमर्थता अथवा उसकी आवश्यकता से लाभ प्राप्त कर लिया गया है जिसने कि पर्याप्त रक्षा के बिना ही कार्य किया है, तो ऐसा व्यवहार अनुचित व्यवहार कहलाता है । ऐसे व्यवहार में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की भावना को प्रभावित करने की स्थिति में होता है और वह अपनी स्थिति का अनुचित लाभ उठाने के लिए उसके साथ ऐसा व्यवहार करता है जो मानवीय आत्मा को झकझोर देने वाला होता है । इस सम्बन्ध में **चुन्नी कुंवर बनाम रुप सिंह** का विवाद महत्वपूर्ण है । एक रियासत के उत्तराधिकारी ने जिसको खाने पीने तक का होश नहीं था, अपने उत्तराधिकार सम्बन्धी अभियोग

चलाने के लिए 3600 रुपये कर्ज लेकर 25,000 रुपये का बोण्ड लिख दिया । उस व्यक्ति को अपने उत्तराधिकार में सम्पत्ति भी प्राप्त हो गयी किन्तु उसने 25000 रुपये का भुगतान नहीं किया । ऋणदाता. द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर न्यायालय ने इस व्यवहार को अनुचित व्यवहार माना तथा केवल 3600 रुपये 20 प्रतिशत व्याज की दर सहित वसूल करने की डिक्री दी ।

पर्दानशीन महिलाओं के साथ किये गये अनुबन्ध - पर्दानशीन महिलाओं से तात्पर्य उन महिलाओं से है जो अधिकांश समय घर की चारदिवारी में रहती है, पूर्ण रुप से पर्दा रखती है, बाहरी लोगों के सम्पर्क में नहीं आती हैं और जिनको बाहरी दुनिया के बारे में कोई जानकारी नहीं होती है । राजनियम इन पर्दानशीन महिलाओं को कमजोर पक्ष मानकर विशेष सुविधा प्रदान करता है, क्योंकि इन पर अनुचित प्रभाव आसानी से डाला जा सकता है । अतः पर्दानशीन महिलाओं के साथ अनुबन्ध करते समय केवल अनुबन्ध की शर्तें बतला देना ही पर्याप्त नहीं होता है, अपितु अनुबन्ध की विषयवस्तु एवं सभी शर्तें अच्छी तरह से समझा देनी चाहिए और यह भी समझा देना आवश्यक होता है कि उस अनुबन्ध का महिला के हितों पर क्या प्रभाव पड़ेगा । उसके साथ किया गया व्यवहार उचित होना चाहिए और उसकी सहमति पूर्णतः स्वतन्त्र होनी चाहिए ।

इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात ध्यान रखने की है कि जो स्त्री अपने मुँह पर पर्दा रखती है ओर पर्दे के पीछे रहती है किन्तु पत्र व्यवहार करती है, न्यायालय में गवाही देने जाती है, किरायेदारों से किराया वसूल करती है, राजनियम की दृष्टि में पर्दानशीन महिला नहीं होगी ।जब कोई व्यक्ति पर्दानशीन महिला के साथ कोई अनुबन्ध करता है और उस पर अनुचित प्रभाव का प्रयोग करता है तो वह अनुबन्ध उस महिला की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है ।

4.6 उत्पीड़न तथा अनुचित प्रभाव में अन्तर

अन्तर का आधार	उत्पीड़न	अनुचित प्रभाव
1. परिभाषा	जब अनुबन्ध का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार के विरुद्ध कोई ऐसा कार्य करता है या करने की धमकी देता है जी भारतीय दण्ड संहिता द्वारा वर्जित है अथवा अवैध रूप से किसी सम्पत्ति को रोकता है या रोकने की धमकी देता है तो उत्पीड़न कहलाता है ।	जब अनुबन्ध के पक्षकारों के बीच ऐसा सम्बन्ध है की एक पक्षकार दूसरे की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति मे है और वह अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए उस स्थिति का प्रयोग करता है तो अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित कहा जाता है ।
2. प्रयोग का ढंग	उत्पीड़न में शारीरिक दबाव या सम्पत्ति को रोकने का दबाव डाला जाता है ।	अनुचित प्रभाव में केवल मानसिक या नैतिक दबाव डाला जाता है।
3. पक्षकार	उत्पीड़न का प्रयोग अनुबन्ध के पक्षकार अथवा किसी अन्य व्यक्ति के साथ भी किया जा सकता है ।	अनुचित प्रभाव का प्रयोग केवल अनुबन्ध के पक्षकार पर किया जा सकता है ।

4. प्रभाव	उत्पीड़न की स्थिति में अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है ।	अनुचित प्रभाव की स्थिति में अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है अथवा न्यायालय द्वारा अनुचित शर्तों में परिवर्तन किया जा सकता है ।
5. पक्षकारों में सम्बन्ध	उत्पीड़न की स्थिति में पक्षकारों के बीच कोई पूर्व सम्बन्ध होना आवश्यक नही है ।	अनुचित दबाव की स्थिति में पक्षकारों के बीच अधिकार सम्बन्धी अथवा विश्वासाश्रित सम्बन्ध होना आवश्यक है ।
6. तत्व	उत्पीड़न द्वारा निर्मित अनुबन्धों की सहमति की प्राप्ति में भय, आतंक,धमकी एवं हिंसा आदि की भूमिका होती है ।	अनुचित प्रभाव से प्रेरित अनुबन्धों में मानसिक दबाव, आदेश पालन, बहलाना-फुसलाना नैतिक दायित्व आदि की भूमिका होती है ।
7. सिद्ध करने का भार	उत्पीड़न में सिद्ध करने का भार पीड़ित पक्षकार पर होता है जिसकी सहमति उत्पीड़न के आधार पर प्राप्त की गयी है।	इसमें जो पक्षकार अनुचित प्रभाव डालने की स्थिति में होता है, उसको यह सिद्ध करना होता है की उसने अनुचित लाभ के लिए अपनी स्थिति का प्रयोग नहीं किया है ।
8. स्थान	उत्पीड़न का प्रयोग भारत में अथवा अन्य स्थान पर जहां भारतीय दण्ड विधान लागू नहीं होता, किया जा सकता है ।	अनुचित प्रभाव का प्रयोग केवल भारत की भौगोलिक सीमाओं में ही किया जा सकता है ।
9. धारा	उत्पीड़न के लिए भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 15 लागू होती है।	अनुचित प्रभाव के लिए भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 16 लागू होती है ।
10. दण्ड	उत्पीड़न के लिए दोषी पक्षकार को भारतीय दण्ड विधान के अंतर्गत भी दंडित किया जा सकता है ।	अनुचित प्रभाव का प्रयोग करने वाले दोषी पक्षकार को दंडित करने का कोई प्रावधान नही है ।

4.7 कपट

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 17 के अनुसार, "जब अनुबन्ध का एक पक्षकार अथवा उसका प्रतिनिधि दूसरे पक्षकार अथवा उसके प्रतिनिधि को धोखा देने के उद्देश्य से अथवा प्रस्तावित अनुबन्ध के लिए उसकी सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से निम्नलिखित कार्यों में से कोई कार्य करता है तो उसे कपट कहा जायेगा

(1) किसी असत्य बात को जानबूझकर सत्य बतलाना,

(2) किसी तथ्य को जानबूझकर छिपाना, जिसका उसे वास्तविक ज्ञान अथवा विश्वास है,

(3) पूरा न करने के अभिप्राय से वचन देना,

(4) कोई भी ऐसा कार्य करना, जिसका उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना है

(5) कोई भी ऐसा कार्य अथवा भूल जिसको राजनियम विशेष रुप से कपटमय घोषित करता है,

(6) मौन रहना भी उस समय कपट माना जाता है, जब मौन रहने वाले पक्षकार का बोलना कर्तव्य था अथवा उसका मौन रहना स्वयं बोलने के बराबर हो ।

कपट के लक्षण अथवा तत्व :

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 17 में दी गयी उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करने से कपट के निम्नलिखित लक्षण या तत्व प्रकट होते हैं ।

(1) **कपट का कार्य अनुबन्ध के पक्षकार द्वारा अथवा उसके प्रतिनिधि द्वारा किया जा सकता है -** कपटपूर्ण कार्य अनुबन्ध के एक पक्षकार अथवा उसके एजेण्ट द्वारा किया जाना चाहिए । यदि कपट किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जिसका अनुबन्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है तो यह कपट नहीं माना जायेगा । उदाहरण के लिए, एक कम्पनी के संचालक प्रविवरण में गलत बातें प्रकाशित करते हैं जिससे प्रभावित होकर एक व्यक्ति उस कम्पनी के अंश खरीद लेता है । बाद मे यह पता चलता है कि संचालकों ने धोखा किया है, तो अंश खरीदने वाला वह व्यक्ति चाहे तो अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है । इसी उदाहरण में यदि कोई अनजान व्यक्ति गलत बात कहता है और उससे प्रभावित होकर वह आदमी अंश खरीद लेता है तो यह कपट नहीं माना जायेगा ।

(2) **कपट धोखा दिये जाने के अभिप्राय से किया जाना चाहिए और दूसरे पक्षकार को वास्तव में धोखा होना चाहिए -** कपटपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति का उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना होना चाहिए । यदि एक पक्षकार ने ऐसा कोई कार्य किया है जो कपटपूर्ण तो है परन्तु उस कपटपूर्ण कार्य को करते समय उसकीं इच्छा दूसरे पक्षकार को धोखा देने की नहीं है तो वह कपट की श्रेणी में नहीं आता है । उस समय उस पक्षकार की इच्छा दूसरे पक्षकार को धोखा देने की थी अथवा नहीं, इसका निर्धारण न्यायालय विवाद की परिस्थितियों का अध्ययन करके करेगा ।

धोखा देने के आशय के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि प्रथम पक्षकार के उस कपटपूर्ण कार्य से वास्तव में दूसरे पक्षकार को धोखा होना चाहिए । यदि उसको कोई धोखा नहीं होता है तो वह कपट नहीं माना जायेगा । इस सम्बन्ध में एक कथन है कि "वह धोखा जिससे किसी को धोखा नहीं हुआ हो, वह कपट नहीं है । "

(3) **कपट दूसरे पक्षकार या उसके एजेण्ट को अनुबन्ध के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए-**कपट का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि जो भी कपटपूर्ण कार्य किया जाता है, वह दूसरे पक्षकार को प्रस्तावित अनुबन्ध के लिए सहमति देने हेतु प्रेरित करने के लिए किया जाना चाहिए । उदाहरण के लिए, कम्पनी के प्रविवरण में संचालकों द्वारा गलत बातों के प्रकाशन का उद्देश्य यदि लोगों को अंशों को खरीदने के लिए प्रेरित करना है, तो यह कपट माना जायेगा ।

(4) **कपट करने वाले व्यक्ति को सही स्थिति का ज्ञान होता है -** कपट हमेशा जानबूझकर किया जाता है । कपटकर्ता किसी असत्य बात को जानबूझकर सत्य बतलाता है अथवा किसी

तथ्य को छिपाता है । यदि कोई व्यक्ति अनजाने में किसी तथ्य को प्रकट नहीं करता है अथवा असत्य बात को सत्य होने का उसे स्वयं विश्वास है तो वह कपट न होकर मिथ्यावर्णन कहलाता है ।

(5) **कपट के कारण हानि अवश्य होनी चाहिए -** कपट सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि पीड़ित पक्षकार को हानि अवश्य होनी चाहिए जिसका मौद्रिक रुप से अनुमान लगाया जाना सम्भव हो । यदि पीड़ित पक्षकार को हानि नहीं होती है तो वह कपट नहीं माना जायेगा ।

(6) **कपट अनुबन्ध के महत्वपूर्ण तथ्य के सम्बन्ध में होना चाहिए -** कपट तभी माना जाता है, जब कपटपूर्ण ढंग से कही गयी कोई बात अनुबन्ध के किसी महत्वपूर्ण तथ्य के सम्बन्ध में हो । ऐसा कोई असत्य कथन जिसका अनुबन्ध पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है तो इसे कपट की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है ।

(7) **निम्नलिखित कार्यों में से किसी भी कार्य द्वारा कपट हो सकता है -** कपट का क्षेत्र व्यापक है । साधारण रुप से निम्न में से किसी भी एक या अधिक कार्य द्वारा कपट किया जा सकता है-

(i) **असत्य बात को जानबूझकर सत्य बतलाना -** जब अनुबन्ध का एक पक्षकार जानबूझकर दूसरे पक्षकार को किसी गलत बात को सत्य बतलाता है, जो कि असत्य है और जिसके सत्य होने का विश्वास नहीं है, तब इसको **"सुझाव या प्रदर्शन द्वारा कपट"** कहते हैं । यहां यह महत्वपूर्ण है कि जो भी असत्य बात कही जाती है, वह अनुबन्ध के लिए महत्वपूर्ण होनी चाहिए । एक पक्षकार द्वारा अनुबन्ध की विषयवस्तु के सम्बन्ध में केवल अपनी राय प्रकट करना अथवा प्रशंसा में कोई बात कहना मात्र ही कपट नहीं होता है । उदाहरण के लिए, प्रकाश अपना स्कूटर रवि को बेचने के लिए कहता है कि, "स्कूटर बिलकुल ठीक स्थिति में है और मैंने15000 रुपये में इसे कल ही खरीदा है ।रवि इस कथन के आधार पर स्कूटर खरीद लेता है । बाद में पता चलता है कि प्रकाश ने स्कूटर तो वास्तव में केवल 13000 रुपये में ही खरीदा था । इस अनुबन्ध में रवि के साथ कपट हुआ माना जायेगा और वह अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है । उक्त उदाहरण में यदि प्रकाश कहता है कि"स्कूटर बिलकुल ठीक स्थिति में है और इसकी कीमत 15000 रुपयें है" तो यहां पर प्रकाश का कथन अपनी वस्तु के लिए राय प्रकट करना मात्र है । रवि स्कूटर खरीद लेता है तो बाद में कपट के आधार पर अनुबन्ध को निरस्त नहीं कर सकता है ।

(2) **तथ्यों को सक्रिय रुप से छिपाना -** जब अनुबन्ध का एक पक्षकार अनुबन्ध के विषय में किसी बात को जानबूझकर छिपाता है, जिसको बताना उसका कर्तव्य था और जो अनुबन्ध के लिए महत्वपूर्ण है तो यह कपट माना जायेगा । इसको **'सक्रिय छिपाव द्वारा कपट'** भी कहते हैं । ध्यान देने योग्य बात यह है कि सभी परिस्थितियों में तथ्यों को छिपाना मात्र कपट नहीं माना जा सकता है क्योंकि कोई भी विक्रेता अपना -वस्तुओं की कमियों को बतलाने के लिए बाध्य नहीं होता है । इस सम्बन्ध में क्रेता की सावधानी का नियम लागू होता है और क्रेता को वस्तु अच्छी तरह से देखकर ही लेनी चाहिए । इस प्रकार सामान्यत: अनुबन्ध में क्रेता की सावधानी का नियम लागू होता है ।

निम्नलिखित परिस्थितियाँ ऐसी है जिनमें "क्रेता की सावधानी का नियम" लागू नहीं होता है और पक्षकारों को अनुबन्ध के समय सभी महत्वपूर्ण बातें बतलाना आवश्यक होता है -

(i) **जब महत्वपूर्ण तथ्यों को बतलाना वैधानिक उत्तरदायित्व हो -** कुछ अनुबन्ध ऐसे होते हैं जहाँ वैधानिक व्यवस्थाओं के कारण अनुबन्ध से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण बातें पक्षकारों को बतलाना आवश्यक होता है । उदाहरण के लिए, सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम की धारा 55 के अनुसार सम्पत्ति के विक्रेता द्वारा सम्पत्ति के स्वामित्व से सम्बन्धित सभी बातें क्रेता को बतला देनी चाहिए । यदि विक्रेता कोई बात नहीं बतलाता है तो वह कपट माना जाता है ।

(ii) **जब विशेष सम्बन्ध के कारण महत्वपूर्ण बातें बतलाना आवश्यक हो -** कुछ अनुबन्ध ऐसे भी होते हैं जिनके पक्षकारों के बीच विशेष सम्बन्ध होता है और उस सम्बन्ध के कारण एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध की सभी बातें बतलाना आवश्यक हो जाता है । उदाहरण के लिए, नियोक्ता और एजेण्ट, कानूनी सलाहकार और मुवक्किल तथा संरक्षक और रक्षित आदि लोगों के बीच अनुबन्धों में सभी महत्वपूर्ण तथ्य बतलाना आवश्यक होता है ।

(iii) **सद्भावना वाले अनुबन्धों के सम्बन्ध में दायित्व -** कुछ अनुबन्ध ऐसे होते हैं, जिनमें अनुबन्ध के एक पक्षकार को अनुबन्ध के सम्बन्ध में सभी महत्वपूर्ण बाते पता होती हैं अथवा उसके पास ऐसे साधन होते हैं कि वह आसानी से सभी बातों का पता लगा सकता है, जबकि दूसरे पक्षकार को सभी बातें मालूम नहीं होती हैं, ऐसे अनुबन्धों को **सद्भावना वाले अनुबन्ध** कहते हैं । **सद्भावना वाले अनुबन्ध** में जिस पक्षकार को तथ्यों की जानकारी होती है, उसका कर्तव्य होता है कि वह वे सभी तथ्य दूसरे पक्षकार को बतला दे जो अनुबन्ध करने सम्बन्धी निर्णय को प्रभावित करने वाले हैं । बीमा के अनुबन्ध; साझेदारी के अनुबन्ध, कम्पनी के अंश खरीदने के सम्बन्ध में अनुबन्ध, गारण्टी के अनुबन्ध, पारिवारिक निपटारे के अनुबन्ध तथा विवाह के अनुबन्ध आदि **सद्भावना वाले अनुबन्ध** हैं ।

(3) **पूरा न करने के इरादे से वचन देना -** जब अनुबन्ध का कोई पक्षकार पूरा न करने के इरादे से और दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से कोई वचन देता है तो यह कपट माना जायेगा ।

(4) **कोई भी ऐसा कार्य या भूल जिसको राजनियम कपटमय घोषित करता है -** कुछ अधिनियमों में कुछ कार्यों या भूलों को कपटमय घोषित किया गया है । उदाहरण के लिए, सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम के अनुसार ऋणदाताओं को धोखा देने के लिए किया गया अचल सम्पत्ति का हस्तान्तरण कपटमय माना जाता है । इसी प्रकार दिवालिया अधिनियम के अनुसार दिवालिया घोषित व्यक्ति द्वारा सम्पत्ति का हस्तान्तरण कपटमय होता है ।

(5) **मौन द्वारा कपट -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 17 की व्याख्या के अनुसार, तथ्य सम्बन्धी मौन जो कि अनुबन्ध करने वाले पक्षकार की इच्छा को प्रभावित कर सकता है, तब तक कपट नहीं माना जाता है, जब तक ठहराव की परिस्थिति के अनुसार मौन रहने वाले व्यक्ति का बोलना कर्तव्य हो अथवा उसका मौन रहना स्वयं बोलने के बराबर हो । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामान्य परिस्थितियों में मौन रहना कपट नहीं मारना जाता है क्योंकि अनुबन्ध का कोई पक्षकार बोले ही, यह आवश्यक नहीं है । चाहे दूसरे पक्षकार की अनुबन्ध करने

की इच्छा प्रभावित ही क्यों न हो रही हो । परन्तु निम्न दो परिस्थितियों में अनुबन्ध के पक्षकारों का मौन रहना कपट माना जाता है -

(i) **जब मौन रहने वाले व्यक्ति का बोलना कर्तव्य है और वह नहीं बोलता है -** सभी सद्भावना वाले अनुबन्धों में कोई भी पक्षकार यदि किसी तथ्य की जानकारी रखता है और वह मौन रहता है तो यह कपट माना जायेगा।

(ii) **जब अनुबन्ध के पक्षकारों का मौन रहना स्वयं बोलने के बराबर है -** उदाहरण के लिए, प्रभात प्रदीप का स्कूटर खरीदने का प्रस्ताव करते हुए कहता है "यदि आपने कोई विपरीत बात नहीं कही तो मैं समझूंगा कि स्कूटर ठीक हालत में है । " प्रदीप कोई उत्तर नहीं देता है । बाद में स्कूटर खराब निकल जाने पर प्रदीप का मौन रहना कपट माना जायेगा । प्रभात को अनुबन्ध को निरस्त करने का अधिकार है ।

कपट का प्रभाव (Effect of Fraud) -

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 19 के अनुसार जिस पक्षकार की सहमति कपट के आधार पर प्राप्त की गयी है, उसको निम्न अधिकार प्राप्त होते हैं ।

(1) **अनुबन्ध का व्यर्थनीय होना -** जिस पक्षकार की सहमति कपट के आधार पर प्राप्त की गयी है, उसकी इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय होता है । वह चाहे तो अनुबन्ध का निष्पादन करा सकता है और वह चाहे तो अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है । परन्तु यदि ऐसे व्यक्ति की सहमति "मौन द्वारा कपट" से प्राप्त की गयी है, और उस व्यक्ति के पास ऐसे साधन मौजूद थे कि सामान्य परिस्थितियों में वह सही बात का पता लगा सकता था तो वह अनुबन्ध को निरस्त नहीं कर सकता है ।

(2) **अनुबन्ध की अभिपुष्टि की मांग करना -** यदि पीड़ित पक्षकार अपने हित में समझता है तो अनुबन्ध की अभिपुष्टि की मांग कर सकता है और दूसरे पक्षकार को वैधानिक रुप से अनुबन्ध को पूरा करना होगा ।

(3) **क्षतिपूर्ति कराना -** कपट की दशा में पीड़ित पक्षकार को यदि कोई हानि हुई है तो उस हानि की क्षतिपूर्ति कराने का उसको अधिकार है । कपट को एक दीवानी अपराध माना जाता है अत: दोषी पक्षकार क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होता है ।

(4) **प्रत्यास्थापना की मांग करना -**पीड़ित पक्षकार द्वारा अनुबन्ध को निरस्त कर देने पर वह प्रत्यास्थापना की मांग कर सकता है अर्थात् अनुबन्ध के अधीन यदि उसने दूसरे पक्षकार को कोई धन या सम्पत्ति दे दी है तो वापिस प्राप्त कर सकता है ।

4.8 मिथ्या वर्णन

किसी असत्य बात का उसकी सत्यता में विश्वास रखते हुए किया गया वर्णन मिथ्यावर्णन कहलाता है । मिथ्यावर्णन दो प्रकार का होता है - प्रथम, जानबूझकर धोखा देने के उद्देश्य से किया गया मिथ्यावर्णन, **कपटमय मिथ्यावर्णन** कहलाता है । द्वितीय, अज्ञानतावश बिना धोखा देने के उद्देश्य से किया गया मिथ्यावर्णन निर्दोष मिथ्यावर्णन कहलाता है । यहां मिथ्यावर्णन से हमारा आशय निर्दोष मिथ्यावर्णन से है क्योंकि कपटपूर्ण मिथ्यावर्णन का विवेचन हम कपट शीर्षक के अन्तर्गत कर चुके हैं ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 18 के अनुसार मिथ्यावर्णन से आशय निम्न से है-

(i) किसी ऐसी बात का निश्चयात्मक कथन जो सत्य नहीं है, किन्तु कहने वाला व्यक्ति उसकी सत्यता में विश्वास करता है;

(ii) धोखा न देने के उद्देश्य से किया गया कर्तव्य भंग, जिससे ऐसा करने वाले व्यक्ति को लाभ हो और दूसरे व्यक्ति को हानि उठानी पड़े;

(iii) किसी ठहराव के एक पक्षकार को अज्ञानतावश ठहराव की विषयवस्तु के बारे में गलती के लिए प्रेरित करना ।

एन्सन के शब्दों में, "मिथ्यावर्णन एक असत्य कथन है जिसे कहने वाला व्यक्ति सद्विश्वास से सत्य मानता है अथवा जिसे वह असत्य नहीं समझता है । "

मिथ्यावर्णन के लक्षण अथवा तत्व:

मिथ्यावर्णन के प्रमुख लक्षण अथवा तत्व निम्न प्रकार हैं ।

(1) मिथ्यावर्णन हमेशा अज्ञानतावश होता है ।

(2) मिथ्यावर्णन अनुबन्ध के किसी निश्चित तथ्य या विषयवस्तु के सम्बन्ध में होना चाहिए, राजनियम के सम्बन्ध में नहीं।

(3) मिथ्यावर्णन दूसरे पक्षकार को धोखा देने के उद्देश्य से नहीं होना चाहिए ।

(4) मिथ्यावर्णन के आधार पर ही किसी पक्षकार द्वारा सहमति दी जानी चाहिए अर्थात् मिथ्यावर्णन अनुबन्ध का आधार होना चाहिए ।

(5) मिथ्यावर्णन करने वाले पक्षकार को उसकी सत्यता में विश्वास होना चाहिए अर्थात्, वह स्वयं किसी असत्य बात को सत्य मानता हो ।

मिथ्यावर्णन की विधियाँ या स्वरूप-

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार मिथ्यावर्णन निम्नलिखित दशाओं में माना जाता है -

(1) **निश्चयात्मक कथन द्वारा -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 18 (1) के अनुसार जब अनुबन्ध का एक पक्षकार किसी असत्य बात को निश्चित कथन द्वारा सत्य बतलाता है और उसके सत्य होने में विश्वास करता है तो यह निश्चयात्मक कथन द्वारा मिथ्यावर्णन होगा । इसमें कहने वाले पक्षकार के पास उस कथन के असत्य होने का कोई आधार नहीं होता है । यदि कहने वाले व्यक्ति के पास विश्वास करने के लिए उचित आधार है तो वह मिथ्यावर्णन न होकर पारस्परिक गलती मानी जायेगी । उदाहरण के लिए, **मोहनलाल बनाम गूंगाजी कॉटन मिल्स कम्पनी** के विवाद में 'अ' ने 'ब' से कहा कि 'द' नई बनने वाली कम्पनी का संचालक होगा । यह कथन अ ने 'स' से जानकर दिया था । 'अ' के कथन पर विश्वास करके 'ब' उस कम्पनी के अंश खरीद लेता है । बाद में 'अ' द्वारा दिया गया कथन गलत सिद्ध हुआ । न्यायालय ने इसे अपने निर्णय में मिथ्यावर्णन माना ।

(2) **कर्तव्य भंग द्वारा -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 18(2) के अनुसार, जब अनुबन्ध का एक पक्षकार बिना कोई धोखा देने के उद्देश्य रो कर्तव्य भंग करता है जिसके कारण उसको या उसके अधीन अधिकार रखने वाले आश्रित को लाभ होता है और दूसरे पक्षकार को हानि

होती है तो यह कर्तव्य भंग द्वारा मिथ्यावर्णन कहलाता है । सद्भावना वाले अनुबन्ध इसका अच्छा उदाहरण हैं । सभी सद्भावना वाले अनुबन्धों में जिस पक्षकार को अनुबन्ध की विषयवस्तु के बारे में पूरी जानकारी है, उसका कर्तव्य है कि वह पूरी जानकारी दूसरे पक्षकार को दे देवे । जब वह ऐसा नहीं करता है तो यह कर्तव्य भंग कहलाता है । यदि उसने जानबूझकर धोखा देने के उद्देश्य से दूसरे पक्षकार को सही जानकारी नहीं दी है तो वह कपट माना जावेगा और अज्ञानतावश गलत जानकारी दी गयी है या कोई तथ्य छिपाया गया है तो वह मिथ्यावर्णन कहलाता है । उदाहरण के लिए, राम अपने जीवन का बीमा करते समय जीवन बीमा निगम को अपनी आयु 24 वर्ष बतलाता है जबकि वास्तव में वह 28 वर्ष का है जिसकी उसको स्वयं को जानकारी नहीं है तो यह मिथ्यावर्णन माना जायेगा ।

(3) **अज्ञानतावश मिथ्यावर्णन के कारण गलती -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 18(3) के अनुसार जब अनुबन्ध का एक पक्षकार अज्ञानतावश कोई ऐसा प्रदर्शन करता है जिससे प्रेरित होकर दूसरा पक्षकार अनुबन्ध की विषयवस्तु के सम्बन्ध में कोई गलती कर देता है अथवा उसकी प्रेरणा से अपनी सहमति दे देता है तो वह अनुबन्ध मिथ्यावर्णन के आधार पर दूसरे पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है । यहां पर ध्यान रखने योग्य बात यह है कि दूसरे पक्षकार द्वारा पहले पक्षकार की प्रेरणा से जो भी गलती हो वह अनुबन्ध के लिए महत्वपूर्ण होनी चाहिए अन्यथा मिथ्यावर्णन नहीं होगा । उदाहरण के लिए, राम, मोहन से कहता है कि उसका मकान दोषमुक्त है । इस कथन से प्रेरित होकर मोहन मकान खरीद लेता है । राम को इरा बात की जानकारी नहीं है कि उसके मकान की नींव में गहरी दरार है जिसके कारण मकान के गिरने की सम्भावना है । बाद में जब उस दरार का पता चलता है तो मोहन मिथ्यावर्णन के आधार पर अनुबन्ध निरस्त कर सकता है परन्तु मोहन किसी किवाड़ के टूटा होने के आधार पर अनुबन्ध को निरस्त नहीं कर सकता है क्योंकि किवाड़ टूटा होना अनुबन्ध की विषयवस्तु के लिए महत्वपूर्ण नहीं है ।

मिथ्यावर्णन का प्रभाव -

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 19 के अनुसार जिस पक्षकार की सहमति मिथ्यावर्णन के आधार पर ली गयी है, उसको निम्न अधिकार प्राप्त हैं जो कि कपट की स्थिति में भी होते -

(1) **अनुबन्ध का व्यर्थनीय होना -** पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध निरस्त करने का अधिकार प्राप्त होता है, किन्तु अगर उस पक्षकार के पास ऐसे साधन मौजूद थे कि वह थोड़े से प्रयास रो सत्य बात का पता लगा सकता था तो वह अनुबन्ध को निरस्त नहीं कर सकता है । उदाहरण के लिए, रवि मिथ्यावर्णन द्वारा शंकर को गलती से यह विश्वास करा देता है कि उसके कारखाने में 500 टन सीमेण्ट प्रतिमाह बनती है । शंकर कारखाना खरीद लेता है और बाद में हिसाब-किताब देखने पर पता चलता है कि यहां तो केवल 400 टन सीमेण्ट ही प्रतिमाह बनती है तो शंकर अनुबन्ध को निरस्त नहीं कर सकता है क्योंकि वह हिसाब-किताब देखकर आसानी से वस्तु स्थिति का पता लगा सकता था ।

(2) **अनुबन्ध की अभिपुष्टि की मांग -** अनुबन्ध का पीड़ित पक्षकार चाहे तो दूसरे पक्षकार अर्थात् दोषी पक्षकार से अनुबन्ध की शर्तों को पूरा करा सकता है ।

(3) **प्रत्यास्थापन की मांग -** जिस पक्षकार की सहमति मिथ्यावर्णन के आधार पर प्राप्त की गयी है, अगर वह अनुबन्ध को निरस्त कर देता है तो प्रतिस्थापन की मांग कर सकता है अर्थात् अगर उसने अनुबन्ध के अधीन दूसरे पक्षकार को कोई धन या सम्पत्ति दी है तो पुन: प्राप्त कर सकता है । यहां पर विशेष ध्यान रखने योग्य बात यह है कि अगर पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध के कारण कोई हानि हुई है तो वह उसकी क्षतिपूर्ति प्राप्त नहीं कर सकता है ।

4.9 कपट व मिथ्या वर्णन में अन्तर

कपट व मिथ्यावर्णन में प्रमुख अन्तर इस प्रकार है -

अन्तर का आधार	कपट	मिथ्यावर्णन
1. उद्देश्य	कपट दूसरे पक्षकार को धोखा देने के उद्देश्य से किया जाता है।	मिथ्यावर्णन का उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना नहीं होता है।
2. प्रकृति	कपट हमेशा जानबूझकर किया जाता है।	मिथ्यावर्णन अज्ञानतावश होता है ।
3. सत्यता का ज्ञान	कपट में कपट करने वाले पक्षकार को पहले से ही मालूम होता है कि जो बात वह कह रहा है, वह असत्य है और उसके सत्य होने मे भी वह विश्वास नहीं करता है ।	मिथ्यावर्णन मे असत्य बात कहने वाले पक्षकार को स्वयं को उसकी असत्यता कि जानकारी नहीं होता है तथा वह स्वयं उसके सत्य होने मे विश्वास करता है ।
4. जांच के साधन	कपट में "मौन द्वारा कपट' को छोड़कर शेष परिस्थितियों में दोषी पक्षकार यह कहकर अपने दायित्व से नही बच सकता है कि पीड़ित पक्षकार के पास सत्यता का पता लगाने के लिए पर्याप्त साधन मौजूद थे और सामान्य मेहनत से सत्यता का पता लगाया जा सकता था ।	मिथ्यावर्णन में दोषी पक्षकार यह कह सकता है कि पीड़ित पक्षकार के पास सत्यता का पता लगाने के लिए पर्याप्त साधन थे और वह चाहता तो आसानी से सत्यता का पता लगा सकता था ।
5. वैधता	कपट द्वारा किया गया अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार द्वारा कार्यवाही न करने पर भी वैध नहीं बन सकता है।	मिथ्यावर्णन की जानकारी होने के पश्चात् भी यदि पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को 'निरस्त नही करता है तो अनुबन्ध वैध हो जाता है ।
6. अधिकार	कपट की दशा में पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है और क्षतिपूर्ति कि मांग कर सकता है ।	मिथ्यावर्णन की दशा में पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है लेकिन क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है।

4.10 गलती या भूल

अनुबन्ध की वैधता के लिए यह आवश्यक होता है कि अनुबन्ध के सभी पक्षकार एक ही बात पर, एक ही भाव से सहमत होने चाहिए । जब अनुबन्ध के पक्षकार गलती के कारण सहमति तो दे देते हैं, किन्तु बाद में मालूम होता है कि वे एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत नहीं थे तो अनुबन्ध व्यर्थ माना जाता है ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 20 के अनुसार, "जब किसी ठहराव के दोनों ही पक्षकार ठहराव के किसी महत्वपूर्ण तथ्य के सम्बन्ध में गलती पर हों तो ऐसा ठहराव व्यर्थ होता है । " इस प्रकार गलती अनुबन्ध के महत्वपूर्ण तथ्य के बारे में होती है और दोनों पक्षकारों द्वारा होती है ।

गलती के लक्षण-

गलती के लक्षण इस प्रकार हैं :

(1) अनुबन्ध गलती से प्रेरित तब माना जाता है जब दोनों पक्षकार गलती पर हों ।

(2) गलती ठहराव के किसी महत्वपूर्ण तथ्य के सम्बन्ध में होनी चाहिए ।

(3) गलती के आधार पर किया गया अनुबन्ध व्यर्थ होता है ।

गलती या भूल दो प्रकार की हो सकती है -

(1) तथ्य सम्बन्धी गलती (Mistake of Fact)

(2) राजनियम सम्बन्धी गलती (Mistake of Law)

(अ) तथ्य सम्बन्धी गलती

तथ्य सम्बन्धी गलती ठहराव के किसी महत्वपूर्ण पहलू के सम्बन्ध में होती है तथा प्राय: इस प्रकार की गलती दोनों पक्षकारों द्वारा ही होती है । एक पक्षकार द्वारा की गयी गलती, के आधार पर अनुबन्ध तभी व्यर्थनीय होता है जब वह गलती कपट या मिथ्यावर्णन द्वारा की गयी हो । इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात यह है कि उम्मीद सम्बन्धी गलती अथवा गलत विश्वास अथवा विचार निर्णय सम्बन्धी गलती के आधार पर अनुबन्ध व्यर्थ नहीं हो सकता है । उदाहरण के लिए, राम मोहन से इस आशा से 100क्विंटल चीनी खरीदने का अनुबन्ध करता है कि भविष्य में कीमतें बेढंगी । बाद में कीमतें बढने के स्थान पर कम हो जाती हैं तो वह अनुबन्ध को रह नहीं कर सकता है । तथ्य सम्बन्धी गलती को हम दो भागो में बाँट सकते हैं -

(1) द्विपक्षीय गलती (Bilateral Mistake)

(2) एकपक्षीय गलती (Unilateral Mistake)

(1) **द्विपक्षीय गलती-** द्विपक्षीय तथ्य सम्बन्धी गलती ठहराव के दोनों पक्षकारों द्वारा साथ-साथ की जाती है तथा यह गलती ठहराव के किसी महत्वपूर्ण तथ्य के बारे में होती है । द्विपक्षीय गलती पुन: दो प्रकार की होती है-

(i) विषयवस्तु सम्बन्धी गलती, तथा

(ii) निष्पादन की असम्भवता सम्बन्धी गलती ।

(i) **विषयवस्तु सम्बन्धी गलती -** जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार अनुबन्ध की विषयवस्तु के बारे में गलती पर होते हैं तो अनुबन्ध व्यर्थ माना जायेगा । विषयवस्तु के सम्बन्ध में पक्षकार निम्न प्रकार की गलतियाँ कर सकते हैं :

1) **विषयवस्तु के अस्तित्व सम्बन्धी गलती -** अनेक बार अनुबन्ध करते समय पक्षकार विषयवस्तु को अस्तित्व में मानते हुए अनुबन्ध करते हैं और बाद में जब उनको मालूम होता है कि जिस समय अनुबन्ध किया गया था, वह वस्तु अस्तित्व में नहीं थी तो वह अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा । उदाहरण के लिए, राम, श्याम का जयपुर स्थित मकान दस लाख रुपये में खरीदने का अनुबन्ध करता है । अनुबन्ध किया, उस समय मकान गिरकर धराशाही हो चुका था, जिसकी जानकारी दोनों ही पक्षकारों को नहीं थी । यह अनुबन्ध व्यर्थ होगा क्योंकि अनुबन्ध के समय विषयवस्तु अस्तित्व में नहीं थी ।

2) **विषयवस्तु के स्वामित्व सम्बन्धी गलती -** जब अनुबन्ध के पक्षकार ऐसा विश्वास करते हैं कि विक्रेता को वस्तु बेचने का अधिकार है और वही उसका वास्तविक स्वामी है, जबकि वास्तव में वह उस वस्तु का वास्तविक स्वामी नहीं होता है तो अनुबन्ध व्यर्थ होता है । उदाहरण के लिए, **रानी कुंवर बनाम महबूब बख्श** के विवाद में एक पक्षकार ने दूसरे से जमीन खरीदकर मकान बनवा लिया । बाद में मालूम हुआ कि जमीन बेचने वाला उसका वास्तविक स्वामी नहीं था अपितु कोई तीसरा व्यक्ति था । यह बात दोनों ही पक्षकार नहीं जानते थे । यहॉ पर विषयवस्तु के स्वामित्व सम्बन्धी गलती मानी गयी और ठहराव को रह माना गया ।

3) **विषयवस्तु की पहचान सम्बन्धी गलती -** जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार अनुबन्ध की विषयवस्तु को पहचानने में गलती करते हैं अर्थात् एक पक्षकार कोई एक वस्तु समझता है और दूसरा पक्षकार दूसरी वस्तु समझता है तो अनुबन्ध व्यर्थ होता है । उदाहरण के लिए, **रैफिल्स बनाम विचिलहॉस** के विवाद में **पीयरलेस** नाम के दो जहाज बम्बई से लन्दन जा रहे थे । क्रेता का इरादा पहले आने वाले जहाज की रुई खरीदना था और विक्रेता का इरादा दूसरे जहाज से आने वाली राई बेचने का था । विषयवस्तु को पहचानने में गलती करने के कारण न्यायालय ने अनुबन्ध को व्यर्थ घोषित कर दिया ।

4) **विषयवस्तु की किस्म सम्बन्धी गलती -** सामान्यत: विषयवस्तु की किस्म के सम्बन्ध में गलती के आधार पर अनुबन्ध व्यर्थ नहीं होता है, परन्तु जब दोनों ही पक्षकार वस्तु के गुणों के बारे में गलती करते हैं और वस्तु अनुबन्ध में निर्धारित गुणों के अनुसार नहीं है तो अनुबन्ध व्यर्थ माना जाता है । उदाहरण के लिए, प्रभाकर प्रदीप से 10 क्विंटल चावल खरीदने का अनुबन्ध करता है । क्रेता की इच्छा पुराने चावल खरीदने की है और विक्रेता की इच्छा नये चावल बेचने की है । प्रदीप अनुबन्ध करते समय चावल की बानगी दिखाता है और कुछ नहीं कहता है । यह अनुबन्ध व्यर्थ नहीं होगा ।

5) **विषयवस्तु की मात्रा सम्बन्धी गलती -** विषयवस्तु की मात्रा के सम्बन्ध में पक्षकारों द्वारा गलती किये जाने पर अनुबन्ध व्यर्थ होता है । उदाहरण के लिए, **चार्ल्स बनाम जैनिंग्स** के विवाद में एक दलाल ने एक ही अनुबन्ध के सम्बन्ध में क्रेता को क्रय पत्र तथा विक्रेता को विक्रय पत्र सौंपा, जिसमें क्रय और विक्रय की अलग-अलग मात्रा लिखी हुयी थी । न्यायालय ने अनुबन्ध व्यर्थ घोषित किया ।

6) **विषयवस्तु के मूल्य सम्बन्धी गलती -** जब विषयवस्तु की कीमत के बारे में दोनों ही पक्षकार गलती पर होते है तो अनुबन्ध व्यर्थ होता है । उदाहरण के लिए, **बैब्स्टर बनाम सेसिल** के विवाद में सम्पत्ति का विक्रेता गलती से सम्पत्ति की कीमत 2240 पौण्ड के स्थान पर 1240 पौण्ड लिख गया । क्रेता इस गलती को जानते हुए भी चुप रहा । न्यायालय ने इस अनुबन्ध को व्यर्थ घोषित कर दिया ।

(iii) **निष्पादन की असम्भवता सम्बन्धी गलती -** यदि अनुबन्ध का निष्पादन कुछ विशिष्ट परिस्थितियों पर निर्भर करता है और दोनों ही पक्षकारों को उन परिस्थितियों की अनुपस्थिति की जानकारी नहीं है तो अनुबन्ध व्यर्थ होगा । उदाहरण के लिए, राम दिल्ली में एक विशेष जुलूस देखने के लिए श्याम का कमरा किराये पर लेता है लेकिन जुलूस निकालना रह कर दिया गया जिसकी जानकारी दोनों ही पक्षकारों को नहीं है तो यह अनुबन्ध व्यर्थ होगा ।

(2) **एकपक्षीय गलती -** जब अनुबन्ध के पक्षकारों में से कोई एक पक्षकार तथ्य सम्बन्धी गलती पर होता है तो ऐसा अनुबन्ध एक पक्षीय गलती के आधार पर हुआ माना जाता है । अनुबन्ध के किसी एक पक्षकार की, गलती अथवा भूल के कारण अनुबन्ध व्यर्थ नहीं हो जाता है, परन्तु यदि एक पक्षकार तथ्य सम्बन्धी गलती, दूसरे पक्षकार के कपट या मिथ्यावर्णन के कारण करता है तो पहले पक्षकार को अनुबन्ध पूरा करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है । एक पक्षीय गलती दो प्रकार की हो सकती है -

(i) **अनुबन्ध की प्रकृति के सम्बन्ध में गलती -** जब अनुबन्ध का एक पक्षकार अनुबन्ध की प्रकृति को ठीक प्रकार से नहीं समझता है अथवा अनुबन्ध की प्रकृति के विषय में बिना किसी प्रकार के अपने दोष के, गलती करता है तो अनुबन्ध व्यर्थ माना जाता है । उदाहरण के लिए, भगवती प्रसाद एक वृद्ध व्यक्ति जिसकी आँखे वृद्धावस्था के कारण कमजोर हो गयी है, किसी विनियम विपत्र पर गारण्टी का प्रलेख समझकर हस्ताक्षर कर देता है तो इस विनियम विपत्र के लिए भगवती प्रसाद को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है ।

(ii) **अनुबन्ध करने वाले पक्षकार की पहचान सम्बन्धी गलती -** जब अनुबन्ध का एक पक्षकार किसी विशिष्ट व्यक्ति से अनुबन्ध करने की इच्छा रखता है और वह व्यक्ति जिससे अनुबन्ध किया गया है, वह विशिष्ट व्यक्ति नहीं है जिससे अनुबन्ध करने की इच्छा थी, तो ऐसा अनुबन्ध पक्षकार की पहचान सम्बन्धी गलती के कारण व्यर्थ हो जाता है । उदाहरण के लिए, मोहन लाल एण्ड सन्स को अजमेर के प्रदीप से माल खरीदने के लिए आदेश प्राप्त हुआ । व्यापारी ने प्रदीप के पते को ध्यान में न रखकर माल भेज दिया । बाद में पता चला की आदेश देने वाला प्रदीप व्यापारी का नियमित ग्राहक प्रदीप नहीं था अपितु अन्य कोई व्यक्ति था । यह ठहराव व्यर्थ है क्योंकि व्यापारी ने पक्षकार को पहचानने में गलती की 'है ।

(ब) राजनियम सम्बन्धी गलती

कई बार अनुबन्ध के पक्षकार राजनियम की व्यवस्थाओं का उल्लंघन करके अनुबन्ध कर लेते हैं । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 21 के अनुसार, "भारत में प्रचलित किसी भी

राजनियम सम्बन्धी गलती के आधार पर अनुबन्ध व्यर्थनीय नहीं हो सकता, किन्तु जब गलती ऐसे राजनियम के सम्बन्ध में है जो भारत में प्रचलित नहीं है तो उसका प्रभाव तथ्य सम्बन्धी गलती के समान ही होगा । " राजनियम सम्बन्धी गलतियाँ तीन प्रकार की होती हैं -

(1) **देश के राजनियम सम्बन्धी गलती -** भारत में रहने वाले प्रत्येक नागरिक से यह आशा की जाती है कि वह देश के सभी राजनियमों की जानकारी रखता है । यदि कोई व्यक्ति देश के कानून सम्बन्धी गलती करता है तो उसको क्षमा नहीं किया जा सकता है । इस सम्बन्ध में यह कथन उपयुक्त प्रतीत होता है कि "अधिनियम की अनभिज्ञता क्षम्य नहीं है, किन्तु तथ्य सम्बन्धी अनभिज्ञता क्षम्य हो सकती है । " उदाहरण के लिए, राम, मोहन को जान से मार डालने की धमकी देता है और बाद में न्यायालय में यह कहता है कि उसको मालूम नहीं था कि मारने की धमकी देना अपराध है, भविष्य में ऐसा नहीं करूँगा । राम को इस कथन के आधार पर क्षमा नहीं किया जा सकता है । इसी प्रकार से दो पक्षकार इस भ्रम के कारण अनुबन्ध करते हैं कि एक विशिष्ट प्रकार का ऋण भारतीय लिमिटेशन अधिनियम द्वारा वर्जित है । राजनियम सम्बन्धी भूल के आधार पर अनुबन्ध का परित्याग नहीं किया जा सकता है ।

(2) **विदेशी राजनियम सम्बन्धी गलती -** जब अनुबन्ध के पक्षकार विदेशी राजनियम सम्बन्धी गलती करते हैं तो अनुबन्ध तथ्य सम्बन्धी गलती के कारण व्यर्थ होता है, क्योंकि भारतीय नागरिकों से दूसरे देशों के कानूनों की जानकारी रखने की आशा नहीं की जा सकती है । उदाहरण के लिए, सुरेश, महेश का लन्दन स्थित जमीन का 300 गज का टुकड़ा खरीदने का अनुबन्ध इस विश्वास पर करता है कि उस पर मकान बनाया जा सकता है । बाद में उन्हें पता चलता है कि लन्दन में 350 गज से कम जमीन पर मकान बनाया ही नहीं जा सकता है तो यह अनुबन्ध व्यर्थ होगा ।

(3) **व्यक्तिगत अधिकार सम्बन्धी गलती -** जब अनुबन्ध के पक्षकार व्यक्तिगत अधिकारों के सम्बन्ध में गलती करके अनुबन्ध करते हैं तो वह अनुबन्ध व्यर्थ होता है । उदाहरण के लिए, **कूपर बनाम फिब्स** के विवाद में वादी ने प्रतिवादीगण से जो उसके चाचा की पुत्रियाँ थी, मछलियाँ पकड़ने के अधिकार का पट्टा लिया । वादी का पहले से ही उस क्षेत्र में मछलियां पकड़ने के अधिकार में आजीवन हित था और प्रतिवादीगण को कोई अधिकार नहीं था, किन्तु वादी को अपने अधिकार का पता नहीं था । वादी ने पट्टे को रह करने के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया । न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह व्यक्तिगत अधिकार सम्बन्धी भूल थी और अनुबन्ध को निरस्त कर दिया ।

गलती का प्रभाव

अनुबन्ध की वैधता पर गलती के प्रभाव इस प्रकार हैं ।

(1) धारा 20 के अनुसार जब ठहराव के दोनों पक्षकार तथ्य सम्बन्धी गलती पर हैं तो अनुबन्ध व्यर्थ होता है ।

(2) धारा 21 के अनुसार जब अनुबन्ध के पक्षकार देश में प्रचलित राजनियम सम्बन्धी गलती के आधार पर अनुबन्ध करते हैं तो अनुबन्ध निरस्त नहीं कराया जा सकता है और विदेशी राजनियम या व्यक्तिगत अधिकार सम्बन्धी गलती होने पर अनुबन्ध व्यर्थ होगा ।

(3) धारा 22 के अनुसार अनुबन्ध के किसी एक पक्षकार के तथ्य सम्बन्धी गलती पर होने की दशा में अनुबन्ध व्यर्थनीय नहीं होता है, बशर्ते कि यह गलती दूसरे पक्षकार द्वारा कपट या मिथ्यावर्णन द्वारा न करायी गयी हो ।

4.11 सारांश

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत होते हैं तो उसे सहमति कहते हैं । एक वैध अनुबन्ध के लिए पक्षकारों की सहमति स्वतन्त्र होनी चाहिए । पक्षकारों की सहमति स्वतन्त्र तब मानी जाती है जब वह उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट मिथ्यावर्णन तथा गलती में से किसी भी तत्व से प्रेरित नहीं हो ।

जब अनुबन्ध का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करने के लिए कोई ऐसा कार्य करता है या करने की धमकी देता है जो भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित है तो इसको उत्पीड़न कहा जाता है । किसी पक्षकार की सम्पत्ति को अनुचित रुप से रोकना या रोकने की धमकी देना भी उत्पीड़न है । उत्पीड़न का प्रभाव यह होता है कि अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है और वह प्रत्यास्थापना की मांग भी कर सकता है । इसमें पीड़ित पक्षकार को ही यह सिद्ध करना होता है कि उसकी सहमति उत्पीड़न के आधार पर प्राप्त की गयी है ।

अनुचित प्रभाव स्वतन्त्र सहमति का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है । जब अनुबन्ध के पक्षकारों के बीच ऐसे सम्बन्ध हैं कि एक पक्षकार दूसरे की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में है और उसने इस स्थिति का लाभ उठा कर दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त की है तो अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित माना जाता है । इसका प्रभाव यह होता है कि अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है ।

कपट एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को धोखा देने के उद्देश्य से और अनुबन्ध हेतु सहमति प्राप्त करने के लिए निम्न में से किसी भी तरीके से किया जा सकता है - (1) असत्य बात को जानबूझकर सत्य बतलाना, (2) तथ्यों को सक्रिय रुप से छिपाना, (3) पूरा न करने के अभिप्राय से वचन देना, (4) कोई भी ऐसा कार्य करना जिसका उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना है, (5) कोई ऐसा कार्य या भूल करना जो राजनियम द्वारा कपटमय है । कपट का प्रभाव यह होता है कि अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है तथा पीड़ित पक्षकार क्षतिपूर्ति एवं प्रत्यास्थापना की मांग कर सकता है ।

जब सहमति मिथ्यावर्णन से प्रेरित होती है तो वह स्वतन्त्र नहीं कही जा सकती है । मिथ्यावर्णन का उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना नहीं होता है अपितु यह अज्ञानतावश होता है । मिथ्यावर्णन निश्चयात्मक कथन द्वारा, कर्तव्य भंग द्वारा तथा अज्ञानतावश ठहराव की विषयवस्तु के बारे में दूसरे पक्षकार को गलती के लिए प्रेरित करके किया जा सकता है । जब किसी पक्षकार की सहमति मिथ्यावर्णन के आधार पर प्राप्त की गयी है तो अनुबन्ध उसकी इच्छा पर व्यर्थनीय होता है और उसको अभिपुष्टि एवं प्रत्यास्थापना की मांग करने का अधिकार होता है ।

जब ठहराव के पक्षकार किसी महत्वपूर्ण तथ्य के बारे में गलती पर होते हैं तो अनुबन्ध व्यर्थ होता है । गलती या भूल दो प्रकार की होती है - (1) तथ्य सम्बन्धी गलती एवं

(2)राजनियम सम्बन्धी गलती । तथ्य सम्बन्धी गलती को दो भागों में बांटा जा सकता है - द्विपक्षीय गलती और एक पक्षीय गलती । द्विपक्षीय गलती विषयवस्तु एवं निष्पादन की असम्भवता के बारे में हो सकती है । विषयवस्तु सम्बन्धी गलती उसके अस्तित्व, स्वामित्व, पहचान, किस्म तथा मात्रा के सम्बन्ध में हो सकती है । राजनियम सम्बन्धी गलती तीन प्रकार की होती है - (1) देश के राजनियम सम्बन्धी गलती (2) विदेशी राजनियम सम्बन्धी गलती (3)व्यक्तिगत अधिकार सम्बन्धी गलती । अनुबन्ध की वैधता पर गलती का प्रभाव यह होता है कि तथ्य सम्बन्धी गलती एवं विदेशी राजनियम सम्बन्धी गलती की दशा में अनुबन्ध व्यर्थ होता है जबकि देश में प्रचलित राजनियम सम्बन्धी गलती की दशा में अनुबन्ध को निरस्त नहीं कराया जा सकता है ।

4.12 शब्दावली

सहमति : जब दो व्यक्ति एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत हों तो सहमति कहलाती है । स्वतन्त्र सहमति : सहमति जब उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, मिथ्यावर्णन तथा गलती से प्रेरित नहीं है तो स्वतन्त्र सहमति कहलाती है ।

उत्पीड़न : ठहराव के लिए सहमति प्राप्त करने के लिए एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ ऐसा कार्य करता है या कार्य करने की धमकी देता है जो भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित है, उत्पीड़न कहलाता है ।

अनुचित प्रभाव : जब दो व्यक्तियों के बीच ऐसे सम्बन्ध है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की इच्छा को प्रभावित कर सकता है और पहला व्यक्ति अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए दूसरे व्यक्ति की सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से अपनी इस स्थिति का प्रयोग करता है तो इसे अनुचित प्रभाव कहा जाता है ।

कपट : एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को धोखा देने के उद्देश्य से किसी असत्य बात को जानबूझकर सत्य बतलाता है, किसी तथ्य को छिपाता है, कपटमय काम करता है तथा ऐसी कोई भूल करता है जो कानून द्वारा कपटमय है तो इसे कपट कहते हैं ।

मिथ्यावर्णन : किसी असत्य बात को अज्ञानतावश सत्य बतलाना या अनजाने में कोई ऐसा कार्य करना या गलती करना जिससे दूसरे पक्षकार को हानि हो, तो इसे मिथ्यावर्णन कहते हैं ।

गलती : दो व्यक्ति किसी ठहराव की विषयवस्तु या उससे सम्बन्धित राजनियम के बारे में भूल करते हैं तो वह गलती है ।

4.13 स्वपरख प्रश्न

1. सहमति की परिभाषा दीजिए । सहमति कब स्वतन्त्र मानी जाती है? अनुबन्ध की वैधता पर इसका क्या प्रभाव पड़ता हैं?

2. "दो या दो से अधिक व्यक्ति सहमत तब कहे जाते हैं, जब वे एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत हों । " इस कथन का अर्थ उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए ।

3. निम्नलिखित में अन्तर बताइए -

(i) उत्पीड़न और अनुचित प्रभाव

(ii) कपट और मिथ्यावर्णन

4. तथ्य सम्बन्धी' गलती से आप क्या समझते हैं? अनुबन्ध की वैधता पर गलतियों का क्या प्रभाव पड़ता है?

5. "तथ्य सम्बन्धी मौन जो अनुबन्ध करने वाले पक्षकार की इच्छा को प्रभावित कर सकता है तब तक कपट नहीं माना जाता है, जब तक मामले की परिस्थितियों के अनुसार मौन रहने वाले व्यक्ति का बोलना कर्तव्य हो अथवा उसका मौन रहना स्वयं बोलने के बराबर हो । " इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा अनुबन्ध की वैधता पर कपट के प्रभाव बतलाइये ।

व्यावहारिक समस्याएँ

1. राम और श्याम दो व्यापारी एक अनुबन्ध करते हैं । राम को मूल्यों में परिवर्तन होने की गुप्त सूचना है जिसे यदि श्याम को बतला दिया जाये तो श्याम के अनुबन्ध करने की सहमति प्रभावित होती है । क्या राम यह सूचना श्याम को बतलाने के लिए बाध्य है? कारण सहित उत्तर दीजिए ।

2. मोहन कपटपूर्ण रुप रो सोहन को सूचित करता है कि उसका मकान रहन से मुक्त है । इस कथन के आधार पर सोहन उस मकान को खरीद लेता है । वास्तव में वह मकान रहन रखा हुआ है । सोहन के क्या अधिकार हैं?

3. प्रकाश, संदीप को एक घोड़ा नीलामी द्वारा बेचता है । प्रकाश जानता है कि घोड़ा अस्वस्थ है । प्रकाश, संदीप को घोड़े की अस्वस्थता के बारे में कुछ नहीं कहता है । क्या संदीप अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है ?

4. पंकज, संजय से एक घोड़ा खरीदने को सहमत हो जाता है । बाद में पता चलता है कि सौदा करते समय घोड़ा मर चुका था और दोनों पक्षकारों मे से किसी को भी इस तथ्य का पता नहीं था । पक्षकारों को सलाह दीजिए।

5. बदरी मैसर्स प्रदीप एण्ड कम्पनी, अजमेरी गेट, दिल्ली से बिजली का सामान खरीदना चाहता है । लिपिक ने गलती से यह क्रय आदेश उसी स्थान पर व्यवसाय करने वाली अन्य फर्म मैसर्स प्रदीप एण्ड सन्स को भेज दिया । प्रदीप एण्ड सन्स ने माल रेल द्वारा भेज दिया और बिल्टी बैंक को इस आदेश पर दी कि भुगतान करने पर बिल्टी बदरी को दे दी जाये । बदरी को जब पता लगा कि माल दूसरी फर्म ने भेजा है, बिल्टी छुड़ाने के लिए मना कर देता है । बदरी तथा प्रदीप एण्ड सन्स की वैधानिक स्थिति बतलाइए ।

इकाई- 5

उद्देश्य एवं प्रतिफल की वैधता तथा व्यर्थ ठहराव (Legality of Object and consideration and void agreements)

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 प्रतिफल का अर्थ एवं परिभाषा

5.4 प्रतिफल के लक्षण

5.5 अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य

5.6 प्रतिफल तथा उद्देश्य का आंशिक रुप से अवैध होना

5.7 "बिना प्रतिफल के ठहराव व्यर्थ होता है" इस नियम के अपवाद

5.8 स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित ठहराव

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11 स्वपरख प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य होंगे कि :

- ❖ प्रतिफल का अर्थ एवं परिभाषा स्पष्ट कर सकेंगे;
- ❖ प्रतिफल के आवश्यक लक्षणों की जानकारी दे सकेंगे;
- ❖ इस बात की जानकारी दे सकें कि कब प्रतिफल एवं उद्देश्य अवैधानिक होता है, और उसका क्या प्रभाव होता है,
- ❖ प्रतिफल एवं उद्देश्य के आशिक रुप से अवैध होने के बारे में समझा सकेंगे;
- ❖ यह बता सकें कि किन-किन ठहरावों को भारतीय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित किया गया है ।

5.2 प्रस्तावना

एक वैध अनुबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि ठहराव का उद्देश्य एवं प्रतिफल वैध होना चाहिए । प्रतिफल एवं उद्देश्य एक ही विषय के दो अर्थ हैं । एक वस्तु, धन या वचन एक पक्षकार के लिए प्रतिफल होता है, वही दूसरे पक्षकार के लिए उद्देश्य होता है । किसी ठहराव का प्रतिफल एवं उद्देश्य वैधानिक होने पर ही उसको राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सकता है । इस इकाई में प्रतिफल के अर्थ एवं उसके आवश्यक लक्षणों के बारे में बतलाया जायेगा । इस बात का विवेचन भी किया जायेगा कि कब और किन-किन परिस्थितियों में ठहराव का उद्देश्य एवं प्रतिफल अवैधानिक माना जाता है तथा ' प्रतिफल एवं उद्देश्य के आशिक रुप से अवैध होने का अनुबन्ध

की प्रवर्तनीयता पर क्या प्रभाव पड़ता है? "बिना प्रतिफल वाले ठहराव व्यर्थ होते हैं" परन्तु इस नियम के कुछ अपवाद हैं जिनका विवेचन इस इकाई में किया जायेगा । कुछ ठहरावों को भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित किया हुआ है, उनका अध्ययन भी आप इस इकाई में करेंगे ।

5.3 प्रतिफल का अर्थ एवं परिभाषा

प्रतिफल और उद्देश्य अलग-अलग पक्षकारों के दृष्टिकोणों से एक ही विषय के दो नाम है । जैसा कि हम जानते हैं कि एक अनुबन्ध में दो पक्षकार होते हैं और वे एक दूसरे को पारस्परिक वचन देते हैं । इस प्रकार जो वस्तु एक पक्षकार के दृष्टिकोण से वचन का प्रतिफल होता है, वही दूसरे पक्षकार के दृष्टिकोण से वचन का उद्देश्य होता है । उदाहरण के लिए, राम अपनी साइकिल 1300 रुपये में श्याम को बेचने का अनुबन्ध करता है । यहां राम द्वारा अपनी साइकिल की सुपुर्दगी देने का वचन दिया जाता है और श्याम द्वारा 1300 रुपये का भुगतान करने का वचन दिया जाता है । ये पारस्परिक वचन हैं । साइकिल की बिक्री राम के दृष्टिकोण से अनुबन्ध का उद्देश्य है और श्याम के दृष्टिकोण से प्रतिफल है । इसी प्रकार 1300 रुपये का भुगतान राम के दृष्टिकोण से प्रतिफल है तथा श्याम के दृष्टिकोण से उद्देश्य है ।

साधारण शब्दों में प्रतिफल से आशय उस मूल्य से होता है जो कि वचनदाता के वचन के बदले वचनग्रहीता द्वारा दिया जाता है । अनुबन्ध के दोनों ही पक्षकार एक दूसरे को कुछ देने का वचन देते हैं । इस प्रकार प्रतिफल 'कुछ के बदले कुछ' है ।

क्यूरी बनाम मीसा के विवाद में **न्यायाधीश लश** के अनुसार 'प्रतिफल की मुख्य परिभाषाएं इस प्रकार है । - "वैधानिक दृष्टि से मूल्यवान प्रतिफल वह है जिसमें एक पक्षकार को किसी प्रकार का अधिकार, लाभ या हित प्राप्त होता है तथा दूसरे पक्षकार को कोई विरती अहित, हानि, दायित्व अथवा क्षति होती है । "

न्यायाधीश पैटर्सन के अनुसार, "प्रतिफल किसी ऐसे कार्य को कहते हैं जिसका वैधानिक दृष्टि से महत्व होता है । यह वादी को कुछ लाभ अथवा प्रतिवादी को कुछ हानि पहुँचाने वाला हो सकता है । "

पोलक के अनुसार, "प्रतिफल वह मूल्य है जिसके बदले दूसरे का वचन खरीदा जाता है और इस मूल्य के बदले प्राप्त वचन को प्रवर्तित कराया जा सकता है । "

ब्लेकस्टोन के अनुसार, "प्रतिफल अनुबन्ध करने वाले एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को दिये जाने वाला पारितोषिक है । "

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (d) के अनुसार, ' 'जब वचनदाता की इच्छा पर वचनग्रहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति ने - (1) कोई कार्य किया है अथवा करने से विरत रहा है, अथवा (2) कोई कार्य करता है अथवा कार्य करने विरत रहता है, अथवा (3) कोई कार्य करने अथवा विरत रहने का वचन देता है तो ऐसा कार्य या विरति या वचन उस वचन के लिए प्रतिफल कहलाता है ।"

5.4 प्रतिफल के लक्षण

विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करने से प्रतिफल के निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं-

(1) **प्रतिफल कोई कार्य या विरति या वचन हो सकता है -** प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर वचनग्रहीता द्वारा किया गया कोई कार्य या कार्य करने से अलग रहना या कार्य करने अथवा न करने के बारे में दिया गया वचन हो सकता है । यह प्रतिफल सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रकार का हो सकता है । जब वचनग्रहीता कोई कार्य करता है तो वह सकारात्मक प्रतिफल होता है और वचनग्रहीता कोई कार्य करने से अलग रहता है तो यह नकारात्मक प्रतिफल कहलाता है ।

(2) **प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर होना चाहिए -** प्रतिफल तभी माना जाता है जब वह वचनदाता या प्रस्तावक की इच्छा पर दिया गया है । स्वेच्छा से किया गया कोई भी काम अथवा तीसरे पक्षकार की इच्छा पर किया गया काम वैधानिक दृष्टि से प्रतिफल नहीं होता है । इस सम्बन्ध में **दुर्गाप्रसाद बनाम बलदेव** का विवाद महत्वपूर्ण है । इरा विवाद में जिलाधीश के कहने पर वादी ने बाजार का निर्माण कराया । प्रतिवादी बलदेव ने दुर्गाप्रसाद को वचन दिया कि उस बाजार में ऐजेन्सी द्वारा होने वाली बिक्री पर उसको कमीशन देगा । दुर्गाप्रसाद ने कमीशन प्राप्त करने के लिए बलदेव पर वाद प्रस्तुत किया तो न्यायालय ने निर्णय दिया कि वादी कमीशन प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है और अनुबन्ध प्रतिफल के अभाव में व्यर्थ है, क्योंकि बाजार प्रतिवादी की इच्छा पर नहीं बनाया गया था ।

(3) **प्रतिफल वचनग्रहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से हो सकता है -** प्रतिफल के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह वचनग्रहीता द्वारा ही दिया जाये, बल्कि वचनग्रहीता की ओर से किसी भी व्यक्ति द्वारा हो सकता है । इंग्लैण्ड में तो प्रतिफल स्वयं वचनग्रहीता द्वारा दिया जाना चाहिए, परन्तु भारत में वचनग्रहीता द्वारा ही प्रतिफल दिया जाना आवश्यक नहीं है । **रचनात्मक प्रतिफल का सिद्धान्त** इस मान्यता पर आधारित है कि, जब वचनग्रहीता की ओर से किसी भी अन्य व्यक्ति ने प्रतिफल दिया है और प्रतिफल वचनदाता की इच्छानुसार है तो प्रतिफल वैध माना जायेगा । उदाहरण के लिए, **चिन्नाया बनाम रमैय्या** के विवाद में एक दानपत्र द्वारा एक पिता ने अपनी सारी सम्पत्ति अपनी पुत्री रमैय्या के नाम इस शर्त पर कर दी कि वह उसके भाई चिन्नाया को एक निश्चित धनराशि प्रतिवर्ष देती रहेगी । उसी दिन रमैय्या ने भी इस शर्त को लिखित रुप से स्वीकार कर लिया । रमैय्या द्वारा वार्षिक रकम देना बन्द कर देने के पश्चात् चिन्नाया ने वाद प्रस्तुत किया । प्रतिवादी ने यह तर्क दिया कि वादी की ओर से कोई प्रतिफल न दिये जाने के कारण ठहराव व्यर्थ है । न्यायालय ने वादी के पक्ष में निर्णय देते हुए कहा कि वादी की ओर से उसके भाई द्वारा प्रतिफल दिया जा चुका है अत: वह रकम पाने का अधिकारी है ।

(4) **कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिए -** अनुबन्ध की वैधता के लिए कुछ प्रतिफल होना आवश्यक होता है, प्रतिफल का पर्याप्त होना आवश्यक नहीं है । जब अनुबन्ध के पक्षकारों की सहमति पूर्ण रुप से स्वतन्त्र है तो कोई अनुबन्ध केवल इसलिए व्यर्थ नहीं हो सकता कि प्रतिफल अपर्याप्त है । यद्यपि प्रतिफल का पर्याप्त होना आवश्यक नहीं है, किन्तु फिर भी वैधानिक दृष्टि से प्रतिफल का कुछ मूल्य अवश्य होना चाहिए, अर्थात प्रतिफल वास्तविक होना चाहिए,

काल्पनिक नहीं । उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति अपनी 2,25,000 रुपये की कार दूसरे व्यक्ति को 1,15,000 रुपये में बेचने को तैयार है तो अनुबन्ध व्यर्थ नहीं होगा । परन्तु जब वही कार मात्र 25000 रुपये में बेची जाती है तो इस बात का सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि कहीं पक्षकार की सहमति स्वतन्त्रता का अभाव तो नहीं है । इसके साथ ही कम प्रतिफल के कारण दूसरे पक्षकार को यह कहने का अवसर भी सहज ही मिल जाता है कि उसकी सहमति स्वतन्त्र नहीं थी । अत: प्रतिफल व्यावहारिक दृष्टि से पर्याप्त होना चाहिए ।

(5) **प्रतिफल भूत, वर्तमान तथा भावी हो सकता है -** भारतीय - अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार प्रतिफल भूतकालीन, वर्तमान तथा भावी किसी भी प्रकार को हो सकता है ।

(i) **भूतकालीन प्रतिफल -** वह कार्य या कार्य से अलग रहना, जो भूतकाल में ही हो चुका है तथा जिसका बिना वैधानिक उत्तरदायित्व पूरा किये ही किसी व्यक्ति को लाभ पहुँच चुका है भूतकालीन प्रतिफल कहलाता है । उदाहरण के लिए, सोहन ने मोहन को पाँच वर्ष पूर्व दो हजार रुपये उधार दिये थे । इस अवधि वर्जित ऋण को चुकाने के लिए अब मोहन वचन देता है तो मोहन के लिए यह भूतकालीन प्रतिफल होगा ।

(ii) **वर्तमान प्रतिफल -** जब कोई वचन और उसका प्रतिफल साथ-साथ ही पूरे किये जाने हों तो वर्तमान प्रतिफल कहलाता है । उदाहरण के लिए, प्रदीप, सुरेश को अपनी साइकिल 1200 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है जिसको सुरेश स्वीकार कर लेता है । प्रदीप साइकिल देता है और सुरेश 1200 रुपये का भुगतान करता है । यह वर्तमान प्रतिफल है ।

(iii) **भावी प्रतिफल -** जब कोई व्यक्ति वर्तमान अनुबन्ध के लिए भविष्य में कोई कार्य करने अथवा कार्य करने से अलग रहने का वचन देता है तो ऐसा वचन अनुबन्ध के लिए भावी प्रतिफल कहलाता है । उदाहरण के लिए, राकेश, महेश का मकान खरीदने का अनुबन्ध 10 जून को करता है । दोनों व्यक्ति यह निश्चित करते हैं कि 15 जुलाई को महेश मकान की रजिस्ट्री करवायेगा और राकेश भुगतान करेगा । इस अनुबन्ध में दोनों पक्षकारों द्वारा दिये गये वचन एक दूसरे के वचनों के भावी प्रतिफल हैं ।

(6) **प्रतिफल वैधानिक होना चाहिए -** प्रतिफल का वैधानिक होना आवश्यक होता है । प्रतिफल अवैधानिक जैसे कपटमय, लोकनीति के विरुद्ध, राजनियम की व्यवस्थाओं के विपरीत तथा दूसरे व्यक्ति के शरीर और सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने वाला आदि नहीं होना चाहिए । यदि प्रतिफल अवैधानिक है तो ठहराव व्यर्थ होगा । उदाहरण के लिए, 'अ''ब' को 'स' के घर में आप लगाने पर 2000 रुपये देने का वचन देता है तो यह प्रतिफल अवैध है और ठहराव व्यर्थ होगा ।

(7) **प्रत्येक अनुबन्ध के लिए पृथक प्रतिफल होना चाहिए -** जब एक ही पक्षकार के साथ दो या दो से अधिक अनुबन्ध किये जाते हैं तो उनके लिए अलग-अलग प्रतिफल होना आवश्यक है । चूंकि अनुबन्ध का निर्माण पारस्परिक वचनों से होता है और पारस्परिक वचन एक दूसरे का प्रतिफल होते हैं । अत: अलग-अलग वस्तुओं में अलग-अलग प्रतिफल ही होगा ।

(8) **प्रतिफल में स्वयं वचनदाता को लाभ होना आवश्यक नहीं है -** वचनग्रहीता द्वारा किये कार्य या कार्य से विरत रहने से स्वयं वचनदाता को लाभ होना आवश्यक नहीं है। वचनदाता की इच्छा पर वचनग्रहीता द्वारा किये गये कार्य से स्वयं वचनदाता को लाभ नहीं होता है अपितु

किसी अन्य व्यक्ति को वचनग्रहीता द्वारा प्रतिफल दिया गया है तो भी प्रतिफल वैध होगा । इसको 'प्रतिज्ञा की विबाध्यता के सिद्धान्त' के नाम से भी जाना जाता है।

5.5 अवैधानिक प्रतिफल तथा उद्देश्य

वैध अनुबन्ध के लिए प्रतिफल एवं उद्देश्य का वैधानिक होना आवश्यक है । जिस ठहराव में प्रतिफल एवं उद्देश्य अवैध होता है, वह व्यर्थ होता है । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 23 के अनुसार, "प्रत्येक ठहराव में निम्नलिखित अवस्थाओं को छोड़कर प्रतिफल तथा उद्देश्य वैधानिक माना जाता है -

(1) यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित है; अथवा

(2) यदि वह इस प्रकार का है कि अग्र अनुमति दे दी जाए तो वह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निकल कर देगा; अथवा

(3) यदि वह कपटमय है; अथवा

(4) यदि उससे किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर और सम्पत्ति को नुकसान पहुँचता है; अथवा

(5) यदि न्यायालय उसको अनैतिक अथवा लोकनीति के विरुद्ध समझता है । "

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन सब दशाओं में तो प्रतिफल और उद्देश्य अवैधानिक होगा । इन सबका विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार है ।

(1) **यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित है -** जब किसी अनुबन्ध के वचन अथवा प्रतिफल अथवा उद्देश्य देश में प्रचलित किसी राजनियम द्वारा वर्जित हैं तो यह प्रतिफल अवैध माना जायेगा और अनुबन्ध व्यर्थ होता है । राजनियम द्वारा कुछ कार्यों पर रोक लगा दी जाती है और जब पक्षकार इन प्रतिबन्धित कार्यों को भी करते हैं तो उस ठहराव को राजनियम द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता है । उदाहरण के लिए, अ 'ब' को 'स' के बच्चे का अपहरण करने पर 50,000 रुपये देने का वचन देता है । यहां पर इस ठहराव का उद्देश्य और प्रतिफल अवैधानिक माना जायेगा क्योंकि किसी का अपहरण करना राजनियम द्वारा वर्जित है ।

(2) **यदि वह इस प्रकार का है कि अगर अनुमति दी जाए तो वह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल कर देगा -** यदि किसी ठहराव का उद्देश्य या प्रतिफल ऐसा है कि अगर उसको पूरा करने की अनुमति दी जाए तो वह देश में प्रचलित किसी राजनियम की व्यवस्थाओं का उल्लंघन कर देगा । उदाहरण के लिए, राम की जमीन लगान की बकाया रकम न चुकाने के कारण किसी अधिनियम के अन्तर्गत नीलाम की जाती है और अधिनियम द्वारा सम्पत्ति के वास्तविक स्वामी अर्थात त्रुटि करने वाले पर बोली लगाये जाने पर रोक लगायी जाती है । श्याम, राम के साथ एक गुप्त समझौता करके उस भूमि का क्रेता बन जाता है और उस जमीन का नीलामी में चुकाया गया मूल्य प्राप्त करके जमीन राम को हस्तान्तरित करने का ठहराव करता है। यह ठहराव व्यर्थ है, क्योंकि यह ठहराव त्रुटि करने वाले व्यक्ति के क्रय को प्रभावित करने वाला है और इस प्रकार अधिनियम के उद्देश्य को निकल करने वाला है ।

(3) **यदि वह कपटमय है -** जब किसी अनुबन्ध का उद्देश्य दूसरे पक्षकार अथवा किसी व्यक्ति को जानबूझकर धोखा देना है तो वह अनुबन्ध व्यर्थ होता है । ऋणदाताओं को धोखा देने के उद्देश्य से सम्पत्ति के अनुचित हस्तान्तरण करने के ठहराव व्यर्थ होते हैं । उदाहरण के लिए,

राम एक सम्पत्ति के मालिक का एजेण्ट है । वह अपने मालिक की जानकारी के बिना ही रुपया लेकर उसकी जमीन का पट्टा सोहन को देने का ठहराव करता है । यहाँ राम और सोहन के बीच का ठहराव व्यर्थ है क्योंकि राम द्वारा अपने नियोक्ता के प्रति "छिपाव द्वारा कपट" है ।

(4) **यदि उससे किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर और सम्पत्ति को नुकसान पहुँचता है -** जब पक्षकारों के बीच ऐसा ठहराव होता है, जिससे किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर और सम्पत्ति को नुकसान पहुँचने की सम्भावना है तो वह ठहराव व्यर्थ होता है । उदाहरण के लिए, सुरेश, एक समाचार पत्र के प्रकाशक के साथ महेश के विरुद्ध कोई आपत्तिजनक समाचार छापने पर निश्चित धनराशि देने का ठहराव करता है । यह ठहराव व्यर्थ है क्योंकि इससे महेश की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचता है । इसी प्रकार यदि प्रकाश, राकेश के मकान में आग लगाने पर सुरेश को 50,000 रुपये देने का वचन देता है । यह ठहराव भी व्यर्थ है क्योंकि इससे राकेश की सम्पत्ति को नुकसान पहुँचता है । इसके लिए अग्रिम दी गयी धनराशि भी प्राप्त नहीं की जा सकती है ।

(5) **यदि न्यायालय उसको अनैतिक अथवा लोकनीति के विरुद्ध समझता है -** ऐसे ठहराव जिनसे लोगों के बीच अनैतिक सम्बन्धों को प्रोत्साहन मिलता है, अनैतिक ठहराव कहलाते हैं और पूर्णतः व्यर्थ होते हैं । उदाहरण के लिए, यदि कोई औरत पर-पुरुष से अपने शरीर का सौदा करती है तो यह अनैतिक है । यहां विशेष महत्वपूर्ण बात यह है कि अनैतिक ठहराव के समानान्तर ठहराव भी व्यर्थ होते हैं । उदाहरण के लिए, प्रकाश अपना मकान एक वैश्या को व्यभिचार का धन्धा चलाने के लिए किराये पर देता है तो प्रकाश मकान का किराया वसूल नहीं कर सकता है । भारत के सर्वोच्च न्यायालय तथा अनेक उच्च न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों में ग्रह स्पष्ट किया गया है कि वैश्यावृत्ति को बढ़ावा देने वाले सभी ठहराव जैसे मकान किराये पर देना, वैश्या को अपना कारोबार चलाने के लिए ऋण देना तथा भावी अवैध सहवास के लिए धन देने का ठहराव तथा तलाक देने के लिए प्रोत्साहित करके शादी करने के ठहराव अनैतिक और व्यर्थ होते हैं । भूतकालीन सहवास के लिए प्रतिफलस्वरुप धन या सम्पत्ति देने का ठहराव वैध होता है ।

लोकनीति के विरुद्ध ठहराव से आशय ऐसे ठहराव से होता है जिसका. उद्देश्य देश या जनसामान्य का अहित करना होता है । लोकनीति एक व्यापक और विस्तृत शब्द है जिसमें आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सभी प्रकार के मामले सम्मिलित किये जा सकते हैं । राजनियम में इसकी कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की गयी है कि कौन-कौन से ठहराव लोकनीति के विरुद्ध हैं । किसी भी ठहराव को लोकनीति के विरुद्ध मानने का आधारभूत सिद्धान्त यही है कि उससे समाज या देश का अहित होने की सम्भावना है । लोकनीति के विरुद्ध ठहरावों के प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं ।

(i) **विदेशी शत्रु के साथ व्यापार करने का ठहराव -** जिस देश के साथ हमारा युद्ध चल रहा है अथवा जिसको भारत सरकार द्वारा शत्रु राष्ट्र घोषित कर दिया गया है, उसके नागरिक के साथ कोई भी भारतीय नागरिक व्यापार करने का ठहराव सरकार की पूर्वानुमति लिए बिना नहीं कर सकता है । शत्रु देश के व्यक्ति के साथ व्यापार करने का ठहराव लोकनीति के विरुद्ध होता है और व्यर्थ होता है ।

(ii) **अनुचित रुप से मुकदमेंबाजी को बढ़ावा देने वाला ठहराव -** जब किसी ठहराव का उद्देश्य अनुचित रुप से मुकदमेंबाजी को प्रोत्साहन देना है तो यह लोकनीति के विरुद्ध माना जाता है ।

मुकदमेंबाजी को बढ़ावा देने वाले ठहरावों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - अ) वाद पोषण (Maintenance) तथा ब) वाद क्रय (Champerty)

अ) वाद पोषण (Maintenance) - जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को ऐसे मुकदमें को चलाने या मुकदमें में रक्षा करने के लिए आर्थिक सहायता देने का वचन देता है जिसमें उसका स्वयं का कोई हित नहीं होता है तो यह वाद पोषण या मेन्टीनेन्स का ठहराव कहलाता है ।

ब) वाद क्रय (Champerty) - जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को मुकदमें द्वारा अपनी सम्पत्ति वापिस प्राप्त करने के लिए आर्थिक सहायता देने तथा प्रतिफल के रुप में उस सम्पत्ति में से एक निश्चित हिस्सा प्राप्त करने का ठहराव करता है तो यह वाद क्रय या चैम्पर्टी का ठहराव कहलाता है । इंग्लैण्ड में वाद पोषण तथा वाद क्रय के ठहराव अवैध और व्यर्थ होते हैं परन्तु भारत में ऐसे ठहराव को तब तक व्यर्थ नहीं माना जा सकता है, जब तक कि उसका उद्देश्य अनुचित रुप से मुकदमेंबाजी को बढ़ावा देने वाला न हो । यदि वह ठहराव न्याय, समता तथा विवेक के सिद्धान्त पर आधारित है तथा उचित प्रतिफल के बदले है तो लोकनीति के विरुद्ध नहीं माना जायेगा और राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होगा ।

(iii) **दण्डनीय अभियोगों को दबाने के ठहराव -** ऐसे ठहराव जो दण्डनीय अपराधों को दबाने के लिए किये जाते हैं अथवा अपराधी को सजा से बचाने के लिए किये जाते हैं, लोकनीति के विरुद्ध माने जाते हैं और व्यर्थ होते हैं । एक व्यक्ति का यह नैतिक कर्तव्य है कि अपराधी को सजा दिलाने में न्यायालय की सहायता करे, ताकि अपराधी को प्रोत्साहन न मिले । ऐसे ठहराव जो दण्डनीय अपराधों को दबाने के लिए किये जाते हैं अथवा अपराधी को सजा से बचाने के लिए किये जाते हैं, लोकनीति के विरुद्ध होते हैं और व्यर्थ होते हैं । उदाहरण के लिए, राम यह जानता है कि मोहन ने सोहन की हत्या की है । यदि वह पाँच लाख रुपये के बदले यह बात किसी को भी न बताने का ठहराव मोहन के साथ करता है तो यह ठहराव व्यर्थ है । इसी प्रकार संजय, विजय पर चोरी के लिए चलाया गया वाद वापिस लेने का वचन देता है और विजय चोरी का सामान वापिस लौटा देने का वचन देता है । यह ठहराव भी व्यर्थ है ।

(iv) **दलाली लेकर विवाह कराने के ठहराव -** विवाह एक पवित्र सामाजिक बन्धन है जिसमें विवाह करने वाले पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति आवश्यक होती है । यदि कोई व्यक्ति दो पक्षकारों में विवाह कराने के बदले दलाली के रुप में कोई धनराशि प्राप्त करने का ठहराव करता है तो यह लोकनीति के विरुद्ध होगा और व्यर्थ होगा । उदाहरण के लिए, प्रकाश अपनी लड़की सीमा की शादी पंकज के साथ करने का ठहराव करता है और बदले में पंकज प्रकाश को पाँच लाख रुपये देने का वचन देता है । शादी के बाद पंकज रुपये देने से इन्कार कर देता है तो प्रकाश उस पर वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है ।

(v) **सरकारी नौकरी दिलाने के ठहराव -** रिश्वत या धन लेकर सरकारी नौकरी दिलाने का ठहराव लोकनीति के विरुद्ध होने के कारण व्यर्थ होता है । उदाहरण के लिए, प्रदीप, रवि से एक लाख रुपये लेकर उसको लेखापाल की नौकरी दिलाने का ठहराव करता है । यह ठहराव व्यर्थ है ।

(vi) **'लिमिटेशन अधिनियम' को निष्फल करने वाले ठहराव -** भारतीय लिमिटेशन अधिनियम द्वारा विभिन्न प्रकार के अनुबन्धों को प्रवर्तित कराने के लिए जो अवधि निश्चित की गयी है, उसमें पक्षकारों द्वारा परिवर्तन नहीं किया जा सकता है । यदि किसी ठहराव द्वारा लिमिटेशन

अधिनियम की अवधि में परिवर्तन किया जाता है तो वह व्यर्थ होगा । उदाहरण के लिए, सुरेश, महेश से 50,000 रुपये ऋण लेता है और यह ठहराव करता है कि महेश पाँच वर्ष -तक ऋण न चुकाने पर वाद प्रस्तुत कर सकेगा । यह ठहराव व्यर्थ है क्योंकि लिमिटेशन अधिनियम द्वारा निर्धारित अवधि केवल तीन वर्ष ही है ।

(vii) **पैतृक अधिकारों में रुकावट डालने वाले ठहराव -** प्रत्येक माता-पिता को अपने अवयस्क बच्चों को अपने पास रखने तथा उनका लालन-पालन करने का अधिकार होता है । इस अधिकार का क्रय-विक्रय नहीं किया जा सकता है । यदि किसी ठहराव के अधीन माता-पिता को इस अधिकार से वंचित किया जाता है तो वह लोकनीति के विरुद्ध है । इस सम्बन्ध में **गिंदू नारायणीश बनाम श्रीमती ऐनी बेसेन्ट** का विवाद महत्वपूर्ण है । इस विवाद में गिंदू नारायणीश ने अपने दो अवयस्क बच्चों के संरक्षण का अधिकार ऐनी बेसेन्ट को दिया और इस ठहराव को भविष्य में न तोड़ने का वचन भी दिया । बाद में पिता द्वारा बच्चों को वापिस प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत करने पर बच्चे गिंदू नारायणीश को वापिस दिलाये गये ।

(viii) **न्याय विधि में हस्तक्षेप करने वाले ठहराव -** ऐसे ठहराव जो न्यायाधीशों पर अनुचित प्रभाव डालकर न्याय प्रक्रिया में हस्तक्षेप के लिए किये जाते हैं, लोकनीति के विरुद्ध माने जाते हैं । न्यायाधीश को रिश्वत देकर अपने पक्ष में निर्णय कराने का ठहराव, प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा न्यायाधीश पर दबाव डालने का ठहराव और धन देकर गलत गवाही दिलाने का ठहराव आदि व्यर्थ हैं ।

(ix) **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर रोक लगाने के ठहराव -** भारतवर्ष में वैयक्तिक स्वतन्त्रता एक संविधान प्रदत्त अधिकार है जिस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाने का ठहराव लोकनीति के विरुद्ध होता है । उदाहरण के लिए, एक ऋणदाता द्वारा ऋणी के साथ यह ठहराव करना कि जब तक उसका ऋण नहीं चुकाया जाता है, उसी के यहां कम मजदूरी पर कार्य करता रहेगा, लोकनीति के विरुद्ध है ।

(x) **पदवी अथवा उपाधि के विक्रय का ठहराव -** विश्वविद्यालय अथवा शिक्षण संस्थाओं द्वारा अथवा सरकार द्वारा किसी व्यक्ति को जो भी पदवी या उपाधि दी जाती है, उसकी व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर दी जाती है । कोई भी ऐसा ठहराव जो पदवी अथवा उपाधि के विक्रय के लिए किया जाता है, लोकनीति के विरुद्ध माना जाता है । उदाहरण के लिए, एक विश्वविद्यालय का कुलपति किसी मैट्रिक पास व्यक्ति को पी.एच.डी. की डिग्री पाँच हजार रुपये के बदले देने का ठहराव करता है तो यह व्यर्थ है ।

5.6 प्रतिफल तथा उद्देश्य का आंशिक रुप से अवैध होना

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 24 के अनुसार, "यदि किसी ठहराव का उद्देश्य अथवा प्रतिफल आंशिक रुप से अवैध है तो वह ठहराव व्यर्थ होगा । " यहां यह स्पष्ट करना उल्लेखनीय है कि यदि ठहराव का प्रतिफल अथवा उद्देश्य अंशत: वैध है और अंशत: अवैध है और दोनों को अलग-अलग किया जाना सम्भव है तो प्रतिफल अथवा उद्देश्य का वह भाग जो वैध है राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होगा और जो भाग अवैध है, वह प्रवर्तनीय नहीं होगा । इसके विपरीत अगर प्रतिफल अथवा उद्देश्य के वैध और अवैध भाग को अलग-अलग करना सम्भव नहीं है तो

सम्पूर्ण ठहराव ही व्यर्थ होगा । उदाहरण के लिए, राम के पास भांग का ठेका है जिसको चलाने के लिए प्रदीप को 2000 रुपये प्रति माह की नौकरी पर रखता है । इसके अतिरिक्त प्रदीप को अवैध रुप से अफीम बेचने के लिए 10 प्रतिशत कमीशन देना भी तय होता है । इस ठहराव में भांग बेचने के लिए 2000 रुपये देने का अंश वैध है और अफीम बेचने के लिए 10 प्रतिशत कमीशन देना अवैध है जिसको प्राप्त नहीं किया जा सकता है ।

5.7 "बिना प्रतिफल का ठहराव व्यर्थ होता है" इस नियम के अपवाद

एक अनुबन्ध की वैधता के लिए प्रतिफल का होना आवश्यक होता है । बिना प्रतिफल का ठहराव सामान्यतया व्यर्थ होता है । **एन्सन (Anson)** के अनुसार, "प्रत्येक सामान्य अनुबन्ध के लिए प्रतिफल आवश्यक है । प्रतिफल के अभाव में ठहराव अप्रवर्तनीय रहता है । " परन्तु इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं अर्थात कतिपय परिस्थितियों में प्रतिफल के अभाव में भी ठहराव वैध होता है और राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है । निम्नलिखित परिस्थितियों में बिना प्रतिफल के ठहराव वैध होते हैं ।

(1) **स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण दिया गया वचन -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25(1) के अनुसार जब पक्षकारों के बीच निकट सम्बन्ध के कारण उत्पन्न स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह से प्रेरित होकर एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को बिना प्रतिफल के कुछ वस्तु या धन देने का ठहराव करता है तो यह वैध अनुबन्ध होगा, किन्तु इस प्रकार के ठहराव का लिखित एवं रजिस्टर्ड होना आवश्यक है । इस प्रकार के अनुबन्ध में तीन बातों का समावेश होना चाहिए -

(i) पक्षकारों के मध्य निकटतम सम्बन्ध हो

(ii) ठहराव स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह से प्रेरित हो तथा

(iii) ठहराव लिखित एवं रजिस्टर्ड हो ।

यहां पर यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि "ठहराव निकट सम्बन्ध एवं स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण उत्पत्र हो" । माता-पिता का अपनी सन्तान के प्रति, पति-पत्नी, भाई-भाई तथा भाई-बहिन का प्रेम स्वाभाविक होता है । एक प्रेमी का अपनी रखैल या प्रेमिका के साथ स्वाभाविक प्रेम नहीं माना जा सकता है । उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति अपने पुत्र को बिना प्रतिफल के अपना एक मकान स्वाभाविक प्रेम से प्रेरित होकर देने का वचन देता है और ठहराव को लिखित रुप में रजिस्टर्ड करा देता है तो यह ठहराव वैध है और राजनियम द्वारा प्रवर्तित कराया जा सकता है ।

(2) **स्वेच्छा से किये गये कार्य की क्षतिपूर्ति के लिए दिया गया वचन -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25(2) के अनुसार, जब ठहराव ऐसे व्यक्ति की पूर्ण या आंशिक क्षतिपूर्ति के लिए किया गया है, जिसने पहले ही वचनदाता के लिए स्वेच्छा से कोई कार्य किया है अथवा ऐसा कोई कार्य क्रिया है, जिसको करने के लिए स्वयं वचनदाता वैधानिक रुप से बाध्य था । इस प्रकार के अनुबन्ध में निम्न बातों का होना आवश्यक होता है -

(i) जिस कार्य की आशिक या पूर्ण क्षतिपूर्ति का वचन दिया जा रहा है, वह वचनदाता के लिए स्वेच्छा से किया गया है । इसके अन्तर्गत वे कार्य भी आते हैं जिनको करने के लिए वचनदाता वैधानिक रुप से बाध्य था ।

(ii) वह कार्य वचनदाता के लिए किया गया हो ।

(iii) जिस समय कार्य किया गया है, उस समय वचनदाता जीवित होना चाहिए और उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए ।

उदाहरण के लिए, राम को श्याम का कुछ सामान रास्ते में पड़ा मिलता है जिसको वह श्याम को लौटा देता है । श्याम प्रसन्न होकर राम को 100 रुपये इनाम देने का वचन देता हैं यह अनुबन्ध वैध है ।

(3) **अवधि वर्जित ऋण के भुगतान का वचन -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25(3) के अनुसार, जब ऋणी किसी अवधि वर्जित ऋण का पूर्ण या आंशिक भुगतान करने का लिखित एवं हस्ताक्षरित वचन ऋणदाता को देता है तो ऐसा ठहराव बिना प्रतिफल के भी वैध होता है । इस प्रकार के ठहराव में निम्न बातों का समावेश होता है - (1) ठहराव 'लिमिटेशन अधिनियम' के अधीन अवधि वर्जित ऋण के पूर्ण अथवा आंशिक भुगतान के लिए हो, तथा (2) ठहराव लिखित हो और उस पर स्वयं वचनदाता या उसके एजेण्ट के हस्ताक्षर होने चाहिए । उदाहरण के लिए, संजय ने विजय से 2000 रुपये का ऋण लिया था जो अवधि वर्जित हो गया । बाद में विजय को यह धनराशि चुकाने के लिए एक प्रतिज्ञा पत्र हस्ताक्षर करके देता है । यह ठहराव वैध है ।

(4) **एजेन्सी का अनुबन्ध -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 185 के अनुसार ऐजेन्सी स्थापित करने के अनुबन्ध बिना प्रतिफल के भी वैध होते हैं । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ऐजेन्सी की. स्थापना के लिए प्रतिफल होना आवश्यक नहीं होता है ।

(5) **निःशुल्क निक्षेप -** निक्षेप दो प्रकार का होता है - सशुल्क और निःशुल्क । निःशुल्क निक्षेप में किसी प्रकार का प्रतिफल नहीं होता है फिर भी अनुबन्ध के पक्षकार वैधानिक रुप से अनुबन्ध को लागू करा सकते हैं । उदाहरण के लिए, राम अपनी कार दो दिन के लिए मोहन को बिना किराया लिए देने का वचन देता है । निश्चित दिन वह कार देने से इन्कार कर देता है जिसके कारण मोहन को नुकसान उठाना पड़ा । मोहन यह क्षतिपूर्ति राम से करा सकता है ।

(6) **दान एवं भेंट -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 की व्याख्या के अनुसार यदि एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को दान या भेंट में कोई सामान या धनराशि देने का वचन दिया गया है तो प्रतिफल के अभाव में यह ठहराव व्यर्थ होगा, परन्तु दान मिलने की सम्भावना में दानगृहीता ने यदि धनराशि इस प्रकार से खर्च की है कि दानदाता द्वारा इन्कार हो जाने से उसको क्षति उठानी पड़ती है तो दान या भेंट की राशि प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, राम एक मन्दिर की प्रबन्ध समिति को 51000 रुपये का चन्दा देने का वचन देता है । इस चन्दे की राशि की सम्भावना में मन्दिर में कोई खर्चा भी कर दिया जाता है । खर्चे के भुगतान के अभाव में मन्दिर प्रबन्ध समिति को क्षतिपूर्ति का भुगतान करना पड़ता है तो यह ठहराव राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय है ।

5.8 स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित ठहराव

वैध अनुबन्ध का एक लक्षण यह भी है कि वह ठहराव स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित नहीं होना चाहिए । स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित ठहराव से आशय ऐसे ठहराव से है जो अनुबन्ध

अधिनियम द्वारा प्रारम्भ में ही स्पष्टतया व्यर्थ घोषित किया हुआ हो । इस प्रकार के ठहरावों को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित ठहराव स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित हैं -

(1) **अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये ठहराव -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार, अवयस्क, अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति तथा किसी राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित व्यक्ति में अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं होती है और उनके साथ किये गये ठहराव व्यर्थ होते हैं ।

(2) **तथ्य सम्बन्धी गलती पर आधारित ठहराव -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 20 के अनुसार, जब ठहराव के दोनों पक्षकार ठहराव के किसी आवश्यक तथ्य के सम्बन्ध में गलती करते हैं तो ऐसा ठहराव पूर्णत: व्यर्थ होता है जिसको राजनियम द्वारा प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है ।

(3) **विदेशी राजनियम की गलती वाले ठहराव -** जब ठहराव के पक्षकार ठहराव करते समय दूसरे देश के राजनियम की अनभिज्ञता के कारण कोई गलती करते हैं तो यह विदेशी राजनियम सम्बन्धी गलती कहलाती है । विदेशी राजनियम सम्बन्धी गलती पर आधारित ठहराव पूर्णत: व्यर्थ होते हैं ।

(4) **अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य वाले ठहराव -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा उन ठहरावों को स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित किया गया है जिनका प्रतिफल एवं उद्देश्य अवैधानिक होता है । विस्तृत विवरण हेतु 5.5 देखें।

(5) बिना प्रतिफल वाले ठहराव - सामान्यतया बिना प्रतिफल वाले ठहराव व्यर्थ होते हैं । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 के अनुसार कतिपय अपवादों को छोड़कर शेष बिना प्रतिफल वाले ठहराव व्यर्थ होते हैं । विस्तृत विवरण हेतु 5.7 देखें ।

(6) **विवाह में रुकावट डालने वाले ठहराव -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 26 के अनुसार, "प्रत्येक ऐसा ठहराव जो अवयस्क के अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यक्ति के विवाह में रुकावट डालता है, व्यर्थ है । " विवाह करना प्रत्येक नागरिक का भूलभूत अधिकार होता है, जिस पर रोक लगाना लोकनीति के विरुद्ध है । विवाह पर प्रतिबन्ध पूर्ण अथवा आंशिक हो सकता है । जीवन भर विवाह करने पर प्रतिबन्ध लगाने का ठहराव व्यर्थ होता है । इसी प्रकार एक निश्चित अवधि तक विवाह न करना अथवा एक निश्चित व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) से विवाह न करना अथवा एक विशेष जाति या वर्ग के व्यक्ति से विवाह न करना आदि आशिक प्रतिबन्ध के ठहराव हैं जो व्यर्थ होते हैं । उदाहरण के लिए, मुस्लिम ली के अनुसार एक व्यक्ति एक साथ चार पत्नियाँ रख सकता है । अत: एक मुसलमान व्यक्ति के साथ यह ठहराव करना कि वह पहली पत्नी के जीवन काल में दूसरी शादी नहीं करेगा, व्यर्थ है ।

(7) **व्यापार में रुकावट डालने वाले ठहराव -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 27 के अनुसार, "प्रत्येक ऐसा ठहराव जिसके द्वारा कोई व्यक्ति किसी प्रकार का वैध व्यवसाय, कथा अथवा व्यापार करने से वंचित किया जाता है, उस सीमा तक व्यर्थ है । " प्रत्येक देशवासी का यह मौलिक अधिकार है कि वह अपनी इच्छा से कोई भी वैध कारोबार कर सकता है । यदि किसी ठहराव द्वारा व्यक्ति के इस अधिकार को सीमित किया जाता है तो वह व्यापार में रुकावट

डालने वाला ठहराव होगा और व्यर्थ होगा । उस सीमा तक व्यर्थ होने का आशय है कि यदि ठहराव को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है तो उसका वह भाग वैध होगा जो व्यापार में रुकावट नहीं डालता है परन्तु यदि ठहराव इस प्रकार से विभक्त नहीं किया जा सकता है तो सम्पूर्ण ठहराव ही व्यर्थ होगा ।

इस सम्बन्ध में **माधव चन्द्र बनाम राजकुमारदास** का विवाद महत्वपूर्ण है । इस विवाद में दोनों पक्षकार कलकत्ता के एक क्षेत्र में वैध व्यापार करते थे और दोनों एक ही वस्तु का व्यापार करते थे । दोनों पक्षकारों में एक ठहराव हुआ जिसके द्वारा वादी उस क्षेत्र में अपना व्यापार बन्द करने के लिए सहमत हो गया और इसके बदले में प्रतिवादी ने वादी को एक निश्चित धनराशि देने का वचन दिया । वादी ने अपना कारोबार बन्द कर दिया किन्तु प्रतिवादी द्वारा निर्धारित धनराशि नहीं दी गयी । इस पर वादी द्वारा निश्चित रकम प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत किया गया । व्यापार में रुकावट एक क्षेत्र विशेष के लिए ही थी, परन्तु न्यायालय द्वारा ठहराव को व्यर्थ घोषित किया गया ।

अपवाद (Exceptions) -"व्यापार में रुकावट डालने वाले ठहराव व्यर्थ होते हैं" इस नियम के कुछ अपवाद हैं अर्थात् निम्नलिखित परिस्थितियों में कारोबार करने पर लगायी गयी रोक मान्य होती है -

(i) **व्यापार की ख्याति के विक्रय की दशा में -** जब एक व्यक्ति अपने व्यापार के साथ उसकी साख या ख्याति भी बेच देता है और क्रेता उस विक्रेता के साथ ठहराव करता है कि वह (ख्याति का विक्रेता) उसी प्रकार का व्यापार निश्चित सीमाओं के अन्दर, उस समय तक नहीं करेगा जब तक की ख्याति का क्रेता अथवा अन्य कोई व्यक्ति जिसको उससे ख्याति का अधिकार मिलता है, उस क्षेत्र में व्यापार करता रहेगा । व्यापार पर रोक लगाने की ये सीमाएँ व्यापार की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए उचित होनी चाहिए । उदाहरण के लिए सतीश, महेश की जयपुर के जौहरी बाजार स्थित कपड़े की दुकान और उसकी साख खरीद लेता है और उसके साथ एक ठहराव द्वारा उस बाजार में कपड़े की दुकान करने के लिए महेश पर रोक लगाता है तो यह वैध है ।

(ii) **साझेदारी संलेख द्वारा रोक -** भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 11 के अनुसार एक फर्म के साझेदार आपस में यह ठहराव कर सकते हैं कि कोई भी साझेदार जब तक वह फर्म में साझेदार है फर्म के व्यवसाय से मिलता-जुलता अथवा फर्म के कारोबार के सिवाय अन्य कोई कारोबार नहीं करेगा ।

(iii) **साझेदारी से पृथक होने की दशा में -** भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 36(2) के अनुसार, सभी साझेदार आपस में यह ठहराव कर सकते हैं कि उनमें से कोई भी साझेदार फर्म को छोड़ने के पश्चात् निश्चित समय तक निश्चित सीमाओं में फर्म से मिलता-जुलता कारोबार नहीं कर सकेगा । इस प्रकार का प्रतिबन्ध उचित होना चाहिए ।

(iv) **फर्म के समापन की दशा में रोक -** भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 54 के अनुसार फर्म के समापन होने पर या समापन की आशंका होने पर साझेदार आपस में यह ठहराव कर सकते हैं कि कुछ साझेदार अथवा सभी साझेदार निश्चित स्थानीय सीमाओं के अन्दर निश्चित

समय तक साझेदारी के कारोबार से मिलता-जुलता कारोबार नहीं करें । इस प्रकार का प्रतिबन्ध उचित होना चाहिए ।

(v) **अनावश्यक प्रतिस्पर्धा रोकने का ठहराव -** यदि कुछ व्यापारी आपसी प्रतिस्पर्धा को रोकने के लिए कोई ऐसा ठहराव करते हैं अथवा व्यापार संघ बनाते हैं जिसका उद्देश्य गलाकाट प्रतिस्पर्धा को कम करना होता है तो वह वैध होगा । इसके विपरीत यदि ठहराव अन्य व्यापारियों को नुकसान पहुँचाने अथवा एकाधिकार की स्थापना करने के उद्देश्य से किया जाता है तो वह व्यर्थ होगा ।

(vi) **कर्मचारी एवं नियोक्ता के मध्य सेवा सम्बन्धी ठहराव -** जब एक नियोक्ता अपने कर्मचारी के साथ यह ठहराव करता है कि नौकरी के दौरान वह अन्य किसी स्थान पर कार्य नहीं करेगा तो यह प्रतिबन्ध वैध होगा । इसी प्रकार से जब नियोक्ता कर्मचारी के साथ यह ठहराव करता है कि वह एक निश्चित समयावधि तक उसी के यहां कार्य करता रहेगा अथवा अन्य कहीं पर कार्य नहीं करेगा तो यह प्रतिबन्ध मान्य है । उदाहरण के लिए, कपड़े का उत्पादन करने वाली एक फर्म सोहन की नियुक्ति बुनाई मास्टर के पद पर इस शर्त पर करती है कि वह तीन वर्ष तक भारत में कहीं और कार्य नहीं करेगा तो यह प्रतिबन्ध उचित है ।

(8) **वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने, वाले ठहराव -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 28 के अनुसार, "प्रत्येक ठहराव, जिसके द्वारा कोई पक्षकार किसी अनुबन्ध के अधीन अपने अधिकारों को साधारण न्यायालय में वैधानिक कार्यवाही द्वारा लाग कराने से पूर्णतया रोका जाता है, अथवा जो उस समय को सीमित करता है जिसके अन्दर वह अपने अधिकारों को इस प्रकार प्रवर्तित करा सकता है, व्यर्थ है । " इस सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि न्याय प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार होता है और किसी ठहराव द्वारा (1) किसी पक्षकार को अपने अनुबन्ध के अधीन प्राप्त अधिकार प्राप्त करने हेतु न्यायालय में जाने से रोका जाता है, अथवा (2) लिमिटेशन अधिनियम द्वारा निर्धारित अवधि को सीमित किया जाता है तो इस प्रकार के ठहराव लोकनीति के विरुद्ध होने के कारण व्यर्थ होते हैं ।

यद्यपि वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाले ठहराव व्यर्थ होते हैं, परन्तु इसके निम्नलिखित अपवाद हैं जो वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाले प्रतीत होते हैं, किन्तु वैध माने जाते हैं -

(i) ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ नहीं होगा, जिसमें पक्षकार इस बात के लिए सहमत होते हैं उनके बीच उत्पन्न होने वाले विवाद को पंच निर्णय के लिए प्रस्तुत करेंगे और पंचायत द्वारा दिलाया गया धन प्राप्ति योग्य होगा ।

(ii) ऐसा अनुबन्ध भी व्यर्थ नहीं होगा जिसके अन्तर्गत पक्षकारों के बीच उत्पन्न किसी विवाद को पंचायत को सुपुर्द करने का ठहराव करते हैं, परन्तु इस प्रकार का ठहराव लिखित होना आवश्यक है ।

(9) **अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 29 के अनुसार, "ऐसे ठहराव जिनका अर्थ निश्चित न हो, अथवा निश्चित न किया जा सकता हो, व्यर्थ होते हैं । " किसी भी ठहराव को लाग कराने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी विषयवस्तु निश्चित होनी चाहिए । यदि विषयवस्तु ही निश्चित नहीं है अथवा निश्चित किया जाना कठिन है तो उसको पूरा

करना सम्भव नहीं होता है और वह ठहराव व्यर्थ होता है । उदाहरण के लिए, मोहन एक तेल का व्यापारी है जो सरसों, तिल्ली, मूंगफली आदि सभी प्रकार के तेलों का व्यापार करता है । सोहन उसके साथ 100 टिन तेल के खरीदने का ठहराव करता है । यह ठहराव व्यर्थ है क्योंकि यह निश्चित नहीं है कि उसने कौन सा तेल खरीदने का ठहराव किया है ।

(10) **बाजी के ठहराव -** बाजी के ठहराव से आशय ऐसे ठहराव से है जिसके अन्तर्गत किसी अनिश्चित घटना के घटित होने अथवा न होने पर, एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को कोई धनराशि अथवा कोई वस्तु देने का वचन देता है । इसमें एक पक्षकार की जीत होती है और दूसरे की हार होती है । एन्सन के अनुसार, "बाजी के ठहराव वे होते हैं जिनमें किसी अनिश्चित घटना के निश्चित हो जाने पर धन या धन के बदले वस्तु देने का वचन हो । " न्यायाधीश हाकिन्स ने बाजी के ठहराव की स्पष्ट परिभाषा दी है । उनके अनुसार "बाजी का ठहराव एक ऐसा ठहराव है जिसमें दो या अधिक व्यक्ति किसी अनिश्चित घटना के विषय में विपरीत विचार रखते हुए परस्पर यह ठहराव करते हैं कि उस घटना के निश्चित हो जाने पर एक व्यक्ति की दूसरे पर जीत होगी और दूसरा उसको कोई धन या वस्तु देगा । ठहराव के पक्षकारों में से किसी का उस धनराशि के अतिरिक्त कोई हित नहीं होगा जिसे वह जीतेगा अथवा हारेगा । इस प्रकार के ठहराव में कोई वास्तविक प्रतिफल नहीं होता है । "

बाजी के ठहराव के लक्षण - बाजी के ठहराव में निम्न प्रमुख लक्षण होते हैं-

(i) बाजी के ठहराव में धन या कोई वस्तु देने का वचन होता है ।

(ii) वचन किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर आधारित होता है । यह अनिश्चित घटना भावी अथवा भूतकालीन हो सकती है । घटना इसलिए अनिश्चित हो सकती है कि वह भविष्य में घटित होगी, अत: पक्षकार यह नहीं जानते कि घटना घटित होगी अथवा नहीं । घटना इसलिए भी अनिश्चित हो सकती है कि वह घटित हो चुकी हैं परन्तु ठहराव के दोनों ही पक्षकारों को उसके परिणाम की जानकारी नहीं है ।

(iii) घटना पूर्ण रुप से अनिश्चित होनी चाहिए अर्थात् ठहराव के दोनों पक्षकारों को घटना के घटित होने अथवा घटित न होने की जानकारी नहीं होनी चाहिए ।

(iv) ठहराव के पक्षकारों को घटना के घटित होने से पूर्व में घटना की सम्भावना पर निर्भर रहना चाहिए ।

(v) घटना के घटित होने पर पक्षकारों के हारने या जीतने के अतिरिक्त कोई प्रतिफल नहीं होता है ।

(vi) बाजी के ठहराव में घटना के घटित होने पर एक पक्षकार की जीत और दूसरे पक्षकार की हार आवश्यक है ।

बाजी के ठहराव का प्रभाव -

(i) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 30 के अनुसार, बाजी लगाने का प्रत्येक ठहराव व्यर्थ होता है । अत: उसको राजनियम द्वारा प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है ।

(ii) बाजी के ठहराव के अन्तर्गत जीती गयी धनराशि अथवा वस्तु को बाजी जीतने वाला व्यक्ति, हारने वाले से न्यायालय की सहायता से प्राप्त नहीं कर सकता है । इसके अतिरिक्त किसी तीसरे व्यक्ति के पास बाजी से सम्बन्धित धन अथवा वस्तु जमा करा

दी गयी है तो बाजी जीतने वाला व्यक्ति उससे यह धनराशि या वस्तु प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है ।

(iii) बाजी हारने वाला व्यक्ति तीसरे व्यक्ति के पास जमा धन या वस्तु वापिस प्राप्त कर सकता है, बशर्ते की उसने वह धनराशि या वस्तु जीतने वाले व्यक्ति को न दी हो । यदि हारने वाले व्यक्ति ने तीसरे व्यक्ति को, जिसके पास धन या वस्तु जमा हैं, यह आदेश देता है कि वह धन या वस्तु जीतने वाले व्यक्ति को न दे और तीसरा व्यक्ति वह धन या वस्तु जीतने वाले व्यक्ति को दे देता है तो हारने वाला व्यक्ति उस तीसरे व्यक्ति को दोषी नहीं ठहरा सकता है ।

(iv) बाजी के ठहराव व्यर्थ होते हैं, अवैध नहीं । परन्तु महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्यों में बाजी के ठहरावों को अवैध कर रखा है । इन दो राज्यों को छोड़कर शेष भारत में बाजी के ठहरावों के समपार्श्विक व्यवहार (Collateral transactions) वैध होते हैं । उदाहरण के लिए, बाजी के ठहराव के लिए नियुक्त एजेण्ट अपने नियोक्ता से पाराश्रमिक प्राप्त कर सकता है । इसी प्रकार बाजी में हारे गये धन का भुगतान करने के लिए दिया गया ऋण भी ऋणदाता वापिस प्राप्त कर सकता है ।

अपवाद - बाजी के ठहराव सामान्यत: व्यर्थ होते हैं, परन्तु यदि कोई व्यक्ति घुड़दौड़ के विजेता को 500 रुपये या इससे अधिक राशि का इनाम देने के लिए किसी प्रकार का चन्दा देने का ठहराव करता है तो यह ठहराव वैध होगा ।

बाजी के ठहराव के समान लगने बालें व्यवहार -

कुछ व्यवहार या ठहराव ऊपर से देखने पर बाजी के ठहराव प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में वे बाजी के ठहराव नहीं होते हैं । कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर ये ठहराव वैध होते हैं, जबकि बाजी के - ठहराव व्यर्थ होते हैं । इस प्रकार के प्रमुख ठहराव निम्नलिखित हैं ।

(i) **व्यापारिक व्यवहार -** व्यापारिक व्यवहार में पक्षकारों का उद्देश्य ठहराव से सम्बन्धित वस्तु की सुपुर्दगी लेना एवं देना होता है । बाद में पक्षकार चाहे मूल्यों के अन्तर को ले एवं दे कर ही व्यवहार को पूरा कर सकते हैं । एक व्यापारिक व्यवहार उस समय बाजी का ठहराव माना जायेगा जब ठहराव करते समय ही पक्षकारों की इच्छा केवल मूल्यों का अन्तर ही लेने या देने की होती है । जब पक्षकार पहिले से ही यह निश्चित कर लेते हैं कि वस्तु की वास्तविक सुपुर्दगी देने अथवा लेने के लिए कोई भी पक्षकार बाध्य नहीं करेगा, जो वह बाजी का ठहराव माना जायेगा, अन्यथा नहीं ।

(ii) **सट्टे का व्यवहार -** सट्टे के व्यवहार वर्तमान व्यापारिक युग में बड़ी मात्रा में किये जाते हैं । सट्टे के लेनदेनों में प्राय: कीमतों के अन्तर का ही लेनदेन होता है । स्कन्ध विपणी में सट्टे के व्यवहार अधिक होते हैं । ये प्रचलित सट्टे के व्यवहार वास्तव में बाजी के ठहराव नहीं होते हैं, क्योंकि ये ठहराव इस बात पर आधारित होते हैं कि आगामी तिथि पर पक्षकार वस्तुओं या अंशों की सुपुर्दगी लेने अथवा देने के लिए बाध्य किये जा सकते हैं । सट्टे के व्यवहार उसी परिस्थिति में बाजी के ठहराव होंगे जब दोनों पक्षकारों का उद्देश्य मूल्यों के अन्तर का लेन-देन करके सौदे को बराबर करना हो । केवल किसी एक पक्षकार की इस प्रकार की इच्छा मात्र से ही सट्टे का व्यवहार बाजी का ठहराव नहीं हो जाता है ।

(iii) **बीमा का अनुबन्ध -** जीवन बीमा को छोड़कर शेष सभी प्रकार के बीमा अनुबन्ध क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध होते हैं । बीमा के अनुबन्ध में बीमित को वास्तविक हानि होने पर ही क्षतिपूर्ति की जाती है अन्यथा नहीं । परन्तु बीमा के अनुबन्ध बाजी के ठहराव नहीं होते हैं क्योंकि बीमित व्यक्ति का जीवन बीमा की स्थिति में अपने जीवन में तथा अन्य प्रकार के बीमाओं में बीमित सम्पत्ति में बीमा योग्य हित होता है । बाजी के ठहराव में तो प्रत्येक पक्षकार यह कामना करता है कि अनिश्चित घटना घटे ताकि उसकी जीत हो और वह बाजी जीते, परन्तु बीमा के अनुबन्ध में कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता है कि बीमित सम्पत्ति नष्ट हो और वह क्षतिपूर्ति प्राप्त करे । अगर बीमा की विषयवस्तु में बीमित व्यक्ति का बीमा योग्य हित नहीं है तो वह बाजी का ठहराव माना जायेगा, जो व्यर्थ होता है ।

(iv) **लॉटरी -** लॉटरी निकालने का ठहराव भारतीय दण्ड संहिता द्वारा अवैधानिक घोषित किया गया है । अत: सरकार की अनुमति के बिना इस प्रकार का ठहराव नहीं किया जा सकता है । लॉटरी भी सम्भावना या संयोग का खेल होता है जिसमें हार और जीत की बराबर सम्भावना रहती है । अत: लॉटरी का ठहराव भी बाजी का ठहराव होता है परन्तु सरकार की अनुमति लेने से वह ठहराव वैध हो जाता है, जिसका प्रभाव यह होता है कि लॉटरी के संचालकों पर दण्ड के लिए अभियोग नहीं चलाया जायेगा । इनाम जीतने वाला व्यक्ति वैधानिक रुप से लॉटरी का इनाम प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है ।

(v) **चिटफण्ड -** चिट-फण्ड लॉटरी से भिन्न व्यवस्था है, जिसमें सदस्यों द्वारा विनियोजित धन को एक निश्चित समय के पश्चात् वापिस लौटाने की व्यवस्था होती है । अत: यह बाजी का ठहराव नहीं है । अगर कोई चिट-फण्ड कम्पनी अपने सदस्यों का धन वापिस नहीं लौटाती है तो उस पर न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया जा सकता है ।

(vi) **वर्ग पहेली प्रतियोगिता -** वर्ग पहेली प्रतियोगिताओं में एक व्यक्ति का बुद्धि परीक्षण होता है, अत: यह बाजी का ठहराव नहीं माना जा सकता है । यद्यपि इसमें प्रतियोगी द्वारा बतलाया गया उत्तर संचालकों द्वारा पूर्व में ही लिफाफों में बन्द उत्तर रो मिलना निश्चित नहीं होता है । **पुरुस्कार प्रतिस्पर्धा नियम, 1955** के अनुसार इस प्रकार की प्रतियोगिताओं में 1000 रुपये तक के इनामों को वैध माना गया है । इससे अधिक की इनामी राशि वाली प्रतियोगिताएँ व्यर्थ होती है ।

(11) **असम्भव कार्य को करने के ठहराव -** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 56 के अनुसार, वह ठहराव जो किसी ऐसे कार्य को करने के लिए है जो कि आरम्भ से ही असम्भव है, व्यर्थ है । यहां इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि कोई कार्य करना ठहराव करते समय तो सम्भव था, परन्तु बाद में परिस्थितियों में परिवर्तन होने या राजनियम में परिवर्तन होने से ठहराव का निष्पादन असम्भव हो जाये तो यह ठहराव उस समय व्यर्थ हो जायेगा, जब इस प्रकार की असम्भवता उत्पत्र होगी । उदाहरण के लिए, राम, श्याम को दो समानान्तर रेखाओं को मिलाने पर 5000 रुपये देने का ठहराव करता है । यह ठहराव व्यर्थ है क्योंकि समानान्तर रेखाओं को मिलाना असम्भव है ।

5.9 सारांश

एक ठहराव की वैधता के लिए आवश्यक है कि ठहराव का उद्देश्य एवं प्रतिफल वैध होने चाहिए और वह ठहराव स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित किया हुआ नहीं होना चाहिए । प्रतिफल वचनदाता द्वारा वचनग्रहीता की इच्छा पर कोई कार्य या विरति या वचन हो सकता है, प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर होना चाहिए, वचनग्रहीता या अन्य व्यक्ति की ओर से होना चाहिए, कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिए । किसी ठहराव का उद्देश्य एवं प्रतिफल निम्न परिस्थितियों में अवैधानिक होता है - (1) यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित है; (2) यदि वह इस प्रकार का है कि अगर अनुमति दी जाए तो वह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निकल कर देगा; (3) यदि वह कपटमय है; (4) यदि उससे किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर और सम्पत्ति को नुकसान पहुँचता है; (5) यदि न्यायालय उसको अनैतिक अथवा लोकनीति के विरुद्ध समझता है ।

विदेशी शत्रु के साथ व्यापार करने का ठहराव, अनुचित रुप से मुकदमेंबाजी को बढ़ावा देने वाला ठहराव, दण्डनीय अभियोगों को दबाने के ठहराव, दलाली लेकर विवाह कराने के ठहराव, सरकारी नौकरी दिलाने के ठहराव, ऐसे ठहराव जो 'लिमिटेशन अधिनियम' को निकल करने वाले हैं, पैतृक अधिकारों में रुकावट डालने वाले ठहराव, न्याय विधि में हस्तक्षेप करने के ठहराव, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर रोक लगाने के ठहराव तथा पदवी अथवा उपाधि के विक्रय का ठहराव अनैतिक तथा लोकनीति के विरुद्ध माने जाते हैं और व्यर्थ होते हैं ।

सामान्यतया बिना प्रतिफल वाले ठहराव व्यर्थ होते हैं परन्तु इस नियम के कुछ अपवाद हैं । जो ठहराव बिना प्रतिफल के भी वैध होते हैं वे हैं - स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण दिया गया वचन, स्वेच्छा से किये गये कार्य की क्षतिपूर्ति के लिए दिया गया वचन, अवधि वर्जित ऋण के भुगतान का वचन, एजेन्सी का अनुबन्ध, निःशुल्क निक्षेप, दान एवं भेंट ।

कुछ ठहराव अनुबन्ध अधिनियम द्वारा स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित किये गये हैं जो पक्षकारों का वैधानिक दायित्व उत्पन्न नहीं करते हैं । स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित ठहराव हैं - (1) अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये ठहराव (2) तथ्य सम्बन्धी गलती पर आधारित ठहराव (3) विदेशी राजनियम की गलती वाले ठहराव (4) अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य वाले ठहराव (5) बिना प्रतिफल वाले ठहराव (6) विवाह में रुकावट डालने वाले ठहराव (7) व्यापार में रुकावट डालने वाले ठहराव (8) वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाले ठहराव (9) अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव (10) बाजी के ठहराव (11) असम्भव कार्य को करने के ठहराव ।

5.10 शब्दावली

अवैधानिक प्रतिफल : वह प्रतिफल जिसको राजनियम मान्यता नहीं देता है ।

रचनात्मक प्रतिफल : वचनग्रहीता की ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रतिफल दिया जाना ।

अनैतिक ठहराव : समाज में अनैतिकता एवं व्यभिचार को बढ़ावा देने वाले ठहराव, अनैतिक ठहराव कहलाते हैं ।

लोकनीति के विरुद्ध ठहराव : ऐसे ठहराव जिनका उद्देश्य देश या जन सामान्य का अहित करना होता है ।

5.11 स्वपरख प्रश्न

1. प्रतिफल से आप क्या समझते हैं? प्रतिफल के आवश्यक लक्षणों का उल्लेख कीजिए ।
2. प्रतिफल की परिभाषा दीजिए । किन परिस्थितियों में ठहराव का उद्देश्य अथवा प्रतिफल अवैध माना जाता हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए ।
3. प्रतिफल की परिभाषा दीजिए । "बिना प्रतिफल का ठहराव व्यर्थ होता है" इस नियम के अपवाद बतलाइये ।
4. लोकनीति के विरुद्ध ठहरावों से सम्बन्धित वैधानिक नियम बतलाइए । ऐसे महत्वपूर्ण मामले बताइये जिन्हे सामान्यत: लोकनीति के विरुद्ध माना जाता है ।
5. व्यर्थ ठहराव से आप क्या समझते हैं? भारतीय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित ठहरावों का संक्षेप में वर्णन कीजिए ।
6. "व्यापार में रुकावट डालने वाले ठहराव व्यर्थ होते हैं । " इस कथन की व्याख्या कीजिए । क्या इस नियम के कोई अपवाद हैं ' यदि हैं, तो उनकी व्याख्या कीजिए ।

व्यावहारिक समस्याएँ

1. राम, श्याम से कहता है कि "आपने मुझे अपनी जान की जोखिम पर भयानक दुर्घटना में बचाया है इसलिए मैं आपको 11000 रुपये देने का वचन देता हूँ । " बाद में राम रुपये देने से इन्कार कर देता है । क्या श्याम, राम से उक्त धनराशि प्राप्त कर सकता है?

2. प्रदीप अपने पुत्र संदीप को अपना मकान बिना प्रतिफल के देने का वचन देता है । क्या इस अनुबन्ध को राजनियम द्वारा प्रवर्तित कराया जा सकता है ।

3. जगदीप एण्ड कम्पनी को राजस्थान में पॉल एण्ड कम्पनी का माल बेचने के लिए एकाकी एजेण्ट इस शर्त पर नियुक्त किया गया है कि वह ऐजेन्सी के दौरान किसी अन्य उत्पादक का माल नहीं बेचेगी । क्या यह ठहराव वैध है ।

इकाई- 6

अनुबन्धों का निष्पादन एवं समाप्ति व अनुबन्ध खण्डन के उपचार

(Performance and Discharge of Contract and Remedies for Breach of Contract)

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 अनुबन्ध का निष्पादन एवं उसके प्रभाव

6.4 अनुबन्ध का निष्पादन किसके द्वारा होना चाहिए

6.5 संयुक्त वचनग्रहीता के अधिकार

6.6 अनुबन्ध के निष्पादन के लिए समय एवं स्थान

6.7 पारस्परिक वचनों का निष्पादन

6.8 समय अनुबन्ध को सार तत्व होने पर अनुबन्ध के निष्पादन में असफल रहने का प्रभाव

6.9 भुगतानों का नियोजन

6.10 अनुबन्धों की समाप्ति

6.11 अनुबन्ध भंग का अर्थ

6.12 अनुबन्ध भंग की स्थिति में पीड़ित पक्षकार को प्राप्त अधिकार

6.13 सारांश

6.14 स्व-परख प्रश्न

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि-

- अनुबन्ध निष्पादन से क्या अभिप्राय है?
- अनुबन्ध के पक्षकारों के वैधानिक दायित्व क्या है ।
- अनुबन्ध के निष्पादन को अस्वीकार करने के वैधानिक परिणाम क्या होते है?
- अनुबन्ध के निष्पादन में 'समय' एवं 'स्थान' सम्बन्धी वैधानिक प्रावधान क्या है ।
- अनुबन्ध भंग का अभिप्राय क्या है?
- अनुबन्ध भंग की स्थिति में पीड़ित पक्षकार के अधिकार क्या होते है?

6.2 प्रस्तावना

सम्बन्धित पक्षकार जब अपने-अपने दायित्वों का निर्वहन कर देते हैं, तो उसे अनुबन्ध का निष्पादन कहते हैं । अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 37 से 61** के अन्तर्गत अनुबन्धों के निष्पादन एवं समाप्ति के सम्बन्ध में व्यवस्थाएँ दी गई हैं।

6.3 अनुबन्धों का निष्पादन एवं उसके प्रभाव

वैध अनुबन्ध में सम्बन्धित पक्षकारों द्वारा अपने- अपने वैधानिक उत्तरदायित्वों को पूरा करना अनुबन्ध का निष्पादन करना कहलाता है । ऐसा करने से अनुबन्ध पूर्ण अथवा समाप्त हो जाता है । अनुबन्ध अधिनियम की धारा 37 के अनुसार " अनुबन्ध के पक्षकारों को या तो अपने वचनों का निष्पादन करना चाहिए अथवा निष्पादन का प्रस्ताव करना चाहिए जब तक ऐसे निष्पादन से इस अधिनियम या अन्य किसी राजनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत मुक्ति न दे दी गई हो । वचन के निष्पादन से पूर्व वचनदाता की मृत्यु की अवस्था में वचनदाता के उत्तराधिकारी बाध्य रहते हैं, जब तक कि अनुबन्ध से कोई विपरीत आशय प्रकट नहीं होता हो"।

निष्पादन की विधियाँ - अनुबन्ध का निष्पादन दो प्रकार से हो सकता है-

(अ) वास्तविक निष्पादन द्वारा (By Actual Performance) -इसके अन्तर्गत अनुबन्ध के पक्षकार पारस्परिक रूप से अपने वचनों को पूरा कर देते हैं । उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' को अपनी मोटर साइकिल 50,000 रुपये में विक्रय का अनुबन्ध करता है । 'ब' 'अ' को 50,000 रुपये दे देता है व 'अ' उसे मोटर साइकिल दे देता है, यह वास्तविक निष्पादन है ।

(ब) निष्पादन के प्रस्ताव द्वारा (By Offer of Performance) -इसके अन्तर्गत एक पक्षकार निष्पादन नही करता वरन् निष्पादन के लिए प्रस्ताव करता है । यह ध्यान रहे कि ऐसा प्रस्ताव या निवेदन निष्पादन का स्थान नहीं ले सकता । उपर्युक्त उदाहरण में यदि 'अ' अपनी मोटर साइकिल अनुबन्ध के अनुसार 'ब' को देने का प्रस्ताव करता है, तो यह निष्पादन के लिए प्रस्ताव कहलाएगा । इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि

1. वचनदाता अपने वचन का निष्पादन करने से मुक्त हो सकता है, यदि इस अधिनियम या अन्य किसी राजनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत उसे निष्पादन से मुक्ति दे दी गई हो ।
2. अनुबन्ध के एक पक्षकार की मृत्यु हो जाने पर उसके वचन उसके उत्तराधिकारियों को बाढ़- करते हैं जब तक कि अनुबन्ध से कोई विपरीत अभिप्राय प्रकट नहीं होता हो ।

धारा 38 के अनुसार जहाँ वचनदाता वचन के निष्पादन के लिए प्रस्ताव करता है, लेकिन जिसे वचनग्रहीता स्वीकार नहीं करता, तो ऐसी स्थिति में वचनदाता निष्पादन नहीं करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, न ही वह अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने अधिकारों से वंचित होता है।

निष्पादन हेतु प्रस्ताव की आवश्यक शर्तें (Conditions Of Offer or Performance) धारा : 38 के अनुसार निष्पादन का प्रस्ताव तभी वैध कहलाएगा जब वह निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति करता है ।

(1) **निष्पादन का प्रस्ताव शर्तरहित होना चाहिए :** -निष्पादन का प्रस्ताव शर्त रहित होना चाहिए । उदाहरण के लिए 'अ' अपनी कार 'ब' को विक्रय करने के लिए निष्पादन का प्रस्ताव करते समय यह शर्त बता देता है कि वह अपनी कार बेचने को तैयार है । बशर्ते 'ब' अपना ट्रेक्टर उसे बेच दे । यह वैध निष्पादन का प्रस्ताव नहीं है । इसी प्रकार चैक द्वारा रुपये भुगतान करने का प्रस्ताव वैध प्रस्ताव नहीं है, क्योंकि चैक प्रचलित मुद्रा नहीं है, फिर भी यदि अनुबन्ध का पक्षकार अपने ऋण के भुगतान में एक बार चैक स्वीकार कर लेता है, तो बाद में वह इसे लेने से इन्कार नहीं कर सकता है ।

(2) **निष्पादन का प्रस्ताव उचित समय एवं स्थान पर हो :** -यदि अनुबन्ध में निष्पादन का समय व स्थान निश्चित है तो वही उचित समय एवं स्थान माना जाएगा । अन्यथा मामले की प्रकृति व परिस्थितियों के अनुसार समय व स्थान उचित होना चाहिए ।

(3) **निष्पादन का प्रस्ताव सम्पूर्ण अनुबन्ध के लिये हो-**निष्पादन का प्रस्ताव अनुबन्ध के सम्पूर्ण भाग को पूरा करने के लिए होना चाहिए न कि उसके किसी भाग के लिए । उदाहरण के लिए 'अ' ने 'ब' को 200 बोरी चावल बेचने का अनुबन्ध किया । 'अ' केवल 20 बोरी चावल विक्रय करने के लिए 'ब' को निष्पादन का प्रस्ताव करता है, यह वैध निष्पादन प्रस्ताव नहीं होगा।

(4) **निष्पादन के प्रस्ताव में वचनग्रहीता को वस्तु की जाँच, परख करने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए-**वचनदाता के द्वारा निष्पादन का प्रस्ताव करने के पश्चात वचनग्रहीता को यह सुनिश्चित करने का उचित अवसर मिलना चाहिए कि प्रस्तुत की गई वस्तु वही है जिसकी सुपुर्दगी के लिए वचनदाता बाध्य था ।

(5) **एक से अधिक वचनग्रहीता होने की स्थिति में-**संयुक्त वचनग्रहीताओं की स्थिति में उनमें से किसी एक को भी वचनदाता द्वारा दिए गए निष्पादन के प्रस्ताव का प्रभाव यह होता है, जैसे सभी वचनग्रहीताओं को निष्पादन का प्रस्ताव कर दिया गया हो अर्थात् वचनदाता प्रत्येक वचनग्रहीता के समक्ष निष्पादन का प्रस्ताव करने के लिए बाध्य नहीं है ।

6.4 अनुबन्ध का निष्पादन किसके द्वारा होना चाहिए?

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 40 से 45 के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि अनुबन्ध का निष्पादन किसके द्वारा किया जा सकता है । इन धाराओं के प्रावधानों के अनुसार अनुबन्ध का निष्पादन निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है ।

(1) **वचनदाता या प्रस्तावक द्वारा** (By Promisor) -यदि मामले की प्रकृति को देखते हुए ऐसा लगता है कि पक्षकारों की इच्छा यह थी कि वचन का निष्पादन वचनदाता द्वारा ही किया जाए तो ऐसे वचन का निष्पादन वचनदाता के द्वारा ही किया जाना चाहिए । सामान्यतया ऐसे कार्य जिनमें व्यक्तिगत चातुर्य, कौशल व निपुणता का उपयोग किया जाता हो, जैसे चित्रकारी, पुस्तक लिखना, सिलाई, गाना या गजल गाना आदि का निष्पादन वचनदाता को स्वयं ही करना होगा ।

(2) **प्रतिनिधि द्वारा**(By Agent) -ऐसे ठहराव जो सामान्य प्रकृति के हैं अर्थात् जिनमें वचनदाता के व्यक्तिगत चातुर्य का प्रयोग नहीं होता, उनका निष्पादन वचनदाता स्वयं या उसका अधिकृत प्रतिनिधि कर सकता है ।

(3) **तीसरे पक्षकार द्वारा** (By Third Parties) - धारा 41 के अनुसार यदि वचनग्रहीता या स्वीकर्ता किसी तीसरे पक्षकार के द्वारा अनुबन्ध का निष्पादन स्वीकार कर लेता है, तो वह बाद में वचनदाता को निष्पादन के लिए बाध्य नहीं कर सकता ।

(4) **संयुक्त वचनदाताओं द्वारा** (By Joint Promisors) -यदि वचनदाता एक से अधिक हैं तो उनके द्वारा निष्पादन सम्बन्धी नियम इस प्रकार हैं-

(i) **संयुक्त निष्पादन** (Joint Performance) - **धारा 42** के अनुसार जब दो या दो से अधिक वचनदाताओं ने संयुक्त वचन दिया हो तो जब तक अनुबन्ध से विपरीत अभिप्राय प्रकट नहीं होता तो सभी वचनदाताओं द्वारा निष्पादन किया जाना चाहिए । किसी वचनदाता की मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारी द्वारा अथवा सभी वचनदाताओं की मृत्यु की अवस्था में उनके वैधानिक उत्तराधिकारियों द्वारा निष्पादन किया जाना चाहिए।

(ii) **किसी भी संयुक्त वचनदाता को बाध्य किया जा सकता है** (Any Joint Promisor May be Forced to Perform) -वचनग्रहीता संयुक्त वचनदाताओं में से किसी भी एक को धारा 43 के प्रावधानों के अनुसार वचन के निष्पादन के लिए बाध्य कर सकता है ।

(iii) **आनुपातिक राशि प्राप्त करने का अधिकार** (Right to Get Contribution) - धारा 43 के अनुसार यदि संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक ने सभी की ओर से वचन का निष्पादन कर दिया है तो उसे शेष वचनदाताओं से आनुपातिक राशि प्राप्त करने का अधिकार होगा ।

(iv) **आनुपातिक राशि की अदायगी नहीं होने पर हानि को बहन करना** (Sharing of Loss by Default in Contribution) -यदि कोई वचनदाता अपनी आनुपातिक राशि का भुगतान नहीं कर पाता तो धारा 43 के अनुसार शेष वचनदाताओं को उसके द्वारा अदायगी नहीं करने से उत्पन्न हानि को समान रूप से वहन करनी होगी ।

(v) **किसी एक संयुक्त वचनदाता की मुक्ति का प्रभाव** (Effect of Release of One Joint Promisor) -संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक वचनदाता की मुक्ति होने पर धारा 44 के अनुसार शेष वचनदाताओं को वचन के निष्पादन के दायित्व से मुक्त नहीं होती । उनके दायित्व बने रहेंगे ।

(5) **वैधानिक उत्तराधिकारी द्वारा** (By Legal Representatives) - धारा 37 के अनुसार जब तक अनुबन्ध से कोई विपरीत अभिप्राय प्रकट नहीं होता तब तक वचनदाता द्वारा दिए गए वचनों का निष्पादन करने के लिए उसके वैधानिक उत्तराधिकारी बाध्य हैं ।

6.5 संयुक्त वचनग्रहीता के अधिकार

धारा 45 के अनुसार जब कोई व्यक्ति दो या दो से अधिक व्यक्तियों को कोई वचन देता है, तो जब तक कि अनुबन्ध से कोई विपरीत अभिप्राय प्रकट नहीं होता-

(i) निष्पादन को मांग करने का अधिकार सभी वचनग्रहीताओं को रहता है एवं

(ii) उनमें से किसी एक वचनग्रहीता की मृत्यु होने पर उसके वैधानिक उत्तराधिकारी एवं शेष जीवित वचनग्रहीताओं को वचन के निष्पादन की मांग करने का अधिकार रहता है ।

6.6 अनुबन्ध के निष्पादन के लिए समय तथा स्थान

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 46 से 50 के अन्तर्गत वचन के निष्पादन के लिए समय तथा स्थान से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन इस प्रकार किया गया है ।

(1) उचित समय में निष्पादन (Performance in Reasonable Time) - **धारा 46** के अनुसार जहाँ अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने वचन का निष्पादन वचनदाता को वचनग्रहीता के आवेदन के बिना पूरा करना हो व इसके लिए कोई समय निश्चित नहीं किया गया हो तो वचन का निष्पादन उचित समय में कर दिया जाना चाहिए । उचित समय मामले की परिस्थितियों, उन तथ्यों पर जिनका ध्यान पक्षकारों को अनुबन्ध करते समय था, उस व्यापार में प्रचलित प्रथाओं पर निर्भर करेगा ।

(2) **निश्चित समय व स्थान पर निष्पादन**(Performance in Specified Time and Place) - धारा 47 के अनुसार जब वचनग्रहीता के आवेदन बिना वचनदाता को एक निश्चित तिथि को वचन का निष्पादन करना हो, तो वचनदाता को वचन का निष्पादन निश्चित स्थान पर सामान्य कारोबार के समय में करना चाहिए ।

(3) **निश्चित दिन को वचनग्रहीता के आवेदन पर निष्पादन** (Performance on Certain day on the Application of Promisee) - धारा 48 के अनुसार जब वचन के निष्पादन का समय निश्चित है व वचनदाता को वचनग्रहीता के आवेदन पर निष्पादन करना हो, तो वचनग्रहीता का यह कर्त्तव्य है कि वह वचन के निष्पादन के लिए उचित स्थान व सामान्य कारोबार के समय में वचनदाता को निवेदन करें ।

(4) **जब निष्पादन का कोई स्थान निर्धारित नहीं किया गया हो** (Where no Place Fixed for Performance) -तो धारा 49 के अनुसार वचनदाता का यह कर्त्तव्य है कि वचनग्रहीता से वचन का निष्पादन करने के लिए उचित स्थान नियत करने हेतु आवेदन करें व वचनग्रहीता द्वारा नियत स्थान पर वचन का निष्पादन करें ।

(5) **वचनग्रहीता द्वारा निर्दिष्ट या अनुमोदित रीति एवं समय पर निष्पादन** (Performance in Manner or at Time Prescribed or at Time Prescribed Sanctioned by Promisee) - धारा 50 के अनुसार वचन का निष्पादन वचनग्रहीता द्वारा निर्दिष्ट या अनुमोदित रीति एवं समय पर वचनदाता द्वारा किया जा सकता है ।

6.7 पारस्परिक वचनों का निष्पादन

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (f) के अनुसार "वचन जो एक-दूसरे के लिए प्रतिफल या आशिक प्रतिफल होते हैं, पारस्परिक वचन कहलाते हैं । " पारस्परिक वचनों के अन्तर्गत प्रत्येक पक्षकार को अनुबन्ध के अनुसार अपने वचन का निष्पादन करना होता है । परन्तु कई बार यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पक्षकार किस क्रम में वचनों का निष्पादन करेंगे व एक पक्षकार जहाँ अपने वचन का निष्पादन कर चुका है तो दूसरा पक्षकार निष्पादन के लिए कब उत्तरदायी होगा ।

उदाहरण के लिए 'अ' ने अपनी कार 'ब' को 100000 रुपये में बेचने का ठहराव किया । यहाँ 'अ' द्वारा कार 'ब' को देना व 'ब' द्वारा 100000 रुपये 'अ' को देना पारस्परिक वचन है । प्रश्न यह उपस्थित हो सकता है कि 'अ' पहले अपनी कार की सुपुर्दगी देगा या 'ब' पहले 100000 रुपये देगा । यदि अनुबन्ध में इसकी व्यवस्था नहीं हो तो कई बार यही प्रश्न पेचीदा हो जाते हैं ।

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 51 से 58 के अन्तर्गत पारस्परिक वचनों के निष्पादन सम्बन्धी निम्नलिखित नियम दिये गए हैं ।

(1) **जहाँ पारस्परिक वचनों का निष्पादन एक साथ करना हो** (Where Reciprocal Promises to be Simultaneously Performed) - धारा 51 के अनुसार जब अनुबन्ध ऐसे पारस्परिक वचनों के सम्बन्ध में है जिन्हें पक्षकारों को एक साथ पूरा करना है, तो वचनदाता को अपने वचन के निष्पादन करने की आवश्यकता तब तक नहीं है, जब तक कि वचनग्रहीता अपने पारस्परिक वचन का निष्पादन करने के लिए तैयार अथवा इच्छुक नहीं है ।

उपर्युक्त वर्णित मामले यदि दोनों 'पक्षकारों को पारस्परिक वचनों का निष्पादन एक साथ करना होता, तो 'अ' अपनी कार 'ब' को देने के लिए तब तक बाध्य नहीं है, जब तक 'ब' 100000 रुपये देने को तैयार या इच्छुक नहीं हो ।

(2) **शर्तयुक्त पारस्परिक वचन** (Conditional Reciprocal Promises) -शर्तयुक्त पारस्परिक वचन ऐसे वचन होते हैं जिनके अन्तर्गत एक पक्षकार द्वारा वचन का निष्पादन, दूसरे पक्षकार द्वारा वचन का निष्पादन हो जाने पर निर्भर करता है । इसके अन्तर्गत अनुबन्ध का एक पक्षकार अपने वचन का निष्पादन करने के लिए तभी उत्तरदायी होता है, जब कि दूसरा पक्षकार अपने वचन का निष्पादन कर दे । इसके सम्बन्ध में नियम इस प्रकार है ।

(i) **जहाँ पारस्परिक वचनों के निष्पादन का कम स्पष्ट रूप से निश्चित है** (Where the order of the Performance of Reciprocal Promises is Expressly Fixed) - **धारा 52** के अनुसार जब पारस्परिक वचनों के निष्पादन का कम अनुबन्ध के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से निश्चित है, तो उसी क्रम में उनका निष्पादन किया जाना चाहिए।

यदि अनुबन्ध में पारस्परिक वचनों के निष्पादन के क्रम का उल्लेख नहीं है, तो उसी क्रम में उनका निष्पादन किया जाना चाहिए जो व्यवहार की प्रकृति के अनुसार वांछित हों ।

(ii) **किसी पक्ष द्वारा अनुबन्ध के निष्पादन में व्यवधान डालने पर उत्तरदायित्व** (Liability of Party Preventing the Performance of Contract) - **धारा 53** के अनुसार पारस्परिक वचनों के निष्पादन में अनुबन्ध का एक पक्षकार यदि दूसरे पक्षकार को उसके वचन

के निष्पादन में रुकावटें डालता है, तो जिस पक्षकार को निष्पादन से रोका गया है, अनुबन्ध उसकी इच्छा पर व्यर्थनीय होगा अर्थात् वह पक्षकार चाहे तो उसे प्रवर्तनीय करा सकेगा व चाहे तो निरस्त करा सकेगा ।

उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' के मकान में रंग रोगन का 4000 रुपये में अनुबन्ध करता है । 'अ' जब सामान लेकर 'ब' के मकान पर पहुँचता है तो वह दरवाजा ही नहीं खोलता या उसके कार्य प्रारम्भ करने के बाद उसके सामान को उठाकर फैंक देता है, तो अनुबन्ध 'ब' की इच्छा पर व्यर्थनीय होगा ।

(iii) **पहले निष्पादित किए जाने वाले वचन में चूक का प्रभाव** (Effects Default as to the Performance of First Performed) - धारा 54 के अनुसार जब किसी अनुबन्ध में ऐसे पारस्परिक वचन हैं कि उनमें से एक को तभी निष्पादित किया जा सकता है, जबकि दूसरा पक्षकार अपने वचन का निष्पादन कर दे । अत : जिस पक्षकार को पहले अपने वचन का निष्पादन करना था, वह निष्पादन से चूक जाता है तो ऐसा वचनदाता वचनग्रहीता से उसके वचन के निष्पादन की मांग नहीं कर सकता एवं इसके कारण वचनग्रहीता को जो हानि होती है, उसकी पूर्ति करने के लिए वचनदाता बाध्य होगा । उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' का ट्रक दिल्ली से जयपुर तक उसका माल ढोने के लिए किराये पर लेता है । 'अ' ट्रक के लिए कोई माल नहीं देता । ऐसी स्थिति में 'ब' को जो किराये की क्षति हुई है, उसकी पूर्ति करने के लिए 'अ' बाध्य होगा ।

(iv) **वैधानिक एवं कुछ अवैधानिक कार्य करने के पारस्परिक वचन** (Reciprocal Promises to do things Legal and also other things Illegal) - धारा 57 के अनुसार यदि पक्षकार पारस्परिक वचन वाला ऐसा अनुबन्ध करते हैं जिनमें प्रथमत: कुछ किए जाने वाले कार्य वैधानिक हैं, द्वितीयत: कुछ निर्दिष्ट परिस्थितियों में किए जाने वाले कार्य अवैधानिक हैं, तो वचनों का पहला समूह अनुबन्ध कहलाएगा व दूसरा वचनों का समूह व्यर्थ होगा । उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' को एक दुकान 10000 रुपये में विक्रय करने का ठहराव करता है, यदि 'ब' उस दुकान का प्रयोग जुआघर के रूप में करता है, तो वह 'अ' को 50000 रुपये देगा । इस मामले में 10000 रुपये में दुकान बेचने का ठहराव अनुबन्ध है, जबकि 50000 रुपये जुआघर के लिए दुकान बेचने का ठहराव व्यर्थ होगा ।

(v) **वैकल्पिक वचन जिसका एक भाग अवैधानिक हो** (Alternative Promises where one Branch being Illegal) - धारा 58 के अनुसार ऐसा पारस्परिक वचन जिसका एक भाग वैध हो व दूसरा अवैधानिक हो, तो केवल वैध भाग प्रवर्तनीय होगा ।

उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' को 1000 रुपये देने का ठहराव करता है, जिसके बदले 'ब' 'अ' को चावल या तस्करी से लाई गई अफीम देगा । इस मामले में चावल देने का ठहराव वैध होगा, जबकि अफीम का ठहराव अवैधानिक होने के कारण व्यर्थ होगा ।

6.8 'समय' अनुबन्ध का सार तत्त्व होने पर निश्चित समय में अनुबन्ध के निष्पादन में असफल रहने का प्रभाव

अनुबन्ध में 'समय' सार रूप में : एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि यदि अनुबन्ध का निष्पादन निर्धारित समय पर नहीं हो सके तो इसका क्या प्रभाव होगा? यह इस बात पर निर्भर करता है कि समय अनुबन्ध का सार है अथवा नहीं । यदि समय अनुबन्ध का सार है और अनुबन्ध निर्धारित समय पर निष्पादित नहीं किया जाता तो दूसरा पक्षकार यह मान सकता है कि अनुबन्ध का खण्डन कर दिया गया है । किसी अनुबन्ध में 'समय' अनुबन्ध का सार है अथवा नहीं यह प्रश्न अनुबन्ध की शर्तों, व्यवहार की प्रकृति एवं पक्षकारों के व्यवहार द्वारा निश्चित किया जा सकता है । अनुबन्ध में ' समय ' सार रूप में है, इस सम्बन्ध में भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में निम्न व्यवस्थायें है -

(अ) जब ' समय ' अनुबन्ध का सार हो तो अनुबन्ध को निश्चित समय में पूरा न करने का प्रभाव यह होगा कि अनुबन्ध अथवा उसका उतना भाग जो निर्दिष्ट समय में पूरा नहीं किया गया है, वचनग्रहीता की इच्छा पर व्यर्थनीय हो जाता है । लेकिन यदि वचनग्रहीता ने विलम्ब से किये गये निष्पादन को स्वीकार कर लिया है तो ऐसी दशा में वह विलम्ब से निष्पादन के आधार पर अनुबन्ध का खण्डन नहीं कर सकता एवं हर्जाने के लिये दावा नहीं कर सकता है ।

(ब) यदि ' समय ' अनुबन्ध का सार तत्व नहीं है तो निश्चित समय पर अनुबन्ध का निष्पादन न होने पर अनुबन्ध वचनग्रहीता की इच्छा पर व्यर्थनीय नहीं होगा परन्तु निश्चित समय पर अनुबन्ध का निष्पादन न होने पर वचनग्रहीता को यदि कोई हानि हुई हो तो वह वचनदाता से क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी है ।

(स) निर्धारित समय के अतिरिक्त किसी अन्य समय के निष्पादन को यदि वचनग्रहिता स्वीकार कर लेता है तो निर्धारित समय पर अनुबन्ध के पूरा न होने के कारण हुई किसी हानि की क्षतिपूर्ति की मांग नहीं कर सकता, परन्तु यदि विलम्ब से किये गये निष्पादन को स्वीकार करते समय यदि वचनग्रहीता ने वचनदाता से क्षतिपूर्ति की मांग के साथ सहमति दी हो तो वह हर्जाना प्राप्त कर सकता है ।

धारा 55 के अनुसार जब अनुबन्ध का एक पक्षकार किसी कार्य का निष्पादन एक निश्चित समय अथवा उससे पहले पूरा करने का वचन देता है किन्तु ऐसा करने में असफल रहता है तो वचन का वह भाग जिसका निष्पादन नहीं हुआ है, वचनग्रहीता की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है, यदि पक्षकारों का अभिप्राय यह था कि समय अनुबन्ध का सार तत्व है ।

6.9 भुगतानों का नियोजन

व्यापार की सामान्य प्रगति में क्रेता व विक्रेता अनेक व्यवहार करते हैं । व्यापारिक व्यवहार के फलस्वरूप चुकायी जाने वाली राशि यदि केवल एक ही व्यवहार से सम्बन्धित है, तो उसके भुगतान के नियोजन अर्थात् समायोजन में कोई कठिनाई नहीं आती । लेकिन व्यापारिक व्यवहारों की शृंखला होने पर जब एक ऋणी को अनेक ऋणों का भुगतान करना

हो, तब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि उसके द्वारा चुकायी गई राशि का समायोजन ऋणदाता किस ऋण की राशि से करें । इन्हीं कठिनाइयों का समाधान अनुबन्ध अधिनियम की धारा 59 सं 61 तक के निम्नलिखित प्रावधान करते हैं।

(1) **नियोजन के लिए स्पष्ट या गर्भित सूचना** (Expressed or Implied Instruction for Appropriation) - **धारा 59** के प्रावधानों के अनुसार यदि ऋणी ने ऋण के नियोजन के लिए स्पष्ट निर्देश दिया है तो उसके द्वारा दी गई धनराशि का नियोजन ऋणदाता को उसी के अनुसार करना होगा । उदाहरण के लिए ऋणी ऋणदाता को यह स्पष्ट निर्देश देता है कि वह उसके द्वारा दिए जा रहे 50000 रुपये की राशि का नियोजन 1 जनवरी, 2007 के व्यवहार हेतु करें, तो ऋणदाता को इसी के अनुसार उसका नियोजन करना होगा ।

ऋणी यद्यपि स्पष्ट निर्देश नहीं देता वरन् भुगतान की परिस्थितियों के आधार पर यदि यह सुनिश्चित होता हो कि दिया गया भुगतान अमुक ऋण के लिए है तो ऋणदाता को उसी ऋण के लिए उसका समायोजन करना चाहिए ।

(2) **स्पष्ट या गर्भित सूचना के अभाव में नियोजन** (In the lack of Expressed or Implied Instruction for Appropriation) -ऋणी दी गई धनराशि के सम्बन्ध में यदि कोई स्पष्ट निर्देश ऋणदाता को नहीं देता, न ही परिस्थितियों से यह गर्भित रूप से प्रकट होता है कि उसके द्वारा दी गई धनराशि का सम्बन्ध किस ऋण से है, तो ऐसी स्थिति में **धारा 60** के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए ऋणदाता ऋण से प्राप्त राशि का नियोजन किसी भी ऋण की राशि के लिए कर सकता है, भले ही वह ऋण लिमिटेशन एक्ट के प्रावधानों के अनुसार कालबाधित हो या नहीं । साथ ही ऋणदाता अपने नियोजन में उस समय तक परिवर्तन करने के लिए स्वतन्त्र है, जब तक वह नियोजन की सूचना ऋणी को नहीं भेज देता ।

(3) **किसी भी पक्षकार द्वारा नियोजन नहीं किए जाने पर** (Where Neither Party Appropriates) - धारा 61 के अनुसार यदि कोई भी पक्षकार अर्थात् ऋणी व ऋणदाता भुगतान का नियोजन नहीं करता, तो ऋणी द्वारा दी गई धनराशि का नियोजन समय के क्रम में (In order of time) किया जाएगा, अर्थात् जो ऋण पहले देय है, उसका नियोजन पहले किया जाएगा, भले ही वह ऋण लिमिटेशन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार काल-बाधित हो चुका हो । यदि ऋण एक ही तारीख को देय हो तो ऋणी द्वारा दी गई राशि का नियोजन ऋणों की राशि के अनुपात में किया जाएगा ।

(4) **ब्याज का नियोजन** (Appropriation of Interest) -यदि ऋणी धनराशि का भुगतान करते समय ऋणदाता को यह नहीं बताता कि यह राशि मूलधन के लिए है या व्याज के लिए तो उसके द्वारा दी गई राशि का नियोजन सबसे पहले देय ब्याज की राशि के लिए किया जाएगा, यदि इसके पश्चात् कोई धनराशि शेष रह जाती है, तो उसे मूलधन के लिए समायोजित किया जाएगा ।

6.10 अनुबन्धों की समाप्ति

अनुबन्ध का निर्माण होने के पश्चात् पक्षकार अपने दायित्वों के निष्पादन के लिए बाध्य होते हैं । अनुबन्ध के निर्माण से पक्षकारों के जो वैधानिक उत्तरदायित्व उत्पन्न होते हैं, उनका

अन्त अनुबन्धों की समाप्ति से ही होता अनुबन्धों की समाप्ति अनेक विधियों द्वारा की जा सकती है, जिन्हें निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है-

(1) **वचन के निष्पादन द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति** (Discharge of Contract by Performance of Promise)-यह अनुबन्ध को समाप्त करने की सबसे स्वाभाविक विधि है । अनुबन्ध के पक्षकार यदि पारस्परिक वचनों का निष्पादन कर देते हैं तो अनुबन्ध स्वत: ही समाप्त हो जाएगा ।

(2) **खण्डन द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति** (Discharge of Contract by Revocation) - धारा 39 के प्रावधानों के अनुसार यदि अनुबन्ध का एक पक्षकार अपने वचन का निष्पादन करने से मना कर दे या उसके आचरण से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका वचन को निष्पादन करने का विचार नहीं है, तो दूसरे पक्षकार को यह अधिकार है कि वह अनुबन्ध को खण्डित हुआ समझ ले । ऐसी स्थिति में उसे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए वाद दायर करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है ।

अनुबन्ध खण्डन के प्रकार (Types of Revocation of Contract) - अनुबन्ध का खण्डन दो प्रकार से किया जा सकता है, प्रथम वास्तविक खण्डन एवं द्वितीय प्रत्याशित या रचनात्मक खण्डन । इनका वर्णन इस प्रकार है

(i) **वास्तविक खण्डन-**अनुबन्ध के निष्पादन के नियत समय या उसे पूरा करते समय कोई पक्षकार यदि अनुबन्ध के अधीन वर्णित अपने उत्तरदायित्वों की पूर्ति करने में असफल रहता है अथवा निष्पादन करने से मना कर देता है, तो यह वास्तविक खण्डन कहलाएगा । ऐसा खण्डन अनुबन्ध के किसी भी पक्षकार द्वारा किया जा सकता है ।

(ii) **अग्रिम अथवा रचनात्मक खण्डन-** अनुबन्ध के निष्पादन के निश्चित समय से पूर्व ही यदि कोई पक्षकार अपने शब्दों, व्यवहार या आचरण के द्वारा स्पष्ट या गर्भित रूप से अनुबन्ध का निष्पादन नहीं करने का विचार व्यक्त करता है, तो यह रचनात्मक खण्डन कहलाता है । रचनात्मक खण्ड स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है ।

अनुबन्ध खण्डन का प्रभाव-जब एक पक्षकार ने अपने वचन का निष्पादन करने से मना कर दिया है या वह निष्पादन के लिए स्वयं को असमर्थ बना देता है तो दूसरे पक्षकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अनुबन्ध का खण्डन कर दे।

(3) **पारस्परिक सहमति द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति** (Discharge of Contract by Mutual Consent) -ठहरावों का निर्माण ही पारस्परिक सहमति के आधार पर होता है, उसी प्रकार पक्षकार आपसी सहमति से इसे समाप्त करने के लिए भी स्वतन्त्र हैं । पारस्परिक सहमति के अन्तर्गत निम्नलिखित विधियों के द्वारा अनुबन्ध को समाप्त किया जा सकता है ।

(i) **नवीनीकरण द्वारा** (By Novation) -पक्षकार यदि विद्यमान अनुबन्ध के स्थान पर कोई नया अनुबन्ध कर लेते हैं तो यह नवकरण कहलाएगा । ऐसा नवकरण दो विधियों के द्वारा किया जा सकता है, **प्रथम** विद्यमान अनुबन्ध के स्थान पर नया अनुबन्ध करना व **द्वितीय** विद्यमान पक्षकारों के स्थान पर नये पक्षकारों का जुड़ना, जबकि मूल अनुबन्ध अपरिवर्तित रहता है । यह महत्त्वपूर्ण है कि विद्यमान अनुबन्ध के स्थान पर यदि नया अनुबन्ध किया जाता है तो नया अनुबन्ध वैध होना चाहिए ।

(ii) **परिवर्तन द्वारा** (By Alteration) - अनुबन्ध के पक्षकार पारस्परिक सहमति से अनुबन्ध की महत्त्वपूर्ण शर्तों में परिवर्तन कर सकते हैं । यह ध्यान रखने योग्य बात है कि यदि परिवर्तित अनुबन्ध किसी कारण से अप्रवर्तनीय या अवैधानिक है तो पुराने पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकेंगे ।

(iii) **अधिकार त्याग अथवा छुटकारे द्वारा** (By Remission or Vaiver) - अनुबन्ध के पक्षकार आपसी सहमति द्वारा मूल अनुबन्ध में उत्पन्न अपने अधिकारों को त्याग सकते हैं । ऐसा करने पर अनुबन्ध किसी भी पक्षकार पर लागू नहीं होगा । यदि एक ही पक्षकार को अनुबन्ध के वचन को पूरा करना बाकी हो तो भी दूसरा पक्षकार अपने अधिकार का त्याग कर सकता है ।

जब अनुबन्ध का एक पक्षकार अपने वचन का निष्पादन कर चुका हो व दूसरे पक्षकार को वचन निष्पादन करना बाकी हो तो वचनग्रहीता निष्पादन को पूर्ण रूप या आशिक रूप से त्याग सकता है, वचन के निष्पादन का समय बढ़ा सकता है या उसके स्थान पर जो भी उचित समझे उसे स्वीकार कर सकता है ।

(iv) **सन्तुष्टि द्वारा** (By Satisfaction) -इसके अन्तर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को नया प्रतिफल प्रदान करता है । अनुबन्ध का दूसरा पक्षकार नये प्रतिफल के बदले मूल अनुबन्ध के अधीन प्राप्त अपने अधिकारों को छोड़ देता है । उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' का 10000 रुपये का ऋणी है 'स' 'ब' को 5000 रुपये प्रदान करता है व 'ब' इसे 'अ' के विरुद्ध अपनी बकाया राशि के पूर्ण भुगतान के रूप में स्वीकार कर लेता है । 'स ' द्वारा ऐसा भुगतान सारे दावे का अन्त कर देगा ।

(4) **समय बीत जाने से** (By Lapse of Time) - **भारतीय लिमिटेशन अधिनियम** के प्रावधानों के अनुसार एक पक्षकार 3 वर्ष की अवधि में अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए अनुबन्ध को प्रवर्तित करा सकते हैं । यदि वचन के निष्पादन में ' समय ' सार तत्व था व एक पक्षकार निर्दिष्ट समय में अपने वचन का निष्पादन करने में असमर्थ रहता है तो दूसरा पक्षकार अनुबन्ध को अप्रवर्तनीय करा सकता है ।

(5) **राजनियम की व्यवस्थाओं के द्वारा** (By Operation of Law) -राजनियम की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत निम्नलिखित स्थितियों में अनुबन्ध समाप्त हो जाते हैं ।

(i) यदि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की सहमति के बिना लिखित ठहराव में अनाधिकृत परिवर्तन कर देता है एवं ऐसा परिवर्तन महत्त्वपूर्ण विषय-वस्तु के सम्बन्ध में हो तो अनुबन्ध समाप्त हो जाता है ।

(ii) यदि अनुबन्ध का निष्पादन व्यक्तिगत चातुर्य, निपुणता व दक्षता पर आधारित है और सम्बन्धित पक्षकार की मृत्यु हो जाती है ।

(iii) दिवालिया (Insolvency) सरकारी प्रापक से **" मुक्ति प्रमाण पत्र "**प्राप्त करने के पश्चात् दिवालिया होने से पूर्व में लिए गए सभी ऋणों के उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाता है ।

(iv) कोई लिखित दस्तावेज खो जाता है तो उसके पश्चात् उसके अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों को एक पक्षकार दूसरे पक्षकार के विरुद्ध प्रवर्तित नहीं करा सकता है ।

(6) **असम्भवता द्वारा अनुबन्धों की समाप्ति** (Discharge of Contract by Impossibility)- अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 56** के अनुसार असम्भव कार्यो के लिए किए गए ठहराव व्यर्थ होते हैं, इसलिए जो कार्य प्रारम्भ से ही असम्भव हैं जैसे आसमान से तारे तोड़ कर लाना । कई बार ठहराव करते समय तो वह कार्य सम्भव था, परन्तु बाद में किसी कारण से, आकस्मिकता से, परिस्थिति में परिवर्तन के कारण असम्भव हो जाता है, तो जिस समय से वह कार्य असम्भव हो जाता है, उसी समय से अनुबन्ध समाप्त हो जाता है । ऐसी परिस्थितिजन्य असम्भवता निम्नलिखित अवस्थाओं में उत्पन्न हो सकती है-

(i) **राजनियम में परिवर्तन** (Change of Law) -पक्षकारों द्वारा अनुबन्ध करने के पश्चात् यदि राजनियम में कोई परिवर्तन हो जाता है, जिससे अब अनुबन्ध के पक्षकार अपने वचनों का निष्पादन नहीं कर सकते हों, तो ऐसे कार्यो के लिए किए गए अनुबन्ध व्यर्थ हो जाएँगे । उदाहरण के लिए 'अ' ने 'ब' से एक जमीन को क्रय करने का ठहराव किया, बाद में उस भूमि का सरकार द्वारा अधिग्रहण कर लिया गया । भूमि क्रय का यह ठहराव व्यर्थ हो जाएगा ।

(ii) **किसी विशेष घटना का नहीं घटित होना** (On the non Happening of Event) - यदि किसी घटना विशेष के घटित होने पर अनुबन्ध निर्भर हो व बाद में उस घटना का घटित होना असम्भव हो जाए तो अनुबन्ध समाप्त हो जाएगा । उदाहरण के लिए एक वाद में एक व्यक्ति ने दूसरे का मकान एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक का जुलूस देखने के लिए किराये पर लिया । एडवर्ड सप्तम के बीमार पड़ जाने के कारण जुलूस न निकलने पर न्यायालय ने अनुबन्ध को व्यर्थ घोषित कर दिया ।

(iii) **युद्धजनित असम्भवता** (Impossibility Due to War) -युद्ध छिड़ जाने पर शत्रु देश के व्यक्तियों के साथ किए गए अनुबन्ध व्यर्थ होते हैं । युद्ध पूर्व किए गए अनुबन्धों का निष्पादन युद्ध काल तक स्थगित रहता है । जिन्हें युद्ध के पश्चात् प्रवर्तित कराया जा सकता है, बशर्ते युद्ध अल्पकाल के लिए चले ।

(iv) **विषय-वस्तु नष्ट हो जाना** (Destruction of Subject Matter) -जिस विषय के सम्बन्ध में अनुबन्ध किया गया है यदि वही नष्ट हो जाता है तो अनुबन्ध स्वत: ही समाप्त हो जाएगा । उदाहरण के लिए 'अ' ने 'ब' के मकान को क्रय करने का अनुबन्ध किया, अनुबन्ध के निष्पादन से पूर्व ही मकान प्राकृतिक आपदा के कारण नष्ट हो गया तो अनुबन्ध स्वत: ही समाप्त हो जाएगा ।

(v) **वचनदाता की मृत्यु होने पर** (On the Death of Promisor) -यदि अनुबन्ध के निष्पादन मे वचनदाता को अपनी निपुणता, व्यक्तिगत कौशल का उपयोग करना था, तो उसकी मृत्यु होते ही अनुबन्ध समाप्त हो जाएगा।

अपवाद (Exceptions) -कई बार परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि एक पक्षकार के लिए अपने वचन या कार्य का निष्पादन कठिन हो जाता है, परन्तु इसे असम्भव नहीं माना जाता । निम्नलिखित परिस्थितियों असम्भवता के क्षेत्र में नहीं आएँगी-

(1) माल के मूल्यों में वृद्धि होना, लाभ के अवसरों में कमी हो जाने को निष्पादन की असंभवता नहीं माना जावेगा।

(2) हड़ताल, तालाबन्दी, दंगा, फसाद, घेराव के कारण अनुबन्ध के निष्पादन में कठिनाई, निष्पादन की असंभवता नहीं है।

(3) पक्षकार की स्वयं की त्रुटि, गलती से उत्पन्न असम्भवता,

(4) तीसरे पक्षकार त्रुटि या चूक से उत्पन्न असम्भवता ।

परिस्थितिजन्य असम्भवता के प्रभाव

(i) जब अनुबन्ध असम्भव या अवैधानिक हो जाता है, तो उसी समय से वह व्यर्थ हो जाएगा ।

(ii) ऐसे अनुबन्ध के अन्तर्गत यदि एक पक्षकार ने कोई लाभ पाया है तो उस लाभ को उसे दूसरे पक्षकार को लौटाना होगा ।

(7) **व्यर्थनीय अनुबन्धों की समाप्ति** (Termination of Voidable Contracts) - व्यर्थनीय अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थ होते हैं । यदि अनुबन्ध के एक पक्षकार ने दूसरे पक्षकार से कोई लाभ प्राप्त किया है, तो उसे भी वह वापस लौटाने के लिए बाध्य होता है ।

6.11 अनुबन्ध भंग का अर्थ

अनुबन्ध के भंग से अभिप्राय, अनुबन्ध के एक पक्षकार द्वारा अपने निर्दिष्ट उत्तरदायित्व या वचन का निष्पादन नहीं करना अथवा इनकी पूर्ति के लिए स्वयं को अयोग्य बना लेने से है ।

अनुबन्ध भंग के मूल तत्व इस प्रकार है ।

(1) इसके अन्तर्गत अनुबन्ध का एक पक्षकार तो अपने निर्दिष्ट वचन या उत्तरदायित्व को पूरा करने को तत्पर होता है । लेकिन अनुबन्ध का दूसरा पक्षकार अपने निर्दिष्ट वचन या उत्तरदायित्व की पूर्ति से मना कर देता है ।

(2) यदि एक पक्षकार स्वयं को इस प्रकार अयोग्य बना लेता है, जिससे वह अपने निर्दिष्ट वचन या उत्तरदायित्व का निर्वहन नहीं कर सके तो यह भी अनुबन्ध भंग माना जावेगा।

(3) अनुबन्ध खण्डन की स्थिति में पीड़ित पक्षकार को राजनियम ने पर्याप्त सुरक्षा प्रदान कर रखी है ।

(4) अनुबन्ध को खण्डित करने वाला पक्षकार खण्डन के फलस्वरूप अपने वैधानिक दायित्वों से मुक्त नहीं हो जावेगा।

(5) एक पक्षकार अनुबन्ध को समाप्त करने की विधि के रूप में भी इसका प्रयोग कर सकता है ।

6.12 अनुबन्ध भंग की स्थिति में पीड़ित पक्षकार को प्राप्त अधिकार

एक पक्षकार के द्वारा अनुबन्ध भंग कर दिए जाने पर पीड़ित पक्षकार को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते है।

(1) निषेधाज्ञा के लिए दावा

(2) निर्दिष्ट निष्पादन की मांग

(3) निष्पादन से मुक्ति

(4) अर्जित परिणाम के आधार पर पारिश्रमिक के लिए दावा

(5) हानि या नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए दावा

(1) **निषेधाज्ञा के लिए दावा** (Claim for Injunction) -निषेधाज्ञा का प्रयोग पीड़ित पक्षकार कर सकता है । अनुबन्ध के एक पक्षकार ने जिन कार्यो से अलग रहने या नहीं करने का वचन दिया है व बाद में वह अलग रहने के वचन का पालन नहीं करता तो पीड़ित पक्षकार उसे उस कार्य को करने से रोकने हेतु न्यायालय में आवेदन कर सकता है । न्यायालय पीड़ित पक्षकार के आवेदन पर सन्तुष्ट होने के पश्चात् निषेधाज्ञा जारी कर देता

उदाहरण के लिए 'अ' एक नर्तकी एक थियेटर के प्रबन्धक 'ब' के साथ एक माह तक उसके थियेटर में नृत्य करने का अनुबन्ध करती हैं, साथ ही वह यह वचन भी देती है कि इस अवधि में वह अन्यत्र कहीं नहीं नाचेगी । सात दिन के पश्चात् 'अ' अन्यत्र नाचना चाहती है तो ऐसी स्थिति में 'ब' अन्यत्र कहीं नृत्य नहीं करने के वचन के अनुसार वह न्यायालय में आवेदन करके निषेधाज्ञा प्राप्त कर सकता है । यदि 'अ' केवल अनुपस्थित रहती है तो 'ब'क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है ।

(2) **निर्दिष्ट निष्पादन की मांग-** अनुबन्ध भंग की दशा में पीड़ित पक्षकार निर्दिष्ट निष्पादन की मांग कर सकता है । निर्दिष्ट निष्पादन से तात्पर्य अनुबन्ध के पक्षकारों द्वारा अनुबन्ध को वास्तविक एवं मूल रूप में पूरा करने से है ।

'निर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम' (Specific Relief Act) के अनुसार मामले की परिस्थिति को देखते हुए मौद्रिक क्षतिपूर्ति यदि अपर्याप्त है तो पीड़ित पक्षकार न्यायालय में आवेदन करके दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध को मूल रूप में निष्पादन हेतु बाध्य कर सकता है । परन्तु न्यायालय निम्नलिखित स्थितियों में निर्दिष्ट निष्पादन का आदेश नहीं देता है-

(i) जबकि निष्पादन व्यक्तिगत सेवा से सम्बन्धित हो;

(ii) जबकि अनुबन्ध में प्रतिफल का अभाव हो;

(iii) जबकि अनुबन्ध के निष्पादन का आकलन सम्भव न हो;

(iv) जबकि निर्दिष्ट निष्पादन के लिये आदेश देना न्यायपूर्ण न हो;

(v) जबकि मौद्रिक रूप में क्षतिपूर्ति उचित एवं पर्याप्त हो;

(vi) जबकि वास्तविक क्षति का आकलन आसानी से किया जा सके;,

उदाहरण के लिए 'अ' एक अति सुन्दर पेंटिंग 'ब' से 2000 रुपये में खरीदने का अनुबन्ध करता है । 'ब' विक्रय करने से मना कर देती है । ऐसी स्थिति में विशेष सहायता अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार 'अ' अनुबन्ध के निष्पादन के लिए 'ब' को बाध्य करने हेतु दावा कर सकता है ।

(3) **निष्पादन से मुक्ति** (Exoneration) -यदि अनुबन्ध का एक पक्षकार अपने वचन का निष्पादन नहीं करता है तो दूसरा पक्षकार अपने वचन के निष्पादन से स्वत: ही मुक्त हो जाता है । यदि पीड़ित पक्षकार हर्जाने के लिए या अनुबन्ध के लिए दूसरे पक्षकार पर दावा प्रस्तुत नहीं

करता अर्थात् शान्त रहता है तो उसे अपने वचन के निष्पादन की आवश्यकता नहीं है व वह निष्पादन से मुक्त हो जाता है ।

'अ' 'ब' को अपना मकान एक निर्धारित अवधि तक 'ब' द्वारा पेशगी 1, 00,000 रुपये दिए जाने पर विक्रय करने का अनुबन्ध करता है । ' ब ' निर्धारित अवधि तक 1, 00,000 रुपये 'अ' को नहीं देता हो 'अ' उसे मकान विक्रय करने के वचन से मुक्त हो जावेगा ।

(4) **अर्जित परिणाम अथवा उचित पारिश्रमिक के लिए दावा -** अर्जित परिणाम "Quantum Meruit" एक लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है कि " किसी व्यक्ति को उतना धन देना है जितना कि उसने कमाया है । " सामान्य शब्दों में यह नियम यह बतलाता है कि जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को उसकी प्रार्थना पर कोई वस्तु देता है अथवा काम करता है और यदि उसके लिये पहले से कोई मूल्य तय नहीं है, तो उसे न्याय की दृष्टि से उचित मूल्य या पारिश्रमिक मिलना चाहिए ।

उचित पारिश्रमिक के लिये दावा- अर्जित परिणाम के आधार पर उचित पारिश्रमिक के लिए पीड़ित पक्षकार द्वारा दावा निम्नलिखित परिस्थितियों में किया जा सकता है ।

(i) जब एक पक्षकार ने दूसरे पक्षकार की प्रार्थना पर कोई वस्तु प्रदान की है ।

(ii) जब कोई व्यक्ति शुल्क प्राप्त करने की भावना से स्वेच्छापूर्वक कोई कार्य दूसरे व्यक्ति के लिए करता है तो धारा 70 के अनुसार उसे उचित पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार होगा ।

(iii) किसी अनुबन्ध के आशिक निष्पादन की स्थिति में अर्जित परिणाम के आधार पर अर्जित राशि को प्राप्त किया जा सकता है । उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' को 100 बोरी गेहूँ विक्रय करने का अनुबन्ध करता है, 'अ' 80 बोरी गेहूँ तो विक्रय कर देता है शेष 20 बोरी के लिए मना कर देता है । 'अ' 20 बोरी गेहूँ की राशि अर्जित परिणाम के आधार पर प्राप्त करने का अधिकार रखता है ।

क्रियान्वयन की शर्तें -इसके अनुसार उचित पारिश्रमिक एक पक्षकार निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति करने की स्थिति में ही प्राप्त कर सकेगा ।

(i) एक पक्षकार दूसरे पक्षकार के लिए जो कार्य करता है, उसका कुछ मौद्रिक मूल्य आवश्यक होना चाहिए ।

(ii) जो पक्षकार अर्जित परिणाम के आधार पर पारिश्रमिक की मांग कर रहा है वह अनुबन्ध खण्डन का दोषी नहीं हो ।

(iii) जब पूरा कार्य करने हेतु एक पक्षकार को कोई निश्चित धन राशि प्राप्त होनी हो तो ऐसी स्थिति में कार्य को पूरा करने से पूर्व वह पक्षकार अर्जित परिणाम के आधार पर धन राशि की माँग नहीं कर सकता । उदाहरण के लिए 'अ' नामक ठेकेदार ने एक किमी. लम्बी सडक बनाने का अनुबन्ध किया; यदि वह उसे बीच में ही अधूरा छोड़ देता है, तो अर्जित परिणाम के आधार पर धन राशि के लिए दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता ।

(iv) यदि अनुबन्ध का विभिन्न भागों में विभाजन सम्भव है व प्रत्येक भाग का मूल्यांकन किया जाना सम्भव हो तो कार्य के निष्पादित किए गए भाग के लिए उचित धन राशि प्राप्त करने का अधिकार दोषी पक्षकार को होगा।

(5) **हानि या नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए दावा -**हानि की क्षतिपूर्ति से अभिप्राय एक पक्षकार द्वारा अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने वचन का निष्पादन नहीं करने पर दूसरे पक्षकार को पहुँची क्षति की मौद्रिक रूप में पूर्ति किए जाने से है । पीड़ित पक्षकार को यह अधिकार है कि वह अनुबन्ध का खण्डन किए जाने पर दोषी पक्षकार से क्षतिपूर्ति प्राप्त करें।

नुकसान के प्रकार -हानि से आशय अनुबन्ध भंग करने पर दोषी पक्षकार द्वारा पीड़ित पक्षकार को चुकायी जाने वाली मौद्रिक राशि से है । इसे प्राप्त करने का अधिकार पीड़ित पक्षकार को होता है । नुकसान पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है-साधारण हर्जाना, निस्तीर्ण हर्जाना, नाम मात्र का या सांकेतिक हर्जाना एवं दण्डात्मक हर्जाना आदि।

(i) **साधारण हर्जाना-**व्यापार की साधारण प्रगति में अनुबन्ध के खण्डन के परिणामस्वरूप पीड़ित पक्षकार को जो हानि स्वाभाविक रूप से होती है उसके लिए दोषी पक्षकार द्वारा दी जाने वाली राशि साधारण हर्जाने के अन्तर्गत आती है । अनुबन्ध के विक्रय मूल्य एवं बाजार मूल्य में अन्तर की स्थिति में अनुबन्ध' का निष्पादन एक पक्षकार द्वारा नहीं किए जाने पर दूसरा पक्षकार (पीड़ित पक्षकार) मूल्यान्तर की राशि हर्जाने के रूप में प्राप्त कर सकता है । उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' को 100 किलो चाय 120 रुपए प्रति किलो के भाव से विक्रय का अनुबन्ध करता है । 'अ' अनुबन्ध का नियत तिथि तक निष्पादन नहीं करता व इस बीच का भाव 150 रुपए प्रति किलो हो जाता है । 'ब' 30 रुपए प्रति किलो के हिसाब से साधारण हर्जाना 'अ' से प्राप्त करने का अधिकार रखता है ।

(ii) **विशेष हर्जाना-**यह ऐसी क्षति है जो असाधारण परिस्थितियों में किसी एक पक्षकार का विशेष लाभ, जो कि वह अनुबन्ध के निष्पादन की स्थिति में अर्जित कर सकता था, अब अनुबन्ध का खण्डन हो जाने के कारण समाप्त होने से उत्पन्न होती है । ऐसे हर्जाने का भुगतान तभी किया जाएगा जबकि विशेष परिस्थितियों या विशेष लाभ की जानकारी अनुबन्ध के दोनों पक्षकारों को थी ।

उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' को 100किलो दाल किसी निश्चित तिथि को 30 रुपए प्रति किलो विक्रय करने का अनुबन्ध करता है । 'अ' इस अनुबन्ध के निष्पादन के लिए 'स' से 100 किलो दाल 26 रुपए प्रति किलो की दर से क्रय का अनुबन्ध 'ब' को विक्रय करने की विशेष परिस्थिति को बताते हुए करता है । नियत तिथि को 'स' अनुबन्ध का निष्पादन नहीं करता, तो 'अ' 'स' से 4 रुपए प्रति किलो की दर से विशेष हर्जाना प्राप्त करने का अधिकारी है, भले ही उस दिन दाल 20 रुपए किलो ग्राम के भाव पर बाजार में उपलब्ध हो ।

(iii) **निस्तीर्ण हर्जाना-**इसमें अनुबन्ध के पक्षकार अनुबन्ध करते समय ही इस बात का पूर्वानुमान लगा लेते हैं कि अनुबन्ध खण्डन की स्थिति में संभावित क्षति कितनी राशि की होगी । इसके अनुसार त्रुटि करने वाला पक्षकार पीड़ित पक्षकार को एक निश्चित राशि हर्जाने के रूप में देने का वचन देता हे, यही निस्तीर्ण हर्जाना कहलाता है । इस प्रकार से यह एक पूर्व निश्चित हर्जाने का भुगतान है ।

(iv) **नाम मात्र का हर्जाना-**यदि मामले की परिस्थितियों को देखते हुए न्यायालय का विचार यह बनता है कि पीड़ित पक्षकार को कोई विशेष नुकसान नहीं हुआ हे, पर वे दोषी पक्षकार को भी थोड़ा बहुत दण्ड देना चाहते हैं तो नाम मात्र की अल्प राशि हर्जाने के रूप में पीड़ित पक्षकार को देने के आदेश दे सकता है । ऐसा हर्जाना सांकेतिक हर्जाने के कारण नाम मात्र का कहलाता है, क्योंकि इसका उद्देश्य केवल न्याय का सम्मान रखना हे ।

(v) **दण्डात्मक हर्जाना-**यह हर्जाना क्षतिपूर्ति के स्थान पर दोषी पक्षकार को दण्डित करने पर अधिक ध्यान देता है । ऐसे हर्जाने की मांग एक पक्षकार तभी करता है, जबकि दूसरे पक्षकार की मान-हानि या प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाता है जिसका प्रतिकूल प्रभाव उसकी व्यापारिक साख पर पड़ता हो या पड़ने की सम्भावना हो । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में दण्डात्मक हर्जाने की व्यवस्था नहीं है ।

अपवाद (Exceptions) -परन्तु निम्नलिखित दो परिस्थितियों में पीड़ित पक्षकार, दण्डात्मक हर्जाना, दोषी पक्षकार से प्राप्त करने का अधिकार रखता है-

(i) भारत में विवाह सम्बन्धी वचनों से पक्षकारों की सामाजिक प्रतिष्ठा सीधी जुड़ी हुई है ऐसे वचन को भंग करने का गम्भीर दुष्परिणाम दूसरे व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर पड़ सकता है । इसलिए विवाह करने का वचन भंग करने पर न्यायालय दण्डात्मक हर्जाने के भुगतान के आदेश दे सकता है ।

(ii) बैंक यदि खातेदार के खाते में पर्याप्त राशि होते हुए भी यदि चैक का अनादरण कर देता है तो खातेदार बैंक से दण्डात्मक हर्जाना प्राप्त कर सकता है क्योंकि चैक अनादरण का उसकी विद्यमान व्यापारिक साख पर गम्भीर प्रभाव पड़ सकता है ।

(vi) **मानसिक कष्ट व यन्त्रणा के लिए हर्जाना -**सामान्यतया मानसिक कष्ट व यन्त्रणा जो एक पक्षकार के द्वारा जो अनुबन्ध के खण्डन से दूसरे पक्षकार को पहुँचती है उसके लिए हर्जाने की कोई व्यवस्था नहीं है । परन्तु यदि कुछ विशेष परिस्थितियों में यदि पीड़ित पक्षकार को शारीरिक क्षति होती है या इससे उसे मानसिक यन्त्रणा होती है व ऐसी क्षति दुष्टतापूर्वक की गयी हो तो न्यायालय मानसिक कष्ट व यन्त्रणा के लिए हर्जाने की राशि के भुगतान का आदेश दे सकता है ।

(vii) **ब्याज के रूप में हर्जाना -** अनुबन्ध के पक्षकार निश्चित तिथि को भुगतान नहीं किए जाने पर ब्याज के भुगतान की व्यवस्था कर सकते हैं, ऐसा ब्याज विलम्ब से भुगतान का हर्जाना होता है । न्यायालय ब्याज की दर अत्यधिक होने पर इसमें उचित परिवर्तन कर सकता है । चक्रवृद्धि व्याज अनुबन्ध में स्पष्ट व्यवस्था होने पर ही लिया जा सकता है । परन्तु यदि कोई भुगतान निश्चित तिथि को लिए जाने का अनुबन्ध नहीं है, तो व्याज लिए जाने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता ।

हर्जाने की माप -हर्जाने की माप से अभिप्राय अनुबन्ध के एक पक्षकार द्वारा अनुबन्ध का खण्डन कर दिए जाने पर पीड़ित पक्षकार को पहुँची वास्तविक क्षति के मूल्यांकन से है जिससे दोषी पक्षकार को इस हानि की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सके । हर्जाने की माप के लिए निम्नलिखित नियम लागू होते हैं ।

(i) **धारा 73** के अनुसार अनुबन्ध खण्डन की स्थिति में पीड़ित पक्षकार को क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार है, यदि ऐसी क्षति अनुबन्ध भंग के कारण स्वाभाविक रूप में होती है एवं पक्षकारों को अनुबन्ध करते समय ऐसी क्षति होने का ज्ञान हो।

(ii) पीड़ित पक्षकार विशेष हर्जाने की माँग तभी कर सकता है, जबकि उसने दूसरे पक्षकार को मामले की विशेष परिस्थितियों की जानकारी दे दी थी ।

(iii) पीड़ित पक्षकार हर्जाने की माँग तभी कर सकेगा, जबकि वह हानि को कम करने के वे सभी कदम उठाता है, जिसकी अपेक्षा सामान्य बुद्धि एवं विवेक वाले व्यक्ति से की जाती है । जिस सीमा तक उसने ऐसा करने का प्रयास नहीं किया है, उसे सीमा तक वह हर्जाना पाने का हकदार नहीं होगा ।

(iv) यदि पीड़ित पक्षकार को कोई विशेष हानि नहीं हो तो उसे नाम मात्र का हर्जाना प्राप्त करने का अधिकार होगा ।

(v) दण्डात्मक हर्जाना केवल विवाह का वचन भंग करने एवं खाते में धन होने के उपरान्त भी बैंक द्वारा चैक का अनादरण करने की स्थिति में ही देय होगा ।

(vi) क्षतिपूर्ति का उद्देश्य पीड़ित पक्षकार को पहुँचे नुकसान या हानि की पूर्ति करना है, न कि दोषी पक्षकार को दण्ड देना, केवल इसके उपर्युक्त वर्णित दो अपवाद हैं ।

(vii) पीड़ित पक्षकार कुछ परिस्थितियों में शारीरिक हानि व मानसिक कष्ट व यन्त्रणा के लिए भी हर्जाना प्राप्त कर सकता है ।

(viii) साधारण हर्जाना के भुगतान का अनुबन्ध यदि किसी वस्तु के क्रय-विक्रय से सम्बन्धित है तो बाजार मूल्य व अनुबन्ध के मूल्यों में अन्तर के आधार पर हर्जाने की राशि का भुगतान किया जावेगा ।

(ix) निस्तीर्ण हर्जाना अर्थात् जहाँ पक्षकारों ने अनुबन्ध खण्डन की स्थिति में हर्जाने की राशि पहले ही निर्धारित की हुई हे, तो ऐसे मामले में हर्जाना इस निर्धारित राशि से अधिक नहीं हो सकता ।

6.13 सारांश

सम्बन्धित पक्षकार जब अपने-अपने दायित्वों का निर्वहन कर देते हैं, तो उसे अनुबन्ध का निष्पादन कहते हैं । अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 37 से 61** के अन्तर्गत अनुबन्धों के निष्पादन एवं समाप्ति के सम्बन्ध में व्यवस्थाएँ दी गई हैं । वैध अनुबन्ध में सम्बन्धित पक्षकारों द्वारा अपने- अपने वैधानिक उत्तरदायित्वों को पूरा करना अनुबन्ध का निष्पादन करना कहलाता है । ऐसा करने से अनुबन्ध पूर्ण अथवा समाप्त हो जाता है ।

अनुबन्ध अधिनियम **की धारा 37** के अनुसार " अनुबन्ध के पक्षकारों को या तो अपने वचनों का निष्पादन करना चाहिए अथवा निष्पादन का प्रस्ताव करना चाहिए जब तक ऐसे निष्पादन से इस अधिनियम या अन्य किसी राजनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत मुक्ति न दे दी गई हो । वचन के निष्पादन से पूर्व वचनदाता की मृत्यु की अवस्था में वचनदाता के उत्तराधिकारी बाध्य रहते हैं, जब तक कि अनुबन्ध से कोई विपरीत आशय प्रकट नहीं होता हों ।

धारा 38 के अनुसार जहाँ वचनदाता वचन के निष्पादन के लिए प्रस्ताव करता है, लेकिन जिसे वचनग्रहीता स्वीकार नहीं करता, तो ऐसी स्थिति में वचनदाता निष्पादन नहीं करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, न ही वह अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने अधिकारों से वंचित होता है ।

धारा 46 के अनुसार जहाँ अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने वचन का निष्पादन वचनदाता को वचनग्रहीता के आवेदन के बिना पूरा करना हो व इसके लिए कोई समय निश्चित नहीं किया गया हो तो वचन का निष्पादन उचित समय में कर दिया जाना चाहिए । उचित समय मामले की परिस्थितियों, उन तथ्यों पर जिनका ध्यान पक्षकारों को अनुबन्ध करते समय था, उस व्यापार में प्रचलित प्रथाओं पर निर्भर करेगा ।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि यदि अनुबन्ध का निष्पादन निर्धारित समय पर नहीं हो सके तो इसका क्या प्रभाव होगा? यह इस बात पर निर्भर करता है कि समय अनुबन्ध का सार है अथवा नहीं । यदि समय अनुबन्ध का सार है और अनुबन्ध निर्धारित समय पर निष्पादित नहीं किया जाता तो दूसरा पक्षकार यह मान सकता है कि अनुबन्ध का खण्डन कर दिया गया है । किसी अनुबन्ध में 'समय' अनुबन्ध का सार है अथवा नहीं यह प्रश्न अनुबन्ध की शर्तों, व्यवहार की प्रकृति एवं पक्षकारों के व्यवहार द्वारा निश्चित किया जा सकता है ।

अनुबन्ध का निर्माण होने के पश्चात् पक्षकार अपने दायित्वों के निष्पादन के लिए बाध्य होते हैं । अनुबन्ध के निर्माण से पक्षकारों के जो वैधानिक उत्तरदायित्व उत्पन्न होते हैं, उनका अन्त अनुबन्धों की समाप्ति से ही होता है । अनुबन्ध के भंग से अभिप्राय, अनुबन्ध के एक पक्षकार द्वारा अपने निर्दिष्ट उत्तरदायित्व या वचन का निष्पादन नहीं करना अथवा इनकी पूर्ति के लिए स्वयं को अयोग्य बना लेने से है ।

एक पक्षकार के द्वारा अनुबन्ध भंग कर दिए जाने पर पीड़ित पक्षकार को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते है -

(1) निषेधाज्ञा के लिए दावा
(2) निर्दिष्ट निष्पादन की मांग
(3) निष्पादन से मुक्ति
(4) अर्जित परिणाम के आधार पर पारिश्रमिक के लिए दावा
(5) हानि या नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए दावा

6.14 स्वपरख प्रश्न

1. अनुबन्ध की समाप्ति के विभिन्न प्रकाश की संक्षेप में व्याख्या कीजिए ।
2. अनुबन्ध के निष्पादन को परिभाषित कीजिए व निष्पादन के आवश्यक लक्षणों को बताइए ।
3. अनुबन्ध का निष्पादन किसके द्वारा किया जाना चाहिए?
4. अनुबन्ध के निष्पादन में समय व स्थान से सम्बन्धी प्रावधानों की व्याख्या कीजिए व यह बताइए कि समय अनुबन्ध का सार तत्व कब माना जाता है और उसके प्रभावों की विवेचना कीजिए ।

5. पारस्परिक वचनों से क्या आशय है? पारस्परिक वचनों के निष्पादन सम्बन्धी प्रावधानों की व्याख्या कीजिए।
6. संयुक्त वचनदाताओं की स्थिति में निष्पादन सम्बन्धी प्रावधानों की विवेचना कीजिए ।
7. किन परिस्थितियों में अनुबन्धों को निष्पादित कराने की आवश्यकता नहीं होती?
8. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए-
   (अ) पारस्परिक सहमति द्वारा अनुबन्धों की समाप्ति
   (ब) असम्भवता द्वारा अनुबन्धों की समाप्ति
   (स) पारस्परिक वचनों के निष्पादन का क्रम
9. भुगतानों के नियोजन सम्बन्धी प्रावधानों को स्पष्ट कीजिए ।
10. अनुबन्ध के खण्डन होने पर पीड़ित पक्षकार को जो विभिन्न उपचार उपलब्ध हैं उनका वर्णन कीजिए ।
11. उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनमें पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध के निर्दिष्ट निष्पादन की माँग कर सकता है ।
12. अर्जित परिणाम के आधार पर उचित पारिश्रमिक के सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए । इसके क्रियान्वयन की शर्तें, परिस्थितियाँ अपवादों को बताइए ।
13. हर्जाने से क्या अभिप्राय है? हर्जाने के प्रकारों व इसके माप करने सम्बन्धी नियमों की विवेचना कीजिये ।
14. अनुबन्ध खण्डन की दशा में पीड़ित पक्षकार को विभिन्न उपचारों की व्याख्या कीजिए ।

इकाई- 7

अर्द्ध अनुबन्ध (Quasi-Contract)

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 अर्द्ध अनुबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा

7.4 अर्द्ध या गर्भित अनुबन्धों के प्रकार

7.5 अनुबन्ध एवं अर्द्ध अनुबन्ध में अन्तर

7.6 सारांश

7.7 स्व-परख प्रश्न

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद निम्न बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

- अर्द्ध अनुबन्ध का अभिप्राय ।
- अर्द्ध अनुबन्ध या गर्भित अनुबन्धों के प्रकार ।
- अनुबन्ध एवं अर्द्ध अनुबन्ध में अन्तर ।

7.2 प्रस्तावना

वैध अनुबन्ध का निर्माण प्रस्ताव तथा उसकी स्वीकृति से ही होता है, परन्तु कुछ ऐसे भी अनुबन्ध हैं जो पक्षकारों के बीच बिना किसी प्रस्ताव अथवा स्वीकृति के ही हो जाते हैं । वे उसी प्रकार के दायित्व उत्पन्न करते हैं जिस प्रकार वैधानिक अनुबन्धों द्वारा उत्पन्न होते हैं । विधान इन्हें भी अनुबन्ध मानता है । इन अनुबन्धों में, साधारण रूप से वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों गे से कुछ लक्षणों की कमी रहती है । अतः ऐसे ठहराव को अंग्रेजी राजनियम के अनुसार, अर्द्ध- अनुबन्ध (Quasi contract) और भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार, 'गर्भित अनुबन्ध' (Implied Contract) या 'अनुबन्ध के समान ही कुछ सम्बन्ध' (certain relations resembling those created by contracts) कहते हैं ।

लार्ड मैन्सफील्ड ने इस प्रकार के अनुबन्धों की व्याख्या इस सिद्धान्त के आधार पर की थी कि कानून व्यक्ति को " अन्यायपूर्ण धनी होने " से रोकता है । इसका अभिप्राय यह है कि कोई भी व्यक्ति, अनुचित तरीके से किसी दूसरे व्यक्ति को हानि पहुंचाकर धनी नहीं बनने दिया जायेगा । यह निर्णय लार्ड मैन्सफील्ड ने मौसेज बनाम मेक्फरलान के विवाद में दिया है ।

वास्तव में गर्भित अनुबन्धों को अनुबन्ध नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसे अनुबन्धों का निर्माण राजनियम के द्वारा होता है जबकि अनुबन्ध का निर्माण पक्षकारों के बीच होता है ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 68 से 72 के अन्तर्गत अर्द्ध अनुबन्ध अथवा गर्भित अनुबन्धों से सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन किया गया है । इनका विधिवत् अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है ।

7.3 अर्द्ध अनुबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा

इन अनुबन्धों के अन्तर्गत दो पक्षकार प्रत्यक्ष तौर पर पारस्परिक रूप से कोई अनुबन्ध नहीं करते हैं । वस्तुत: इस प्रकार के अनुबन्धों का निर्माण किसी पक्षकार द्वारा कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में किये गये कार्यों से होता है एवं उसके द्वारा किये गये इन कार्यो से दूसरे पक्षकार पर वैधानिक दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं एवं स्वत: ही वे पक्षकार अनुबन्ध में बन्ध जाते हैं । इसी कारण इन अनुबन्धों को गर्भित अनुबन्ध कहा गया है । उदाहरण के लिये 'अ' को रास्ते में घोड़ा मिल जाता है, वह उसे घर ले जाता है । 'अ' घोड़े के मालिक को खोजने व घोड़े पर किये गये सभी उचित व्ययों को प्राप्त करने का अधिकारी होगा ।

अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार, गर्भित अनुबन्ध एक ऐसा व्यवहार है, जिसमें पक्षकारों के मध्य किसी भी प्रकार का अनुबन्ध नहीं होता, परन्तु कुछ परिस्थितियों एवं कानून के प्रावधानों के अनुसार उसमें कुछ अधिकार एवं दायित्व होते हैं । गर्भित अनुबन्ध के लक्षण इस प्रकार हैं

(i) ये अनुबन्ध, परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं ।

(ii) इनमें पक्षकारों को धन प्राप्त करने का अधिकार होता है ।

(iii) ये व्यक्ति विशेष के विरुद्ध क्रियाशील होते हैं ।

(iv) ऐसे अनुबन्ध राजनियमों के कारण उत्पन्न होते हैं ।

(v) अर्द्ध अनुबन्ध में वैध अनुबन्ध के सभी लक्षणों का होना आवश्यक नहीं है ।

7.4 अर्द्ध या गर्भित अनुबन्धों के प्रकार

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 68 से 72 के अन्तर्गत निम्नलिखित पाँच प्रकार के गर्भित या अर्द्ध अनुबन्धों का वर्णन किया गया है ।

(1) **अनुबन्ध करने में अक्षम व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति** (Necessaries Supplied to Person Incapable of Contracting) - **धारा 68** के अनुसार, अनुबन्ध करने में अक्षम व्यक्ति को कोई व्यक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, तो वह व्यक्ति अनुबन्ध करने के अक्षम व्यक्ति से उसकी सम्पत्ति में से भुगतान पाने का अधिकारी है । यदि उसके पास कोई भी सम्पत्ति नहीं है, तो आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला कुछ भी वसूल नहीं कर सकेगा । आवश्यकताओं के अन्तर्गत भोजन, वस्त्र, मकान किराया, चिकित्सा व्यय, अवयस्क की शिक्षा पर व्यय आदि सम्मिलित हैं ।

(2) **हित रखने वाले व्यक्ति द्वारा किया गया भुगतान** (Payment made by an Interested Person) - **धारा 69** के प्रावधानों के अनुसार यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए किसी ऐसी राशि का भुगतान कर देता है, जिसके भुगतान के लिए वह बाध्य नहीं है परन्तु

भुगतान करने में उसका हित निहित है । ऐसी स्थिति में दूसरे व्यक्ति के लिए जिस राशि का उसने भुगतान किया है, उसे वापस प्राप्त करने का वह अधिकारी है ।

उदाहरण के लिए 'अ' एक किरायेदार है, उसका मकान मालिक 'ब' कहीं बाहर गया हुआ है, मकान मालिक की अनुपस्थिति में आये 250 रुपये के पानी के बिल 'अ' ने जमा करा दिया । इस राशि को 'अ' को प्राप्त करने का अधिकार है, क्योंकि किए गए भुगतान में उसका हित भी निहित था, यदि वो बिल नहीं जमा कराता तो पानी के अभाव का कष्ट तो उसे ही भुगतना होता।

(3) **मूल्य लेने की भावना से किए गए स्वैच्छिक कार्य** (Voluntary but Non-gratuitous Act) - **धारा 70** के अनुसार जब कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए कोई वैधानिक कार्य करता है या उसे कोई वस्तु सुपुर्द करता है, परन्तु ऐसा कार्य वह मूल्य लेने की भावना से करता है व दूसरा व्यक्ति इस लाभ का प्रयोग कर लेता है, तो लाभ प्राप्त करने वाला व्यक्ति उस कार्य अथवा वस्तु की क्षतिपूर्ति या वापस लौटाने को बाध्य है । उदाहरण के लिए 'अ' एक फलों की टोकरी भूल से 'ब' के घर छोड़ जाता है, 'ब' उन फलों को उपयोग में ले लेता है वह 'अ' को फलों का भुगतान करने के लिए बाध्य है।

(4) **खोये हुये माल को पाने वाले का उत्तरदायित्व** (Responsibility of Finder OF Goods) - **धारा 71** के अनुसार यदि कोई व्यक्ति दूसरे का पड़ा हुआ माल पाता है व वह उस माल को अपने अधिकार में ले लेता है तो उसका उत्तरदायित्व निक्षेपग्रहीता की तरह हो जाता है अर्थात् खोये हुये माल को पाने वाले का यह दायित्व हो जाएगा कि वह उस माल के वास्तविक स्वामी का पता लगाए व वास्तविक मालिक का पता चलने पर उसे माल लौटाये व इस अवधि में माल की उचित देखभाल करे । इस देखभाल में हुए व्ययों को उसे प्राप्त करने का अधिकार होगा।

निम्न परिस्थितियों में खोये हुये माल को पाने वाला व्यक्ति माल को विक्रय करने का अधिकार भी रखता है, यदि

(i) माल के रख-रखाव व वास्तविक स्वामी को ढूँढने में वह माल के मूल्य के दो-तिहाई के बराबर खर्च कर चुका है,

(ii) समस्त प्रयासों के पश्चात् भी वास्तविक स्वामी का पता नहीं लग पाता,

(iii) माल नष्ट होने वाली प्रकृति का है या

(iv) माल के वास्तविक स्वामी का पता लग जाय और वह उसके वैध व्ययों का भुगतान करने से मना कर दे ।

माल का वास्तविक स्वामी जब तक उसे उसके द्वारा किए गए वैध व्ययों का भुगतान नहीं कर देता, तब, तक उसे माल को रोककर रखने का अधिकार है । यदि वास्तविक स्वामी ने उस माल पर कुछ इनाम की राशि घोषित की हुई है तो इनाम का राशि प्राप्त करने का भी उसे अधिकार होगा । इनाम की राशि के लिए तो माल पाने वाला वास्तविक स्वामी के विरुद्ध वाद भी चला सकता है, बशर्ते जब उसने खोई हुई वस्तु को अधिकार में लिया तब उसे घोषित इनाम की जानकारी थी ।

यह उल्लेखनीय है कि खोए माल को पाने वाले को व्ययों को वसूल करने के लिए वास्तविक स्वामी पर वाद चलाने का अधिकार नहीं होता, केवल माल को रोकने का ही अधिकार होता है ।

(5) **गलती अथवा उत्पीड़न के अन्तर्गत प्राप्त किए गए धन या प्राप्त माल का दायित्व** (Liability of Money Received or Thing Delivered Under Mistake or Coercion) - **धारा 72** के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को उत्पीड़न के प्रयोग द्वारा या गलती से कोई धन प्रदान किया गया है या वस्तु की सुपुर्दगी दी गई है तो उसे दिया गया धन या सुपुर्द की गई वस्तु को लौटाना होगा । उदाहरण के लिए 'अ' और 'ब' संयुक्त रूप से 'स' के 10000 रुपये के लिए ऋणी हैं । 'अ' 'स' को 10000 रुपये दे देता है व 'ब' भी 'स' को 10000 रुपये और दे देता है, तो 'स' गलती से, प्राप्त किए 10000 अतिरिक्त रुपये वापस लौटाने के लिए बाध्य है ।

7.5 अनुबन्ध एवं अर्द्ध अनुबन्ध में अन्तर

अनुबन्ध एवं अर्द्ध-अनुबन्ध में अन्तर को निम्नलिखित तालिका की सहायता से व्यक्त किया जा सकता है-

क्र.सं.	**अन्तर का आधार**	**अनुबन्ध**	**अर्द्ध-अनुबन्ध**
1.	अभिप्राय	राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय ठहराव अनुबन्ध कहलाता है। इसमें औपचारिक प्रस्ताव एवं स्वीकृति का होना आवश्यक है।	अर्द्ध अनुबन्ध मे पक्षकारों के मध्य अनुबन्ध निर्मित नहीं होते है । परन्तु कानून के अनुसार कुछ अधिकार एवं दायित्व उत्पन्न होते हैं।
2.	सृजन	इनका सृजन पक्षकारों की वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा से होता है ।	इनका सृजन परिस्थिति विशेष में किसी व्यक्ति द्वारा किए गए कार्य या राजनियम द्वारा होता है।
3.	पक्षकार द्वारा लाभ प्राप्त करना	अनुबन्धों में निर्माण के पश्चात् इसके निष्पादन पर अनुबन्ध के पक्षकार को लाभ प्राप्त होता है ।	अर्द्ध-अनुबन्धों का निर्माण उस समय होता है जब एक पक्षकार ने कोई लाभ या वस्तु दूसरे व्यक्ति से प्राप्त कर ली हो ।
4.	उत्तरदायित्व की उत्पत्ति	अनुबन्ध के प्रावधानों के अनुसार पक्षकारों के मध्य दायित्वों की उत्पत्ति होती है।	अर्द्ध-अनुबन्ध में पक्षकारों के दायित्वों का निर्माण अधिनियम के क्रियाशील होने से होता है ।
5.	वैध अनुबन्धन के आवश्यक लक्षणों की विद्यमानता	अनुबन्ध राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय भी तभी होता है जब उसमें वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण हो।	जबकि अर्द्ध-अनुबन्धों में वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों की विद्यमानता आवश्यक नहीं है ।

7.6 सारांश

वास्तव में गर्भित अनुबन्धों को अनुबन्ध नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसे अनुबन्धों का निर्माण राजनियम के द्वारा होता है जबकि अनुबन्ध का निर्माण पक्षकारों के बीच होता है । इन अनुबन्धों के अन्तर्गत दो पक्षकार सीधे तौर पर पारस्परिक रूप से कोई अनुबन्ध नहीं करते हैं । वस्तुत: इस प्रकार के अनुबन्धों का निर्माण किसी पक्षकार द्वारा कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में किये गये कार्यो से होता है एवं उसके द्वारा किये गये इन कार्यो से दूसरे पक्षकार पर वैधानिक दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं एवं स्वत: ही वे पक्षकार अनुबन्ध में बन्ध जाते हैं । इसी कारण इन अनुबन्धों को गर्भित अनुबन्ध कहा गया है । उदाहरण के लिये 'अ' को रास्ते में घोड़ा मिल जाता है, वह उसे घर ले जाता है । 'अ' घोड़े के मालिक को खोजने व घोड़े पर किये गये. सभी उचित व्ययों को प्राप्त करने का अधिकारी होगा ।

गर्भित अनुबन्ध एक ऐसा व्यवहार है, जिसमें पक्षकारों के मध्य किसी भी प्रकार का अनुबन्ध नहीं होता, परन्तु कुछ परिस्थितियों एवं कानून के प्रावधानों के अनुसार उसमें कुछ अधिकार एवं दायित्व होते हैं ।

धारा 68 के अनुसार, अनुबन्ध करने में अक्षम व्यक्ति को कोई व्यक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, तो वह व्यक्ति अनुबन्ध करने के अक्षम व्यक्ति से उसकी सम्पत्ति में से भुगतान पाने का अधिकारी है ।

धारा 69 के प्रावधानों के अनुसार यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए किसी ऐसी राशि का भुगतान कर देता है, जिसके भुगतान के लिए यह बाध्य नहीं है परन्तु भुगतान करने में उसका हित निहित है । ऐसी स्थिति में दूसरे व्यक्ति के लिए जिस राशि का उसने भुगतान किया है, उसे वापस प्राप्त करने का वह अधिकारी है ।

धारा 70 के अनुसार जब कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए कोई वैधानिक कार्य करता है या उसे कोई वस्तु सुपुर्द करता है, परन्तु ऐसा कार्य वह मूल्य लेने की भावना से करता है व दूसरा व्यक्ति इस लाभ का प्रयोग कर लेता है, तो लाभ प्राप्त करने वाला व्यक्ति उस कार्य अथवा वस्तु की क्षतिपूर्ति या वापस लौटाने को बाध्य है ।

धारा 71 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति दूसरे का पड़ा हुआ माल पाता है व वह उस माल को अपने अधिकार में ले लेता है तो उसका उत्तरदायित्व निक्षेपग्रहीता की तरह हो जाता है अर्थात् खोये हुये माल को पाने वाले का यह दायित्व हो जाएगा कि वह उस माल के वास्तविक स्वामी का पता लगाए व वास्तविक मालिक का पता चलने पर उसे माल लौटाये व इस अवधि में माल की उचित देखभाल करे । इस देखभाल में हुए व्ययों को उसे प्राप्त करने का अधिकार होगा।

धारा 72 के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को उत्पीड़न के प्रयोग द्वारा या गलती से कोई धन प्रदान किया गया है या वस्तु की सुपुर्दगी दी गई है तो उसे दिया गया धन या सुपुर्द की गई वस्तु को लौटाना होगा ।

7.7 स्व-परख प्रश्न

1. अर्द्ध- अनुबन्ध से आप क्या समझते हैं? यह साधारण अनुबन्ध से किस प्रकार भिन्न है? इस प्रकार के अनुबन्धों का वर्णन कीजिए ।

2. गर्भित अनुबन्ध पर विस्तारपूर्वक टिप्पणी लिखए ।
3. अर्द्ध- अनुबन्ध क्या है? भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में दिए गए अर्द्ध अनुबन्धों की व्याख्या कीजिए ।

इकाई- 8

हानि रक्षा एवं प्रत्याभूति अनुबन्ध (Contract of Indemnity and Guarantee)

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 हानिरक्षा अनुबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा

8.4 हानिरक्षाधारी के अधिकार

8.5 हानिरक्षक के अधिकार

8.6 प्रत्याभूति/गारन्टी के अनुबन्ध

8.7 प्रत्याभूति के प्रकार

8.8 प्रतिभू का दायित्व

8.9 प्रतिभू के उत्तरदायित्व की समाप्ति

8.10 प्रतिभू के अधिकार

8.11 अवैध प्रतिभूति अनुबन्ध

8.12 हानिरक्षा एवं प्रत्याभूति के अनुबन्धों में अन्तर

8.13 सारांश

8.14 स्वपरख प्रश्न

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह समझ पायेंगे -

- हानिरक्षा एवं प्रत्याभूति अनुबन्धों के अर्थ क्या है?
- हानिरक्षक एवं हानिरक्षाधारी के अधिकार एवं उद्देश्य क्या है?
- प्रत्याभूति अनुबन्धों के प्रकार एवं विशेषतायें ।
- प्रतिभूति अनुबन्ध अवैध कब हो जाते हैं?
- प्रतिभू के दायित्व एवं अधिकार ।
- हानिरक्षा अनुबन्ध एवं प्रतिभूति अनुबन्ध में अन्तर ।

8.2 प्रस्तावना

हानि रक्षा एवं प्रत्याभूति के अनुबन्ध एक विशिष्ट प्रकार के अनुबन्ध हैं । हानि रक्षा अनुबन्ध में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को स्वयं के व्यवहार से अथवा तीसरे पक्षकार से पहुँची हानि की क्षतिपूर्ति का वचन देता है । प्रत्याभूति अनुबन्धों में तीसरा पक्षकार अनुबन्ध के एक पक्षकार द्वारा अपने वचन के निष्पादन में चूक करने पर उसके दायित्व की पूर्ति का वचन देता

है । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 124 से 147 के प्रावधानों के अन्तर्गत इन अनुबन्धों से सम्बन्धी वैधानिक उपबन्धों का उल्लेख किया गया है ।

8.3 हानि रक्षा अनुबन्ध

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 124** के अनुसार " हानि रक्षा अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है, जो उसको स्वयं वचनदाता के आचरण से अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचे । "

इस प्रकार इन अनुबन्धों में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है, जो उसके स्वयं के या अन्य किसी व्यक्ति के आचरण से उसे पहुँची हो । उदाहरण के लिए यदि ' अ ' अपने मकान का निर्माण कराते समय अपने पड़ोसी ' ब ' को उसके मकान के निर्माण के कारण होने वाली किसी भी हानि की क्षतिपूर्ति का वचन देता है, तो यह हानि रक्षा अनुबन्ध होगा ।

इन अनुबन्धों के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं-

(1) **सामान्य अनुबन्ध के लक्षणों की विद्यमानता** (Existence of Characteristics of Ordinary Contract) -हानि रक्षा एवं प्रत्याभूति अनुबन्ध भी सामान्य अनुबन्धों का ही एक प्रकार है । इन अनुबन्धों में सामान्य अनुबन्ध के स भी लक्षण विद्यमान रहते हैं, जैसे प्रस्ताव का होना, सहमति, वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा, पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता, स्वतन्त्र सहमति, वैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य हो एवं ठहराव राजनियम द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित नहीं हों ।

(2) **हानि-रक्षा का वचन** (Promise to Indemnity) -हानि-रक्षा अनुबन्धों में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को पहुँची हानि या क्षति की पूर्ति का वचन देता है ।

(3) **अनुबन्ध के पक्षकार** (Parties to Contract) -इन अनुबन्धों में जो पक्षकार हानि-रक्षा का वचन देता है, वह " हानि -रक्षक " व जिस पक्षकार की हानि-रक्षा की जाती है उसे हानि रक्षाधारी कहा जाता है । इस प्रकार हानि-रक्षा अनुबन्धों में दो पक्षकार होते हैं, जो क्रमश : 'हानि-रक्षक' व 'हानि-रक्षाधारी' कहलाते हैं ।

(4) **हानि होने पर ही क्षतिपूर्ति** (Indemnity only in the case of loss) -इन अनुबन्धों में हानि -रक्षक क्षतिपूर्ति के लिए तभी उत्तरदायी होगा जबकि अनुबन्ध की अवधि या इसके निष्पादन के फलस्वरूप कोई क्षति हानि -रक्षाधारी को पहुँचती है । यदि हानिरक्षाधारी को कोई क्षति नहीं पहुँचती हो हानिरक्षक किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति हानि-रक्षाधारी को नहीं करेगा ।

बीमा के अनुबन्ध हानि-रक्षा अनुबन्धों का श्रेष्ठ उदाहरण है । 'अ' बीमा कम्पनी ने 'ब' के मकान का 50 लाख रुपए का 1 जनवरी, 2007 से 31 दिसम्बर, 2007 तक एक वर्ष की अवधि के लिए अग्नि बीमा किया । यदि इस अवधि में मकान को अग्नि से कोई हानि नहीं होती तो बीमा कम्पनी किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं होगी ।

(5) **हानि स्वयं वचनदाता अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से** (Loss may be due to the conduct of Promisor himself or by the conduct of any other person) - अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 124** के अनुसार इन अनुबन्धों में हानि-रक्षाधारी को

क्षतिपूर्ति तभी की जावेगी, जबकि उसे ऐसी हानि स्वयं वचनदाता अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँची हो ।

हानि-रक्षा अनुबन्धों के अन्तर्गत किसी घटना विशेष से पहुँची हानि को शामिल नहीं किया गया है । **गजानन मोरेश्वर V मोरेश्वर मदान** के मामले में न्यायधीश एम.सी. छागला ने कहा है, कि "क्षतिपूर्ति के लिए भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 124 व 125 के प्रावधान सम्पूर्ण नियम नहीं है । इसलिए भारतीय न्यायालय ब्रिटेन में प्रचलित न्यायिक सिद्धान्तों का अधिक प्रयोग किया गया है । "

अंग्रेजी राजनियम के अनुसार- "क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अनुसार वचनदाता की ओर से किए गए व्यवहार के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली हानि से किसी अन्य निर्दोष व्यक्ति को बचाने के लिए दिए गए वचन को क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध कहते हैं । " इस परिभाषा की इसी व्यापकता के कारण भारतीय न्यायालयों ने इसे स्वीकार कर लिया है । इस कारण किसी घटना विशेष से हानि- रक्षाधारी को पहुँची क्षति की पूर्ति के लिए हानि-रक्षक उत्तरदायी होता है ।

(6) **हानि-रक्षा की सीमा** (Extent of Indemnity) -हानि-रक्षक उसी सीमा तक हानि-रक्षाधारी को क्षतिपूर्ति करेगा, जितनी राशि का वचन उसने दिया है । यदि हानि-रक्षाधारी को पहुँची वास्तविक क्षति हानि- रक्षक द्वारा दिए गए वचन से अधिक है, तो वचन से अधिक की हानि के लिए हानि-रक्षक उत्तरदायी नहीं होगा । उदाहरण के लिए ' अ ' ने अपने मकान का अग्नि बीमा 30 लाख रुपए का कराया है, बीमित अवधि में मकान को आग लगाने पर 45 लाख रुपए का नुकसान हो जाता है, तो बीमा कम्पनी की हानि-रक्षा की सीमा केवल 30 लाख रुपए ही होगी ।

(7) **अनुबन्ध का स्वरूप** (Form of Contract) -हानि-रक्षा अनुबन्ध लिखित या मौखिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं । मौखिक अनुबन्ध भी उसी प्रकार की वैधानिक मान्यता रखते हैं, जैसा कि लिखित अनुबन्ध ।

8.4 हानिरक्षाधारी के अधिकार

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 125 के अन्तर्गत हानि-रक्षाधारी के तीन अधिकारों का वर्णन किया गया हे, जो इस प्रकार है-

(1) **क्षति पूर्ति का अधिकार: -**ऐसी क्षति की पूर्ति जो हानि-रक्षाधारी को क्षतिपूर्ति का वचन लागू कराने के लिए किसी विवाद में वहन की गई हानियाँ जिसका भुगतान करने के लिए उसे बाध्य होना पड़ा हो ।

(2) **व्ययों को प्राप्त करने का अधिकार-**उसे ऐसे समस्त व्ययों को प्राप्त करने का अधिकार है, जो उसने किसी विवाद के मुकदमे को प्रस्तुत करने अथवा बचाव करने में किए हों, जबकि-

(i) उसने वचनदाता के आदेशों का उल्लंघन नहीं किया हो ।

(ii) उसने वही कार्य किया हो जो क्षतिपूर्ति की संविदा के अभाव में उसके लिए विवेकयुक्त होता तथा

(iii) वचनदाता ने उसे मुकदमा चलाने या बचाव के लिए नियुक्त किया हो ।

(3) **धन की प्राप्ति का अधिकार: -**हानिरक्षाधारी को ऐसी समस्त धनराशि को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसने हानि-रक्षा अनुबन्ध से सम्बन्धित किसी मुकदमे के समझौते की शर्तों के अन्तर्गत चुकायी हो । परन्तु धन राशि प्राप्त करने का अधिकार उसे निम्नलिखित परिस्थितियों में ही प्राप्त होगा यदि-

(i) उसके द्वारा चुकायी गयी धन राशि वचनदाता के आदेशों के प्रतिकूल नहीं हो ।

(ii) उसके द्वारा किया गया कार्य ऐसा है, जो हानि-रक्षा अनुबन्ध नहीं होने की स्थिति में एक सामान्य विवेक वाला व्यक्ति करता व,

(iii) वचनदाता ने उसे उस मुकदमे में समझौते के लिए अधिकृत किया हो ।

8.5 हानि-रक्षक के अधिकार

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में हानि-रक्षक के अधिकारों का वर्णन नहीं किया गया है । परन्तु विभिन्न न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों के आधार पर हानि-रक्षक के अधिकारों का उल्लेख निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है ।

(1) **हानि-रक्षाधारी का स्थान ग्रहण करना अथवा प्रत्यासन सिद्धान्त का लाभ प्राप्त करने का अधिकार** (Benefit of Doctrine of Subrogation) - क्षतिपूर्ति संविदाओं में ज्यों ही हानिरक्षक हानि-रक्षाधारी को हुई क्षति की पूर्ति कर देता है, उसी समय वह उसके स्थान को ग्रहण कर लेता है अर्थात् क्षतिपूर्ति के पश्चात् हानि-रक्षक को वे सारे अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, जो हानि-रक्षाधारी को तीसरे पक्षकारों के विरुद्ध प्राप्त हैं । उदाहरण के लिए 'अ' ने अपनी कार का बीमा 200000 रुपए का 'ब' बीमा कम्पनी से कराया । बीमा की अवधि में 'अ' की कार की 'स' के ट्रक से टक्कर हो जाती है । कार को 40000 रुपए की क्षति होती है । 'ब' बीमा कम्पनी कार को पहुँची 40000 रुपए की क्षतिपूर्ति कर देती है । इसके पश्चात् ट्रक के मालिक 'स' से प्राप्त होने वाली हर्जाना राशि पर 'ब' बीमा कम्पनी का अधिकार होगा, न कि 'अ' का । यदि ऐसा नहीं हो तो हानि - रक्षाधारी वास्तविक हानि से अधिक की क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है जो हानि-रक्षा अनुबन्धों के पूर्णतया प्रतिकूल कार्य होगा । ऐसी स्थिति में यह अनुबन्ध लाभ कमाने का माध्यम बन जावेगा ।

(2) **हानि-रक्षाधारी के नाम में मुकदमा चलाने का अधिकार**(Right to sue in the name of indemnity holder) - प्रत्यासन सिद्धान्त के लागू होने पर अर्थात् जब हानि-रक्षक हानि-रक्षाधारी को क्षतिपूर्ति कर देता है, तो तीसरे पक्षों के प्रति जो अधिकार हानि -रक्षाधारी के थे, वे अब हानि-रक्षक के हो जावेंगे । परन्तु तीसरे पक्षकार के विरुद्ध मुकदमा हानि-रक्षक अपने नाम में नहीं चलाएगा वरन् इन मुकदमों को उसे हानि-रक्षाधारी के नाम से चलाने अधिकार होगा ।

(3) **क्षतिपूर्ति से मना करने का अधिकार** (Right to refuse to Indemnity) -हानि रक्षाधारी को यदि स्वयं के आचरण के कारण या हानि-रक्षा अनुबन्ध में संवृत जोखिम के अलावा किसी अन्य कारण से क्षति या हानि पहुँचती है, तो हानि-रक्षक क्षतिपूर्ति के लिए मना करने का अधिकार रखता है ।

(4) **हानि-रक्षक के दायित्व का प्रारम्भ** (Commencement of Indemnifier's Liability) -हानि-रक्षक का दायित्व कब प्रारम्भ माना जावे, इसके सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं ।

प्रथम विचारधारा के अनुसार हानि-रक्षाधारी को वास्तविक हानि होने पर हानि-रक्षक के दायित्व को प्रारम्भ माना जावे व **द्वितीय** के अनुसार हानि -रक्षाधारी के दायित्व ज्यों ही स्पष्ट हो जाते हैं, तभी से हानि-रक्षक के दायित्वों को शुरू माना जावे । विभिन्न न्यायालयों ने दोनों को ही अलग- अलग परिस्थितियों में उचित ठहराया है ।

8.6 प्रत्याभूति/गारन्टी के अनुबन्ध

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 126 से 147 के अन्तर्गत प्रत्याभूति के अनुबन्धों से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन किया गया है ।

अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 126** के अनुसार " प्रत्याभूति का अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत किसी तीसरे व्यक्ति की त्रुटि की दशा में उसके वचन का निष्पादन करने अथवा उसके दायित्व को पूरा करने का वचन दिया जाता है । प्रत्याभूति देने वाले को प्रतिभू कहा जाता है, जिस व्यक्ति की त्रुटि के सम्बन्ध में प्रत्याभूति दी जाती है, उसे **मूल ऋणी** कहा जाता है व जिसे प्रत्याभूति दी जाती है, उसे ऋणदाता कहा जाता है । प्रत्याभूति मौखिक या लिखित हो सकती है । "

उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' से 15,000 रुपए का टी. वी. खरीदता है, 'स' 'ब' को यह गारन्टी देता है कि 'अ' द्वारा भुगतान नहीं करने पर वह इस राशि का भुगतान कर देगा तो यह प्रत्याभूति का अनुबन्ध होगा । इस अनुबन्ध में 'अ' मूल ऋणी 'ब' ऋणदाता एवं 'स' प्रतिभू कहलाएगा ।

प्रत्याभूति अनुबन्धों में निम्नलिखित विशेषतायें होती है ।

(1) **वध अनुबन्ध के लक्षणों का होना आवश्यक:** प्रतिभूति के अनुबन्ध में उन सब लक्षणों का होना आवश्यक है जो एक सामान्य अनुबन्ध में होते हैं । अर्थात् पक्षकारों के मध्य ठहराव, प्रस्ताव, स्वतन्त्र सहमति, अनुबन्ध करने की क्षमता, वैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य आदि का होना आवश्यक है ।

(2) **अनुबन्ध के तीन पक्षकार-** प्रत्याभूति अनुबन्धों में तीन पक्षकार होते हैं-प्रत्याभूति देने वाला पक्षकार प्रतिभू (Surety) कहलाता हे, जिस व्यक्ति के लिए प्रत्याभूति दी जाती है वह मूल ऋणी (Principal) कहलाता है एवं जिसे प्रत्याभूति दी जाती है, उसे ऋणदाता (Creditor) कहा जाता है । इस प्रकार प्रत्याभूति अनुबन्धों में तीन पक्षकार होते हैं ।

(3) **एक साथ तीन अनुबन्ध-**इन अनुबन्धों में तीन पक्षकार होते हैं, इसलिए प्रत्याभूति अनुबन्धों में एक साथ तीन अनुबन्ध सम्पन्न होते हैं, प्रथम ऋणदाता एवं मूल ऋणी के मध्य, दूसरा प्रतिभू एवं मूल ऋणी के मध्य व तीसरा प्रतिभू एवं ऋणदाता के मध्य ।

(4) **त्रुटि की दशा में वचन का निष्पादन या दायित्व की पूर्ति का अनुबन्ध-**इन अनुबन्धों में तीसरे पक्षकार की त्रुटि पर प्रत्याभूति देने वाला व्यक्ति उसके वचन के निष्पादन या दायित्व की पूर्ति का वचन देता है ।

(5) **लिखित एवं मौखिक अनुबन्ध-**प्रत्याभूति का अनुबन्ध लिखित हो सकता है या मौखिक, दोनों प्रकार के अनुबन्ध वैध कहलायेंगे । अंग्रेजी राजनियम के अनुसार, प्रतिभूति का अनुबन्ध

केवल लिखित ही हो सकता है मौखिक नहीं, लेकिन भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार प्रतिभूति अनुबन्ध लिखित एवं मौखिक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं ।

(6) **अनुबन्ध करने की क्षमता-**इन अनुबन्धों में प्रतिभू व ऋणदाता में अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक है। मूल ऋणी में अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक नहीं है परन्तु मूल ऋणी को बाध्य करने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता हो अन्यथा प्रतिभू को मूल ऋणी के समान माना जावेगा।

(7) **प्रतिफल-** अधिनियम की धारा 127 के अनुसार " मूल ऋणी के लाभ के लिए किया गया कोई कार्य या दिया गया वचन प्रत्याभूति के लिए प्रतिभू का पर्याप्त प्रतिफल हो सकता है । " इस प्रकार मूल ऋणी व प्रतिभू के मध्य अनुबन्ध में कोई कार्य या वचन जो मूल ऋणी व ऋणदाता के मध्य जो दूसरा अनुबन्ध होता है, उसमें स्वाभाविक रूप से प्रतिफल पहले से ही विद्यमान होता है । तीसरा अनुबन्ध जो प्रतिभू व ऋणदाता के मध्य होता है उसके मध्य प्रतिफल होना आवश्यक नहीं है ।

(8) **मूल ऋणी व प्रतिभू का दायित्व-**प्रत्याभूति अनुबन्धों में प्राथमिक या मूल दायित्व तो सदैव मूल ऋणी का ही होता है प्रतिभू का दायित्व तो गौण या द्वितीयिक होता है, जो मूल ऋणी द्वारा अपने वचन का निष्पादन नहीं करने पर उत्पन्न होता है । प्रतिभू द्वारा ऋणदाता को मूल ऋण का वचन निष्पादन कर देने पर भी मूल ऋणी अपने दायित्व से मुक्त नहीं होता वरन् प्रतिभू उसके द्वारा चुकाई गई राशि को प्राप्त करने का अधिकार रखता है इसलिए मूल ऋणी का दायित्व तो सदैव प्राथमिक ही रहता है ।

(9) **मूल ऋणी की जानकारी आवश्यक-** प्रत्याभूति अनुबन्ध तभी वैध होगा जबकि प्रतिभू मूल ऋणी के लिए प्रत्याभूति उसके द्वारा निवेदन किए जाने पर दे । यदि प्रतिभू मूल ऋणी की जानकारी के बिना ही प्रत्याभूति देता है तो इसकी कोई वैधता नहीं है ।

(10) **ऋणदाता द्वारा तथ्यों का प्रकटीकरण-**ऋणदाता का यह कर्तव्य है कि वह मूल ऋणी के सम्बन्ध में जो जानकारी रखता है या ऐसे तथ्य जो प्रतिभू के दायित्व को प्रभावित कर सकते हैं, उन्हें प्रतिभू को प्रकट कर दे अन्यथा महत्वपूर्ण तथ्यों के छिपाव या मौन की स्थिति में किया गया प्रत्याभूति अनुबन्ध प्रतिभू की इच्छा पर व्यर्थनीय होगा ।

(11) **दायित्व का प्रवर्तनीय होना आवश्यक-**मूल ऋणी के जिस ऋण के लिए प्रतिभू प्रत्याभूति प्रदान कर रहा है, वह ऋण **भारतीय लिमिटेशन अधिनियम** के प्रावधानों के अनुसार कालबाधित नहीं होना चाहिए । अप्रवर्तनीय ऋण या दायित्व के लिए दी गई प्रत्याभूति वैध नहीं मानी जाती । परन्तु ऋण के लिए अनुशंसा को प्रत्याभूति के रूप में नहीं माना जा सकता ।

8.7 प्रत्याभूति के प्रकार

प्रतिभू द्वारा मूल ऋणी के सम्बन्ध में ऋणदाता को दी जाने वाली प्रत्याभूति अनेक प्रकार की हो सकती है । प्रत्याभूति अनुबन्धों में दी जाने वाली प्रत्याभूतियों को निम्नलिखित प्रकार की हो सकती है ।

I. **विद्यमान या वर्तमान प्रत्याभूति** (Existing or Present Guarantee) -ऐसी प्रत्याभूति जो किसी विद्यमान ऋण के सम्बन्ध में दी जाती है, प्रत्याशित या वर्तमान प्रत्याभूति कहलाती है । परन्तु ऐसा ऋण कालबाधित नहीं होना चाहिए।

II. **भावी प्रत्याभूति** (Future Guarantee) -ऐसी प्रत्याभूति जो भावी अनुबन्ध के सम्बन्ध में प्रदान की जाती है, भावी प्रत्याभूति कहलाती है ।

III. **विशिष्ट प्रत्याभूति** (Specific Guarantee) -ऐसी प्रत्याभूति जो केवल एक ही ऋण अथवा व्यवहार के लिए दी जाती है विशिष्ट प्रत्याभूति कहते हैं । मूल ऋणदाता का भुगतान कर दिए जाने के साथ ही प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है ।

IV. **चालू प्रत्याभूति** (Continuing Guarantee) - अधिनियम की धारा 129 के अनुसार- **" ऐसी प्रत्याभूति जो व्यवहारों की किसी शृंखला तक विस्तृत होती है चालू प्रत्याभूति कहलाती है ।** "इस प्रकार चालू प्रत्याभूति एक विशिष्ट व्यवहार तक सीमित नहीं रहती वरन् मूल ऋणी द्वारा ऋणदाता के साथ किए गए व्यवहारों की शृंखला अर्थात् एक से अधिक व्यवहारों तक विस्तृत होती है । प्रतिभू व्यवहारों की शृंखला के समस्त व्यवहारों के लिए उत्तरदायी होता है ।

V. **शर्त सहित एवक शर्तरहित प्रत्याभूति-**ऐसी प्रत्याभूति जिसमें प्रतिभू किसी घटना के घटित होने या शर्त पूरा होने पर मूल ऋणी के वचन या कार्य के निष्पादन को करने का वचन देता है, शर्तरहित प्रत्याभूति कहलाती है । ऐसी प्रत्याभूति जिसमें प्रतिभू बिना किसी शर्त के मूल ऋणी द्वारा त्रुटि करने पर उसके वचन के निष्पादन का वचन देता हे, शर्तरहित प्रत्याभूति कहलाती है।

8.8 प्रतिभू का दायित्व

प्रतिभू के उत्तरदायित्व को भली प्रकार से समझने के लिए इसे निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है

(1) **दायित्व का प्रारम्भ-**प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी द्वारा त्रुटि करते ही प्रारम्भ हो जावेगा । एक मुकदमे में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रतिभू के दायित्व को उस समय तक स्थगित नहीं किया जा सकता जब तक कि ऋणदाता मूल ऋणी के विरुद्ध सभी उपायों को काम में नहीं ले लेता । अर्थात् मूल ऋणी के त्रुटी करते ही ऋणदाता प्रतिभू से ऋण की राशि चुकाने की मांग कर सकता है ।

(2) **प्रतिभू के दायित्व का प्रकार-**प्रतिभू का दायित्व सदैव गौण या द्वितीयक होता हे, प्राथमिक दायित्व मूल ऋणी का ही होता है । मूल ऋणी को ऋण की राशि तो चुकानी ही होती है, चाहे वह ऋणदाता को चुकाए अथवा बाद में प्रतिभू को ।

(3) **दायित्व का क्षेत्र-**प्रतिभू किस सीमा तक मूल ऋणी के ऋण या व्यवहार के लिए उत्तरदायी होगा, यही उसके दायित्व का क्षेत्र है । अनुबन्ध अधिनियम की धारा 128 के अनुसार, **" जब तक अनुबन्ध में कोई विपरीत व्यवस्था नहीं हो, प्रतिभू का उत्तरदायित्व मूल ऋणी के उत्तरदायित्व के साथ सहविस्तृत होता है । "**

8.9 प्रतिभू के उत्तरदायित्व की समाप्ति

निम्नलिखित दशाओं में प्रतिभू का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है ।

(1) **प्रतिभूति अनुबन्ध के खण्डन द्वारा** (By Revocation of Contract of Guarantee) - [धारा 130] प्रतिभू, प्रतिभूति अनुबन्ध का खण्डन करके अपने उत्तरदायित्व से मुक्ति पा सकता है । चालू प्रतिभूति में प्रतिभू ऋणदाता को सूचना देकर भावी व्यवहारों के लिए प्रतिभूति खण्डित कर सकता है और खण्डन की तिथि की सूचना के बाद के व्यवहारों के लिए प्रतिभू उत्तरदायी नहीं होता । विशेष प्रतिभूति में यदि उत्तरदायित्व उत्पन्न हो गया है तो उसका खण्डन नहीं किया जा सकता है ।

(2) **प्रतिभू की मृत्यु होने पर** (Death of Surety) - अगर कोई विपरीत अनुबन्ध न हो, तो प्रतिभू की मृत्यु होने पर जहाँ तक भावी व्यवहारों का सम्बन्ध है, चालू प्रतिभूति का अन्त हो जाता है और प्रतिभू के उत्तरदायित्व की समाप्ति हो जाती है परन्तु प्रतिभू की मृत्यु से पूर्व के कार्यो के लिए उसका उत्तराधिकारी उत्तरदायी होगा।

(3) **अनुबन्धों की शर्तों में परिवर्तन करके** (By Variance in Terms of Contract) - [धारा 133] मूल ऋणी और ऋणदाता के बीच के अनुबन्ध में प्रतिभू की सहमति के बिना किया गया कोई भी परिवर्तन, परिवर्तन के बाद के व्यवहारों के सम्बन्ध में प्रतिभू को उत्तरदायित्व से मुक्त कर देता है ।

ब्लेस्ट बनाम **ब्राउन** के विवाद में लार्ड वेस्टबरी ने कहा है कि यदि प्रतिभू की सहमति के बिना अनुबन्ध में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है तो भले ही वह प्रतिभू की भलाई के लिए ही क्यों न हो, प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है । लेकिन प्रतिभू जब किसी परिवर्तन के लिए सहमति दे देता है तो वह अनुबन्ध से मुक्त नहीं हो सकता । यह सिद्ध करने का भार कि प्रतिभू ने परिवर्तन के लिए अपनी सहमति दी थी, ऋणदाता पर होता है ।

(4) **मूल ऋणी को मुक्ति देकर** (By Release of Discharge Principal Debtor) - [धारा 134] जब ऋणदाता और मूल ऋणी कोई ऐसा अनुबन्ध करते हैं जिसके द्वारा मूल ऋणी का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है अथवा जब ऋणदाता कोई ऐसा कार्य अथवा भूल करता है जिसका वैधानिक परिणाम यह होता है कि मूल ऋणी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है, तो ऐसी दशा में, प्रतिभू के उत्तरदायित्व का अन्त हो जाता है ।

(5) **ऋणदाता द्वारा मूल ऋणी के साथ समझौता कर लेने पर उसे भुगतान का समय बढ़ा देने पर अथवा उस पर मुकदमा न चलाने का वचन देने पर** (Compounding by Creditor with the Principal Debtor) - [धारा 135] जब ऋणदाता और मूल ऋणी आपस में अनुबन्ध कर लेते हैं, जिसके द्वारा ऋणदाता मूल ऋणी के साथ समझौता कर लेता है अथवा भुगतान की अवधि को बढ़ा देने का वचन देता है अथवा मूल ऋणी पर मुकदमा न चलाने का वचन देता है, तो जब तक प्रतिभू इसके लिए स्वीकृति नहीं देता, वह अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है ।

परन्तु निम्न परिस्थितियों में प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होता- [धारा 136]

(i) जब ऋणदाता ने मूल ऋणी को समय देने का अनुबन्ध मूल ऋणी से न करके किसी अन्य पक्षकार से किया है तो प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होता । उदाहरण के लिए

'स' एक ऐसे विनिमय-पत्र का धारक है जिसकी परिपक्वता की तिथि निकल चुकी है और जो कि 'अ' द्वारा 'ब' के प्रतिभू के रूप में लिखा गया था और 'ब' द्वारा स्वीकार किया गया था । 'स' एक अन्य व्यक्ति 'द' के साथ 'ब' को समय देने का अनुबन्ध करता है । ऐसी दशा में 'अ' अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होता।

(ii) मूल ऋणी पर वाद दायर करने अथवा उसके विरुद्ध किसी दूसरे उपचार को प्रयोग में लाने से ऋणदाता का विलंब करना अथवा रुका रहना प्रतिभूति अनुबन्ध में किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में प्रतिभू को उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं करता । 'ब' 'स' के ऋण का देनदार है जिसकी गारन्टी 'अ' ने दी है । ऋण देय हो जाने पर भी 'स' 'ब' पर ऋण देय हो जाने के एक वर्ष बाद तक वाद प्रस्तुत नहीं करता । ऐसी दशा में 'अ' अपनी प्रतिभूति के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होता ।

(iii) जब किसी अनुबन्ध में सह-प्रतिभू है और ऋणदाता उनमें से किसी एक को दायित्व से मुक्त कर देता है तो ऐसी दशा में अन्य प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाते और न ही इस प्रकार मुक्त किया गया प्रतिभू अन्य प्रतिभूओं के प्रति अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होता ।

(6) **ऋणदाता के किसी काम या भूल से जब प्रतिभू के अधिकार में कमी हो जाती है** (By Creditor's Act or Omission Impairing Surety's Remedy) - [धारा 139] यदि ऋणदाता कोई ऐसा काम करता है जो प्रतिभू के अधिकारों के विरुद्ध है अथवा वह किसी ऐसे काम को करने में भूल करता है, जिसका करना प्रतिभू के प्रति उसके कर्त्तव्यों के अनुसार आवश्यक है और जिससे मूल ऋणी के विरुद्ध, प्रतिभू के अधिकारों में कमी आ जाती है, तो ऐसी दशा में प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है, उदाहरण के लिए-एक दी हुई रकम के बदले में, जिसका भुगतान किस्तों में काम की प्रगति के अनुसार होगा । 'ब', 'स' के लिए एक मकान बनाने का अनुबन्ध करता है । 'ब' द्वारा अनुबन्ध ठीक तरह से पूरा होने के लिए 'अ', 'स' के प्रति प्रतिभू हो जाता है । 'स', 'अ' की जानकारी के बिना 'ब' को अन्तिम दो किस्तें समय से पहले ही दे देता है । 'अ' इस पेशगी भुगतान के कारण अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

(7) **प्रतिभूति अनुबन्ध के अवैध हो जाने पर** (By Invalidation of Contract Of Guarantee) -ऋणदाता द्वारा प्राप्त प्रतिभूति यदि अवैध हो जाती है तो प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है । मिथ्या-वर्णन, मौन द्वारा कपट के द्वारा प्राप्त की गयी प्रतिभूति अवैध होती है ।

(8) **ऋणदाता द्वारा प्रतिभू की बिना सहमति के प्रतिभूतियों को ऋणी को वापस कर देने पर-** [धारा 141] जब ऋणदाता बिना प्रतिभू की सहमति के मूल ऋणी द्वारा ऋण लेते समय अथवा अनुबन्ध करते समय दी गयी प्रतिभूतियों को लौटा दे अथवा खो दे तो प्रतिभू उनके मूल्य के बराबर उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है ।

उदाहरण के लिए 'अ', 'ब' द्वारा 'स' के लिये गये 50,000 रुपये के ऋण की प्रतिभूति लेता है । 'स' के पास अतिरिक्त प्रतिभूति के रूप में 'ब' के गहने भी है । कुछ दिन पश्चात् 'स' गहने 'ब' को लौटा देता है । 'अ' का दायित्व उस सीमा तक समाप्त हो जाता है जितना कि

गहनों का मूल्य है । यदि गहने का मूल्य 40,000 रुपया अनुमान किया जाता है तो 'अ' का दायित्व 10,000 रुपया ही होगा ।

8.10 प्रतिभू के अधिकार

प्रतिभू के निम्नलिखित अधिकार होते है ।

(अ) मूलऋणी के विरुद्ध अधिकार (Rights Against the Principle Debtor) - [धारा 140] यदि मूल ऋणी अपने वचन को निष्पादन करने में त्रुटि करता है और प्रतिभू प्रतिभूति ऋण चुका देता है अथवा प्रतिभूति कर्त्तव्य को पूरा कर देता है तो उसे वे सब अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो कि ऋणदाता को मूल ऋणी के विरुद्ध प्राप्त थे । प्रतिभू प्रतिभूति ऋण चुका देने अथवा प्रतिभूति कर्त्तव्य का निष्पादन कर देने पर स्वयं मूल ऋणी के विरुद्ध रुपया वसूल करने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है ।

प्रतिभूति के प्रत्येक अनुबन्ध में मूलऋणी द्वारा प्रतिभू की क्षतिपूर्ति का गर्भित वचन होता है और प्रतिभू मूलऋणी से ऐसी कोई भी रकम पाने का अधिकारी है जो उसने प्रतिभूति के अधीन वैधानिक रूप से चुकायी है । किन्तु वह ऐसी कोई भी रकम पाने का अधिकारी नहीं है, जो उसने गलती से या त्रुटिपूर्ण तरीके से चुकायी है ।

(ब) ऋणदाता के विरुद्ध अधिकार (Rights Against the Creditors) - [धारा 141] कोई प्रतिभू ऐसी प्रत्येक जमानत के लाभ का अधिकारी है, जो ऋणदाता के पास मूल ऋणी के विरुद्ध उस समय थी, जबकि प्रतिभूति का अनुबन्ध किया गया था, चाहे प्रतिभू को ऐसी जमानत के होने का पता हो या न हो । यदि ऋणदाता ऐसी जमानत खो देता है अथवा वह प्रतिभू की सहमति बिना उसको पृथक कर देता है, तो प्रतिभू उस जमानत के मूल्य की सीमा तक उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है । उदाहरण के लिए 'स', 'ब' को 'अ' की गारन्टी पर 20,000 रुपये उधार देता है । 'स' इस 20,000 रुपये के लिए एक और जमानत 'ब' के स्कूटर की बन्धक के रूप में ले लेता है । 'स' बन्धक को रद्द कर देता है, 'ब' दिवालिया हो जाता है और 'स', 'अ' पर उसकी प्रतिभूति के अनुसार वाद प्रस्तुत करता है । 'अ' स्कूटर के मूल्य की रकम तक के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है ।

सह-प्रतिभूओं के विरुद्ध अधिकार (Rights Against Co-surities)

(1) **सह-प्रतिभू बराबर अंशदान के लिए उत्तरदायी है-**[धारा 146] जहाँ दो या अधिक व्यक्ति, संयुक्त अथवा पृथक रूप से किसी एक ही ऋण अथवा कर्त्तव्य निष्पादन के लिए सह-प्रतिभू हैं तो वे किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, उस ऋण अथवा उसके उस भाग के लिए जो मूल ऋणी द्वारा चुकाया नहीं गया है, आपस में प्रत्येक बराबर अंशदान के दायी हैं । अनुबन्ध करते समय उन्हें दूसरे प्रतिभूओं के होने का पता होना या न होना कोई महत्त्व नहीं रखता । उदाहरण के लिए- 'अ', 'ब', 'स', 'द' को उधार दिये गये 30,00,000 रुपये की रकम के लिए 'द' के प्रति प्रतिभू हैं । 'द' भुगतान देने में त्रुटि करता है । 'अ', 'ब' और 'स' में से प्रत्येक 10,00,000 रुपये के भुगतान के लिए उत्तरदायी है ।

(2) **सह-प्रतिभू दायित्व की सीमा में भुगतान के लिए उत्तरदायी हैं ।**[धारा 147] उदाहरण के लिए 'अ', 'ब' और 'स', 'द' द्वारा 'ई' को ठीक तरह से हिसाब देने के लिए 'द' के प्रति प्रतिभू के रूप में अलग- अलग दण्डों के लिए पृथक्-पृथक् रूप से तीन प्रतिज्ञा-पत्र लिखते हैं- 'अ' 10,000 रुपये के दण्ड के लिए 'ब' 20,000 रुपये के दण्ड के लिए और 'स' 40,000 रुपये के दण्ड के लिए । 'द' 30,000 रुपये तक की रकम के सम्बन्ध में त्रुटि करता है । 'ब', 'अ' और 'स' प्रत्येक 10,000 रुपये के भुगतान के लिए उत्तरदायी हैं ।

8.11 अवैध प्रतिभूति अनुबन्ध

एक प्रतिभूति अनुबन्ध निम्न परिस्थितियों में अवैध माना जाता है ।

(1) **मिथ्या वर्णन द्वारा प्राप्त प्रतिभूति** (Guarantee Obtained by Misrepresentative) -[धारा 142] ऐसी कोई भी प्रतिभूति जो ऋणदाता द्वारा उसकी जानकारी और सहमति से, व्यवहार के किसी महत्वपूर्ण भाग के सम्बन्ध में मिथ्या वर्णन द्वारा प्राप्त की गयी है तो ऐसी प्रतिभूति अवैध ध होती है । इस प्रकार प्रतिभूति अनुबन्ध मिथ्या वर्णन के आधार पर व्यर्थ होती है ।

(2) **छुपाव द्वारा प्राप्त की गयी प्रतिभूति** (Guarantee Obtained by Concealment) - [धारा 143] कोई भी प्रतिभूति जो ऋणदाता द्वारा व्यवहार की किन्हीं महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों के सम्बन्ध में मौन रहकर छुपाव द्वारा प्राप्त की गयी हो, अवैध ध होती है । इस प्रकार का प्रतिभूति अनुबन्ध व्यर्थ होता है ।

उदाहरण-' अ ', ' ब ' को अपने लिये रुपया इकट्ठा करने के लिए क्लर्क के रूप में नौकर रखता है । ' ब ' कुछ रुपये का हिसाब नहीं दे पाता । फलस्वरूप ' अ ', ' ब ' से ठीक-ठीक हिसाब देने के लिए प्रतिभूति माँगता है । 'स' ' ब ' द्वारा ठीक हिसाब देने के लिए प्रतिभू हो जाता है । ' अ ', ' स ' से ' ब ' के पहले आचरण के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बताता । बाद में ' ब ' त्रुटि करता है । यह प्रतिभूति अनुबन्ध महत्वपूर्ण तथ्य के छिपाव के कारण अवैध और व्यर्थ है ।

(3) **सह-प्रतिभू के सम्मिलित होने के अनुबन्ध पर दी गयी प्रतिभूति** (On Guarantee Being Given as Co-surety) -एक व्यक्ति किसी अनुबन्ध के सम्बन्ध में प्रतिभूति इस शर्त पर देता है कि ऋणदाता उसको उस समय तक कार्यान्वित नहीं करेगा जब तक कि दूसरा व्यक्ति उसमें सह-प्रतिभू की हैसियत से सम्मिलित नहीं हो जाता है, तो यह प्रतिभूति वैध नहीं होगी, यदि वह दूसरा व्यक्ति इसमें सम्मिलित नहीं होता ।

8.12 हानि रक्षा व प्रत्याभूति के अनुबन्धों में अन्तर

हानि रक्षा एवं प्रत्याभूति के अनुबन्ध भिन्न प्रकार के अनुबन्ध हैं । इनमें निहित अन्तर को निम्नलिखित रूप में समझाया जा सकता है ।

क्र.सं.	अन्तर का आधार	हानि-रक्षा का अनुबन्ध	प्रत्याभूति या गारंटी का अनुबन्ध
1.	परिभाषा	हानि-रक्षा का अनुबन्ध ऐसा अनुबन्ध है, जिसके अंतर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है, जो उसको स्वयं वचनदाता के आचरण अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचें ।	प्रत्याभूति का अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अंतर्गत किसी तीसरे व्यक्ति की त्रुटि की दशा मे उसके वचन का निष्पादन करने अथवा उसके दायित्व को पूरा करने का वचन दिया जाता है ।
2.	पक्षकारों की संख्या	हानि-रक्षा अनुबन्धों में दो पक्षकार होते है, जो क्रमश हानि-रक्षक व हानि-रक्षाधारी कहलाते है ।	प्रत्याभूति अनुबन्धों मे तीनपक्षकार होते है, जो क्रमश मूल ऋणी, ऋणदाता व प्रतिभू कहलाते है ।
3.	अनुबन्धों की संख्या	इसके अन्तर्गत केवल एक ही अनुबन्ध होता है, जो हानि-रक्षक हानि-रक्षाधारी के मध्य होता है ।	इसके अन्तर्गत तीन अनुबन्ध होते है, प्रथम ऋणदाता व मूल ऋणी के मध्य, दूसरा ऋणदाता व प्रतिभू के मध्य व तीसरा प्रतिभू व मूल ऋणी के मध्य में।
4.	प्रकृति	ये अनुबन्ध संभावित हानि से सुरक्षा के लिए होते हैं ।	ये अनुबन्ध ऋणदाता की जमानत के रुप मे होते है ।
5.	क्षेत्र	हानि-रक्षा अनुबन्धों का क्षेत्र संकुचित होता है ।	इनका क्षेत्र विस्तृत होता है व हानि-रक्षा के अनुबन्ध भी इसमे सम्मिलित होते है ।
6.	दायित्व की उत्पत्ति	हानि-रक्षा अनुबन्धों मे किसी घटना विशेष के घटित होने पर ही हानिरक्षक का दायित्व उत्पन्न होता है।	प्रत्याभूति अनुबन्धों मे मूल ऋणी के ऋण का दायित्व पहले से ही विद्यमान होता है ।
7.	पक्षकारों का दायित्व	इन अनुबन्धों मे हानि-रक्षक का दायित्व ही प्राथमिक होता है ।	जबकि प्रत्याभूति अनुबन्धों मे प्रतिभू का दायित्व गौण होते है । प्राथमिक दायित्व तो सदैव मूल ऋणी का ही होता है।
8.	अनुबन्ध करने की क्षमता	हानि-रक्षा अनुबन्धों मे दोनों पक्षकारों अर्थात हानि रक्षक व हानि-रक्षाधारी दोनों मे अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक है ।	प्रत्याभूति अनुबन्धों मे तीन पक्षकार होते है । इनमे से ऋणदाता एवं प्रतिभू मे अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक है । मूल ऋणी मे यह होना आवश्यक नहीं है ।

9.	व्यक्तिगत हित	इन अनुबन्धों की विषय वस्तु में हानि-रक्षाधारी का व्यक्तिगत हित विद्यमान होना आवश्यक है, जैसे -बीमा के अनुबन्धों में 'बीमित विषय' में, बीमादार का बीमा योग्य हित होना आवश्यक है ।	इन अनुबन्धों मे प्रतिभू का उसकी प्रत्याभूति के अतिरिक्त अनुबन्ध मे कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता।
10.	प्रतिफल	इन अनुबन्धों मे प्रीमियम आदि के रूप मे हानिरक्षक प्रतिफल प्राप्त करता है ।	इनमे प्रतिभू के पास शुरू मे कोई मूल्यवान प्रतिफल नहीं होता, परंतु मूल ऋणी के त्रुटि करने पर उत्पन्न होता है।
11.	वाद प्रस्तुत करना	इन अनुबन्धों मे हानि-रक्षाधारी को हानि पर क्षतिपूर्ति करने के पश्चात प्रत्यासन सिद्धान्त के अनुसार तीसरे पक्षकार पर चलाये जाने वाला वाद हानिरक्षाधारी के नाम से ही चलाया जा सकता है।	प्रत्याभूति अनुबन्ध मे मूल ऋणी का दायित्व चुकाने के बाद प्रतिभू अपने नाम मे मूल ऋणी के विरुद्ध वाद चलाने का अधिकार रखता है ।

8.13 सारांश

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 124** के अनुसार " हानि रक्षा अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है, जो उसको स्वयं वचनदाता के आचरण से अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचे । "

अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 125** के अन्तर्गत हानि-रक्षाधारी के तीन अधिकारों का वर्णन किया गया हे, जो इस प्रकार है-

(1) **क्षति पूर्ति का अधिकार-**ऐसी क्षति की पूर्ति जो हानि-रक्षाधारी को क्षतिपूर्ति का वचन लागू कराने के लिए किसी विवाद में वहन की गई हानियों जिसका भुगतान करने के लिए उसे बाध्य होना पड़ा हो ।

(2) **व्ययों को प्राप्त करने का अधिकार-**उसे ऐसे समस्त व्ययों को प्राप्त करने का अधिकार है, जो उसने किसी विवाद के मुकदमे को प्रस्तुत करने, बचाव करने में किए ही ।

(3) **धन की प्राप्ति का अधिकार-**हानिरक्षाधारी को ऐसी समस्त धनराशि को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसने हानि-रक्षा अनुबन्ध से सम्बन्धित किसी मुकदमे के समझौते की शर्तों के अन्तर्गत चुकायी हो ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में हानि-रक्षक के अधिकारों का वर्णन नहीं किया गया है । परन्तु विभिन्न न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों के आधार पर हानि-रक्षक के अधिकारों का उल्लेख निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है ।

(1) **हानि-रक्षाधारी का स्थान ग्रहण करना अथवा प्रत्यासन सिद्धान्त का लाभ प्राप्त करने का अधिकार** (Benefit of Doctrine of Subrogation) - क्षतिपूर्ति संविदाओं में ज्यों ही हानिरक्षक हानि-रक्षाधारी को हुई क्षति की पूर्ति कर देता है, उसी समय वह उसके स्थान को ग्रहण कर लेता है ।

(2) **हानि-रक्षाधारी के नाम में मुकदमा चलाने का अधिकार** (Right to sue in the Name of Indemnity Holder) -प्रत्यासन सिद्धान्त के लागू होने पर अर्थात् जब हानि-रक्षक हानि- रक्षाधारी को क्षतिपूर्ति कर देता है, तो तीसरे पक्षों के प्रति जो अधिकार हानि-रक्षाधारी के थे, वे अब हानि-रक्षक के हो जावेंगे ।

(3) **क्षतिपूर्ति से मना करने का अधिकार** (Right to refuse to Indemnity) -हानि रक्षाधारी को यदि स्वयं के आचरण के कारण या हानि-रक्षा अनुबन्ध में संवृत जोखिम के अलावा किसी अन्य कारण से क्षति या हानि पहुँचती है, तो हानि-रक्षक क्षतिपूर्ति के लिए मना करने का अधिकार रखता है ।

(4) **हानि-रक्षक के दायित्व का प्रारम्भ** (Commencement of Indemnifier's Liability) -हानि-रक्षक का दायित्व कब प्रारम्भ माना जावे, इसके सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं । प्रथम विचारधारा के अनुसार हानि -रक्षाधारी को वास्तविक हानि होने पर हानि -रक्षक के दायित्व को प्रारम्भ माना जावे व द्वितीय के अनुसार हानि -रक्षाधारी के दायित्व ज्यों ही स्पष्ट हो जाते हैं, तभी से हानि -रक्षक के दायित्वों को शुरू माना जावे ।

अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 126** के अनुसार " प्रत्याभूति का अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत किसी तीसरे व्यक्ति की त्रुटि की दशा में उसके वचन का निष्पादन करने अथवा उसके दायित्व को पूरा करने का वचन दिया जाता है । प्रत्याभूति देने वाले की प्रतिभू कहा जाता है, जिस व्यक्ति की त्रुटि के सम्बन्ध में प्रत्याभूति दी जाती है, उसे **मूल ऋणी** कहा जाता है व जिसे प्रत्याभूति दी जाती है, उसे **ऋणदाता** कहा जाता है । प्रत्याभूति मौखिक या लिखित हो सकती है । "

प्रत्याभूति के प्रकार

(I) **विद्यमान या वर्तमान प्रत्याभूति** (Existing or Present Guarantee) -ऐसी प्रत्याभूति जो किसी विद्यमान ऋण के सम्बन्ध में दी जाती है, प्रत्याशित या वर्तमान प्रत्याभूति कहलाती है । परन्तु ऐसा ऋण कालबाधित नहीं होना चाहिए।

(II) **भावी प्रत्याभूति** (Future Guarantee) -ऐसी प्रत्याभूति जो भावी अनुबन्ध के सम्बन्ध में प्रदान की जाती है, भावी प्रत्याभूति कहलाती है । इसके निम्नलिखित प्रकार हैं-

(III) **विशिष्ट प्रत्याभूति** (Specific Guarantee) -ऐसी प्रत्याभूति जो केवल एक ही ऋण अथवा व्यवहार के लिए दी जाती है विशिष्ट प्रत्याभूति कहते हैं । मूल ऋणदाता का भुगतान कर दिए जाने के साथ ही प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है ।

(IV) **चालू प्रत्याभूति** (Continuing Guarantee) - अधिनियम की धारा 129 के अनुसार- "ऐसी **प्रत्याभूति** जो व्यवहारों की किसी शृंखला तक विस्तृत होती है चालू प्रत्याभूति कहलाती है।"

(V) **शर्त सहित पक शर्तरहित प्रत्याभूति-**ऐसी प्रत्याभूति जिसमें प्रतिभू किसी घटना के घटित होने या शर्त पूरा होने पर मूल ऋणी के वचन या कार्य के निष्पादन को करने का वचन देता है, शर्तरहित प्रत्याभूति कहलाती है । ऐसी प्रत्याभूति जिसमें प्रतिभू बिना किसी शर्त के मूल ऋणी द्वारा त्रुटि करने पर उसके वचन के निष्पादन का वचन देता हे, शर्तरहित प्रत्याभूति कहलाती है।

धारा 142 ऐसी कोई भी प्रतिभूति जो ऋणदाता द्वारा उसकी जानकारी और सहमति से, व्यवहार के किसी महत्त्वपूर्ण भाग के सम्बन्ध में मिथ्या वर्णन द्वारा प्राप्त की गयी है तो ऐसी प्रतिभूति अवैध होती है । इस प्रकार प्रतिभूति अनुबन्ध मिथ्या वर्णन के आधार पर व्यर्थ होती है।

धारा 143 कोई भी प्रतिभूति जो ऋणदाता द्वारा व्यवहार की किन्हीं महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों के सम्बन्ध में मौन रहकर छुपाव द्वारा प्राप्त की गयी हो, अवैध होती है । इस प्रकार का प्रतिभूति अनुबन्ध व्यर्थ होता है ।

8.14 स्वपरख प्रश्न

1. हानिरक्षा तथा प्रतिभूति अनुबन्ध में अन्तर बताइए ।
2. " अनुबन्ध में विपरीत व्यवस्था विद्यमान नहीं होने पर प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के दायित्व के साथ सहविस्तृत होता है । " उपर्युक्त कथन की व्याख्या कीजिए ।
3. एक प्रतिभू किन-किन दशाओं में अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है?
4. एक प्रतिभूति अनुबन्ध कब समाप्त हो जाता है?

इकाई-9

निक्षेप एवं गिरवी (Bailment and Pledge)

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 निक्षेप का अर्थ एवं परिभाषा
9.4 निक्षेप के लक्षण
9.5 निक्षेप के प्रकार
9.6 निक्षेपी के कर्तव्य एवं दायित्व
9.7 निक्षेपी के अधिकार
9.8 निक्षेप ग्रहीता के कर्तव्य
9.9 निक्षेप ग्रहीता के अधिकार
9.10 निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति
9.11 ग्रहणाधिकार
9.12 सामान्य ग्रहणाधिकार एवं विशिष्ट ग्रहणाधिकार में अन्तर
9.13 खोये हुये माल को पाने वाला व्यक्ति
9.14 गिरवी का अर्थ एवं परिभाषा
9.15 माल के स्वामी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा गिरवी रखना
9.16 गिरवीकर्ता के कर्तव्य एवं अधिकार
9.17 गिरवी रख लेने वाले के कर्तव्य एवं अधिकार
9.18 गिरवी तथा निक्षेप में अन्तर
9.19 गिरवी तथा रहन में अन्तर
9.20 सारांश
9.21 स्व-परख प्रश्न

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि-

- निक्षेप एवं गिरवी अनुबन्ध का अर्थ का वर्णन कर सकें ।
- निक्षेप के लक्षणों का वर्णन कर सकें ।
- निक्षेपी एवं निक्षेपग्रहीता के अधिकार व कर्तव्यों का वर्णन कर सकें ।
- निक्षेप के प्रकार का वर्णन कर सकें ।
- आप समझ सकेंगे कि ग्रहणाधिकार क्या है?
- आप गिरवी अनुबन्धों को समझ सकेंगे ।
- गिरवीकर्ता एवं गिरवी रख लेने वाले के अधिकार एवं दायित्व समझ सकेंगे ।
- गिरवी, निक्षेप तथा रहन में अन्तर कर सकेंगे ।

9.2 प्रस्तावना

निक्षेप एवं गिरवी दोनों ही विशेष प्रकार के अनुबन्ध है । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 148 से 171 तक एवं 180 से 181 के अन्तर्गत निक्षेप सम्बन्धी अनुबन्धों से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन किया गया है एवं धारा 172 से 179 तक गिरवी सम्बन्धी अनुबन्धों से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन किया गया है ।

9.3 निक्षेप का अर्थ एवं परिभाषा

बेलमेन्ट (Bailment) शब्द फ्रेंच भाषा के 'बेलर' (Bailar) शब्द से लिया गया है । बेलर शब्द का फ्रेंच भाषा में अर्थ 'सुपुर्द करना' (To deliver) होता है । वैधानिक रूप में इस शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ में होता है । " निक्षेप का अर्थ, स्वेच्छापूर्वक किसी वस्तु का एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण करने से है । "

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 148** के अनुसार " निक्षेप एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विशेष उद्देश्य से, किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत माल की उस सुपुर्दगी को कहते हैं, जिसमें उस उद्देश्य के पूरा हो जाने पर माल सुपुर्दगी देने वाले व्यक्ति को लौटा दिया जाएगा, अथवा उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जाएगी, तो माल की ऐसी सुपुर्दगी निक्षेप कहलाती है । वस्तुओं की सुपुर्दगी देने वाला व्यक्ति निक्षेपी (Bailar) कहलाता है । जिस व्यक्ति को माल की सुपुर्दगी दी जाती है, वह निक्षेपग्रहीता (Bailee) कहलाता है ।

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि निक्षेपी किसी विशेष उद्देश्य या प्रयोजन के लिए कोई वस्तु- या माल निक्षेपग्रहीता को सुपुर्द करता, जिसे वह उद्देश्य के पूरा होने पर वापस निक्षेपी को लौटा देता है या उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर देता है ।

धारा 149 के अनुसार निक्षेपग्रहीता के लिये माल की सुपुर्दगी किसी भी ऐसे काम के करने से हो सकती है, जिसका प्र भाव यह हो कि माल निक्षेपग्रहीता के अधिकार में पहुँच जाये अ अथवा किसी ऐसे व्यक्ति के अधिकार में पहुँच जाये जो निक्षेपग्रहीता की ओर से उसे रखने के लिये अधिकृत है ।

9.4 निक्षेप के लक्षण

निक्षेप अनुबन्ध के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं-

(1) **दो पक्षकार** (Two Parties) -निक्षेप अनुबन्धों में दो पक्षकार होते हैं । जो व्यक्ति माल या वस्तु की सुपुर्दगी देता है उसे निक्षेपी (Bailor) कहा जाता है । जिस व्यक्ति को माल या वस्तु की सुपुर्दगी दी जाती है, उसे निक्षेपग्रहीता (Bailee) कहा जाता है ।

(2) **माल की विद्यमानता** (Existence of Goods) -निक्षेप अनुबन्धों में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी माल या वस्तु की सुपुर्दगी प्रदान करता है । इसलिए यह आवश्यक है कि निक्षेप करते समय माल का अस्तित्व हो, वह विद्यमान हो । भविष्य में निर्मित होने वाले अर्थात् ' भावी माल ' (Future Goods) का निक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

(3) **माल की सुपुर्दगी** (Delivery of Goods) -निक्षेप के अनुबन्ध में माल की सुपुर्दगी एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को अवश्य हो जानी चाहिए । माल की सुपुर्दगी से आशय स्वेच्छापूर्वक माल के अधिकार का एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण करना होता है । माल की सुपुर्दगी तीन प्रकार से की जा सकती है-

(i) **माल की वास्तविक सुपुर्दगी** (Actual Delivery of Goods) -वास्तविक सुपुर्दगी से अभिप्राय ऐसी सुपुर्दगी से है जिसमें वास्तव में माल एक व्यक्ति के अधिकार से दूसरे व्यक्ति के अधिकार में चला जाय । उदाहरण के लिए ' अ, ' ब ' को अपनी कार मरम्मत करने के लिए देता है । यह माल की वास्तविक सुपुर्दगी है ।

(ii) **रचनात्मक सुपुर्दगी**(Constructive Delivery) -जब माल किसी अन्य व्यक्ति के अधिकार में है अर्थात् वह उसे मालिक की ओर से रखे हुए है । यदि वह व्यक्ति जिसके पास माल रखा हुआ है उसे निक्षेपग्रहीता की स्थिति में रखना स्वीकार कर लेता है तो यह रचनात्मक सुपुर्दगी कहलाती है । वास्तव में इसमें किसी प्रकार की सुपुर्दगी नहीं हुई बल्कि अधिकार में केवल कानूनी परिवर्तन हुआ है ।

(iii) **सांकेतिक सुपुर्दगी** (Symbolic Delivery) -यदि माल की मात्रा या वजन इतना अधिक हो कि विक्रेता क्रेता को उसका हस्तान्तरण वास्तव में प्रदान न कर सके, तो वह माल का अधिकार परिवर्तन करने की दृष्टि में केवल संकेत (Symbol) प्रदान कर सकता है, जिसे सांकेतिक सुपुर्दगी कहते हैं । जहाजी बिल्टी इत्यादि की सुपुर्दगी सांकेतिक सुपुर्दगी ही है ।

(4) **चल सम्पत्तियों का ही निक्षेप**(Bailment Only of Movable Properties) -निक्षेप केवल चल सम्पत्तियों का ही हो सकता है । मकान, जमीन, जायदाद, दुकान आदि का निक्षेप नहीं हो सकता । अचल सम्पत्तियों को गिरवी के अनुबन्ध के अन्तर्गत बन्धक रखा जाता है ।

(5) **केवल अधिकार का हस्तान्तरण** (Only Transfer of Possession) -निक्षेप अनुबन्धों के अन्तर्गत जो माल या वस्तु निक्षेपी; निक्षेपग्रहीता को सुपुर्द करता है, उस पर केवल अधिकार का हस्तान्तरण होता है, माल या वस्तु पर स्वामित्व निक्षेपी का ही रहता है । चोकीदार निक्षेपग्रहीता नहीं होते क्योंकि माल उसके अधिकार में नहीं होता, वह तो दुकान या प्रतिष्ठान की केवल रखवाली करता है ।

(6) **कुछ उद्देश्य** (Some Purpose) - **धारा 148** में निक्षेप की परिभाषा में स्पष्ट है कि निक्षेप अनुबन्धों के अन्तर्गत माल या वस्तु की सुपुर्दगी किसी उद्देश्य के लिए निक्षेपी, निक्षेपग्रहीता को देता है । ऐसा उद्देश्य सीमित या अस्थायी प्रकृति का होता है, न कि स्थायी प्रकृति का । यदि उद्देश्य स्थायी प्रकृति का हो गया, तो यह निक्षेप नहीं होकर विक्रय हो जाएगा।

(7) **उद्देश्य पूरा होने पर वस्तु को लौटाना या उसकी व्यवस्था करना** (Return or Disposal of Goods when the purpose is Accomplished) - चूंकि इन अनुबन्धों में निक्षेपग्रहीता को दी जाने वाली वस्तु या माल सीमित या अस्थायी उद्देश्यों के लिए दिया जाता है, इसलिए उस उद्देश्य के पूरा हो जाने पर वह माल या वस्तु वापस निक्षेपी को लौटाने या उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था करने के लिए बाध्य होता है ।

(8) **अस्थायी उद्देश्य** (Temporary Purpose) -माल की सुपुर्दगी किसी अस्थायी उद्देश्य के लिए होती है जैसे ' ब ' अपनी घड़ी मरम्मत के लिए घड़ी साज को देता है । इसमें अस्थायी उद्देश्य है । घड़ी की मरम्मत होने पर वह ' ब ' को वापस हो जायेगी । राम घूमने के उद्देश्य से बाहर जा रहा है, वह अपनी कार पड़ौसी के पास छोड़ जाता है जिससे कार सुरक्षित रह सके तथा वापस आने पर उसे वापस मिल सके । ये निक्षेप है क्योंकि इसमें अस्थायी उद्देश्य है और उद्देश्य के पूरा होने पर वस्तु उसके स्वामी को वापस हो जायेगी ।

(9) **सुपुर्द किये हुए माल को वापस लेने का अधिकार माल के मालिक को होता है** (Goods are to be disposed of according to the directions of the owner) -निक्षेप अनुबन्ध में, माल की सुपुर्दगी इस शर्त पर दी जाती है कि उस उद्देश्य के पूरा हो जाने पर जिसके लिए कि सुपुर्दगी दी गयी थी वही माल उसके मालिक को वापस कर दिया जायेगा ।

(10) **निक्षेप में माल के अधिकार का बदलना भी आवश्यक है-**केवल माल की देखभाल या रखवाली करना निक्षेप नहीं हो सकता । अत : मालिक द्वारा नौकर को देखभाल के लिए माल की सुपुर्दगी अथवा किसी अतिथि जो कि अपने मेजबान की वस्तुएँ प्रयोग में लिये हुए हैं निक्षेप नहीं कहलाते हैं ।

(11) **स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं**-निक्षेप अनुबन्ध में केवल माल के अधिकार का हस्तान्तरण होता है, परन्तु स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं होता । वस्तु का स्वामित्व तो सदा निक्षेपी के पास ही रहता है । इसी के आधार पर वह अपने माल को पुन: प्राप्त कर सकता है ।

(12) **क्या बैंक में दी जाने वाली मुद्रा निक्षेप नहीं है ?**-वास्तव में किसी व्यक्ति द्वारा बैंक में चालू खाता, बचत खाता अथवा मुद्दती खाते में रुपया जमा करना निक्षेप नहीं कहलाता । ऐसी दशा में बैंक उसी रुपये को नहीं लौटाता जो जमा किया जाता है, बल्कि बैंक जमा राशि के बराबर रुपया वापस करता है । यहाँ बैंक और जमा करने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध ऋणी और ऋणदाता के होते हैं । परन्तु जब कोई व्यक्ति कुछ मूल्यवान सिक्के अथवा रुपया बैंक के लॉकर में सुरक्षा के लिए रखता है तो यह निक्षेप ही होगा ।

अपवाद (Exceptions) -

गर्भित रूप से भी निक्षेप अनुबन्ध का निर्माण हो सकता है । उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति को कोई माल सड़क पर पड़ा मिलता है एवं वह उस माल को अपने अधिकार में ले लेता है, तो **" खोए हुए माल को पाने वाला व्यक्ति "** (Finder of the Lost Goods) निक्षेपग्रहीता बन जाता है, जबकि ऐसे मामलों में माल के स्वामी व इसे पाने वाले के मध्य स्पष्ट अनुबन्ध नहीं होता ।

9.5 निक्षेप के प्रकार

निक्षेपों के निम्नलिखित प्रकार हैं-

(1) **सशुल्क निक्षेप** (Non Gratuitious Bailment) - ऐसे निक्षेप के अन्तर्गत निक्षेपी जो माल या वस्तुएँ निक्षेपग्रहीता को सुपुर्द करता है, उसके प्रयोग के प्रतिफल में शुल्क या किराया प्राप्त करता है । उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' से साईकिल किराये पर लेता है तो यह सशुल्क निक्षेप

(2) **निशुल्क निक्षेप** (Gratuitous Bailment) -निशुल्क निक्षेप के अन्तर्गत निक्षेपी निक्षेपग्रहीता से अनुबन्ध के अन्तर्गत सुपुर्द की गई वस्तुओं या माल का कोई शुल्क या किराया नहीं लेता । ऐसे निक्षेप भी तीन प्रकार के हो सकते हैं, प्रथम केवल निक्षेपी के लाभ के लिए द्वितीय केवल निक्षेपग्रहीता के लाभ के लिए व तृतीय पारस्परिक लाभ के लिए ।

(i) **केवल निक्षेपी के लाभ के लिए-**ऐसे निशुल्क निक्षेप जिसमें केवल निक्षेपी का लाभ है, इसके अन्तर्गत आते हैं । उदाहरण के लिए 'अ' 10 दिन के लिए जयपुर से बाहर जाता है, वह अपने मूल्यवान आभूषणों को अपने मित्र 'ब' के यहाँ छोड़ जाता है; जिससे उनकी उचित सुरक्षा हो सके व 'ब' इस कार्य को बिना कोई शुल्क लिए करना स्वीकार कर लेता है ।

(ii) **केवल निक्षेपग्रहीता के लाभ के लिए-**इस निक्षेप में निक्षेपी को कोई लाभ नहीं होता वरन् वह वस्तु का निक्षेप केवल मात्र निक्षेपग्रहीता के लाभ के लिए करता है । उदाहरण के लिए ' अ ' अपने मित्र ' ब ' से घूमने जाने के लिये 7 दिन के लिए कार लेता है ' ब ' कोई शुल्क नहीं लेता तो ऐसा निक्षेप केवल निक्षेपग्रहीता के लाभ के लिए कहलाएगा ।

(iii) **पारस्परिक लाभ के लिए-**इसके अन्तर्गत ऐसे निशुल्क निक्षेप आते हैं; जिनके द्वारा निक्षेपी व निक्षेपग्रहीता दोनों का लाभ होता है ।

(3) **सुरक्षा के लिए निक्षेप** (Bailment for Security) -निक्षेपी यदि अपने माल या वस्तु को सुरक्षा के लिए यदि निक्षेपग्रहीता के पास रखता है, तो ऐसा निक्षेप सुरक्षा हेतु निक्षेप कहलाएगा । उदाहरण के लिए **बैंक के लाकर्स में वस्तुएँ रखना**, रेल्वे स्टेशन या बस स्टेण्ड के **" क्लाक रूम "**में यात्रियों द्वारा अपना सामान रखना इसके अन्तर्गत आएँगे । इसी प्रकार राज्य भण्डारण गृहों में कृषकों द्वारा अनाज को रखना, **कोल्ड स्टोरेज** के अन्दर फल आदि रखना भी सुरक्षा हेतु निक्षेप है ।

(4) **प्रयोग के लिए निक्षेप** (Bailment for Use) -निक्षेपी यदि निक्षेपग्रहीता को कोई माल या वस्तु इस आशय के लिए देता है, कि वह इसका एक निश्चित अवधि तक प्रयोग करके पुन: लौटा देगा, तो ऐसा निक्षेप प्रयोग हेतु कहलाएगा । उदाहरण के लिए धर्मेन्द्र अपने मित्र विनोद को हनीमून के लिए घूमने जाते समय अपना कैमरा दे देता है, जिसे विनोद आते ही लौटा देगा, तो यह प्रयोग हेतु निक्षेप कहलाएगा ।

(5) **गिरवी के अन्तर्गत निक्षेप** (Bailment Under Pledge) -ऋण लेते समय यदि गिरवी रखने वाला कोई प्रतिभूति या वस्तु जमानत के तौर पर गिरवी रखने वाले के पास रखता है, तो यह गिरवी के अन्तर्गत निक्षेप कहलाएगा ।

(6) **स्वरूप परिवर्तन हेतु निक्षेप** (Bailment for the Change of Form) -यदि निक्षेपी माल या वस्तु की सुपुर्दगी निक्षेपग्रहीता को उसका कुछ स्वरूप परिवर्तन करने के लिए दे, तो ऐसा निक्षेप स्वरूप परिवर्तन हेतु निक्षेप कहलाएगा । उदाहरण के लिए सुनार को स्वर्ण या चाँदी आभूषण बनाने के लिए देना, टेलर को कपड़ा सिलने के लिए देना, फोटो स्टूडियो में नेगेटिव फिल्म डवलप करने के लिए देना, चक्की पर गेहूँ पीसने देना आदि।

(7) **मरम्मत के लिए निक्षेप** (Bailment for Repair) -इसके अन्तर्गत निक्षेपी अपने माल या वस्तु की सुपुर्दगी उसमें किसी प्रकार की मरम्मत करने के लिए करता है, तो निक्षेपग्रहीता मरम्मत करके वस्तु पुन: निक्षेपी को लौटा देता है । उदाहरण के लिए टी.वी., फ्रिज, कूलर, घड़ी, कार, स्कूटर आदि को मरम्मत के लिए दुकानदार को सुपुर्दगी देना ।

(8) **परिवहन हेतु निक्षेप** (Bailment for Transportation) -यदि निक्षेपी अपना माल या वस्तु किसी वाहक को किसी एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए सुपुर्द करता है, तो ऐसा निक्षेप परिवहन हेतु निक्षेप के अन्तर्गत आता है । उदाहरण के लिए वायु परिवहन के लिए सुपुर्द करना, रेल्वे, डाल-तार विभाग व निजी " सार्वजनिक परिवहन कम्पनियों " अर्थात् ट्रक कम्पनियों को माल परिवहन हेतु सुपुर्द करना इसके अन्तर्गत आते हैं ।

(9) **कुछ करने के लिए निक्षेप** (Bailment to do Something) -कुछ निक्षेप ऐसे होते हैं, जिनमें निक्षेपी न तो मरम्मत के लिए न ही स्वरूप परिवर्तन के लिए वरन् निक्षेपित वस्तु में कुछ कार्य करने के लिए सुपुर्द करता है । उदाहरण के **लिए ड्राइक्लीनर्स को ड्राइक्लीन करने के लिए** ऊनी कपड़े देना तथा **धोबी को प्रेस** के लिए कपड़े देना आदि इसके अन्तर्गत आते हैं ।

9.6 निक्षेपी के कर्त्तव्य एवं दायित्व

माल या वस्तु की निक्षेप अनुबन्ध के अन्तर्गत किसी निश्चित उद्देश्य के लिए सुपुर्दगी देने वाले व्यक्ति के कर्त्तव्यों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है-

(1) **निक्षेप किए जाने वाले माल के दोषों को प्रकट करना** (To Disclose Faults in Goods Bailed) - धारा 150 के अनुसार निक्षेपी का यह कर्त्तव्य है कि वह निक्षेप किए जाने वाले माल के दोषों को निक्षेपग्रहीता को प्रकट कर दे । निक्षेपी माल के ऐसे दोषों को जिन्हें वह जानता है, जिनके कारण माल को प्रयोग करने में बाधा पड़ती हो एवं जो निक्षेपग्रहीता को गम्भीर संकट में डाल सकते हैं, बताने के लिए बाध्य है । यदि निक्षेपी इस प्रकार का प्रकटीकरण नहीं करता तो ऐसे दोषों में निक्षेपग्रहीता को पहुँची प्रत्यक्ष हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए वह उत्तरदायी होगा ।

उदाहरण के लिए ' अ ' अपनी कार ' ब ' को उपयोग हेतु निक्षेप पर देता है व यह तथ्य नहीं बताता कि **कार के ब्रेक फेल** हैं । ' ब ' कार लेकर घूमने चला जाता है व कार से दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है । ' ब ' को ' अ ' से क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार है ।

महत्त्वपूर्ण(Important) - **धारा 150** के अनुसार यदि किराये पर माल का निक्षेप किया गया है, तो निक्षेपी को माल के दोषों की जानकारी हो या नहीं हो, वह माल के दोषों से पहुँची क्षति की पूर्ति के लिए उत्तरदायी हो जाता है ।

इसलिए सशुल्क निक्षेप या किराया हेतु निक्षेप के अन्तर्गत निक्षेपी का दायित्व हो जाता है व उसे चाहिए कि माल को निक्षेप हेतु सुपुर्द करने से पूर्व माल के दोषों की जानकारी कर ले व निक्षेपग्रहीता की जानकारी में माल के सम्बन्धित दोषों को प्रकट कर दे ।

(2) **आवश्यक व्ययों का भुगतान** (Repayment of Necessary Expenses) - धारा 158 के अनुसार जहाँ निक्षेप की शर्तों के अनुसार निक्षेपग्रहीता को निक्षेप के अन्तर्गत कोई माल रखना हो, उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना हो या निक्षेप हेतु दी गई उस वस्तु या

माल पर कोई कार्य करना हो एवं निक्षेपग्रहीता को इसके प्रतिफलस्वरूप कोई पारिश्रमिक नहीं मिलना हो, निक्षेपी निक्षेपग्रहीता के द्वारा निक्षेप के अन्तर्गत किए गए आवश्यक व्ययों के भुगतान के लिए बाध्य है ।

सशुल्क निक्षेप की स्थिति में निक्षेपी केवल उन असाधारण व्ययों के भुगतान के लिए बाध्य होगा जो निक्षेपग्रहीता ने निक्षेप के अन्तर्गत किए हों अर्थात् सशुल्क निक्षेप के अन्तर्गत निक्षेपी साधारण व्ययों के भुगतान के लिए बाध्य नहीं है ।

(3) **माल की सुपुर्दगी देना** (Delivery Of Goods) -निक्षेप अनुबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि अनुबन्ध के अधीन माल या वस्तु निक्षेपग्रहीता या उसके अधिकृत प्रतिनिधि को सुपुर्द करे । इसलिए माल की सुपुर्दगी देना निक्षेपी का कर्त्तव्य है । माल की सुपुर्दगी मामले के तथ्य व परिस्थितियों को देखते हुए वास्तविक, रचनात्मक व सांकेतिक हो सकती है।

(4) **निर्धारित अवधि या उद्देश्य से पूर्व माल वापस लेने से उत्पन्न क्षति की पूर्ति** (To Indemnify the Bailee in case of Goods Taken Back Before Fixed Time or Purpose) -निशुल्क निक्षेप के अन्तर्गत यदि निक्षेपी सुपुर्द किए गए माल या वस्तु को यदि निर्धारित अवधि या उद्देश्य के पूरा होने से पूर्व मांग लेता है व इसके कारण यदि निक्षेपग्रहीता को लाभ के स्थान पर हानि अधिक हो तो **धारा 159** के प्रावधानों के अनुसार निक्षेपी लाभ पर हानि के आधिक्य की क्षतिपूर्ति निक्षेपग्रहीता को करने के लिए उत्तरदायी होगा ।

(5) **निक्षेपग्रहीता की क्षतिपूर्ति** (To Indemnify the Bailee) - **धारा 164** के अनुसार निक्षेपी निक्षेपग्रहीता को ऐसी क्षति या हानि की पूर्ति के लिए बाध्य है, जो निक्षेपग्रहीता को इस कारण उठानी पड़े कि निक्षेपी निक्षेप के लिए अधिकारी नहीं था या वह माल को वापस पाने या माल के सम्बन्ध में आदेश देने के लिए अधिकारी नहीं था ।

उदाहरण के लिए ' अ ' अपनी कार ' ब ' को उपयोग हेतु निक्षेप पर देता है, जबकि तथ्य यह है कि कार उसकी है ही नहीं । ऐसे मामले में ' ब ' स्वयं को पहुँची क्षति की पूर्ति ' अ ' से करा सकता है ।

(6) **माल वापस लेना** (To Take Back the Goods) -निक्षेप की अवधि समाप्त होने पर या उद्देश्य पूरा हो जाने पर जब निक्षेपग्रहीता निक्षेपित माल या वस्तु की सुपुर्दगी निक्षेपी को दे,तो उसका कर्त्तव्य है कि वह सुपुर्दगी को स्वीकार करे।

9.7 निक्षेपी के अधिकार

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की विभिन्न धाराओं में निक्षेपी के निम्नलिखित अधिकारों का वर्णन किया गया है ।

(1) **निक्षेपग्रहीता की उपेक्षा से निक्षेपित माल को हुई हानि की क्षतिपूर्ति- धारा 152** के अनुसार यदि निक्षेपग्रहीता ने निक्षेपित माल की उचित देखभाल नहीं की है तो वह इसके कारण निक्षेपित माल को हुई हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी है । यहाँ उचित देखभाल से आशय ऐसी देखभाल से हे, जिसकी अपेक्षा एक साधारण व्यक्ति से अपने माल के सम्बन्ध में की जा सकती है ।

(2) **निक्षेप अनुबन्ध को समाप्त करने का अधिकार-धारा 153** के अनुसार यदि निक्षेपग्रहीता निक्षेप की शर्तों के प्रतिकूल या असंगत कार्य निक्षेपित माल के सम्बन्ध में करता है, तो निक्षेप अनुबन्ध निक्षेपी की इच्छा पर व्यर्थनीय होगा ।

(3) **निक्षेप की शर्तों के विरुद्ध माल का प्रयोग करने पर क्षतिपूर्ति-धारा 154** के अनुसार यदि निक्षेपग्रहीता निक्षेप किए गए माल का उपयोग निक्षेप की शर्तों के अनुसार नहीं करता, तो ऐसे अनधिकृत प्रयोग से निक्षेपित माल को जो हानि होती है, उसकी क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार निक्षेपी को होगा ।

(4) **निक्षेपग्रहीता द्वारा निक्षेपित माल को अपने माल में मिला लेना** (Mixture of Bailed Goods in Own Goods by Bailee) -यदि निक्षेपग्रहीता निक्षेपित माल को अपने माल में मिला लेता है, तो धारा 155, 156 व 157 के अनुसार निक्षेपी के निम्नलिखित अधिकार होंगे ।

(i) **निक्षेपी की सहमति से निक्षेप किए गए माल को अपने माल में मिलाना- धारा 155** के अनुसार यदि निक्षेपग्रहीता निक्षेपी की सहमति से निक्षेप किए गए माल को अपने माल में मिला देता है तो निक्षेपी का अपने माल के भाग के अनुपात में ऐसी मिलावट से उत्पन्न माल में हित होगा ।

(ii) **निक्षेपी की बिना सहमति से माल को अपने माल में मिलाना परन्तु पृथक करना सम्भव हो- धारा 156** के अनुसार यदि निक्षेपग्रहीता ने निक्षेपी की बिना सहमति के निक्षेप किए गए माल को अपने माल में मिला लिया है, परन्तु ऐसी मिलावट के पश्चात् भी जब निक्षेप किए गए माल को पृथक करना सम्भव है तो पुन: माल को पृथक करने के व्यय व यदि इस दौरान निक्षेपित माल को कोई क्षति होती है तो उसकी पूर्ति के लिए निक्षेपग्रहीता बाध्य होगा ।

(iii) **निक्षेपी की बिना सहमति के निक्षेप किए गए माल को निक्षेपग्रहीता द्वारा अपने माल में मिला लेना व उसे पुन: पृथक करना सम्भव नहीं होने पर-**ऐसी स्थिति में धारा 157 के अनुसार निक्षेपी अपने सम्पूर्ण माल के मूल्य की क्षतिपूर्ति निक्षेपग्रहीता से करा सकता है।

(5) **निःशुल्क निक्षेप की स्थिति में माल को किसी भी समय प्राप्त करने का अधिकार-धारा 159** के अनुसार निःशुल्क निक्षेप के अन्तर्गत भले ही माल का निक्षेप किसी निश्चित उद्देश्य या अवधि के लिए किया गया हो, निक्षेपी किसी भी समय निक्षेप की गई वस्तु को वापस प्राप्त करने का अधिकार रखता है ।

(6) **निक्षेप की अवधि या प्रयोजन पूरा होने पर माल को पुन: प्राप्त करने का अधिकार- धारा 160** के अनुसार निक्षेप की अवधि या प्रयोजन के पूरा हो जाने पर निक्षेपी को निक्षेपित माल को पुन: प्राप्त करने कर अधिकार है ।

(7) **निक्षेपित माल की अतिरिक्त वृद्धि या लाभ को प्राप्त करने का अधिकार- धारा 163** के अनुसार जब तक अनुबन्ध में कोई विपरीत व्यवस्था नहीं हो, निक्षेपी निक्षेप किए गए माल की अतिरिक्त वृद्धि या लाभ को प्राप्त करने का अधिकार रखता है ।

9.8 निक्षेपग्रहीता के कर्त्तव्य

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की विभिन्न धाराओं के प्रावधानों के अनुसार निक्षेपग्रहीता के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं ।

(1) **निक्षेप किए गए माल की उचित देखभाल करना- धारा 151** के अनुसार निक्षेपग्रहीता निक्षेप किए गए माल की उसी प्रकार देखभाल करने के लिए बाध्य है, जितनी कि सामान्य बुद्धि का मनुष्य समान परिस्थिति में उसी मात्रा, किस्म या गुण और मूल्य के स्वयं के माल के लिए करता है । यह महत्त्वहीन होगा कि निक्षेप निःशुल्क था या सशुल्क । निक्षेपी दोनों ही प्रकार के निक्षेप में समान देखभाल करने के लिए उत्तरदायी है ।

(2) **देखभाल की उपेक्षा से निक्षेपित माल को हुई हानि की क्षतिपूर्ति- धारा 152** के अनुसार यदि निक्षेपग्रहीता ने निक्षेपित माल की उचित देखभाल नहीं की है, तो इस कारण निक्षेप किए गए माल को हुई क्षति व हानि की पूर्ति के लिए निक्षेपग्रहीता उत्तरदायी है ।

परन्तु यदि निक्षेपित माल को क्षति या हानि किसी दैवी प्रकोप या अन्य किसी आकस्मिक घटना से होती है, जिस पर निक्षेपग्रहीता का कोई नियन्त्रण नहीं था, तो ऐसे कारणों से निक्षेपित माल को हुई हानि या क्षति के लिए वह उत्तरदायी नहीं होगा । उदाहरण के लिए युद्ध में बमबारी से, आकस्मिक लगी आग से, बाढ़, तूफान, बिजली गिरने, चोरी, डकैती, आँधी व वर्षा आदि से निक्षेपित माल को हुई हानि या क्षति के लिए निक्षेपग्रहीता उत्तरदायी नहीं होगा ।

(3) **निक्षेप की शर्तों के प्रतिकूल कार्य नहीं करना- धारा 156** के अनुसार निक्षेपग्रहीता को कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जो निक्षेप की शर्तों के प्रतिकूल या असंगत हो ।

(4) **निक्षेप किए गए माल का अनधिकृत उपयोग न करना- धारा 154** के अनुसार निक्षेपग्रहीता का यह कर्त्तव्य है कि वह निक्षेप किए गए माल का कोई भी अनाधिकृत उपयोग नहीं करे अन्यथा ऐसे अनधिकृत उपयोग से वस्तु को जो हानि या नुकसान पहुँचता है उसकी क्षतिपूर्ति उसे करनी होगी ।

(5) **निक्षेप किए गए माल को स्वयं के माल में न मिलाना- धारा 155 से 157** तक के प्रावधान इस सम्बन्ध में हैं । इन प्रावधानों से यह निष्कर्ष निकलता है कि निक्षेपग्रहीता को निक्षेप किए गए माल को बिना निक्षेपी की सहमति के स्वयं के माल में नहीं मिलाना चाहिए । स्वयं के माल में निक्षेप किए गए माल को मिला लेने पर यदि उसे पृथक करना सम्भव हो, तो पृथक करने के व्यय एवं पृथक करना सम्भव नहीं होने पर माल के मूल्य की क्षतिपूर्ति उसे निक्षेपी को करनी होगी ।

(6) **अवधि या उद्देश्य पूरा होने पर निक्षेपित माल को वापस करना- धारा 160** के प्रावधानों के अनुसार यह निक्षेपग्रहीता का कर्त्तव्य है कि वह निक्षेपित माल को निक्षेप की अवधि पूरा होने या प्रयोजन पूरा होने के पश्चात् बिना निक्षेपी के मांग किए शीघ्र से शीघ्र लौटाए अथवा निक्षेपी के आदेशानुसार माल की सुपुर्दगी दे अन्यथा **धारा 161** के अनुसार उचित समय में माल की सुपुर्दगी वापस नहीं देने पर निक्षेप किए गए माल की क्षति, हानि या विनाश के लिए निक्षेपग्रहीता उत्तरदायी होगा ।

(7) **अधिकार में बाधा उपस्थित नहीं करना-** भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 117 के अनुसार निक्षेपग्रहीता को कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जो निक्षेपी के अधिकार में बाधा उत्पन्न करता है । अधिकार में बाधा उपस्थित करने के कार्यों के उदाहरण हैं-निक्षेप किए गए माल को लौटाने से मना करना, निक्षेपी के माल पर स्वामित्व को अस्वीकार करना आदि ।

(8) **वृद्धि या लाभ को वापस करना- धारा 163** के अनुसार जब तक अनुबन्ध में कोई विपरीत व्यवस्था नहीं हो निक्षेपग्रहीता का कर्त्तव्य है कि निक्षेप के दौरान निक्षेपित माल में हुई किसी वृद्धि या लाभ को निक्षेपी को वापस करे ।

उदाहरण के लिए ' अ ' अपनी गाय ' ब ' के पास देखभाल हेतु निक्षेप पर छोड़ गया । निक्षेप की अवधि के दौरान गाय के बच्चा हो जाता है । निक्षेप समाप्त होने पर ' ब ' गाय के साथ उस अवधि में गाय से जन्मे बच्चे को भी लौटाने के लिए बाध्य है ।

9.9 निक्षेपग्रहीता के अधिकार

अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत निक्षेपग्रहीता के निम्नलिखित अधिकारों का वर्णन किया गया है ।

(1) **निक्षेपित माल के दोष प्रकट करने से उत्पन्न हानि की क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार- धारा 150** के प्रावधानों के अनुसार यदि निक्षेपी, निक्षेप किए गए माल के दोषों को प्रकट नहीं करता है, जो कि उसकी जानकारी में थे (निःशुल्क निक्षेप की स्थिति में) एवं सशुल्क निक्षेप में भले ही माल के दोषों की जानकारी उसे नहीं हो, ऐसे दोषों से यदि निक्षेपग्रहीता को कोई हानि पहुँचती है, तो उसकी क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार निक्षेपग्रहीता को होगा ।

(2) **आवश्यक व्ययों को पाने का अधिकार- धारा 158** के अनुसार निक्षेपग्रहीता उन सभी व्ययों का भुगतान प्राप्त करने का अधिकार रखता है, जो उसने निक्षेपित माल के सम्बन्ध में किए हों । ऐसे आवश्यक व्यय पाने का अधिकार उसे तब होगा जबकि निक्षेप निःशुल्क हो ।

(3) **पारिश्रमिक पाने का अधिकार- धारा 158** के अनुसार यदि निक्षेप के फलस्वरूप निक्षेपग्रहीता को कोई पारिश्रमिक मिलना है, तो ऐसा पारिश्रमिक उसे प्राप्त करने का अधिकार होगा ।

(4) **निःशुल्क निक्षेप की स्थिति में अवधि पूर्व या निश्चित उद्देश्य पूरा होने से पूर्व निक्षेपी द्वारा निक्षेप समाप्त करने पर अधिकार- धारा 159** के अनुसार ऐसी स्थिति में यदि निक्षेपग्रहीता को लाभ की बजाय हानि अधिक होने पर वह लाभ पर हानि के आधिक्य की क्षतिपूर्ति निक्षेपी से प्राप्त कर सकता है, बशर्ते निक्षेपग्रहीता ने निक्षेप के निश्चित समय या उद्देश्य के अनुसार इस प्रकार कार्य किया है, जिसके कारण यदि निक्षेपी इस परिस्थिति में निक्षेपित माल वापस ले लेता है तो उसे लाभ की बजाय हानि अधिक होती हो ।

(5) **माल को उपयोग करने का अधिकार-**निक्षेपग्रहीता को निक्षेप अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार निश्चित अवधि या उद्देश्य पूरा होने तक निक्षेपित माल को उपयोग करने का अधिकार है ।

(6) **निक्षेपी के अधिकार में कमी के कारण होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति- धारा 164** के अनुसार यदि निक्षेपी, निक्षेप करने का अधिकारी नहीं था तो उसके इस अधिकार में कमी के

कारण निक्षेपग्रहीता को जो हानि या क्षति पहुँचती है, उसकी क्षतिपूर्ति वह निक्षेपी से कराने का अधिकार रखता है ।

(7) **सह-निक्षेपियों की स्थिति में किसी भी एक को माल सुपुर्द करने का अधिकार- धारा 165** के अनुसार यदि अनुबन्ध में विपरीत व्यवस्था नहीं हो तो निक्षेपग्रहीता शेष सह-निक्षेपियों की अनुमति प्राप्त किए बिना किसी भी एक निक्षेपी को या उसके आदेशानुसार माल लौटाने का अधिकार रखता है ।

(8) **निक्षेपी का निक्षेपित माल पर अच्छा अधिकार नहीं होने पर- धारा 166** के अनुसार यदि निक्षेपित माल पर निक्षेपी का अधिकार अच्छा नहीं है एवं निक्षेपग्रहीता सद्भावना के अन्तर्गत उस माल को निक्षेपी को या उसके निर्देशानुसार सुपुर्द कर देता है, तो निक्षेपग्रहीता माल के वास्तविक स्वामियों को माल की सुपुर्दगी हेतु उत्तरदायी नहीं है ।

(9) **निक्षेपित माल की सुपुर्दगी रोकने का अधिकार- धारा 167**के अनुसार यदि निक्षेपी के अतिरिक्त अन्य कोई तीसरा पक्षकार यदि निक्षेपित माल का स्वामी होने का दावा करता है तो निक्षेपी न्यायालय में आवेदन कर सकता है कि माल के वास्तविक स्वामी का निर्धारण कर दिया जाए । जब तक न्यायालय वास्तविक स्वामी का निर्धारण नहीं कर देता, तब तक निक्षेपग्रहीता को माल की सुपुर्दगी रोके रखने का अधिकार हे ।

(10) **विशिष्ट ग्रहणाधिकार- धारा 170** के अनुसार यदि निक्षेपग्रहीता ने निक्षेप की गई वस्तु या निक्षेपग्रहीता की स्थिति के कारण निक्षेपित माल पर कोई व्यय किए हैं तो वह इन व्ययों को प्राप्त करने का तो कोई वैधानिक अधिकार नहीं है परन्तु वह निक्षेपित माल को तब तक रोके रख सकता है, जब तक कि निक्षेपी उन व्ययों का भुगतान नहीं कर दें, यही विशिष्ट ग्रहणाधिकार कहलाता है ।

(11) **तीसरे पक्षकार के विरुद्ध अधिकार- धारा 180** के अनुसार यदि कोई तीसरा व्यक्ति निक्षेपग्रहीता को किसी दोषपूर्ण तरीके से निक्षेपित माल को उपयोग करने के अधिकार से वंचित करता है तो निक्षेपग्रहिता उन सभी उपायों को काम में लेने का अधिकारी है । जिनका प्रयोग समान परिस्थितियों में माल का स्वामी करता है ।

(12) **ऐसे वाद से प्राप्त क्षतिपूर्ति या सहायता में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार- धारा 181** के अनुसार यदि उपरोक्त वर्णित वाद के परिणामस्वरूप कोई राशि क्षतिपूर्ति या सहायता के रूप में प्राप्त होती है, तो उसे निक्षेपी व निक्षेपग्रहीता अपने हितों के अनुसार बाँट सकते हैं । अत: उसे अपना हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार होगा।

(13) **निक्षेपित माल को अपने माल में मिलाने का अधिकार-**निक्षेपग्रहीता निक्षेपी की सहमति से निक्षेप किए गए माल को अपने माल में मिला सकता है।

9.10 निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति

अनुबन्ध अधिनियम की विभिन्न धाराओं के अनुसार निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति निम्नलिखित स्थितियों में की जा सकती है अथवा हो सकती है-

(1) **निक्षेप की शर्तों के असंगत कार्य करने पर- धारा 153** के अनुसार यदि निक्षेपग्रहीता निक्षेपित माल के सम्बन्ध में अनुबन्ध की शर्तों के प्रतिकूल कोई कार्य करता है तो निक्षेप

अनुबन्ध निक्षेपी की इच्छा पर व्यर्थनीय होगा । इसके अनुसार ऐसी स्थिति में निक्षेपी निक्षेप अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है व निक्षेपित माल को पुन: प्राप्त कर सकता है ।

(2) **निर्धारित अवधि या उद्देश्य पूरा होने पर- धारा 150** के अनुसार यदि निक्षेप किसी निश्चित अवधि के लिए है, तो ऐसी अवधि के पूरा होने पर एवं यदि निक्षेप निश्चित प्रयोजन या उद्देश्य के लिए है तो प्रयोजन पूरा होने पर निक्षेप अनुबन्ध समाप्त हो जाता है ।

(3) **निःशुल्क निक्षेप की समाप्ति-**निःशुल्क निक्षेप दो परिस्थितियों में समाप्त हो जाता है-

(i) **निक्षेपी की इच्छा पर- धारा 159** के अनुसार निःशुल्क निक्षेप को निक्षेपी किसी भी समय समाप्त कर सकता है, भले ही निक्षेप की निश्चित अवधि या उद्देश्य पूरा नहीं हुआ हो ।

(ii) **किसी एक पक्षकार की मृत्यु पर समाप्ति-धारा न 62** के अनुसार निःशुल्क निक्षेप की स्थिति में निक्षेपी या निक्षेपग्रहीता दोनों में से किसी एक पक्षकार की: मृत्यु होने पर समाप्त हो जाता है ।

9.11 ग्रहणाधिकार

निक्षेप अनुबन्धों में निक्षेपग्रहीता को प्राप्त एक विशेष अधिकार-ग्रहणाधिकार कहलाता है।

ग्रहणाधिकार से अभिप्राय किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के माल या वस्तु को उस समय तक अपने पास रोके रखने के अधिकार से है, जब तक उसकी बकाया राशि का भुगतान नहीं कर दिया जाता । एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की वस्तु को रोके रखना तभी सम्भव होगा, जबकि वह वस्तु या माल उसके अधिकार या कब्जे में हो, अन्यथा इसका कोई उपयोग नहीं है ।

ग्रहणाधिकार की निम्नलिखित विशेषताएँ या लक्षण होते हैं ।

(1) इस अधिकार की उत्पत्ति अनुबन्ध या ठहराव द्वारा नहीं होती, वरन् राजनियम द्वारा होती है ।

(2) इस अधिकार का प्रयोग केवल माल पर ही किया जा सकता है ।

(3) इस अधिकार का प्रयोग करने के लिए माल निक्षेपग्रहीता के कब्जे में होना आवश्यक है।

(4) यह आवश्यक है कि माल पर अधिकार वैधानिक तरीके से प्राप्त किया गया हो ।

(5) ग्रहणाधिकार का प्रयोग केवल वही व्यक्ति कर सकता है, जो दूसरे व्यक्ति से कुछ धनराशि माँगता हो । इस अधिकार को किसी दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण नहीं किया जा सकता ।

(6) इस अधिकार को प्रयोग करने के लिए माल पर निरन्तर अधिकार का बने होना आवश्यक है । यदि किसी कारण से ग्रहणाधिकार को प्रयोग करने वाले व्यक्ति के अधिकार से माल निकल जाता है, तो ग्रहणाधिकार भी समाप्त हो जाएगा।

(7) ग्रहणाधिकार का प्रयोग केवल बकाया धनराशि को वसूल करने के लिए किया जा सकता है ।

(8) ज्योंही दूसरा व्यक्ति बकाया धनराशि का भुगतान कर देता है, उसी समय ग्रहणाधिकार भी समाप्त हो जाता है ।

ग्रहणाधिकार के प्रकार -ग्रहणाधिकार दो प्रकार का होता है । इनका वर्णन इस प्रकार है ।

(1) विशिष्ट ग्रहणाधिकार (Particular Lien) -विशिष्ट ग्रहणाधिकार से आशय किसी दूसरे व्यक्ति के माल या वस्तु को उस समय तक रोके रखने के अधिकार से है जब तक उस वस्तु विशेष के सम्बन्ध में किए गए व्यय या परिश्रम का भुगतान उसे नहीं कर दिया जाता । **यह अधिकार खोए हुए माल को पाने वाले व्यक्ति को (धारा 168), निक्षेपग्रहीता को (धारा 170), माल के अदत्त विक्रेता (धारा 173), एजेन्ट व गिरवी रख लेने वाले को (धारा 221)**के अन्तर्गत प्राप्त होता है ।

(2) **साधारण ग्रहणाधिकार** (General Lien) -साधारण ग्रहणाधिकार किसी व्यक्ति के माल को उस समय तक रोके रखने के अधिकार से है जब तक उसके लेन-देन के सामान्य शेष का भुगतान नहीं कर दिया जाता । यह **अधिकार बैंकर्स, बन्दरगाह के गोदाम अधिकारी अर्थात् घाटपाल, आड़तिया, बीमा दलाल व उच्च न्यायालय के एटोर्नी को प्राप्त होता है ।** साधारण ग्रहणाधिकार को ही धारक ग्रहणाधिकार कहा जाता है । [धारा 171]

9.12 सामान्य ग्रहणाधिकार तथा विशिष्ट ग्रहणाधिकार में अन्तर

क्र.सं.	अन्तर का आधार	सामान्य ग्रहणाधिकार	विशिष्ट ग्रहणाधिकार
1.	अभिप्राय	खाते के सामान्य शेष के लिए वस्तु या माल को रोके जाने के अधिकार को सामान्य ग्रहणाधिकार कहा जाता है ।	किसी विशिष्ट वस्तु या माल पर किए गए व्यय या पारिश्रमिक के लिय उसी माल को रोके रखने का अधिकार विशिष्ट ग्रहणाधिकार कहलाता है ।
2.	प्रयोग	सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग किसी भी वस्तु या माल पर किया जा सकता है।	इसका प्रयोग केवल उसी माल के सम्बन्ध मे किया जा सकता है जिसके लिए उस व्यक्ति ने व्यय किए हो या उसका पारिश्रमिक बकाया है ।
3.	प्रयोग करने के अधिकृत पक्षकार	इसका प्रयोग बैंकर्स, बीमा के दलाल, आड़तिया, घाटपाल, उच्च न्यायालय के एटोर्नी कर सकते है ।	विशिष्ट ग्रहणाधिकार का प्रयोग खोए हुए माल को पाने वाला व्यक्ति, एजेन्ट, माल का अदत्त विक्रेता, गिरवी रख लेने वाला व निक्षेपग्रहिता करने के लिए अधिकारी है ।

9.13 खोए हुए माल को पाने वाला व्यक्ति

निक्षेप अनुबन्ध के दृष्टिकोण से खोए हुए माल को पाने वाला व्यक्ति, ऐसे माल को अपने अधिकार में लेते ही निक्षेपग्रहीता बन जाता है । किसी व्यक्ति को यदि कोई चीज या वस्तु किसी स्थान पर पड़ी हुई दिखती है तो वह राजनियम या कानून के अनुसार उसे अपने अधिकार में लेने हेतु बाध्य नहीं है । परन्तु यदि वह उस पड़े हुए माल को अपने अधिकार में ले लेता है तो अनुबन्ध अधिनियम की धारा क्रियाशील हो जाती है एवं उसकी स्थिति निक्षेपग्रहीता की हो जाती है ।

अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 71** के अनुसार वह व्यक्ति जो किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु या माल पाता है और उसे अपने संरक्षण में ले लेता है तो उसकी स्थिति निक्षेपग्रहीता के रूप में हो जाती है ।

कर्त्तव्य (Duties) - **धारा 71** के अनुसार खोए हुए माल को पाने वाला व्यक्ति ज्योंही पड़े माल को अपने अधिकार में ले लेता है, उसकी स्थिति निक्षेपग्रहीता की हो जाती है इसलिए उसके वही कर्त्तव्य होते हैं जो निक्षेपग्रहीता के होते हैं, ये इस प्रकार हैं ।

(1) माल की उचित देखभाल करना ।

(2) उस माल के स्वामी का पता लगाना ।

(3) माल का अनुचित प्रयोग न करना ।

(4) उस माल को अपने माल में नहीं मिलाना ।

(5) उस माल को वास्तविक स्वामी मिल जाने पर वापस लौटाना ।

(6) माल की अतिरिक्त वृद्धि या लाभ को माल के स्वामी को लौटाना ।

(7) उसकी स्वयं की उपेक्षा से माल को हानि या क्षति होने पर उसकी पूर्ति करना ।

खोये हुये माल को पाने वाले के अधिकार-उसे निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं ।

(1) **विशेष ग्रहणाधिकार-**उस माल पर जो उसने खर्च किया है, उन व्ययों को वह वास्तविक स्वामी पर वाद दायर करके वसूल नहीं कर सकता, परन्तु उस माल या वस्तु पर उसका विशिष्ट ग्रहणाधिकार होता है । अत: जब तक माल का स्वामी उस माल पर उसके द्वारा किए गए व्ययों का भुगतान नहीं करता, तब तक वह माल को रोके रख सकता है।

(2) **घोषित पुरस्कार को प्राप्त करने का अधिकार-**यदि खोया हुआ माल या वस्तु अधिकार में लेते समय उसे उस वस्तु पर पुरस्कार की घोषणा का पता था, तो वह ऐसे पुरस्कार की राशि को माल के वास्तविक स्वामी से प्राप्त कर सकता है । वास्तविक स्वामी द्वारा मना करने पर मुकदमा दायर करके वह पुरस्कार की राशि वसूल कर सकता है ।

(3) **माल को बेचने का अधिकार-**वह निम्नलिखित परिस्थितियों में माल को बेचने का अधिकार भी रखता है-

(i) यदि पर्याप्त व उचित प्रयास के पश्चात् भी माल के वास्तविक स्वामी का पता न चले ।

(ii) वास्तविक स्वामी का पता चल जाता है, परन्तु वह माल लेने से मना कर दे ।

(iii) वास्तविक स्वामी माल का व्यय चुकाने से मना कर दे ।

(iv) माल नष्टशील प्रकृति का हो ।

(v) जब उस माल के मूल्य के दो-तिहाई मूल्य के बराबर उसके व्यय हो गये हों ।

9.14 गिरवी का अर्थ एवं परिभाषा

गिरवी एक विशेष प्रकार का निक्षेप (Bailment) है । निक्षेप एवं गिरवी में केवल उद्देश्य का अन्तर है । जब 'निक्षेप' का उद्देश्य किसी ऋण के भुगतान की जमानत देना हो अथवा किसी वचन को पूरा करने की जमानत के लिये हो तो ऐसी स्थिति में किये गये ' निक्षेप ' को ही ' गिरवी ' (Pledge) कहा जाता है । मुद्रा को छोडकर किसी भी प्रकार की चल वस्तुएं, बहुमूल्य चीजें, दस्तावेज, अंश आदि गिरवी की विषय वस्तु हो सकते हैं ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 172 से 179 के अन्तर्गत एक विशेष प्रकार के निक्षेप अनुबन्ध से संबंधित प्रावधानों का समावेश किया गया है, जिसे गिरवी कहा जाता है । इस अधिनियम की धारा 172 के अनुसार " जब किसी ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन हेतु जमानत (प्रतिभूति) के रूप में किसी माल का निक्षेप किया जाता है, तो इसे गिरवी कहते हैं । ऐसे मामले में निक्षेपी गिरवी रखने वाला तथा निक्षेपग्रहीता को गिरवी रख लेने वाला कहा जाता है । " इस परिभाषा से यह स्पष्ट है, कि गिरवी एक विशेष प्रकार का निक्षेप है, जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति अपने ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन की जमानत या प्रत्याभूति के रूप में माल का निक्षेप करता है ।

गिरवी के अनुबन्ध में निम्नलिखित आवश्यक लक्षण होते हैं ।

(1) **अनुबन्ध के पक्षकार** (Parties of Contract) - गिरवी के अनुबन्धों में दों पक्षकार होते हैं । वह पक्षकार जो माल या वस्तुओं का निक्षेप करता है, गिरवी रखने वाला या गिरवीकर्त्ता (Pawnor) कहलाता है एवं जिस पक्षकार के पास वह माल या वस्तु का निक्षेप करता है, उसे गिरवी रख लेने वाला या गिरवीग्राही (Pawnee) कहा जाता है ।

(2) **केवल चल वस्तुओं की गिरवी** (Pledge only of Movable Pro-perties)-गिरवी के अन्तर्गत एक पक्षकार केवल चल वस्तुओं को गिरवी के अन्तर्गत निक्षेप कर सकता है । चल वस्तुओं में दस्तावेज, मूल्यवान वस्तुएँ कम्पनियों के अंश व ऋणपत्र, विनिमय साध्य विलेख व सरकारी प्रतिभूतियाँ आदि सम्मिलित हैं । यह उल्लेखनीय है कि चलन में प्रचलित मुद्रा को गिरवी नहीं रखा जा सकता ।

(3) **माल की विद्यमानता** (Existence of Goods) - गिरवी के अन्तर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को माल का निक्षेप करता है, इसलिए यह आवश्यक है कि जिस माल या वस्तु का निक्षेप किया जाना है वह अस्तित्व में हो । यदि वह भावी माल है अर्थात् जिनका निर्माण भविष्य में किया जाना है, या अर्धनिर्मित माल है अर्थात् जिसे पूरा तैयार माल बनने में कुछ प्रक्रिया शेष है, तो ऐसे माल को गिरवी नहीं रखा जा सकता हैं।

(4) **माल की सुपुर्दगी** (Delivery of Goods)-विद्यमान माल की सुपुर्दगी गिरवीकर्त्ता के द्वारा गिरवीग्राही को होना आवश्यक है । सुपुर्दगी वास्तविक या रचनात्मक हो सकती है।

(5) **माल का हस्तान्तरण होता है स्वामित्व का नहीं-**गिरवीग्राही के पास माल हस्तान्तरित होना आवश्यक है । अर्थात् गिरवी अनुबन्ध के अन्तर्गत निक्षेप की गई वस्तु या माल पर गिरवीग्राही का वैधानिक अधिकार होना चाहिए । यह स्पष्ट है कि गिरवी के अनुबन्धों में भी निक्षेप किए गए माल पर गिरवीकर्त्ता का ही स्वामित्व बना रहता है, अर्थात् स्वत्व (स्वामित्व) का हस्तान्तरण नहीं होता । रचनात्मक रूप में भी माल का हस्तान्तरण किया जा सकता है ।

(6) **ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन की प्रतिभूति के लिए निक्षेप** (Bailment as Security for Payment of Debt or Performance of a Promise)-गिरवी का उद्देश्य या प्रयोजन किसी ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन के लिए किसी वस्तु या माल का जमानत या प्रत्याभूति के लिए निक्षेप है । इन दों उद्देश्यों के अतिरिक्त किसी उद्देश्य के लिए निक्षेप गिरवी अनुबन्धों के अन्तर्गत नहीं आते ।

(7) **ऋण एवं गिरवी हेतु माल का निक्षेप एक साथ आवश्यक नहीं** (Loan and Bailment of Goods for Pledge is not Necessary Simultaneou-sly) -यह आवश्यक नहीं है कि गिरवीकर्ता ऋण लेते समय ही उसके भुगतान की जमानत के लिए माल का निक्षेप गिरवीग्राही को करे, दोनों क्रियाओं का साथ- साथ घटित होना आवश्यक नहीं है । वरन् गिरवी हेतु माल का निक्षेप ऋण लेने के पहले भी या उसके पश्चात् भी गिरवीकर्त्ता गिरवीग्राही के पास कर सकता है, परन्तु यह आवश्यक है, कि गिरवी हेतु निक्षेपित माल का अनुबन्ध के समय विद्यमान होना आवश्यक है ।

(8) **अनुबन्ध के अन्तर्गत** (Under a Contract) -गिरवीकर्त्ता गिरवीग्राही के पास ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन की प्रतिभूति के स्व में माल का निक्षेप करता है, ऐसा निक्षेप अनुबन्ध के अन्तर्गत होना आवश्यक है ।

(9) **गिरवी माल के स्वामी या अधिकृत व्यक्ति द्वारा** (Pledge by the Owner or by Authorised Person) - गिरवी अनुबन्धों के अन्तर्गत माल का निक्षेप या तो माल के स्वामी द्वारा किया जा सकता है, या अधिकृत व्यक्तियों द्वारा । अधिकृत व्यक्तियों में व्यापारिक एजेन्ट, सह-स्वामी, माल में सीमित हित धारण करने वाला व्यक्ति, व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत अधिकार रखने वाला पक्षकार आदि सम्मिलित किए जाते हैं ।

(10) **पुनः सुपुर्दगी से गिरवी का अनुबन्ध समाप्त नहीं होगा** (Redelivery of Goods would not Terminate the Pledge Contract) - यदि किसी विशेष उद्देश्य या प्रयोजन के लिए गिरवीग्राही गिरवीकर्त्ता को गिरवी अनुबन्ध के अन्तर्गत निक्षेप किए गए माल को वापस लौटाता है, तो इसके प्रभाव से गिरवी का अनुबन्ध समाप्त नहीं होता । गिरवीकर्त्ता ने जिस विशेष उद्देश्य के लिए गिरवी रखे गए माल को प्राप्त किया है, उसे वह उद्देश्य पूरा होने पर गिरवीग्राही को लौटाने के लिए बाध्य है । उदाहरण के लिए 'अ' ने 1 लाख रूपये के ऋण की जमानत पर 'ब' के पास 2 लाख रूपये के आभूषण गिरवी रखे हुए हैं । किसी विशेष विवाह में जाने के लिए ' अ ' की पत्नी को कुछ आभूषण उसमें से चाहिए यदि ' ब ' सन्तुष्ट हो जाता है, तो इस प्रयोजन के लिए वह वांछित आभूषण ' अ ' को लौटा सकता है । जिसे उद्देश्य पूरा हो जाने पर लौटाने के लिए ' अ ' बाध्य है । यदि गिरवीकर्त्ता ने कपट से गिरवी अनुबन्ध के

अन्तर्गत निक्षेपित माल गिरवीग्राही से प्राप्त कर लिया है, तो उसे प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार गिरवीग्राही को प्राप्त है ।

9.15 माल के स्वामी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा गिरवी रखना

वास्तव में किसी माल का स्वामी ही अपने माल को गिरवीं रख सकता है । कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के माल को गिरवी नहीं रख सकता । इसलिये यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति का माल गिरवी रखता है तो ऐसी गिरवी वैध नहीं मानी जाती परन्तु निम्न दशाओं में माल के स्वामी के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति द्वारा रखी हुई गिरवी वैध मानी जाती है :

(क) **व्यापारिक एजेण्ट द्वारा गिरवी रखना**(Pledge by Mercantile Agent) - जब मालिक की सहमति से वस्तु अथवा ' वस्तु के अधिकार सम्बन्धी प्रपत्र ' (documents of title of goods) व्यापारिक एजेण्ट के अधिकार में हों, तो व्यापार की साधारण प्रगति में एक व्यापारिक एजेण्ट की स्थिति में कार्य करते हुए एजेन्ट द्वारा की गयी गिरवी, उतना ही वैध होगी मानो कि वस्तु के मालिक की ओर से वह ऐसा करने के लिए अधिकृत (authorised) था, बशर्ते कि गिरवी रख लेने वाला सद्भावना (good faith) से काम करें अर्थात् उसे यह मालूम न हो कि गिरवी रखने वाले को गिरवी रखने का अधिकार नहीं था । [धारा 178]

(ख) **व्यर्थनीय अनुबन्ध के अधीन अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी रखना** (Pledge by a person in possession under voidable contract) - जब गिरवी रखने वाले ने गिरवी रखे हुए माल का अधिकार व्यर्थनीय अनुबन्ध के अधीन प्राप्त किया है अथवा ऐसे अनुबन्ध के अधीन प्राप्त किया है जो उत्पीड़न (coercion), अनुचित प्रभाव (undue influence), कपट (fraud), मिथ्यावर्णन (misrepresentation) के द्वारा होने के कारण, वास्तविक स्वामी की इच्छा पर व्यर्थनीय (Voidable) है, किन्तु ऐसा अनुबन्ध गिरवी रखते समय तक निरस्त (rescind) नहीं किया गया है तो ऐसी स्थिति में गिरवी रख लेने वाला गिरवी रखे हुए माल में वैध अधिकार प्राप्त कर लेता है, बशर्ते कि वह सद्भावना से तथा गिरवी रखने वाले के अधिकार सम्बन्धी दोष को न जानते हुए गिरवी रख लेता है । **[धारा 178 (अ)]**

(ग) **जब गिरवी रखने वाले का माल में सीमित हित है**(Pledge by a person having limited interest) - जब कोई व्यक्ति ऐसे माल को गिरवी रखता है जिसमें उसका केवल एक सीमित हित है, तो गिरवी केवल उसके हित की सीमा तक ही वैध होगी । अत: कोई रहनदार अथवा ग्रहणाधिकार (Lien-owner) अपने हित की सीमा तक गिरवी रख सकता है । इसी प्रकार खोये हुए माल को पाने वाला (finder of lost goods) भी पायी हुई वस्तु को अपने हित की सीमा तक गिरवी रख सकता है । [धारा 179]

(घ) **सह-स्वामी द्वारा गिरवी रखना** (Pledge by Co-owner) - यदि एक ही वस्तु के एक से अधिक मालिक हैं तथा वस्तु सभी स्वामियों की सहमति से किसी एक के पास रखी हो तो वह व्यक्ति जिसके अधिकार में वह वस्तु है, उस वस्तु की मान्य गिरवी रख सकता है बशर्ते कि गिरवी रखने वाले ने सदभावना से कार्य किया हो और उसे स्वत्व सम्बन्धी दोष का ज्ञान न हो ।

(ङ) **विक्रय के बाद वस्तु पर अधिकार रखने वाले विक्रेता द्वारा गिरवी रखना** (Pledge by a seller in possession of goods after sale) - यदि विक्रय हो जाने के पश्चात् भी माल विक्रेता के अधिकार में है तो वह स्वामी न होते हुए भी उसकी वैध गिरवी रख सकता है यदि गिरवी रख लेने वाले ने सद्भावना से कार्य किया है तथा उसे मूल विक्रय का ज्ञान नहीं है ।

(च) **विक्रय से पूर्व परन्तु विक्रय के ठहराव के बाद क्रेता द्वारा गिरवी** (Pledge by buyer before sale but after agreement to sell)-ऐसा क्रेता जिसने माल के क्रय करने का अनुबन्ध कर लिया है और विक्रेता की सहमति से मूल्य चुकाने से पहले ही माल का अधिकार प्राप्त कर लिया है वैध गिरवी रख सकता है यदि गिरवी रख लेने वाले ने सद्भावना से कार्य किया है और उसे मूल विक्रेता के अधिकारों का कोई ज्ञान नहीं है ।

9.16 गिरवीकर्त्ता के कर्त्तव्य एवं अधिकार

जो व्यक्ति ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन की प्रतिभूति के रूप में किसी वस्तु का निक्षेप दूसरे के पास करता है, उसे गिरवीकर्त्ता कहा गया है । उसके कर्त्तव्य व अधिकार निम्नलिखित हैं ।

(अ) गिरवीकर्त्ता के कर्त्तव्य (Duties of Pawnor) -गिरवी भी एक विशेष प्रकार का निक्षेप है, इसलिये गिरवीकर्त्ता के वही कर्त्तव्य हैं, जो निक्षेपी के होते हैं । गिरवीकर्त्ता के निम्नलिखित कर्त्तव्य होते हैं-

(1) माल के दोषों को अथवा जोखिमों को गिरवी रख लेने वाले को अवश्य बतला देना ।

(2) माल की सुरक्षा के लिये साधारण व्ययों का भुगतान करना ।

(3) दूषित अधिकार से गिरवी रख लेने वाले को पहुँची हानि या नुकसान की क्षतिपूर्ति करना।

(4) नियत अवधि में ऋण का भुगतान या वचन का निष्पादन करना ।

(ब) गिरवीकर्त्ता के अधिकार (Rights of Pawnor) - गिरवीकर्त्ता के अधिकारों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है:

(1) **वस्तु प्राप्त करने का अधिकार-**यदि गिरवीकर्त्ता लिये गये ऋण का भुगतान या दिये गये वचन का निष्पादन कर देता है, तो उसके पश्चात् उसे गिरवी रख लेने वाले से इस हेतु निक्षेप पर रखी गयी वस्तु या माल को पुन: प्राप्त करने का अधिकार है ।

(2) **भुगतान या वचन का निष्पादन करने में त्रुटि करने पर विक्रय से पूर्व वस्तु प्राप्त करने का अधिकार- धारा 177** के अनुसार यदि ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन में यदि गिरवीकर्त्ता त्रुटि करता है, तो गिरवीकर्त्ता को यह अधिकार है कि गिरवीग्राही द्वारा वास्तविक विक्रय से पूर्व वह उस वस्तु को प्राप्त कर सकता है । यह स्वाभाविक है कि वस्तु उसे तभी प्राप्त होगी जबकि वह ऋण का भुगतान कर दे या वचन का निष्पादन कर दे, साथ ही उसे ऐसी त्रुटि के कारण होने वाले व्ययों का भुगतान भी करना होगा ।

(3) **वस्तु की बिक्री कर दिये जाने पर आधिक्य की राशि प्राप्त करने का अधिकार-**यदि गिरवीकर्त्ता के द्वारा ऋण का भुगतान या वचन का निष्पादन नियत अवधि में नहीं किया जाता तो ऐसी स्थिति में यदि गिरवीकर्त्ता की गिरवी रखी गई वस्तु के विक्रय से प्राप्त धनराशि ऋण

की अदायगी के बाद भी शेष रहे तो गिरवीकर्त्ता को इस आधिक्य राशि को प्राप्त करने का अधिकार होगा ।

9.17 गिरवी रख लेने वाले के कर्त्तव्य एवं अधिकार

जिस व्यक्ति के पास गिरवी अनुबन्ध के अन्तर्गत माल या वस्तु का निक्षेप किया जाता है, वह गिरवीग्राही या गिरवी रख लेने वाला कहलाता है, उसके कर्त्तव्यों व अधिकारों का वर्णन इस प्रकार हैं ।

(अ) गिरवी रख लेने वाले के कर्त्तव्य (Duties of Pawnee/Pledgee) - गिरवीग्राही के निम्न-लिखित कर्त्तव्य होते हैं:

(1) गिरवी रखे गये माल की उचित देखभाल करना ।

(2) गिरवी रखे गये माल को अपने माल में नहीं मिलाना ।

(3) गिरवी रखे गये माल या वस्तु का अनाधिकृत प्रयोग नहीं करना ।

(4) ऋण का भुगतान या वचन का निष्पादन गिरवीकर्त्ता के द्वारा कर दिये जाने पर गिरवी रखे गये माल को लौटाना।

(5) गिरवी रखी गयी वस्तु को विक्रय किये जाने की स्थिति में उसे स्वयं नहीं खरीदना ।

(6) गिरवी रखी गयी वस्तु के विक्रय से प्राप्त धनराशि में से ऋण का समायोजन करने के पश्चात यदि कोई आधिक्य राशि शेष रहती है, तो गिरवीकर्त्ता को वापस लौटाना ।

(7) गिरवी की समय अवधि में गिरवी रखे माल या वस्तु में हुई वृद्धि या लाभ को गिरवीकर्त्ता को लौटाना ।

(8) गिरवी रखी गयी वस्तु का किसी दूसरे ऋण या वचन के निष्पादन के लिए प्रयोग नहीं करना ।

(ब) गिरवी रख लेने वाले के अधिकार (Rights of Pawnee/Pledge) - गिरवी रख लेने वाले को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं ।

(1) **माल को रोके रखने का अधिकार** (Rights to Retain Goods) - धारा 173 के अनुसार गिरवी रख लेने वाले को गिरवी रखे गये माल को तब तक रोके रखने का अधिकार है, जब तक कि उसके ऋण का भुगतान नहीं कर दिया जाता।

(2) **ऋण की राशि** पर देय व्याज व गिरवी रखे गये माल के संरक्षण में किये गये आवश्यक व्ययों के लिए भी माल को रोके रखने का अधिकार गिरवी रख लेने वाले को होता है ।

(3) **बाद में दी गयी अग्रिम राशियों के लिये वस्तु को रोके रखने का अधिकार** (Rights to Retain for Subsequent Advances)-धारा 174 के अनुसार विपरीत अनुबन्ध के अभाव में बाद में दिये गये ऋण (मूल ऋण के पश्चात् दी जाने वाली राशि) को भी उसी अनुबन्ध में समझा जाता है एवं बाद में दी गयी अग्रिम राशियों के लिए भी गिरवी रखे गये माल को रोके रखने का अधिकार गिरवग्राही को होगा ।

(4) **असाधारण खर्चों को प्राप्त करने का अधिकार** (Right as to Extraordinary Expenses Incurred) - धारा 175 के अनुसार गिरवी रख लेने वाला गिरवीकर्त्ता से उन

असाधारण खर्चों को पाने का अधिकार है, जो उसने गिरवी रखे गये माल के संरक्षण के लिये किये हों ।

(5) **गिरवीकर्त्ता के त्रुटि करने पर अधिकार** (Right where Pawnor makes Default)- धारा 176 के अनुसार यदि गिरवीकर्त्ता निर्धारित समय मे ऋण का भुगतान नहीं करता या वचन का निष्पादन नहीं करता तो गिरवी रख लेने वाले को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हो जाते है :

(i) गिरवी रख लेने वाला ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन के लिए गिरवीकर्त्ता पर वाद चला सकता है व गिरवी में प्राप्त वस्तु या माल को समपार्श्विक प्रतिभूति के रूप में रख सकता है ।

(ii) वह गिरवी रखी गई वस्तु का विक्रय कर सकता है । यदि गिरवी रख लेने वाला गिरवी रखी गयी वस्तु का विक्रय करता है,. तो उसे निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

(a) गिरवी रखी गयी वस्तु का विक्रय करने से पूर्व उसे गिरवीकर्त्ता को इसकी उचित सूचना देनी होगी ।

(b) गिरवी रख लेने वाला स्वयं उस माल का क्रय नहीं कर सकता ।

(c) परन्तु न्यायालय से डिक्री करा लेने के पश्चात् यदि गिरवी रखा गया माल नीलामी के द्वारा बेचा जाता है, तो गिरवीग्राही को उसे क्रय करने के लिए बोली लगाने का अधिकार है ।

(d) यदि गिरवी रखे गए माल के विक्रय से प्राप्त राशि ऋण की राशि से अधिक है, तो इस अधिक राशि को गिरवीकर्त्ता को लौटाने के लिए वह उत्तरदायी होगा ।

(e) यदि गिरवी रखे गए माल के विक्रय से प्राप्त राशि ऋण की राशि से कम है, तो शेष राशि को चुकाने के लिए गिरवीकर्त्ता उत्तरदायी होगा ।

(6) **व्यर्थनीय अनुबन्धों में माल के वास्तविक स्वामी के विरुद्ध अधिकार** (Rights against the Actual Owner of Goods under Voidable Con-tracts)-यदि गिरवी रख लेने वाला के पास गिरवी रखा गया माल किसी दूसरे व्यक्ति से उत्पीड़न, कपट, अनुचित प्रभाव, मिथ्या वर्ण या गलती से प्राप्त किया हो एवं यदि गिरवीग्राही ने सद्भावना से माल गिरवी रखा हो अर्थात् उसे उस तथ्य की जानकारी नहीं हो तो उसे माल के वास्तविक स्वामी के विरुद्ध अच्छा अधिकार ही प्राप्त होगा ।

9.18 गिरवी तथा निक्षेप में अन्तर

गिरवी तथा निक्षेप में अन्तर को निम्नलिखित तालिका द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

क्र. सं.	अन्तर का आधार	गिरवी	निक्षेप
1.	अर्थ	किसी ऋण के भुगतान वचन के निष्पादन के लिए प्रतिभूति के रूप मे किसी वस्तु या माल का निक्षेप गिरवी कहलाता है ।	इसके अंतर्गत एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विशेष उद्देश्य के लिए माल सुपुर्द करता है, उस उद्देश्य के पूरा हो जाने पर माल उसे वापस लौटा दिया जाता है, या उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जाती है ।
2.	उद्देश्य	गिरवी का उद्देश्य किसी ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन की प्रतिभूति के रूप मे किसी वस्तु का निक्षेप करना है।	इसके अन्तर्गत माल की सुपुर्दगी माल की देखभाल, सुरक्षा या शुल्क प्राप्ति आदि के लिए की जाती है ।
3.	माल की सुपर्दगी	गिरवी में माल की सुपुर्दगी अनुबन्ध करते समय देन आवश्यक नहीं है ।	जबकि निक्षेप का तो निर्माण ही सुपुर्दगी दिए जाने होता है ।
4.	माल का प्रयोग	इसके अंतर्गत गिरवी रख लेने वाले को गिरवी रखे गए माल के प्रयोग का अधिकार नहीं है ।	निक्षेप के अन्तर्गत सामान्यतया निक्षेपग्रहीता को निक्षेपित माल या वस्तु को प्रयोग करने का अधिकार होता है ।
5.	प्रतिफल	गिरवी के अनुबन्ध में प्रतिफल होना आवश्यक है ।	इन अनुबन्धों मे यह आवश्यक नहीं है की सदैव प्रतिफल हो । उदाहरण के लिए नि:शुल्क निक्षेप के अन्तर्गत कोई प्रतिफल नहीं होता ।
6.	माल की वापसी	इन अनुबन्धों में गिरवीकर्त्ता द्वारा ऋण का भुगतान या वचन का निष्पादन कर देने पर माल गिरवी रख लेने वाला वापस लौटा देता है ।	निक्षेप के अन्तर्गत निश्चित उद्देश्य या नियत अवधि के पूरा होने पर निक्षेपग्रहीता निक्षेपित माल लौटा देता है।
7.	अनुबंध की समाप्ति	गिरवीकर्त्ता द्वारा ऋण का भुगतान कर देने या वचन का निष्पादन कर देने पर यह	यह अनुबन्ध नियत उद्देश्य या निश्चित अवधि पूरी हो जाने पर, शर्तों के विरुद्ध

		अनुबन्ध समाप्त हो जाता है ।	कार्य करने पर एवं नि:शुल्क निक्षेप की समाप्त निक्षेपी किसी भी समय कर सकता है । किसी पक्षकार की मृत्यु पर भी नि:शुल्क निक्षेप समाप्त हो जाएगा।
8.	माल के विक्रय का अधिकर	गिरवी रख लेने वाले को ऋण का भुगतान या वचन का निष्पादन नहीं करने पर गिरवी राखी गई वस्तु को बेचने का अधिकार होता है ।	निक्षेप के अन्तर्गत केवल खोए हुए माल को पाने वाला व्यक्ति कुछ विशेष परिस्थितियों में माल को बेचने का अधिकार रखता है।

9.19 गिरवी तथा रहन में अन्तर

गिरवी तथा रहन में निम्नलिखित अन्तर है-

क्र. सं.	**अन्तर का आधार**	**गिरवी**	**रहन**
1.	विषय वस्तु	गिरवी के अन्तर्गत केवल चल वस्तुओं का निक्षेप किया जा सकता है ।	रहन के अन्तर्गत अचल वस्तु या सम्पत्ति की जमानत पर ऋण प्राप्त किया जाता है ।
2.	माल का प्रयोग	गिरवी के अन्तर्गत गिरवीग्राही गिरवी रखे गए माल का प्रयोग नहीं कर सकता।	जबकि रहन के अन्तर्गत रखी गई अचल सम्पत्ति का प्रयोग रहनदार कर सकता है।
3.	हस्तान्तरण	इसके अन्तर्गत निक्षेप किए गए माल का केवलअधिकार हस्तान्तरण ही होता है ।	रहन के अधीन रखी गई अचल सम्पत्ति के स्वामित्व का कुछ शर्तों के अनुसार हस्तांतरण हो सकता है।
4.	मौखिक अनुबन्ध का स्वस्थ	गिरवी का अनुबन्ध लिखित या मौखिक दोनों प्रकार का हो सकता है ।	यदि रहन 100 रुपये से अधिक राशि का है, तो अनुबन्ध का लिखित, रजिस्टर्ड व दो गवाहों द्वारा प्रमाणित होना आवश्यक है ।
5.	ऋण देने वाले पक्षकारों की संख्या	गिरवी के अनुबन्धों में माल की प्रतिभूति पर ऋण केवल एक ही व्यक्ति से लिया जा सकता है ।	रहन के अनुबन्ध मे एक ही अचल सम्पत्ति की जमानत पर अनेक रहनदारों से सम्पत्ति के वास्तविक मूल्य तर ऋण लिए जा सकते है ।
6.	ऋणों की	इसके अन्तर्गत एक समय केवल	जबकि इसके अन्तर्गत अनेक

	संख्या	एक ही ऋण प्राप्त किया सकता है ।	रहनदारों से अनेक ऋण एक ही समय प्राप्त किए जा सकते है ।
7.	पुन: गिरवी तथा पुन: रहन	गिरवीग्राही गिरवी रखी गई वस्तु को किसी अन्य पक्षकार के पास पुन: गिरवी नहीं रख सकता ।	जबकि रहन के अन्तर्गत रहनदार अपने द्वारा दिए गए ऋण की राशि तक पुन: रहन कर सकता है ।

9.20 सारांश

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 148** के अनुसार " निक्षेप एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विशेष उद्देश्य से, किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत माल की उस सुपुर्दगी को कहते हैं, जिसमें उस उद्देश्य के पूरा हो जाने पर माल सुपुर्दगी देने वाले व्यक्ति को लौटा दिया जाएगा, अथवा उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जाएगी, तो माल की ऐसी सुपुर्दगी निक्षेप कहलाती है । वस्तुओं की सुपुर्दगी देने वाला व्यक्ति निक्षेपी (Bailar) कहलाता है । जिस व्यक्ति को माल की सुपुर्दगी दी जाती है, वह निक्षेपग्रहीता (Bailee) कहलाता है । "

निक्षेप केवल चल सम्पत्तियों का ही हो सकता है । मकान, जमीन, जायदाद, दुकान आदि का निक्षेप नहीं हो सकता । अचल सम्पत्तियों को गिरवी के अनुबन्ध के अन्तर्गत बन्धक रखा जाता है ।

निक्षेप अनुबन्ध में केवल माल के अधिकार का हस्तान्तरण होता है, परन्तु स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं होता । वस्तु का स्वामित्व तो सदा निक्षेपी के पास ही रहता है । इसी के आधार पर वह अपने माल को पुन: प्राप्त कर सकता है ।

सशुल्क निक्षेप (Non Gratuitious Bailment) -ऐसे निक्षेप के अन्तर्गत निक्षेपी जो माल या वस्तुएँ निक्षेपग्रहीता को सुपुर्द करता है, उसके प्रयोग के प्रतिफल में शुल्क या किराया प्राप्त करता है । उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' से साईकिल किराये पर लेता है तो यह सशुल्क निक्षेप है ।

निशुल्क निक्षेप (Gratuitous Bailment) -निशुल्क निक्षेप के अन्तर्गत निक्षेपी निक्षेपग्रहीता से अनुबन्ध के अन्तर्गत सुपुर्द की गई वस्तुओं या माल का कोई शुल्क या किराया नहीं लेता । ऐसे निक्षेप भी तीन प्रकार के हो सकते हैं, **प्रथम** केवल निक्षेपी के लाभ के लिए **द्वितीय** केवल निक्षेपग्रहीता के लाभ के लिए **तृतीय** पारस्परिक लाभ के लिए । इनका वर्णन इस प्रकार है-

धारा 153 के अनुसार यदि निक्षेपग्रहीता निक्षेपित माल के सम्बन्ध में अनुबन्ध की शर्तों के प्रतिकूल कोई कार्य करता है तो निक्षेप अनुबन्ध निक्षेपी की इच्छा पर व्यर्थनीय होगा । इसके अनुसार ऐसी स्थिति में निक्षेपी निक्षेप अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है व निक्षेपित माल को पुन: प्राप्त कर सकता है ।

निक्षेप अनुबन्धों में निक्षेपग्रहीता को प्राप्त एक विशेष अधिकार-ग्रहणाधिकार कहलाता है । ग्रहणाधिकार से अभिप्राय किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के माल या वस्तु को उस समय

तक अपने पास रोके रखने के अधिकार से है, जब तक उसकी बकाया राशि का भुगतान नहीं कर दिया जाता । एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की वस्तु को रोके रखना तभी सम्भव होगा, जबकि वह वस्तु या माल उसके अधिकार या कब्जे में हो, अन्यथा इसका कोई उपयोग नहीं है ।

धारा 71 के अनुसार वह व्यक्ति जो किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु या माल पाता है और उसे अपने संरक्षण में ले लेता है तो उसकी स्थिति निक्षेपग्रहीता के रूप में हो जाती है ।

गिरवी एक विशेष प्रकार का निक्षेप (Bailment) है । निक्षेप एवं गिरवी में केवल उद्देश्य का अन्तर है । जब ' निक्षेप' का उद्देश्य किसी ऋण के भुगतान की जमानत देना हो अथवा किसी वचन को पूरा करने की जमानत के लिये हो तो ऐसी स्थिति में किये गये ' निक्षेप ' को ही ' गिरवी ' (Pledge) कहा जाता है । मुद्रा को छोडकर किसी भी प्रकार की चल वस्तुएं बहुमूल्य चीजें, दस्तावेज, अंश आदि गिरवी की विषय वस्तु हो सकते हैं ।

धारा 178,जब मालिक की सहमति से वस्तु अथवा ' वस्तु के अधिकार सम्बन्धी प्रपत्र ' (documents of title of goods) व्यापारिक एजेण्ट के अधिकार में हों, तो व्यापार की साधारण प्रगति में एक व्यापारिक एजेण्ट की स्थिति में कार्य करते हुए एजेन्ट द्वारा की गयी गिरवी, उतना ही वैध होगी मानो कि वस्तु के मालिक की ओर से वह ऐसा करने के लिए अधिकृत (authorised) था, बशर्ते कि गिरवी रख लेने वाला सद्भावना (good faith) से काम करें अर्थात् उसे यह मालूम न हो कि गिरवी रखने वाले को गिरवी रखने का अधिकार नहीं था ।

गिरवी भी एक विशेष प्रकार का निक्षेप है, इसलिये गिरवीकर्त्ता के वही कर्त्तव्य हैं, जो निक्षेपी के होते हैं ।

धारा 178 के अनुसार गिरवी रख लेने वाला गिरवीकर्त्ता से उन असाधारण खर्चो को पाने का अधिकार है, जो उसने गिरवी रखे गये माल के संरक्षण के लिये किये हों ।

9.21 स्व-परख प्रश्न

1. निक्षेप की परिभाषा दीजिए और निक्षेपी तथा निक्षेपग्रहीता के कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व बतलाइए ।
2. निक्षेपित माल के सम्बन्ध में निक्षेपी के क्या कर्त्तव्य होते हैं? जब निक्षेपग्रहीता अपना निजी माल निक्षेपी के माल के साथ मिला देता है, तो निक्षेपग्रहीता के विरुद्ध निक्षेपी के क्या अधिकार होते हैं?
3. निक्षेप क्या होता है? निक्षेपी तथा निक्षेपग्रहीता के कर्त्तव्यों का उल्लेख कीजिए ।
4. निःशुल्क निक्षेप क्या होते हैं? इस प्रकार के निक्षेप के सम्बन्ध में क्या कानून हैं?
5. निक्षेप क्या है? इसके लक्षणों व विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए?
6. सामान्य ग्रहणाधिकार ' तथा ' विशिष्ट ग्रहणाधिकार ' में क्या अन्तर है? निक्षेप-ग्रहीता के ग्रहणाधिकार को आप किस श्रेणी में रखेंगे? सामान्य ग्रहणाधिकार के कौन-कौन अधिकारी है?
7. 'सामान्य ' तथा ' विशिष्ट ग्रहणाधिकार ' में अन्तर स्पष्ट कीजिए?

8. खोए हुए माल को पाने वाला व्यक्ति कौन है? खोए हुए माल को पाने वाले के अधिकार एवं कर्त्तव्य क्या हैं?
9. गिरवी क्या है? इसके आवश्यक लक्षणों का वर्णन कीजिए ।
10. गिरवी हेतु माल निक्षेप करने के लिए कौन व्यक्ति अधिकृत है? विवेचना कीजिए ।
11. गिरवीकर्त्ता व गिरवीग्राही के कर्त्तव्यों व अधिकारों का वर्णन कीजिए ।
12. गिरवी तथा निक्षेप में क्या अन्तर है? गिरवी रख लेने वाले (Pawnee) के अधिकारों और कर्त्तव्यों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
13. **(a)** गिरवी तथा रहन में अन्तर बताइए।

    (b) गिरवीग्राही द्वारा गिरवी रखे गए माल के विक्रय सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन कीजिए ।

इकाई- 10

एजेन्सी के अनुबन्ध (Contract of Agency)

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 परिभाषाएँ

10.4 एजेन्ट कौन नियुक्त कर सकता है?

10.5 एजेन्ट कौन हो सकता है?

10.6 एजेन्सी के मुख्य तत्व

10.7 एजेन्ट के प्राधिकार

10.8 एजेन्ट के प्राधिकारों का विस्तार

10.9 एजेन्सी की स्थापना

10.10 आवश्यकता द्वारा एजेन्सी

10.11 उप-एजेन्ट

10.12 स्थानापन्न एजेन्ट

10.13 उप-एजेन्ट तथा स्थानापन्न एजेन्ट में अन्तर

10.14 एजेन्सी की समाप्ति

10.15 अखण्डनीय एजेन्सी

10.16 एजेन्सी खण्डन सम्बन्धी अन्य नियम

10.17 नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के कर्त्तव्य

10.18 एजेन्टों के प्रकार

10.19 एजेन्ट के नियोक्ता के विरुद्ध अधिकार

10.20 तीसरे पक्षकार के साथ किए गए अनुबन्धों का एजेन्सी पर प्रभाव

10.21 एजेन्ट के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व

10.22 अप्रकट नियोक्ता

10.23 स्व-परख प्रश्न

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि-

- एजेन्सी से क्या अभिप्राय है?
- एजेन्सी की स्थापना कैसे की जाती है?
- एजेन्ट के विभिन्न प्रकार कौन से है ।
- एजेन्ट एवं नियोक्ता के अधिकार एवं दायित्व समझ सकेंगे ।

10.2 प्रस्तावना

एजेन्सी अनुबन्ध भी हानिरक्षा, प्रतिभूति, निक्षेप आदि अनुबन्धों की भांति एक विशेष प्रकार का व्यापारिक अनुबन्ध है। व्यावसायिक व्यवहारों में एजेन्सी के अनुबन्ध अपनी विशिष्टता के कारण महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 182 से 238 के अन्तर्गत एजेन्सी अनुबन्धों से सम्बन्धित विभिन्न वैधानिक प्रावधानों का समावेश किया गया है।

व्यापारिक व्यवहारों में किसी दूसरे व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति को एजेन्ट या प्रतिनिधि कहलाता है । एजेन्ट के किये गये व्यवहार को ठीक वैसे ही वैधानिक मान्यता प्राप्त होती है जैसे कि यह व्यवहार उसके नियोक्ता द्वारा किया गया हो । एजेन्ट द्वारा किए गए कार्यो के लिए नियोक्ता बाध्य होता है । वस्तुत: एजेन्ट की स्वयं की कोई पृथक सत्ता नहीं होती, वह तो मात्र नियोक्ता या प्रधान की ओर से कार्य करता है । वह उन्हीं शर्तों, दशाओं व अधिकारों के आधार पर कार्य करता है, जो नियोक्ता की ओर से निर्धारित की गई हो ।

10.3 एजेन्सी की परिभाषाएँ

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 182, एजेन्ट और नियोक्ता (Principal) दोनों को इस प्रकार परिभाषित करती है ।

" एक एजेन्ट वह व्यक्ति है जो किसी दूसरे व्यक्ति की ओर से कोई कार्य करने के लिए अथवा तृतीय पक्षों के साथ व्यवहारों में किसी दूसरे व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त किया जाता है । वह व्यक्ति जिसकी ओर से ऐसा कार्य किया जाता है अथवा जिसकी ओर से इस प्रकार का प्रतिनिधित्व किया जाता है, नियोक्ता (Principal) कहलाता है ।

प्रधान या नियोक्ता(Principal) - **धारा 182** के अनुसार, " वह व्यक्ति जिसकी ओर से ऐसा कार्य किया जाता है या जिसका प्रतिनिधित्व किया जाता है, नियोक्ता कहलाता है । "

एजेन्सी(Agency) -प्रधान एवं एजेन्ट के मध्य जो अनुबन्ध होता है, उसे एजेन्सी कहा जाता है । एक प्रकार से प्रधान व एजेन्ट के वैधानिक सम्बन्धों को ही एजेन्सी कहा जाता है ।

एक नियोक्ता और एजेन्ट के बीच जो अनुबन्ध होता है उसे एजेन्सी (Agency) कहते हैं ।

वारटन के अनुसार, " एजेन्सी एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा एक व्यक्ति कुछ निश्चित व्यावसायिक सम्बन्धों में अपनी विवेक-शक्ति से दूसरे का प्रतिनिधित्व करने का दायित्व स्वीकार करता है ।"

अंग्रेजी सन्नियम (English Law) के अनुसार, **" एजेन्सी का अनुबन्ध किसी व्यक्ति की, दूसरे व्यक्ति द्वारा तीसरे व्यक्तियों के साथ कानूनी सम्बन्ध स्थापित करने के लिए नियुक्ति है । "**अत: यह परिभाषा काफी स्पष्ट है, क्योंकि यह एजेन्सी के सार तत्व को स्पष्ट करती है । इस परिभाषा के अनुसार, एजेन्ट वह व्यक्ति है जो कि प्रधान तथा किसी तीसरे व्यक्ति को अनुबन्ध-सम्बन्धों (Contractual Relations) में बांधता है । एक एजेन्ट के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने कार्य से नियोक्ता को बाध्य करे । जो व्यक्ति अपने कार्यो से नियोक्ता को बाध्य करने की स्थिति में नहीं होता वह एजेन्ट नहीं कहलाता । ऐसा व्यक्ति जो

व्यापारिक व्यवहारों में केवल सलाह देता है, उसको एजेन्ट नहीं कह सकते, क्योंकि केवल सलाह देने का कार्य-नियोक्ता और तीसरे पक्षकार के बीच किसी प्रकार का वैधानिक-सम्बन्ध स्थापित नहीं होता ।

10.4 एजेन्ट कौन नियुक्त कर सकता है?

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 183 के अनुसार, **" कोई भी व्यक्ति जो राजनियम के अनुसार वयस्क है और स्वस्थ मस्तिष्क का है, एजेन्ट नियुक्त कर सकता है । "**

इस प्रकार नियोक्ता के लिए यह आवश्यक है, कि नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए । एजेन्सी के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि जो व्यक्ति एजेन्ट के माध्यम से कार्य करता है वह उसका स्वयं का कार्य माना जाता है । यदि नियोक्ता **अवयस्क** (Minor or Infant) है तो उसके द्वारा नियुक्त एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यो के लिए अवयस्क नियोक्ता को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता । क्योंकि नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए।

10.5 एजेन्ट कौन हो सकता है?

एजेन्ट कोई भी व्यक्ति हो सकता है । एजेन्ट बनने के लिए अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक नहीं, क्योंकि तृतीय पक्षकारों के प्रति एजेन्ट के द्वारा किये गये कार्यों के लिए प्रधान स्वयं उत्तरदायी होता है । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 184 के अनुसार, **" नियोक्ता तथा तीसरे पक्षकार के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कोई भी व्यक्ति एजेन्ट हो सकता है । लेकिन नियोक्ता और एजेन्ट के बीच वैधानिक सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि एजेन्ट में अनुबन्ध करने की क्षमता हो । इस प्रकार एजेन्ट को नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी ठहराने के लिए जरूरी है कि वह वयस्क आयु तथा स्वस्थ मस्तिष्क का हो । "**

अत: यह स्पष्ट है कि-

(1) जिस व्यक्ति में अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं होती और स्वयं जो अपने लिए अनुबन्ध नहीं कर सकता, वह व्यक्ति भी एजेन्ट बन सकता है और उसमें अपने नियोक्ता के लिए अनुबन्ध करने की योग्यता मानी जाती है ।

(2) नियोक्ता और एजेन्ट के बीच वैधानिक सम्बन्धों की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि एक एजेन्ट में भी अनुबन्ध करने की क्षमता हो । यदि एजेन्ट अवयस्क तथा अस्वस्थ मस्तिष्क का है तो वह अपने नियोक्ता के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता ।

10.6 एजेन्सी के मुख्य तत्त्व

एजेन्सी के निम्नलिखित मुख्य तत्त्व हैं-

(1) **ठहराव** (Agreement) -एजेन्सी का निर्माण दो व्यक्तियों के मध्य ठहराव से होता है, जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को उसकी ओर से कार्य करने के लिए नियुक्त करता है और वह दूसरा व्यक्ति एजेन्ट के रूप में नियुक्ति को स्वीकार करता है ।

(2) **दो पक्षकार** (Parties of Contract) -एजेन्सी के अनुबन्धों में दो पक्षकार होते हैं, जो व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की ओर से कार्य करता है, एजेन्ट कहलाता है एवं उसे नियुक्त करने वाला व्यक्ति प्रधान या नियोक्ता कहलाता है।

(3) **एजेन्ट के लिए योग्यता** (Eligibility of an Agent) -जहाँ तक एजेन्ट की योग्यता का प्रश्न है, कोई भी व्यक्ति एजेन्ट के रूप में नियुक्त किया जा सकता है । यह आवश्यक नहीं है कि उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता हो, क्योंकि एजेन्ट का स्वयं का कोई पृथक अस्तित्व नहीं होता । उसके द्वारा किया गया कार्य नियोक्ता द्वारा किया गया कार्य एवं उसके साथ किया गया व्यवहार नियोक्ता के साथ किया गया व्यवहार माना जाता है । इसलिए उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक नहीं है ।

(4) **प्रधान या नियोक्ता के लिए योग्यता** (Eligibility of Principal) -प्रधान के लिए यह आवश्यक है कि वह सम्बन्धित राजनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार वयस्क हो एवं स्वस्थ मस्तिष्क का हो । अर्थात् नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक है ।

(5) **नियोक्ता द्वारा अधिकृत करना** (Authority by Principal) -एजेन्सी उसी स्थिति में क्रियाशील व प्रभावी होगी जबकि नियोक्ता ने उसकी ओर से कार्य करने या तीसरे व्यक्तियों के साथ व्यवहारों में उसका प्रतिनिधित्व करने के लिए स्पष्ट या गर्भित रूप से कुछ अधिकार एजेन्ट को प्रदान किए हों ।

(6) **प्रधान की ओर से कार्य करना** (Act on the behalf of Principal) -एजेन्सी तभी कही जाएगी जबकि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की ओर से कुछ कार्य करने या उसका प्रतिनिधित्व करने का मन्तव्य रखता हो ।

(7) **विश्वास आधारित सम्बन्ध** (Fiduciary Relationship) -एजेन्सी के अन्तर्गत नियोक्ता व एजेन्ट के सम्बन्धों को परस्पर विश्वास पर आधारित अनुबन्ध माना गया है।

(8) **प्रधान के प्रति उत्तरदायित्व** (Liability Towards Principal) -यदि नियुक्त किए गए एजेन्ट में अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं है, तो उसके द्वारा किए गए कार्यों के लिए तीसरे पक्षकार के प्रति नियोक्ता स्वयं उत्तरदायी होगा । इसका अभिप्राय यह है कि नियोक्ता के प्रति एजेन्ट तभी उत्तरदायी होगा जबकि उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता हो ।

प्रतिफल आवश्यक नहीं(Consideration not Necessary) -**अनुबन्ध अधिनियम की धारा 185 के प्रावधानों के अनुसार एजेन्सी की स्थापना के लिए प्रतिफल होना आवश्यक नहीं है ।** यद्यपि प्रतिफल रहित ठहरावों को भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत व्यर्थ घोषित किया गया है परन्तु एजेन्सी के अनुबन्ध इसका अपवाद माने गए हैं अर्थात् एजेन्ट के रूप में नियुक्त किया जाने वाला व्यक्ति बिना किसी पारिश्रमिक पर अर्थात् अवैतनिक रूप में नियुक्त किया जा सकता है ।

अवैतनिक एजेन्ट या प्रतिफल रहित एजेन्ट यदि एक बार नियोक्ता द्वारा सौंपा गया कार्य प्रारम्भ कर देता है, तो उस कार्य को उसे उसी लगन, सावधानी, चतुराई व प्रधान के सन्तोष के अनुसार पूरा करना होगा, जैसाकि पारिश्रमिक प्रतिफल पाने वाला एजेन्ट करता है ।

10.7 एजेन्ट के अधिकार

एक नियोक्ता अपने एजेन्ट द्वारा किये गये उन्हीं कार्यो के लिये उत्तरदायी होता है जिनको करने के लिये नियोक्ता ने उसे अधिकृत किया हो । यदि एजेन्ट अधिकारों की सीमा के बाहर जाकर कार्य करता है तो नियोक्ता उन कार्यो के लिये उत्तरदायी नहीं होगा । यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि एक एजेन्ट के अधिकारों की सीमा क्या है? या एक एजेन्ट अपने अधिकार का विस्तार किस सीमा तक कर सकता है?

एजेन्ट के प्राधिकारों का नियोक्ता व एजेन्ट के मध्य दायित्वों के निर्धारण में बड़ा महत्त्व है । एजेन्ट केवल उसी सीमा तक कार्य करने के लिए अधिकृत है, जितने कि नियोक्ता ने उसे अधिकार प्रदान किए हों । यदि एजेन्ट नियोक्ता द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों के बाहर जाकर कार्य करता है, तो ऐसे कार्यों के लिए एजेन्ट नियोक्ता व तीसरे पक्षकारों के प्रति स्वयं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा, बशर्ते एजेन्ट में अनुबन्ध करने की क्षमता हो ।

अधिकारों के स्वरूप (Form of Authority) -एजेन्ट के अधिकार **धारा 186** के प्रावधानों के आधार पर स्पष्ट या गर्भित हो सकते हैं । इनका वर्णन इस प्रकार है ।

(i) **स्पष्ट अधिकार** (Expressed Authority) - **धारा 187** के अनुसार स्पष्ट अधिकार से आशय उन अधिकारों से हैं, जिन्हें शब्दों द्वारा मौखिक या लिखित रूप में प्रदान किया गया है ।

(ii) **गर्भित अधिकार**(Implied Authority) - **धारा 187** के अनुसार गर्भित अधिकार से अभिप्राय उन अधिकारों से है जिसका अनुमान मामले की परिस्थितियों से लगाया जा सकता है ।

10.8 सामान्य रूप से एजेन्ट के अधिकारों का विस्तार

अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में एजेन्सी के व्यापक हितों की रक्षार्थ एजेन्ट के अधिकारों का विस्तार हो जाता है । एजेन्ट के अधिकारों के विस्तार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) **सामान्य समय में एजेन्ट के अधिकारों का विस्तार** (Extent of Agent's Authority in Ordinary Time) - **धारा 188** के अनुसार एक एजेन्ट जिसे किसी कार्य को करने का अधिकार है, उसे उस कार्य को पूरा करने हेतु सभी आवश्यक वैधानिक कार्य करने का अधिकार है, जो उसके लिए आवश्यक हो अथवा जो ऐसे व्यवसाय के संचालन में सामान्यतया किए जाते हैं ।

उदाहरण के लिए ' अ ' ' ब ' को अपने ट्रक बॉडी बनाने के व्यवसाय का संचालन करने के लिए एजेन्ट के रूप में नियुक्त करता है । ' ब ' व्यवसाय को संचालन हेतु स्टील की चादरें, लकड़ी व अन्य सामग्री खरीद सकता है एवं श्रमिकों को नियुक्त भी कर सकता है आवश्यक भुगतान व खर्चे कर सकता है ।

(ii) **आपातकालीन परिस्थिति में एक एक एजेन्ट के अधिकार** (Agent's Authority in an Emergency Situation) **-धारा 189** के अनुसार किसी आपातकालीन परिस्थिति में एजेन्ट को अपने नियोक्ता को हानि से बचाने के लिए उन सभी कार्यो को करने का अधिकार है, जो वैसी ही परिस्थितियों में किसी सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति द्वारा अपने निजी मामले में किए जाते हैं ।

उदाहरण के लिए एजेन्ट के पास रखे माल में आग लग जाती है । अग्नि रक्षा हेतु एजेन्ट को व्यय करने का अधिकार है ।

10.9 एजेन्सी की स्थापना

एजेन्सी स्थापना की निम्नलिखित विधियां हैं ।

(1) **स्पष्ट ठहराव द्वारा** (By Express Agreement) -यह एजेन्सी की स्थापना की सबसे सरल विधि है । इसके अन्तर्गत नियोक्ता व एजेन्ट के मध्य लिखित या मौखिक ठहराव के द्वारा एजेन्सी स्थापित हो जाती है । इसके अन्तर्गत नियोक्ता अपनी लिखित या मौखिक सहमति से किसी व्यक्ति को उसकी ओर से कार्य करने या उसका प्रतिनिधित्व करने का अधिकार देता है ।

(2) **गर्भित ठहराव द्वारा** (By Implied Agreement) - धारा 187 के अनुसार गर्भित अधिकार वह है जिसका अनुमान मामले की परिस्थितियों से लगाया जा सकता है । गर्भित ठहराव के अन्तर्गत मामले की परिस्थितियों के अनुसार एक पक्षकार को दूसरे पक्षकार का एजेन्ट समझा जा सकता है ।

उदाहरण के लिए-

(i) **नीलामकर्त्ता** जिस व्यक्ति की ओर से नियुक्त किया गया है, वह उसका एजेन्ट माना जाता है ।

(ii) **दुकान पर विक्रय के लिए नियुक्त कर्मचारी** दुकान पर उपलब्ध वस्तुओं के विक्रय के लिए दुकान के स्वामी का एजेन्ट माना जाता है ।

(iii) इसी प्रकार साझेदारी में **प्रत्येक साझेदार** फर्म व शेष साझेदारों के एजेन्ट के रूप में कार्य करता है ।

(3) **गत्यावरोध द्वारा** (By Estoppel) - **भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 115** के अनुसार जब किसी व्यक्ति ने अपने कथन, कार्य अथवा भूल के द्वारा किसी व्यक्ति को किसी बात की सत्यता का विश्वास दिलाया है व दूसरा व्यक्ति दिलाए गए इसी विश्वास के आधार पर उसके साथ कोई व्यवहार करता है, तो पहला व्यक्ति अपने दायित्वों से इन्कार नहीं कर सकता ।

इसलिए जब कोई व्यक्ति अपने आचरण, हाव- भाव या शब्दों से किसी व्यक्ति को यह विश्वास दिलाता है कि कोई अमुक व्यक्ति उसका एजेन्ट है, जबकि सत्य यह है क वह उसका एजेन्ट नहीं है । उस व्यक्ति के द्वारा किए गए ऐसे प्रदर्शन से यदि कोई व्यक्ति उसकी बात सही मानकर एजेन्ट बताए गए व्यक्ति से कोई व्यवहार कर लेता है, तो जिस व्यक्ति ने ऐसा प्रदर्शन किया है या विश्वास दिलाया है, वह एजेन्ट के रूप में बताए गए व्यक्ति द्वारा किए गए व्यवहारों के लिए उत्तरदायी होगा ।

गत्यावरोध में प्रदर्शन का तत्व महत्त्वपूर्ण होता है, इसलिए इसे प्रदर्शन द्वारा एजेन्सी की स्थापना भी कहा गया है । गत्यावरोध द्वारा एजेन्सी की स्थापना निम्नलिखित विधियों से की जा सकती है ।

(i) **अधिकार सीमा से बाहर किए गए कार्यों को स्वीकार करना-**यदि एजेन्ट अपने अधिकार सीमा से बाहर जाकर कार्य करता है, परन्तु नियोक्ता ने अपने शब्दों या आचरण के द्वारा तीसरे

पक्षकार को यह विश्वास प्रदान किया है कि एजेन्ट द्वारा किया गया कार्य उसकी अधिकार सीमा में है, तो एजेन्ट द्वारा किए गए उन कार्यों के लिए नियोक्ता बाध्य होगा ।

(ii) **भूतपूर्व एजेन्ट-**यदि कोई व्यक्ति पहले किसी समय नियोक्ता का एजेन्ट रह चुका है, परन्तु वर्तमान में एजेन्ट नहीं है । यदि भूतपूर्व एजेन्ट का नियोक्ता फिर भी उसे एजेन्ट मानकर चल रहा हो तो उसके द्वारा किए कार्यों के लिए वह उत्तरदायी होगा ।

(iii) **एजेन्ट के रूप में स्वीकार करना-**ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है, जबकि कोई व्यक्ति वास्तव में एजेन्ट नहीं हो, परन्तु नियोक्ता उसे एजेन्ट मान लेता है, तो उसके द्वारा किए गए व्यवहारों के प्रति नियोक्ता बाध्य होगा ।

(4) **पुष्टिकरण द्वारा** (By Ratification) - **धारा 196** के अनुसार जब एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की ओर से कोई कार्य उसकी जानकारी अथवा बिना अधिकार के करता है, तो जिस व्यक्ति की बिना जानकारी अथवा अधिकार के कार्य किया गया है, वह उस कार्य की पुष्टि कर सकता है अथवा उन कार्यों को अस्वीकार कर सकता है । यदि वह उन कार्यों की पुष्टि अर्थात् स्वीकार कर लेता है, तो इसका वही प्रभाव होगा जो कि अधिकार पाने पर किए गए कार्य का होता है ।

पुष्टिकरण के आवश्यक तत्व

1. पुष्टिकरण किसी व्यक्ति द्वारा भूतकाल में किए गए कार्यो का ही हो सकता है ।
2. दूसरे पक्षकार ने कोई कार्य पहले पक्षकार की जानकारी के बिना अथवा उससे अधिकार मिले बिना ही कर दिया हो।
3. जिस व्यक्ति की ओर से उसने कार्य किया है, उसको उस कार्य को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का पूरा अधिकार है ।
4. यदि वह उन कार्यों को अस्वीकार कर देता है, तो उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं होता । परन्तु यदि उसने किसी व्यक्ति द्वारा उसकी ओर से किए गए कार्यो की पुष्टि (स्वीकार) कर दी है, तो वह उन कार्यो के लिए उत्तरदायी होगा ।

उदाहरण के लिए ' अ ' ' ब ' से बिना अधिकार प्राप्त किए ' ब ' का मकान ' स ' को किराये पर दे देता है । 'स' द्वारा दिए गए किराये को ' ब ' स्वीकार कर लेता है, तो यह वास्तव में ' अ ' द्वारा किए गए कार्य का ' ब ' द्वारा पुष्टिकरण होगा ।

पुष्टिकरण से सम्बन्धित नियम

1. पुष्टिकरण तभी किया जा सकेगा जबकि एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के नाम में कोई कार्य किया है, यदि उसने स्वयं अपने नाम से ही व्यवहार किया है, तो पुष्टिकरण का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा ।
2. जिस व्यक्ति की ओर से कार्य किया गया है उसका अस्तित्व होना भी आवश्यक है अर्थात् पुष्टिकरण के समय नियोक्ता विद्यमान होना चाहिए । इसी कारण कोई कम्पनी अपनी स्थापना के पूर्व किए गए कार्यों का पुष्टिकरण नहीं कर सकती।
3. पुष्टिकरण का अधिकार केवल उसी व्यक्ति या पक्षकार को है जिसकी ओर से किसी व्यक्ति ने कोई कार्य किया है ।

4. एक से अधिक कार्यों का एक साथ पुष्टिकरण किया जा सकता है ।
5. पुष्टिकरण केवल उन्हीं कार्यों का किया जा सकता है, जिन्हें नियोक्ता वैधानिक रूप से कर सकता है । अत: ऐसे कार्य जो अवैधानिक हो, राजनियम की दृष्टि से व्यर्थ हो, अपराधजनक या अवैध हो उनका पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता ।
6. धारा 196 के अनुसार पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी उसी समय मानी जाती है जबकि जिसकी ओर से कार्य किया गया है वह उसकी पुष्टि कर देता है ।
7. धारा 197 के अनुसार पुष्टिकरण स्पष्ट या गर्भित हो सकता है ।
8. धारा 198 के अनुसार जो पुष्टिकरण कर रहा है, उसे मामले की व तथ्यों की पूरी-पूरी जानकारी होनी आवश्यक है । अर्थात पुष्टिकरण करने वाले पक्षकार को उसकी ओर से किए गए कार्यों की पूरी जानकारी होनी चाहिए।
9. धारा 199 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति बिना जानकारी या अधिकार के कोई दूसरे व्यक्ति की ओर से कोई कार्य करता है, तो ऐसे अनधिकृत कार्यों का आंशिक पुष्टिकरण पूरे व्यवहार का पुष्टिकरण कर देता है ।
10. धारा 200 के अनुसार ऐसे अनाधिकृत कार्यों का पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता, जो तीसरे पक्षकार के हितों को नुकसान पहुँचाते हों या समाप्त करते हों ।
11. पुष्टिकरण उचित समय के भीतर किया जाना चाहिए । उचित समय मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।
12. पुष्टिकरण करने वाले पक्षकार में अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक है ।
13. पुष्टिकरण के पश्चात् एजेन्ट अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है व उसे पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार होता है ।

10.10 आवश्यकता द्वारा एजेन्सी

कई बार ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति को हानि से बचाने के लिए कोई कार्य करना होता है, तो ऐसी एजेन्सी आवश्यकता द्वारा एजेन्सी कहलाती है । इससे यह स्पष्ट है कि ऐसी एजेन्सी किसी संकटकालीन या आकस्मिक घटना के फलस्वरूप उत्पन्न होती है । उदाहरण के लिए ' अ ' की दुकान के बाहर ' ब ' की 100 बोरी चीनी विक्रय के लिए रखी है अचानक मौसम खराब हो जाता है व वर्षा से उस चीनी को बचाने के लिए ' अ ' उन बोरियों को गोदाम में रखवा देता है इस पर 1000 रुपए खर्च होते हैं तो इस राशि को प्राप्त करने का अधिकार उसे ' ब ' से है क्योंकि उसने यह कार्य आवश्यकता द्वारा एजेन्ट के रूप में किया जिसका उद्देश्य ' ब ' को हानि से बचाना था ।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित पक्षकार आवश्यकता द्वारा एजेन्सी की स्थापना कर सकते हैं ।

(अ) व्यापारिक एजेन्ट- भी **धारा 189** के अनुसार संकटकालीन या आपातकालीन परिस्थिति में व्यापारिक एजेन्ट वे सभी कार्य करने का अधिकार रखता है जो उस परिस्थिति में नियोक्ता को हानि से बचाने के लिए आवश्यक हो । परन्तु यह आवश्यक है कि-

1. कार्य नियोक्ता के हित में किया जाना चाहिए ।
2. परिस्थिति इस प्रकार की हो जिसमें प्रधान से सम्पर्क कर पाना सम्भव नहीं हो ।
3. परिस्थिति की नजाकत को देखते हुए ऐसी आपातकालीन स्थिति में तुरन्त कार्यवाही की आवश्यकता हो ।
4. उसने वहीं कार्य किए हों जो सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति ऐसी ही परिस्थितियों में अपने निजी मामले में करता ।
5. एजेन्ट ने ऐसे कार्य सद्भावना से किए हों ।

(ब) पति-पत्नी- आवश्यकता द्वारा एजेन्सी का स्थापना पति एवं पत्नी के मध्य हो सकती है । यदि पति एवं पत्नी को अनुचित रूप से अलग कर देता है, घर से निकाल देता है तो पत्नी-पति की साख के आधार पर जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी दूसरे व्यक्ति से अनुबन्ध कर सकती है । यह आवश्यक है कि पत्नी ने पति की स्थिति के अनुरूप जीवन की आवश्यकताओं की वस्तुएँ ली हो । परन्तु यदि पत्नी स्वेच्छा से अपने पति को छोड़कर चली गई है, तो पति उसके द्वारा क्रय की गई आवश्यकता की वस्तुओं के लिए भी उत्तरदायी नहीं होगा।

(स) सार्वजनिक वाहक -जब तक परिवहन में माल वाहक के अधिकार में है तब तक वह माल के स्वामी के एजेन्ट के रूप में कार्य करता है । इस कारण संकटकालीन परिस्थिति में माल को हानि से बचाने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाने का उसे अधिकार है । इनका व्यय माल के स्वामी को वहन करना होगा । उदाहरण के लिए एक मामले में एक घोड़ा रेलगाड़ी द्वारा भेजा गया घोड़ा नियत स्थान पर पहुँच गया पर घोड़े के स्वामी ने उसकी सुपुर्दगी नियत समय तक नहीं ली । स्टेशन मास्टर ने उस घोड़े के लिए दाने आदि की व्यवस्था की । न्यायालय के इस मामले में स्टेशन मास्टर को आवश्यकता द्वारा एजेन्ट माना व घोड़े के स्वामी को उन सभी व्ययों का भुगतान करना पड़ा, जो स्टेशन मास्टर ने घोड़े को खिलाने एवं रखरखाव पर किए थे ।

(द) जहाज का कप्तान-परिस्थिति के अनुसार जहाज का कप्तान भी आवश्यकता द्वारा एजेन्ट हो सकता है । यदि किसी समुद्री या अन्य आपदाओं के कारण जहाज पर या उस पर लदे माल पर कोई विपत्ति आ जाती है या जहाज की मशीन खराब हो जाती है या जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है एवं परिस्थिति ऐसी हो कि जहाज का कप्तान जहाज के मालिक को सूचित करने की स्थिति में नहीं हो तो जहाज के कप्तान को यह अधिकार है कि वह ऐसी परिस्थितियों में जहाज के स्वामी के नाम में धन राशि उधार ले सकता है । ऐसे ऋणों को चुकाने के लिए जहाज का स्वामी उत्तरदायी होगा।

10.11 उप-एजेन्ट

उप-एजेन्ट से सम्बन्धित वैधानिक प्रावधानों का धारा 190 - 193 में उल्लेख किया गया है ।

(अ) परिभाषा- अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 191** के अनुसार उप-एजेन्ट वह व्यक्ति है जो एजेन्सी के व्यवसाय में मूल एजेन्ट द्वारा नियुक्त किया जाता है एवं जो उसके नियंत्रण में कार्य करता है ।

उपर्युक्त परिभाषा से उप-एजेन्ट के तीन आवश्यक लक्षण प्रकट होते ।

(i) उप एजेन्ट की नियुक्ति एजेन्सी के व्यवसाय में की जाती है ।

(ii) उप एजेन्ट मूल एजेन्ट द्वारा नियुक्त किया जाता है न कि नियोक्ता के द्वारा।

(iii) उप-एजेन्ट मूल एजेन्ट के नियंत्रण में कार्य करता है ।

(ब) उप एजेन्ट के नियुक्ति सम्बन्धी प्रावधान - धारा 190 के प्रावधानों के अनुसार एक एजेन्ट उन कार्यों के निष्पादन के लिए वैधानिक रूप से किसी दूसरे व्यक्ति को नियुक्त नहीं कर सकता, जिन्हें निष्पादित करने का दायित्व उसने स्पष्ट या गर्भित रूप से अपने ऊपर लिया है, जब तक कि व्यापार की साधारण प्रथा के अनुसार अथवा एजेन्सी की प्रकृति के अनुसार उप-एजेन्ट को नियुक्त करना आवश्यक नहीं हो ।

उपरोक्त प्रावधान से यह स्पष्ट होता है कि सामान्यतया उप-एजेन्ट का नियुक्ति नहीं की जा सकती । परन्तु यदि व्यापार की सामान्य प्रथा या एजेन्सी के व्यापार की प्रकृति की आवश्यकता हो तो उप-एजेन्ट की नियुक्ति पर कोई वैधानिक प्रतिबन्ध भी नहीं है ।

निम्नलिखित परिस्थितियों में उप-एजेन्ट की नियुक्ति की जा सकती है-

(1) यदि उस व्यापार की सामान्य प्रथा के अनुसार उप-एजेन्ट की नियुक्ति की जाती हो ।

(2) यदि एजेन्सी के व्यापार की प्रकृति को देखते हुए उपएजेन्ट को नियुक्त करना आवश्यक हो ।

(3) यदि नियोक्ता ने मूल एजेन्ट को उप-एजेन्ट की नियुक्ति करने का स्पष्ट अधिकार प्रदान कर दिया हो ।

(4) यदि नियोक्ता को मूल एजेन्ट द्वारा उप-एजेन्ट की नियुक्ति किए जाने की जानकारी है व नियोक्ता ऐसी जानकारी के पश्चात् भी प्रतिवाद नहीं करता । यह मौन द्वारा स्वीकृति होगी ।

(5) किसी आपातकालीन या संकटकालीन परिस्थिति में जहाँ उप-एजेन्ट को नियुक्त करना आवश्यक

(स) नियोक्ता, एजेन्ट तथा उप-एजेन्ट के मध्य वैधानिक सम्बन्ध [धारा 192 -193]-

(अ) जब एजेन्ट की नियुक्ति उचित तरीके से की गई है (When a Sub-Agent is Properly Appointed) -जब मूल एजेन्ट ने उप-एजेन्ट की नियुक्ति एजेन्सी अनुबन्ध अथवा नियोक्ता से प्राप्त अधिकारों के अन्तर्गत की है, ऐसी स्थिति में प्रधान या नियोक्ता, एजेन्ट एवं उप-एजेन्ट का दायित्व इस प्रकार होगा ।

(i) **प्रधान का दायित्व** (Liability of Principal) - **धारा 192** के अनुसार यदि उप-एजेन्ट की नियुक्ति उचित तरीके से की गयी है, तो तृतीय पक्षकारों का जहाँ तक सम्बन्ध है, वह अपने नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करता है एवं ऐसी स्थिति में उप-एजेन्ट द्वारा किए गए समस्त कार्यों के लिए नियोक्ता उसी प्रकार बाध्य होगा जैसे कि वह नियोक्ता द्वारा ही मूल रूप में नियुक्ति किया गया था ।

(ii) **एजेन्ट का दायित्व** (Liability of an Agent) - **धारा 192** के अनुसार उप-एजेन्ट के द्वारा किए गए कार्यों के लिए एजेन्ट नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है ।

(iii) **नियोक्ता के प्रति उप-एजेन्ट का दायित्व** (Liability of Sub-Agent Towards Principal) - **धारा 192** के अनुसार उप-एजेन्ट अपने कार्यों के लिए एजेन्ट के प्रति

उत्तरदायी होता है, प्रधान के प्रति उसका दायित्व नहीं होता । परन्तु कपट व जान-बूझकर की गयी गलतियों के लिए उप-एजेन्ट नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होगा ।

(iv) **पारिश्रमिक व बकाया रकम के लिए वाद नहीं**-उप-एजेन्ट एजेन्सी के कार्यों के निष्पादन के फलस्वरूप मिलने वाले पारिश्रमिक की मांग एजेन्ट से ही कर सकता है व उसी पर वाद चला सकता है, नियोक्ता के ऊपर वाद दायर नहीं किया जा सकता । इसी प्रकार यदि कोई रकम उप-एजेन्ट की ओर बकाया निकलती है, तो नियोक्ता कोई सीधी वैधानिक कार्यवाही उप-एजेन्ट के विरुद्ध नहीं कर सकता ।

(ब) जब उप-एजेन्ट की नियुक्ति बिना अधिकार के की गई है (When Subagent is Appointed Without Authority) - **धारा 193** के अनुसार यदि किसी उप-एजेन्ट की नियुक्ति बिना अधिकार के की गई है, तो इसके निम्नलिखित प्रभाव उत्पन्न होंगे ।

1. एजेन्ट की स्थिति उप-एजेन्ट के नियोक्ता के रूप में होगी एवं वह उप-एजेन्ट के कार्यों के लिए नियोक्ता व तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा ।
2. उप-एजेन्ट नियोक्ता का प्रतिनिधित्व नहीं करता एवं न ही वह नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है ।
3. इस प्रकार नियोक्ता व ऐसे उप-एजेन्ट के मध्य किसी प्रकार का वैधानिक सम्बन्ध नहीं होता ।
4. ऐसे उप-एजेन्ट के कपट तथा जान-बूझकर की गई गलतियों के लिये भी प्रधान या नियोक्ता उसको उतरदायी नहीं ठहरा सकता, उसके कार्यों के लिये मूल एजेन्ट को ही दोषी ठहराया जा सकता है ।

10.12 स्थानापन्न एजेन्ट

धारा 194 के अनुसार " जब एक एजेन्ट ने नियोक्ता से प्राप्त स्पष्ट अथवा गर्भित अधिकार के अनुसार एजेन्सी के व्यापार में किसी व्यक्ति को नियोक्ता की ओर से कार्य करने के लिए नामांकित किया है, तो ऐसा व्यक्ति उप-एजेन्ट नहीं वरन् व्यवसाय के उस भाग के लिए जो कि उसे सौंपा गया है, उसके लिए प्रधान एजेन्ट कहलाता है । ' ' इस प्रकार नियुक्त किया गया व्यक्ति स्थानापन्न एजेन्ट कहलाता है । उदाहरण के लिए ' अ ' ने ' ब ' को अपना मकान नीलामी द्वारा बेचने के लिए नीलामकर्ता नियुक्त करने का निर्देश देता है । ' ब ' ' स ' को इस आशय के लिए नियुक्त करता है, तो ऐसी स्थिति में ' स ' उप-एजेन्ट नहीं वरन् स्थानापन्न एजेन्ट कहलायेगा ।

(ii) **लक्षण** (Characteristics) -स्थानापन्न एजेन्ट की निम्नलिखित विशेषताऐं हैं ।

1. स्थानापन्न एजेन्ट की नियुक्ति एजेन्ट द्वारा की जाती है ।
2. एजेन्ट स्थानापन्न एजेन्ट की नियुक्ति नियोक्ता से प्राप्त स्पष्ट या गर्भित अधिकार के अन्तर्गत करता है।
3. इस प्रकार नियुक्त स्थानापन्न एजेन्ट नियोक्ता की ओर से कार्य करता है ।
4. यह केवल व्यवसाय के उसी भाग के लिए नियोक्ता के एजेन्ट के रूप में कार्य करता है, जो इसे सौंपा गया हो, न कि सम्पूर्ण व्यवसाय के लिए ।

5. स्थानापन्न एजेन्ट व नियोक्ता के मध्य सीधा सम्बन्ध होता है । स्थानापन्न एजेन्ट के कार्यों के प्रति नियोक्ता उत्तरदायी होता है ।

स्थानापन्न एजेन्ट को नामांकित करने में एजेन्ट का कर्त्तव्य (Agent's Duty in Naming Substitute Agent) - धारा 195 के अनुसार नियोक्ता के लिए ऐसे एजेन्ट के चयन में, एजेन्ट को उतने ही विवेक व बुद्धि से कार्य करना चाहिए जितना कि सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति अपने निजी मामले में करता । यदि एजेन्ट ऐसा करता है तो इस प्रकार नियुक्ति किए गए एजेन्ट के कार्यों व लापरवाही के लिए वह उत्तरदायी नहीं होगा ।

10.13 उप-एजेन्ट तथा स्थानापन्न एजेन्ट में अन्तर

क्र. सं.	**अन्तर का आधार**	**उप-एजेन्ट**	**स्थानापन्न**
1.	परिभाषा	उप-एजेन्ट वह व्यक्ति होता है एजेन्सी के व्यावसाय में मूल एजेन्ट द्वारा नियुक्त किया जाता है एवं उसके नियंत्रण में कार्य करता है ।	जब एक एजेन्ट ने नियोक्ता से प्राप्त स्पष्ट या गर्भित प्राधिकार के अन्तर्गत एजेन्सी के व्यापार में किसी व्यक्ति को नामांकित किया हैं, तो इस प्रकार नामांकित व्यक्ति स्थानापन्न एजेन्ट कहलाता है ।
2.	क्षेत्र	उप-एजेन्ट की नियुक्ति का क्षेत्र स्थानापन्न एजेन्ट की तुलना में व्यापक है ।	नियोक्ता की ओर से स्पष्ट या गर्भित रूप से अधिकार होने पर ही इसकी नियुक्ति की जा सकती है, इसलिए इसकी नियुक्ति का क्षेत्र सीमित है ।
3.	नियंत्रण	उप-एजेन्ट मूल एजेन्ट के नियंत्रण कार्य करता है । इसके कार्यों पर प्रधान का नियंत्रण नहीं होता ।	जबकि स्थानापन्न एजेन्ट नियोक्ता या प्रधान के नियंत्रण में कार्य करता है ।
4.	जवाबदेयता	उप-एजेन्ट अपने कार्यों के लिए एजेन्ट के प्रति जवाबदेह होता है ।	जबकि स्थानापन्न एजेन्ट के सभी कार्यों के लिए प्रधान ही उत्तर-दायी होता है ।
5.	उत्तरदायित्व	उप-एजेन्ट के कार्यों के लिए एजेन्ट उत्तरदायी होता है ।	स्थानापन्न एजेन्ट के कार्यों के लिए नियोक्ता उत्तरदायी है ।
6.	वैधानिक संबंध	उप-एजेन्ट व नियोक्ता के मध्य कोई वैधानिक संबंध नहीं होता ।	जबकि स्थानापन्न एजेन्ट व नियोक्ता के मध्य वैधानिक संबंध होता है ।
7.	वैधानिक कार्यवाही	उप-एजेन्ट व नियोक्ता के मध्य कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता, इसलिए परस्पर वैधानिक कार्यवाही	जबकि स्थानापन्न एजेन्ट व नियोक्ता के मध्य प्रत्यक्ष संबंध होता है, इसलिए वे परस्पर रूप से

		नहीं सकते ।	वैधानिक कार्यवाही के स्वतंत्र होते हैं ।
8.	मूल एजेन्ट का कर्तव्य	उप-एजेन्ट नियुक्त किए जाने पर मूल एजेन्ट का कर्त्तव्य अन्त तक बना रहता है ।	स्थानापन्न एजेन्ट की नियुक्ति कर दिए जाने के पश्चात् मूल एजेन्ट का कर्त्तव्य भी समाप्त हो जाता है ।

10.14 एजेन्सी की समाप्ति

एजेन्सी की समाप्ति से अभिप्राय नियोक्ता व एजेन्ट के वैधानिक संबंधों को समाप्त करने या उसके समाप्त होने से है । समाप्त करने से आशय पक्षकार द्वारा एजेन्सी को समाप्त करने से है व समाप्त होने से अभिप्राय राजनियम के क्रियाशील होने से एजेन्सी की समाप्ति से है । इस प्रकार एजेन्सी की समाप्ति की विधियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है

(1) राजनियम के प्रभाव से एजेन्सी की समाप्ति ।

(2) पक्षकारों द्वारा एजेन्सी की समाप्ति ।

इनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है :

(I) राजनियम के प्रभाव से एजेन्सी की समाप्ति (Termination of Agency by Operation of Law) - अधिनियम की धारा 201 के अन्तर्गत उन अनेक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है, जिनके घटित होने पर राजनियम के प्रभाव से एजेन्सी समाप्त हो जावेगी । ये परिस्थितियाँ निम्नलिखित है:

(1) **कार्य पूरा होने पर** (Completion of Business) - यदि एजेन्सी की स्थापना किसी कार्य विशेष के लिए की गयी थी, तो वह कार्य पूरा होने पर एजेन्सी समाप्त हो जावेगी।

(2) **प्रधान या एजेन्ट की मृत्यु होने पर**(On the Death of Principal or Agent)-यदि प्रधान या एजेन्ट में से किसी पक्षकार की मृत्यु हो जाती है तो एजेन्सी समाप्त हो जावेगी ।

(3) **प्रधान या एजेन्ट के पागल होने पर** (On the Becoming of Unsound Mind of Agent or Principal)-नियोक्ता या एजेन्ट में से कोई एक पक्षकार पागल हो जाता है तो एजेन्सी समाप्त हो जावेगी ।

(4) **प्रधान के दिवालिया होने पर** (On Becoming Insolvent of Principal) - यदि प्रधान या नियोक्ता दिवालियापन अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत दिवालिया घोषित हो जाता है तो एजेन्सी समाप्त हो जावेगी ।

(5) **कम्पनी के समापन पर** (On the Winding-up of Company) - यदि नियोक्ता या प्रधान कोई समामेलित कम्पनी है । कम्पनी अधिनियम 1956 के प्रावधानों के अन्तर्गत कम्पनी के समापन की कार्यवाही पूरी होने के साथ ही एजेन्सी भी समाप्त हो जाती है ।

(6) **अवधि समाप्त होने पर** (By Expiry of Time) -यदि किसी एजेन्सी की स्थापना किसी निश्चित समय अवधि के लिए की गयी थी, तो ऐसी अवधि पूरी होने के साथ ही एजेन्सी भी समाप्त हो जावेगी ।

(7) **एजेन्सी की विषय वस्तु समाप्त होने पर** (On the Destruction of the Subject Matter of Agency) -जिस वस्तु या माल में व्यवहार करने के लिए एजेन्सी की स्थापना की गयी है, यदि वह विषय - वस्तु ही समाप्त हो जाती है, तो एजेन्सी भी समाप्त हो जावेगी ।

(8) **अनुबन्ध का निष्पादन असंभव हो जाने पर** (When the Perfor-mance of Contract Becomes Impossible) - यदि किसी कारण से अनुबन्ध का निष्पादन असंभव हो जाता है तो ऐसी असंभवता के कारण यदि एजेन्सी के अनुबन्ध का निष्पादन नहीं किया जा सकता हो, तो एजेन्सी समाप्त हो जावेगी । उदाहरण के लिए सरकारी कानून में परिवर्तन होने, युद्ध छिड़ जाने आदि के कारण उत्पन्न असंभवता इस श्रेणी में आती है ।

(II) पक्षकारों द्वारा एजेन्सी की समाप्ति(Termination of Agency by the Parties) - जिस प्रकार पक्षकार एजेन्सी की स्थापना करते हैं, उसी प्रकार से वे एजेन्सी को समाप्त भी कर सकते हैं । प पक्षकार निम्नलिखित विधियों से एजेन्सी की समाप्ति कर सकते हैं :

(1) **ठहराव द्वारा** (By Agreement)-प्रधान एवं एजेन्ट किसी भी समय पारस्परिक ठहराव के द्वारा एजेन्सी को समाप्त कर सकते हैं । इस पर कोई वैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है ।

(2) **नियोक्ता या प्रधान के खण्डन द्वारा (**Revocation by Principal)-धारा 203 के अनुसार एजेन्ट द्वारा अपने अधिकारों को प्रयोग में लाने से पूर्व नियोक्ता किसी भी समय सूचना देकर एजेन्सी को समाप्त कर सकता है ।

एजेन्ट के खण्डन द्वारा (By Revocation of Agent)-

(अ) धारा 205 के अनुसार यदि एजेन्सी किसी निश्चित समय के लिए है एवं एजेन्ट निश्चित समय से पूर्व ही यदि एजेन्सी समाप्त कर देता है एवं समाप्त करने का कोई उचित कारण नहीं हो तो एजेन्ट नियोक्ता की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा ।

(ब) धारा 206 के अनुसार एजेन्ट भी खण्डन की उचित सूचना देकर एजेन्सी को समाप्त कर सकता है । एजेन्ट द्वारा ऐसा खण्डन एजेन्सी का परित्याग करके कर सकता है ।

10.15 अखण्डनीय एजेन्सी

कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत नियोक्ता चाहे तो भी एजेन्सी का खण्डन नहीं कर सकता,इसे ही ' **अखण्डनीय एजेन्सी** 'कहा जाता है । निम्नलिखित परिस्थितियों में नियोक्ता एजेन्सी का खण्डन नहीं कर सकता:

(i) **जब एजेन्ट का एजेन्सी की विषय-वस्तु में हित निहित हो**(Where Agent has an Interest in Subject Matter)- धारा 202 के अनुसार जब एजेन्ट का एजेन्सी की विषय-वस्तु में हित निहित हो तो ऐसी एजेन्सी को स्पष्ट अनुबन्ध के अभाव में ऐसे हित के प्रतिकूल समाप्त नहीं किया जा सकता ।

(ii) **जहाँ एजेन्ट ने आंशिक रूप से अपने अधिकार का उपयोग कर लिया हो** (Where Authority has been Partly Exercised) -धारा 204 के अनुसार यदि एजेन्ट ने आंशिक

रूप से अपने अधिकारों का उपयोग कर लिया हो व ऐसे कार्यों से दायित्व उत्पन्न हो गया हो, तो नियोक्ता एजेन्सी को समाप्त नहीं कर सकता ।

10.16 एजेन्सी के खण्डन सम्बन्धी अन्य नियम

(1) **समय से पूर्व एजेन्सी की समाप्ति पर क्षतिपूर्ति-धारा 205** के अनुसार यदि एजेन्सी किसी निश्चित अवधि के लिये स्थापित की गयी है और बिना किसी पर्याप्त कारण के उस अवधि से पहले समाप्त कर दी जाती है तो नियोक्ता अथवा एजेण्ट को (जिसने एजेन्सी समाप्त की है) दूसरे पक्षकार को क्षति की पूर्ति करनी होगी ।

(2) **एजेन्सी की समाप्ति की सूचना-धारा 206** के अनुसार एजेन्सी का खण्डन करने वाले पक्षकार को दूसरे पक्षकार को खण्डन की सूचना देना आवश्यक है । खण्डन की सूचना के अभाव में खण्डन करने वाले पक्षकार को दूसरे पक्षकार को पहुंचने वाली हानि की पूर्ति करनी होगी ।

(3) **खण्डन अथवा परित्याग स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है-धारा 207** के अनुसार नियोक्ता एजेण्ट के अधिकार का खण्डन स्पष्ट रूप से कर सकता है अथवा अपने आचरण द्वारा गर्भित रूप से खण्डन कर सकता है । इसी प्रकार एजेण्ट भी अपने अधिकार का परित्याग स्पष्ट रूप से अथवा गर्भित रूप से कर सकता है । उदाहरणार्थ ' अ ' अपना मकान किराये पर देने के लिए ' ब ' को अधिकार देता है । इसके बाद ' अ ' स्वयं इसको किराये पर दे देता है । यह ' ब ' के अधिकार का गर्भित खण्डन है ।

(4) **एजेन्सी की समाप्ति कब प्रभावी होती है-धारा 208** के अनुसार एजेण्ट के अधिकारों की समाप्ति, जहां तक एजेण्ट का सम्बन्ध है, उसको इस बात के मालूम होने के पहले नहीं होती है । जहां तक तीसरे व्यक्तियों का सम्बन्ध है, जब तक उन्हें एजेण्ट के अधिकार की समाप्ति की बात मालूम न हो जाय, एजेन्सी की समाप्ति नहीं होती है । उदाहरणार्थ ' अ ' अपनी ओर से ' ब ' को माल बेचने का अधिकार देता है तथा ' ब ' को माल के प्राप्त मूल्य पर 10 प्रतिशत कमीशन देना स्वीकार करता है । इसके बाद, ' अ ' एक पत्र द्वारा ' ब ' के अधिकार का खण्डन करता है । पत्र भेज देने के बाद, किन्तु ' ब ' को मिलने के पहले, ' अ ' 50,000 रुपए का माल बेच देता है । इस बिक्री के लिए ' अ ' बाध्य है तथा ' ब ' 10 प्रतिशत कमीशन पाने का अधिकारी है ।

उप-एजेण्ट (Sub-Agent) **के अधिकार की समाप्ति-धारा 210** के अनुसार एजेण्ट के अधिकार की समाप्ति उसके द्वारा नियुक्त किये गये उप-एजेण्टों के अधिकार को भी समाप्त कर देती है क्योंकि एजेण्ट का अस्तित्व न रहने पर उप-एजेण्ट का अस्तित्व समाप्त हो जाता है ।

10.17 एजेण्टों के प्रकार

(1) **सामान्य एजेण्ट** (General Agent)-यह वह व्यक्ति होता है जिसको एक निश्चित सीमा के अन्दर वह सब कार्य करने का अधिकार होता है, जो सामान्य प्रकृति के होते हैं । जैसे, किसी व्यक्ति को व्यवसाय के संचालन के लिए नियुक्त करना ।

(2) **विशिष्ट एजेण्ट** (Specific Agent)-वह व्यक्ति जिसको किसी विशेष कार्य को करने के लिए नियुक्त किया जाता है विशिष्ट एजेन्ट कहलाता है । इसका अधिकार उस विशेष कार्य करने तक ही सीमित रहता है ।

(3) **अव्यापारिक एजेण्ट** (Non-mercantile or Non-commercial Agent)-अव्यापारिक एजेण्ट उस एजेण्ट को कहते हैं जिसका कार्य क्रेता तथा विक्रेता के बीच मध्यस्थता करना नहीं होता । वह प्रधान के लिए ऐसे ऐसे कार्यो को करता है जिसका सम्बन्ध व्यापार से न होकर किन्हीं अन्य अधिकारों और कर्तव्यों से होता है । जैसे- ' कानूनी एजेण्ट ' जो अपने नियोक्ताओं को कानून सम्बन्धी आवश्यक सलाह देते हैं । सम्पत्ति सम्बन्धी एजेण्ट अथवा मकान सम्बन्धी एजेण्ट भी गैर व्यापारिक ही कहलाते हैं । इसी तरह एक पत्नी भी अपने पति की ओर से जब कोई कार्य करती है, तो उसे गैर व्यापारिक एजेण्ट कहते हैं ।

(4) **व्यापारिक एजेण्ट** (Mercantile Agent) - ऐसे व्यक्ति जो व्यापारिक व्यवहारों में अपने नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करता है । व्यापारिक एजेण्ट कहलाता है । इस प्रकार के एजेण्ट साधारणत: उत्पादक तथा थोक विक्रेताओं के बीच अथवा थोक विक्रेताओं तथा फुटकर विक्रेताओं के बीच मध्यस्थता का काम करते हैं ।

(5) **दलाल एजेण्ट** (Broker) - ' दलाल ' वह एजेण्ट है जो दलाली के प्रतिफल में दो पक्षकारों के बीच व्यापार, वाणिज्य आदि कार्यो के लिए नियुक्त किया जाय । दलाल को माल पर अधिकार नहीं होता है ।

(6) **बीमा दलाल** (Insurance Broker) - ये दलाल जहाजी बीमा कराने के लिए नियुक्त किये जाते हैं । ये बीमादार तथा बीमादाता के बीच मध्यस्थता का काम करते हैं ।

(7) **आढ़तिये** (Factor)-आढ़तिया उस एजेण्ट को कहते हैं जो कि प्रतिफल के बदले में नियोक्ता द्वारा भेजे या सुपुर्द किये गये माल को बेचने के उद्देश्य से नियुक्त किया जाय । यह चालानी माल पाने वाला तथा कमीशन एजेण्ट दोनों होता है । इसको माल पर अधिकार तथा ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है । यह ग्राहकों को अपने नाम से रसीद दे सकता है तथा उन पर अपने नाम से ही वाद भी प्रस्तुत कर सकता है ।

(8) **नीलामकर्त्ता** (Auctioneer) -' नीलामकर्त्ता ' वह व्यक्ति है जो माल को नीलामी द्वारा बेचने का अधिकार रखता है ।

(9) **बैंकर** (Banker)-साधारणतः बैंकर तथा ग्राहक के बीच ऋणी तथा ऋणदाता का सम्बन्ध होता है । बैंकर अपने ग्राहक का एजेण्ट भी होता है क्योंकि बैंकर को ग्राहकों द्वारा जमा की हुई रकम को उनकी मांग पर वापस करना पड़ता है । इसके अतिरिक्त बैंक अपने ग्राहकों के लिए बिजली, आयकर तथा बीमा के प्रीमियम का भुगतान तथा अन्य दूसरे कार्य भी करते हैं ।

(10) **कमीशन एजेण्ट** (Commission Agent)-कमीशन एजेण्ट साधारणत: विदेशी प्रधान की तरफ से कमीशन के बदले में कार्य करता है । वह अपने प्रधान के लिए अपने ही नाम से माल खरीदता है तथा अपने परिश्रम के लिए कमीशन पाता है । वह खरीदे हुए माल की कीमत अदा करने के लिए स्वयं उत्तरदायी होता है ।

(11) **परिशोध एजेण्ट** (Del-Credere Agent)-परिशोधी एजेण्ट उस एजेण्ट को कहते हैं जो अतिरिक्त कमीशन के बदले में, जिसे परिशोधी कमीशन कहते हैं, अपने प्रधान से वह वायदा

करता है कि उधार बेचे गये माल का ऋणी द्वारा भुगतान न होने पर वह स्वयं नियोक्ता को ऐसी रकम का भुगतान कर देगा । इस प्रकार का एजेण्ट तभी भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होता है, जब ऋणी दिवालिया हो जाता है ।

10.18 नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के कर्त्तव्य अथवा नियोक्ता के एजेन्ट के विरूद्ध अधिकार

नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के निम्नलिखित कर्त्तव्य होते हैं ।

(1) **अधिकारों का प्रत्यायोजन नहीं करना** (Should not Delegate the Authority)-धारा 190 के अनुसार एक एजेन्ट उन कार्यों के निष्पादन हेतु वैधानिक रूप से किसी दूसरे व्यक्ति की नियुक्त नहीं कर सकता, जिन्हें निष्पादित करने का दायित्व उसने स्पष्ट या गर्भित रूप से अपने ऊपर लिया है । अत उसका कर्त्तव्य है, कि वह ऐसे कार्यों के बारे में अधिकारों का प्रत्यायोजन नहीं करे ।

(2) **निश्चित समय से पूर्व एजेन्सी का खण्डन करने पर क्षतिपूर्ति करना** (Compensation for Revocation of Agency Before Specified Time)-धारा 205 के अनुसार यदि एजेन्सी की स्थापना निश्चित समय के लिए की गयी थी व एजेन्ट बिना किसी उचित कारण के निश्चित समय से पूर्व एजेन्सी समाप्त कर देता है, तो उसका यह कर्त्तव्य है कि ऐसे खण्डन से नियोक्ता को पहुँची हानि की क्षतिपूर्ति करे । '

(3) **नियोक्ता की मृत्यु या पागल होने पर एजेन्सी की समाप्ति पर एजेन्ट का कर्त्तव्य** (Agent's duty on Termination of Agency by Principal's Death or Insanity)-धारा 209 के अनुसार यदि नियोक्ता की मृत्यु या पागल हो जाने के कारण यदि एजेन्सी समाप्त हो जाती है, तो एजेन्ट का यह कर्त्तव्य है कि उसके मृत नियोक्ता के उत्तराधिकारियों की ओर से उसे सौंपे गए हितों की सुरक्षा व संरक्षण के लिए सभी उचित कदम उठाए ।

(4) **आदेशानुसार व्यापार का संचालन करना**(To Conduct the Business According to the Directions)-धारा 211 के अनुसार एजेन्ट नियोक्ता के व्यवसाय का संचालन उसके आदेशानुसार करने के लिए बाध्य है । यदि एजेन्ट नियोक्ता के आदेशानुसार व्यवसाय का संचालन नहीं करता व इस कारण यदि नियोक्ता को कोई हानि होती है, तो उसकी पूर्ति एजेन्ट को करनी होगी ।

(5) **आदेश के अभाव में उस व्यापार में प्रचलित प्रथा के अनुसार कार्य करना** (In the Absence of direction to Act According to the Pre-vailing Custom in the Business)-धारा 211 के अनुसार यदि नियोक्ता ने व्यवसाय के संचालन के संबंध में एजेन्ट को कोई आदेश नहीं दिया है, तो एजेन्ट को उस स्थान पर उसी प्रकार के व्यापार में प्रचलित प्रथा के अनुसार कार्य करना चाहिए अन्यथा इस कारण नियोक्ता को पहुँची क्षति की पूर्ति उसे करनी होगी ।

(6) **उचित चातुर्य एवं परिश्रम से एजेन्सी के व्यवसाय का संचालन करना** (To Conduct the Agency Business with Reasonable Skill and Diligence)-धारा 212 के

अनुसार एक एजेन्ट को व्यवसाय उतनी ही चतुराई एवं परिश्रम से संचालन करना चाहिए जितनी की समान व्यवसाय में लगे व्यक्ति सामान्यतया करते हैं । एक एजेन्ट उपेक्षापूर्ण चातुर्य में कमी या कदाचरण के प्रत्यक्ष परिणामों के लिए नियोक्ता की क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य है ।

(7) **हिसाब प्रस्तुत करने का कर्त्तव्य** (Duty to Render the Accounts)-धारा 213 के अनुसार एजेन्ट नियोक्ता द्वारा माँगे जाने पर एजेन्सी का हिसाब प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है । अत: एजेन्सी का हिसाब रखना उसका कर्त्तव्य है । उसका यह भी कर्त्तव्य है कि नियोक्ता द्वारा पूछी गई प्रविष्टियों को समझाए ।

(8) **नियोक्ता से संपर्क रखने का कर्त्तव्य-**धारा 214 के अनुसार यह एजेन्ट का कर्त्तव्य है कि वह कठिनाई के समय नियोक्ता से संपर्क के लिए सभी यथोचित साधनों का प्रयोग करे व कठिनाई की उसे सूचना देकर उसके निर्देश प्राप्त करे ।

(9) **नियोक्ता की सहमति के बिना अपने नाम में व्यवहार नहीं करना -धारा 215** के अनुसार एजेन्ट के, बिना नियोक्ता की सहमति के अपने नाम में एजेन्सी के व्यवसाय का संचालन नहीं करना चाहिए ।

(10) **नियोक्ता के लिए प्राप्त धन को लौटाने का कर्त्तव्य** (Duty to pay Sums Received for Principal)-धारा 218 के अनुसार एजेन्ट नियोक्ता के नाम में प्राप्त किए गए धन को लौटाने के लिए बाध्य है, इस धनराशि में से अपना कमीशन काटने का अधिकार एजेन्ट को है ।

(11) **एजेन्सी के व्यवसाय में प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग नियोक्ता के विरुद्ध न करना-**एजेन्ट का यह कर्त्तव्य है कि एजेन्सी के व्यवसाय में वह जो सूचनाएँ प्राप्त करता है, उनका उपयोग नियोक्ता के विरुद्ध नहीं करे ।

(12) **माल पर प्रतिकूल स्वामित्व स्थापित नहीं करना-**एजेन्ट का यह कर्त्तव्य है कि एजेन्सी व्यवसाय के माल या विषय वस्तु पर वह न तो स्वयं का स्वामित्व या मालिकाना हक स्थापित करे, न ही किसी तीसरे पक्षकार को उस माल पर स्वामित्व स्थापित करने दे ।

10.19 एजेन्ट के नियोक्ता के विरुद्ध अधिकार अथवा नियोक्ता के एजेन्ट के प्रति कर्तव्य

एजेन्ट को नियोक्ता के विरुद्ध निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं ।

(1) **नियोक्ता के नाम में प्राप्त धन को रोकने का अधिकार** (Right to Retain out of sums Received on Principal's Account)-धारा 217 के अनुसार एजेन्सी के व्यवसाय में नियोक्ता के नाम में प्राप्त धन में से अग्रलिखित राशियों को रोकने का अधिकार एजेन्ट को है-

(i) एजेन्ट द्वारा प्रधान या नियोक्ता को दी गई अग्रिम राशियाँ ।

(ii) एजेन्सी के व्यवसाय के संचालन में एजेन्ट द्वारा व्यय की गई उचित राशियाँ ।

(iii) एजेन्ट के रूप में कार्य करने के बदले निर्धारित पारिश्रमिक की राशि ।

(2) **पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार-**धारा 219 के अनुसार किसी विशेष अनुबन्ध के अभाव में किसी कार्य का भुगतान तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि एजेन्ट उसे पूरा नहीं कर देता । प्रत्येक एजेन्ट को अनुबन्ध के अनुसार पारिश्रमिक पाने का अधिकार है । यह स्पष्ट

है कि यदि एजेन्सी प्रतिफल रहित है, तो एजेन्ट को पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा । एजेन्ट बेचे गए माल से प्राप्त धन को रोक सकता है भले ही माल पूरा नहीं बिका हो ।

(3) **नियोक्ता की सम्पत्ति पर एजेन्ट का ग्रहणाधिकार**- धारा 221 के अनुसार किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में एजेन्ट को नियोक्ता के माल, कागजात व अन्य चल तथा अचल सम्पत्तियों को उस समय तक रोके रखने का अधिकार है, जब तक कि उसे देय क्षतिपूर्ति की राशि, उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं का पारिश्रमिक, कमीशन व किए गए व्ययों का भुगतान नहीं कर दिया जाता ।

(4) **माल को मार्ग में रोकने का अधिकार** (Right to Stoppage the Goods in Transit) - एजेन्ट को माल को मार्ग में रोकने का अधिकार अदत्त विक्रेता के रूप में प्राप्त होता है । इस अधिकार का प्रयोग वह तब कर सकता है, जबकि उसने माल, वाहक को नियोक्ता को सुपुर्द करने के लिए दे दिया हो व माल अभी मार्ग में हो । एजेन्ट की स्थिति अदत्त विक्रेता के रूप में तभी होगी जबकि-

(i) एजेन्ट ने नियोक्ता के लिए क्रय किए गए माल की व्यक्तिगत जमानत दी हो या

(ii) एजेन्ट ने अपने व्यक्तिगत धन से नियोक्ता के लिए माल खरीदा हो या

(iii) नियोक्ता दिवालिया हो चुका हो ।

(5) **क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार** (Right to Indemnification)- धारा 222 के अनुसार यदि एजेन्ट प्राप्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए जो वैधानिक कार्य करता है, उसके परिणामस्वरूप यदि उसे कोई हानि होती है, तो उसकी क्षतिपूर्ति वह नियोक्ता से प्राप्त कर सकता है ।

सम्बन्धित नियम (Related Rules)-एजेन्ट के क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के अधिकार के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम लागू होते हैं -

(i) **वैधानिक कार्यो के फलस्वरूप हुई हानि की क्षतिपूर्ति**- धारा 222 के अनुसार यदि एजेन्ट उसे प्रदान किए गए अधिकारों के अन्तर्गत कोई वैधानिक कार्य एजेन्सी के व्यापार के लिए करता है, तो ऐसे कार्यों से यदि एजेन्ट को कोई हानि पहुँचती है तो वह इसकी क्षतिपूर्ति नियोक्ता से प्राप्त करने का अधिकार रखता है ।

(ii) **सद्भावना से किए गए कार्यों की क्षतिपूर्ति** (Indemnified against Consequences of Acts done in Good Faith) - धारा 223 के अनुसार जब एक व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए दूसरे को नियुक्त करता है व एजेन्ट उक्त कार्य को सद् भावना के साथ करता है, तो नियोक्ता ऐसे कार्यों के परिणामस्वरूप एजेन्ट को होने वाली क्षति की पूर्ति करने के लिए उत्तरदायी है ।

(iii) **एजेन्ट के अपराधपूर्ण कार्यों के लिए नियोक्ता का दायित्व नहीं** (Non- Liability of Employer of Agent's Criminal Acts)-धारा 224 के अनुसार यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को कोई अपराधपूर्ण कार्यों को करने के लिए नियुक्त किया है, तो क्षतिपूर्ति करने के स्पष्ट या गर्भित वचन के बावजूद भी नियोक्ता उक्त कार्यो के परिणामों के लिए एजेन्ट के प्रति क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं होगा ।

(iv) **नियोक्ता की उपेक्षा या चतुराई के अभाव से एजेन्ट को होने वाली क्षति की पूर्ति** (Compensation to Agent for Injury Caused by Principal's Neglect or Lack of Skill) - धारा 225 के अनुसार एजेन्ट ऐसी क्षति जो कि उसे नियोक्ता की उपेक्षा या चतुराई के अभाव के कारण पहुँची हो, उसकी क्षतिपूर्ति नियोक्ता से कराने का अधिकार है ।

(6) **निर्धारित समय से पूर्व बिना उचित कारण के नियोक्ता द्वारा एजेन्सी का खण्ड़न कर देने पर**(In the case of Revocation of Agency before Specified Time without any Sufficient Cause) - धारा 205 के अनुसार यदि एजेन्सी की स्थापना किसी निश्चित समय के लिए की गई है एवं नियोक्ता निर्दिष्ट अवधि के पूर्व बिना किसी उचित कारण के एजेन्सी का खण्डन कर देता है, तो इस कारण पहुँची हानि की क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार एजेन्ट को होगा ।

10.20 तीसरे पक्षकारों के साथ अनुबन्धों का एजेन्सी पर प्रभाव

एजेन्सी के व्यापार की सामान्य प्रगति में किए गए उन सभी कार्यो के लिए जो कि एजेन्ट ने अपनी प्राधिकार सीमा के अन्दर किए हैं, नियोक्ता उत्तरदायी होता है । इसके अतिरिक्त ऐसे सभी कार्य जो एजेन्ट ने नियोक्ता की सहमति से किए हैं या जिनका बाद में नियोक्ता ने पुष्टिकरण कर दिया है, उनके लिए भी नियोक्ता उत्तरदायी होगा । तीसरे पक्षकारों के प्रति जो नियोक्ता के उत्तरदायित्व हैं, वे ही वास्तव में एजेन्ट के उनके प्रति कर्त्तव्य हैं । इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है ।

तीसरे पक्षकारों के प्रति नियोक्ता के उत्तरदायित्वों का निर्धारण अनुबन्ध अधिनियम के एजेन्सी अनुबन्धों के सम्बन्धित प्रावधानों के अनुसार इस प्रकार होगा ।

(1) **एजेन्ट द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र में किए गए कार्यों का उत्तरदायित्व** (Liability of Agent's Acts done within the scope of Authority) - धारा 226 के अनुसार एजेन्ट द्वारा अपनी अधिकार सीमा में किए गए कार्यों या अनुबन्धों का वही वैध परिणाम होगा, जैसे कि ये अनुबन्ध स्वयं नियोक्ता द्वारा किए गए हों । उदाहरण के लिए ' अ ' ' ब ' का एजेन्ट है, जिसे ' ब ' की ओर से रूपया प्राप्त करने का अधिकार है, इसके तहत वह ' स ' से रुपया प्राप्त करता है, जो कि ' ब ' को देय है । ' स ' ' अ ' को रकम का भुगतान करने के पश्चात् अपने दायित्व से मुक्त हो जाएगा ।

(2) **एजेन्ट द्वारा अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य किए जाने पर** (When Agent Exceeds Authority) - धारा 227 के अनुसार यदि एजेन्ट ने अपने अधिकारों के बाहर जाकर कोई कार्य किया है, एवं उसके कार्यों में से, अधिकार के अन्तर्गत किए गए कार्य को, अधिकार के बाहर किए गए कार्य से पृथक करना संभव हो तो नियोक्ता केवल उसी भाग के लिए उत्तरदायी होगा जो एजेन्ट ने अपने अधिकार (Authority) के अन्तर्गत किया हो ।उदाहरण के लिए ' अ ' एक जहाज एवं उस पर लादे हुए माल दोनों का स्वामी है । ' अ ' ' ब ' को 800000रुपये का ' जहाज ' का सामुद्रिक बीमा करने के लिए अधिकृत करता है । ' ब ' 800000 रूपये का बीमा जहाज का व उतनी ही राशि का जहाज पर लदे माल का कराता है । 'ऐसी स्थिति में ' अ '

केवल जहाज के बीमें का प्रीमियम देने के लिए उत्तरदायी है क्योंकि ' ब ' केवल जहाज का बीमा कराने के लिये ही अधिकृत था ' माल ' का बीमा कराना अधिकार क्षेत्र से बाहर का कार्य है ।

(3) **जब अनाधिकृत कार्य को सम्पूर्ण कार्य से पृथक् करना संभव नहीं हो** (When Excess of Agent's Authority is not Separable) - धारा 228 के अनुसार यदि एजेन्ट अपने अधिकारों से बाहर कार्य करता है, व अनाधिकृत कार्य को सम्पूर्ण कार्य से पृथक करना संभव नहीं हो, तो नियोक्ता ऐसे व्यवहार को मानने के लिए बाध्य नहीं होगा ।

(4) **एजेन्ट को दी गई सूचना का परिणाम** (Consequences of Notice Given to Agent) - धारा 229 के अनुसार एजेन्सी के व्यापार की सामान्य प्रगति में एजेन्ट को दी गयी कोई भी सूचना या उसके द्वारा प्राप्त सूचना का वही प्रभाव होगा जैसे कि ये सूचनायें स्वयं नियोक्ता की दी गई हैं या उसके द्वारा प्राप्त की गयी है ।

(5) **एजेन्ट के अनाधिकृत कार्यो के अधिकृत होने का विश्वास दिलाने पर नियोक्ता का उत्तरदायित्व** (Liability of Principal Including Belief, that Agents' Unauthorised Acts were Authorised)- धारा 237 के अनुसार जब एजेन्ट बिना अधिकार के नियोक्ता की ओर से कोई कार्य तीसरे पक्षकार के साथ करता है या कोई उत्तरदायित्व लेता है एवं नियोक्ता यदि अपने शब्दों या आचरण के द्वारा यदि तीसरे पक्षकार को यह विश्वास दिलाता है कि एजेन्ट द्वारा किया गया कार्य अधिकृत है, उसकी अधिकार सीमा में है तो नियोक्ता ऐसे कार्यो के प्रति तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा ।

(6) **एजेन्ट द्वारा मिथ्यावर्णन या कपट का ठहराव पर प्रभाव** (Effect on Agreement of Misrepresentation and Fraud by Agent) - धारा 238 के अनुसार यदि एजेन्ट अपने अधिकारों के अन्तर्गत कार्य करते हुए कपट या मिथ्या वर्णन करता है, तो नियोक्ता एजेन्ट के ऐसे कपट व मिथ्या वर्णन के लिए उत्तरदायी होगा । परन्तु ऐसा मिथ्या वर्णन या कपट जो उसकी अधिकार सीमा में नहीं आता, उसके लिए नियोक्ता उत्तरदायी नहीं होगा ।

(7) **संकटकालीन परिस्थिति में अधिकार** (Authority in an Emergency) -धारा 189 के अनुसार संकटकालीन या आपातकालीन परिस्थिति में एजेन्ट के अधिकारों का विस्तार हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में किये गये कार्यो के लिये नियोक्ता तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा।

(8) **दण्डनीय कार्यो के लिये दायित्व** (Liability for Criminal acts)-यदि एजेन्ट ने अपने अधिकार सीमा में कार्य करते हुए किसी तीसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुँचायी है तो नियोक्ता का तीसरे पक्षकारों के प्रति व्यक्तिगत व एजेन्ट के साथ सम्मिलित दायित्व होगा ।

(9) **एजेन्ट की स्वीकृति का प्रभाव** (Effects of Agent's Consent)-एजेन्ट की स्वीकृति के पश्चात् नियोक्ता स्वीकृत किये गये तथ्य से उत्पन्न तीसरे पक्षकार के प्रति दायित्व को वहन करने के लिये बाध्य होगा ।

एक वाद में एक यात्री का सामान स्टेशन का कुली लेकर चम्पत हो गया । स्टेशन मास्टर ने इसकी सूचना पुलिस को दी । स्टेशन मास्टर रेल्वे का एजेन्ट होता है, अत: रेल्वे को स्टेशन मास्टर द्वारा स्वीकार किये गये तथ्य को मानना पड़ा ।

10.21 एजेन्ट का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व

एजेन्ट द्वारा किये गये जिन कार्यों एवं व्यवहारों के लिये नियोक्ता उत्तरदायी नहीं होता, उनके लिये एजेन्ट ही तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होता है, यही उसका व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है । जिन कार्यो के लिये एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है, उनके लिये तीसरा पक्षकार एजेन्ट पर व एजेन्ट तीसरे पक्षकार के प्रति वैधानिक कार्यवाही करने के लिये स्वतन्त्र होते हैं । एजेन्ट निम्नलिखित परिस्थितियों में अपने कार्यों व व्यवहारों के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता हैं ।

(1) **अपने अधिकार से बाहर कार्य करने पर** (When Agent Exceeds Authority) -जब एजेन्ट उसे प्रदत्त अधिकारों के बाहर कार्य करता है, व इस प्रकार किये गये कुछ कार्य में से अनाधिकृत कार्यों को पृथक् करना संभव नहीं है, तो धारा 228 के प्रावधानों के अनुसार एजेन्ट स्वयं ही उन कार्यो के लिये तीसरे पक्षकार के प्रति उत्तर-दायी होगा ।

(2) **अनाधिकृत कार्यों का पुष्टीकरण नहीं किये जाने पर**(On the Refusal of Ratification of Unauthorised Act)-यदि एजेन्ट अपने अधिकार से बाहर कार्य करता है, तो ऐसे कार्य अनाधिकृत कहलायेंगे । यदि इन अनाधिकृत कार्यो का पुष्टीकरण नियोक्ता नहीं करता तो इससे लिये एजेन्ट ही तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा ।

(3) **विदेशी नियोक्ता के एजेंट के रूप में कार्य करने पर** (Acts as an Agent for Foreign Principal) -यदि एजेन्ट किसी विदेशी नियोक्ता की और से कार्य करता है, तो उसकी और से किये गये कार्यों के लिये वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा ।

(4) **अनुबन्ध में स्पष्ट रूप से उल्लेख होने पर** (When Contract Expressly Narrates) - यदि नियोक्ता एवं एजेन्ट के मध्य हुए एजेन्सी के अनुबन्ध में यदि यह स्पष्ट व्यवस्था हो कि अनुबन्ध भंग होने पर एजेन्ट तीसरे पक्षकारों के प्रति स्वयं उत्तरदायी होगा । ऐसी स्थिति में अनुबन्ध भंग होने पर एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

(5) **नियोक्ता के अनुबन्ध करने में अक्षम होने पर**(When Principal is Incompetent to Make Contract) - यदि नियोक्ता अनुबन्ध करने में अक्षम है अर्थात् अवयस्क या अस्वस्थ मस्तिष्क का है, तो एजेन्ट पक्षकारों के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा ।

(6) **विषयवस्तु में हित होने पर** (When Agent has Interest in the Subject-matter) -यदि एजेन्सी की विषयवस्तु में एजेन्ट का स्वयं का हित निहित हो, तो अपने हित की सीमा तक वह स्वयं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

(7) **व्यापार में प्रचलित प्रथा के अनुसार दायित्व** (Liability According to Prevailing Customs in Trade) - यदि एजेन्सी के स्थान व व्यवसाय में प्रचलित प्रथा इस प्रकार कि हो, कि जिसमें एजेन्ट को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता हो, तो एजेन्ट स्वयं उत्तरदायी होगा ।

(8) **दण्डनीय कार्यों के लिये दायित्व** (Liability for Criminal Acts) - यदि एजेन्ट किसी व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को कोई हानि पहुँचाता है, तो इसके लिये वह स्वयं उत्तरदायी होगा।

(9) **अप्रकट नियोक्ता के लिये कार्य करने पर**-यदि एजेन्ट अप्रकट नियोक्ता के लिये कार्य करता है व प्रधान के नाम को प्रकट नहीं करता, तो तीसरे पक्षकारों के प्रति वह स्वयं उत्तरदायी होगा ।

(10) **मिथ्या एजेन्ट की स्थिति में दायित्व**-यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे के एजेन्ट होने का प्रदर्शन करता है व दूसरा व्यक्ति उसके कार्यों का पुष्टीकरण करने से मना कर देता है, तो एजेन्ट ही उन कार्यो के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा ।

10.22 अप्रकट नियोक्ता

आशय-इसके अर्न्तगत नियोक्ता प्रकट नहीं रहता अर्थात् तीसरे पक्षकार को एजेन्ट के साथ व्यवहार करते समय नियोक्ता का पता नहीं होता है । एजेन्ट अपने नाम में अनुबन्ध करता है या अपने नियोक्ता का नाम नहीं बताता है, या तीसरे पक्षकार को वह यह प्रदर्शित करता है कि वह ही नियोक्ता है तो ऐसी परिस्थितियों में अप्रकट नियोक्ता की विद्यमानता मानी जाती है।

अप्रकट नियोक्ता के सम्बन्ध में निम्नलिखित वैधानिक प्रावधान लागू होते हैं ।

अप्रकट नियोक्ता की स्थिति में अनुबन्ध के पक्षकारों के अधिकार -ये अधिकार निम्नलिखित हैं:

(i) **निष्पादन कराने का अधिकार** (Right to get Performance) - धारा 231 के अनुसार अप्रकट नियोक्ता प्रकट होकर अनुबन्ध के निष्पादन की मांग कर सकता है । ओर तीसरे पक्षकारों को भी फिर वे सभी अधिकार प्राप्त हो जावेंगे जो कि एजेन्ट के नियोक्ता होने पर उन्हें प्राप्त होते ।

(ii) **तृतीय पक्षकार द्वारा निष्पादन से मना करना** (Refusal of Performance by Third Party)-धारा 231 के अनुसार यदि नियोक्ता अनुबन्ध के पूरा होने से पूर्व स्वयं को प्रकट कर देता है, तो तीसरा पक्षकार अनुबन्ध का निष्पादन करने से मना कर सकता है, परन्तु उसे यह सिद्ध करना होगा कि यदि पहले पता चल जाता की एजेन्ट नियोक्ता नहीं है, तो वह अनुबन्ध नहीं करता ।

(iii) **नियोक्ता द्वारा निष्पादन की माँग करने की शर्त**- धारा 232 के अनुसार यदि अप्रकट नियोक्ता निष्पादन की माँग करता है, तो ऐसी माँग वह तभी कर सकेगा जबकि वह तीसरे पक्षकार को वे सभी अधिकार प्रदान करे जो उसे एजेन्ट के विरुद्ध प्राप्त थे ।

(iv) ऐसे मामले में जहाँ एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी है । यदि तीसरे पक्षकार को अप्रकट नियोक्ता का नाम बाद में पता चल जाता है, तो वह एजेन्ट या नियोक्ता या दोनों पर मुकदमा चलाने का अधिकार रखता है ।

(v) यदि एजेन्ट ने तीसरे पक्षकार के प्रति उत्तरदायी होने का ठहराव किया है या व्यापारिक प्रथा के अनुसार एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी है, तो एजेन्ट को तीसरा पक्षकार बाध्य कर सकता है ।

(vi) धारा 234 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति एजेन्ट के साथ अनुबन्ध करता है व उसे यह विश्वास दिलाता है कि केवल नियोक्ता ही उत्तरदायी होगा व नियोक्ता को इस विश्वास पर कार्य

करने के लिये प्रेरित करता है कि केवल एजेन्ट ही उत्तरदायी होगा, तो बाद में वह न तो एजेन्ट को उत्तरदायी ठहरा सकेगा न ही नियोक्ता को।

(vii) धारा 235 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति असत्य बोल करके स्वयं को दूसरे का एजेन्ट बताता है व इस आधार पर तीसरे पक्षकार को उससे व्यवहार करने के लिये प्रेरित करता है, तो नियोक्ता द्वारा उसके किये गये कार्यों का पुष्टीकरण नहीं करने पर वह स्वयं उन कार्यों के लिये व्यक्तिगत स्व से उत्तरदायी होगा ।

(viii) धारा 236 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति एजेन्ट के रूप में अनुबन्ध करता है, जबकि वास्तव में वह एजेन्ट नहीं है वरन् वह स्वयं के नाम से व्यवहार कर रहा है, तो ऐसे अनुबन्ध के निष्पादन हेतु वह नियोक्ता को बाध्य नहीं कर सकता ।

10.23 स्व-परख प्रश्न

1. एजेन्सी की परिभाषा दीजिये व इसके लक्षणों की विवेचना कीजिये ।
2. एजेन्सी को परिभाषित कीजिये । यह किस प्रकार स्थापित की जाती है और किस प्रकार समाप्त की जाती है?
3. उप-एजेन्ट तथा स्थानापन्न एजेन्ट में अन्तर बतलाइये । नियोक्ता एवं तीसरे पक्षकारों से उनके सम्बन्ध बतलाइये ।
4. उप-एजेन्ट क्या है? एजेन्ट, नियोक्ता एवं तीसरे पक्षकार के साथ उप-एजेन्ट का क्या सम्बन्ध है?
5. पुष्टीकरण क्या है? एजेन्सी के कार्यो पर यह सिद्धान्त लागू होने के लिये किन दशाओं का पूरा होना आवश्यक हैं?
6. एजेन्सी क्या है? एजेन्ट के अपने नियोक्ता के प्रति अधिकार व कर्त्तव्य बतलाओ ।
7. नियोक्ता की ओर से किये गये व्यवहारों के लिये एजेन्ट व्यक्तिगत स्व से कब वाद प्रस्तुत कर सकता है तथा किन परिस्थितियों में उस पर व्यक्तिगत वाद प्रस्तुत किया जा सकता है?
8. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए:
   (अ) अप्रकट नियोक्ता ।
   (ब) आवश्यकता द्वारा एजेन्सी ।
   (स) गत्यावरोध द्वारा एजेन्सी ।
9. नियोक्ता के एजेन्ट के प्रति कर्त्तव्यों व उसके विरुद्ध अधिकारों का वर्णन कीजिये ।

इकाई- 11

वस्तु विक्रय अनुबन्ध की प्रकृति तथा क्षेत्र (Nature and Scope of Contract of Sale of Goods)

इकाई की रूपरेखा -

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 वस्तु विक्रय अनुबन्ध का अर्थ

11.4 वस्तु विक्रय अनुबन्ध के लक्षण

11.5 वस्तु विक्रय अनुबन्ध की औपचारिकताएँ

11.6 विक्रय तथा विक्रय का ठहराव

अ. विक्रय की परिभाषा

ब. विक्रय के ठहराव की परिभाषा

स. विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अन्तर

11.7 विक्रय अनुबन्ध तथा अन्य प्रकार के अनुबन्धों में अन्तर

अ. विक्रय तथा किराया-क्रय ठहराव में अन्तर

ब. विक्रय तथा निक्षेप में अन्तर

स. विक्रय तथा गिरवी में अन्तर

11.8 विक्रय अनुबन्ध की विषय-वस्तु: माल

अ. माल की परिभाषा

ब. माल का वर्गीकरण

स. माल के नष्ट हो जाने का विक्रय अनुबन्ध पर प्रभाव

11.9 मूल्य निर्धारण सम्बन्धी नियम

11.10 सारांश

11.11 स्वपरख प्रश्न

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- वस्तु विक्रय अनुबन्ध का अर्थ तथा इसके आवश्यक लक्षणों का वर्णन कर सकें ।
- विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अन्तर को स्पष्ट कर सकें ।
- विक्रय अनुबन्ध तथा अन्य प्रकार के अनुबन्धों में अन्तर का वर्णन कर सकें ।
- विक्रय अनुबन्ध की विषय-वस्तु: माल का अर्थ, इसके वर्गीकरण एवं माल के नष्ट हो जाने का विक्रय अनुबन्ध पर प्रभाव के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें ।
- माल के मूल्य निर्धारण सम्बन्धी नियमों को स्पष्ट कर सकें ।

11.2 प्रस्तावना

जब एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ कोई चल वस्तु क्रय या विक्रय करने का अनुबन्ध करता है तो यह आवश्यक नहीं है कि ये अनुबन्ध सही तरीके से पूरा हो जाये । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि पक्षकारों को इस अनुबन्ध से सम्बन्धित सभी कानूनी प्रावधानों की जानकारी हो । इसी दृष्टि से भारत सरकार ने 'वस्तु विक्रय अधिनियम' बनाया है । इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्न हैं :-

1. यह अधिनियम वस्तु विक्रय अधिनियम' 1930' (Sale of Goods Act, 1930) के नाम से जाना जायेगा ।
2. यह अधिनियम जम्मू व कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर लागू होगा ।
3. यह अधिनियम 1 जुलाई, 1930 से प्रभावी माना जायेगा ।
4. 1 जुलाई, 1930 से पूर्व यह अधिनियम 'भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 ' के अध्याय 7 की 76 से 123 तक की धाराओं में उल्लेखित था । इस अधिनियम के लागू होने के साथ ही इन धाराओं को अप्रभावी कर दिया गया है ।
5. यह अधिनियम बहुत अंशों में इंग्लैण्ड के 'वस्तु विक्रय अधिनियम, 1893' पर आधारित है ।
6. इस अधिनियम का वर्णन 7 अध्यायों व 65 धाराओं में किया गया है ।
7. जिन शब्दों का अर्थ इस अधिनियम में नहीं है और 'भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 ' में है, यहां पर उनका अर्थ वही लिया जायेगा जो 'भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 ' में लिया गया है ।

11.3 वस्तु विक्रय अनुबन्ध का अर्थ

धारा 4(1) के अनुसार :

"वस्तु विक्रय अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा विक्रेता एक निश्चित मूल्य के बदले क्रेता को माल का स्वामित्व हस्तान्तरित करता है अथवा हस्तान्तरित करने का ठहराव करता है । " विभिन्न विद्वानों ने विक्रय को इस प्रकार परिभाषित किया है ।

बेन्जामिन के अनुसार "मुद्रा के रूप में किसी मूल्य के बदले माल का पूर्ण अथवा साधारण स्वामित्व हस्तान्तरण ही विक्रय कहलाता है । " **ब्लेकस्टोन के अनुसार** "किसी मूल्य के प्रतिफल में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण ही विक्रय होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वस्तु विक्रय अनुबन्ध से आशय ऐसे अनुबन्ध से है जिसके अन्तर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को मूल्य के बदले वस्तु के स्वामित्व का हस्तान्तरण करता है अथवा करने के लिए सहमत होता है।

11.4 वस्तु विक्रय अनुबन्ध के लक्षण

वस्तु विक्रय अनुबन्ध के निम्नलिखित आवश्यक लक्षण होते हैं

I. **दो पक्षकार (क्रेता एवं विक्रेता) :-** किसी भी अनुबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि दो पक्षकार हों । अत: वस्तु-विक्रय अनुबन्ध के लिए भी आवश्यक लक्षण यही है कि उसमें दो पक्षकार- अर्थात् क्रेता तथा विक्रेता हों तथा इनके अभाव में वस्तु-विक्रय अनुबन्ध का निर्माण नहीं हो सकता । 'विक्रेता' से आशय उस पक्षकार से है जो माल बेचता है अथवा माल को बेचने का ठहराव करता है । इसी प्रकार 'क्रेता' उस पक्षकार को कहते हैं जो माल खरीदता है अथवा माल खरीदने का ठहराव करता है।

II. **अनुबन्ध करने की क्षमता :-** वस्तु-विक्रय अनुबन्ध के पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए अर्थात् पक्षकार वयस्क हों, स्वस्थ मस्तिष्क के हों व अन्य किसी प्रकार से अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित न कर दिये गये हों ।

III. **प्रस्ताव व स्वतन्त्र सहमति -** एक पक्षकार की ओर से माल खरीदने अथवा बेचने का प्रस्ताव होना चाहिए और दूसरे पक्षकार की ओर से इस प्रस्ताव की स्वतन्त्र सहमति होनी चाहिए ।

IV. **माल चल-सम्पत्ति हो :-** विक्रय अनुबन्ध की विषय-वस्तु कुछ माल होना चाहिए जिसका विक्रेता अपना स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित करे । 'माल' में प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति सम्मिलित है किन्तु इसमें वाद योग्य दावे व प्रचलित मुद्रा सम्मिलित नहीं है । अचल सम्पत्ति अथवा सेवा के विक्रय अनुबन्ध इस अधिनियम के द्वारा शासित नहीं होते हैं ।

V. **प्रतिफल :-** माल के विक्रय के लिए प्रतिफल का होना भी अनिवार्य है, और यह प्रतिफल मुद्रा में होना चाहिए- वस्तु विनिमय, उपहार आदि के रूप में नहीं होना चाहिए ।

VI. **स्वामित्व का हस्तान्तरण -** जब किसी विक्रय के अनुबन्ध के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को हो जाता है ऐसे अनुबन्ध को विक्रय कहते हैं । जब तक विक्रेता माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण क्रेता को नहीं कर देता है तब तक विक्रय पूर्ण नहीं होता ।

VII. **विक्रय अनुबन्ध में 'विक्रय' तथा 'भावी विक्रय' दोनों ही सम्मिलित हैं** - विक्रय में वर्तमान में माल को विक्रय करना तथा भविष्य में माल बेचने के अनुबन्ध भी सम्मिलित हैं । यदि माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण उसी समय न होकर किसी भावी समय पर होता है अथवा भविष्य में किसी शर्त के पूरा होने पर निर्भर हो तो ऐसा अनुबन्ध 'विक्रय का ठहराव' कहलाता है ।

VIII. **शर्त-सहित अथवा शर्त-रहित :-** वस्तु-विक्रय का अनुबन्ध या तो शर्त-सहित हो सकता है अथवा शर्त-रहित हो सकता है ।

IX. **औपचारिकताओं का पालन :-** विक्रय अनुबन्ध में कोई विशेष प्रकार की औपचारिकताएं पूरी नहीं करनी पडती है । किन्तु धारा 5 में कुछ औपचारिकताओं का उल्लेख है । अत: विक्रय अनुबन्ध करते समय इन औपचारिकताओं को अवश्य पूरा कर लेना चाहिए ।

X. **वैद्य अनुबन्ध के अन्य तत्व :-** इन सभी लक्षणों के अलावा एक वैध अनुबन्ध के सभी लक्षण विक्रय अनुबन्ध में पाये जाने आवश्यक है ।

11.5 विक्रय अनुबन्ध की औपचारिकताएँ

सामान्यत: विक्रय अनुबन्ध करने के लिए किन्हीं विशेष प्रकार की औपचारिकताओं का पालन करना नहीं पड़ता है, किन्तु, धारा 5 में कुछ सामान्य औपचारिकताओं का उल्लेख किया गया है जिनको विक्रय अनुबन्ध करते समय पूरा करना पड़ता है । वे औपचारिकताएँ निम्नानुसार है :

1. माल क्रय या विक्रय का प्रस्ताव - विक्रय अनुबन्ध के लिए आवश्यक कि कोई एक पक्षकार को दूसरे पक्षकार को माल के क्रय अथवा विक्रय का वैध प्रस्ताव करें ।**[** धारा5 (1)**]**
2. माल या वस्तु - पक्षकारों द्वारा क्रय अथवा विक्रय का प्रस्ताव किसी माल या वस्तु के लिए ही होना चाहिए । **[** धारा 5(1)**]**
3. मूल्य - माल के क्रय एवं विक्रय की प्रस्ताव मूल्य के बदले होना चाहिए ।
4. माल की सुपुर्दगी तथा मूल्य का भुगतान - विक्रय अनुबन्ध में माल की सुपुर्दगी के समय तथा विधि को उल्लेख होना चाहिए । अनुबन्ध में माल की तत्काल सुपुर्दगी अथवा किस्तों में सुपुर्दगी अथवा भावी सुपुर्दगी की व्यवस्था की जा सकती है । इसी प्रकार मूल्य के भुगतान के समय एवं विधि के सम्बन्ध में व्यवस्था होनी चाहिए । माल के मूल्य तत्काल भुगतान अथवा किस्तों में भुगतान अथवा भविष्य में भुगतान किया जा सकता है ।

   [धारा 5 (1)**]**
5. लिखित, मौखिक या गर्भित - वस्तु विक्रय अनुबन्ध लिखित, मौखिक अथवा गर्भित हो सकता हैं इतना ही नहीं, यह अंशत: लिखित एवं अंशत: मौखिक भी हो सकता है । यह गर्भित भी हो सकता है जिसे पक्षकारों के आचरण अथवा मामले की परिस्थितियों से समझा जा सकता है, किन्तु उपर्युक्त प्रकार से अनुबन्ध तभी किया जा सकता है जबकि किसी अधिनियम में अन्यथा व्यवस्था न हो । [(धारा 5(2)]

11.6 विक्रय और विक्रय का ठहराव

(अ) **विक्रय की परिभाषा: [**(धारा 4(3)**]** के अनुसार "जब विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल क स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को अनुबन्ध करते समय हस्तान्तरित हो जाता है तो यह अनुबन्ध 'विक्रय' कहलायेगा । " यह पूर्ण विक्रय हैं जिसमें स्वामित्व के साथ-साथ अधिकांश परिस्थितियों में वस्तु की सुपुर्दगी भी क्रेता को दी जाती है, अत: यह एक निष्पादित अनुबन्ध है।

(ब) **विक्रय के ठहराव की परिभाषा :-**"जब वस्तु के स्वामित्व का हस्तान्तरण किसी भावी समय पर या किसी शर्त के पूरा होने, पर होता है, तो ऐसे अनुबन्ध को विक्रय का ठहराव कहते हैं । " अत: यह एक निष्पादनीय अनुबन्ध है । जब विक्रय के ठहराव का समय पूरा हो जाता है या शर्त पूरी हो जाती है यह विक्रय बन जाता है ।

(स) विक्रय तथा विक्रय के ठहराव मे अन्तर :- विक्रय में माल के स्वामित्व का तत्काल हस्तान्तरण होता है जबकि विक्रय के ठहराव में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण किसी भावी तिथि पर अथवा किसी शर्त के पूरा होने पर होता है । 'विक्रय' एवं 'विक्रय' एवं ठहराव' में अन्तर को नीचे दी, गई तालिका में स्पष्ट किया जा सकता है :

विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अन्तर

अन्तर का आधार	**विक्रय**	**विक्रय का ठहराव**
प्रकृति	विक्रय में अनुबन्ध का निष्पादन पहले ही हो जाता है। दूसरे शब्दों में, यह एक निष्पादित अनुबन्ध है।	विक्रय के ठहराव का निष्पादन होना शेष रहता है । अत: यह निष्पादनीय अनुबन्ध हैं
स्वामित्व का हस्तान्तरण	विक्रय में माल का स्वामित्व अनुबन्ध होते ही क्रेता के पास चला जाता है ।	इसमे माल का स्वामित्व तत्काल क्रेता के पास नहीं जाता है । एक अवधि के पश्चात् अथवा कुछ शर्तों के होने पर माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता के पास हस्तान्तरित होता है ।
माल की प्रकृति	विक्रय की दशा माल निश्चित होता है।	विक्रय ठहराव की दशा में माल अनिश्चित भी हो सकता है ।
अधिकार की प्रकृति	इसमे क्रेता को वस्तु का पूर्ण स्वामित्व मिल जाता है । वह समस्त विश्व के विरुद्ध वस्तु का प्रयोग कर सकता है ।	यह एक साधारण शुद्ध ठहराव होता है जिसके अनुसार केवल क्रेता अथवा विक्रेता को ही एक दूसरे के विरुद्ध कर्तव्य भंग की दशा में वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होता है ।
शर्त	विक्रय शर्तरहित होता है ।	विक्रय का ठहराव शर्त सहित होता है ।
मूल्य के लिए वाद	इसमे क्रेता यदि मूल्य न दे, तो विक्रेता उस पर मूल्य वसूल करने के लिए अभियोग चला सकता है।	इसमें केवल हर्जाने का ही दावा चलाया जा सकता है,मूल्य वसूल करने का नहीं।
अदत्त विक्रेता की दशा में	विक्रय की दशा में मूल्य का भुगतान नहीं मिलने पर उसे वे सभी अधिकार मिल जाते हैं जो अदत्त विक्रेता को प्राप्त होते हैं ।	विक्रय ठहराव की दशा में केवल अनुबन्ध भंग कर प्रस्तुत करने का ही अधिकार होता है ।
जोखिम	माल का विक्रय हो पर माल की पूर्ति की जोखिम क्रेता पर होती है।	इसमे जोखिम विक्रेता पर ही रहती ।
विक्रेता का दिवालिया होना	इसमे विक्रेता के दिवालिया होने की दशा मे क्रेता उसके ऑफीशियल रिसीवर से भी माल	ऐसी दशा में क्रेता माल पाने का अधिकारी नहीं रहता । वह केवल अपने आनुपातिक अंश के लिये दावा कर

	प्राप्त करने का अधिकार रखता है , क्योंकि वह माल का स्वामी होता है ।	सकता है।
क्रेता का दिवालिया होना	क्रेता के दिवालिया होने कि दशा में विक्रेता को क्रेता द्वारा खरीदा हुआ माल उसके ऑफीशियल रिसीवर को सुपुर्द करना होगा । विक्रेता केवल आनुपातिक अंशदान प्राप्त कर सकेगा।	ऐसी परिस्थिति में विक्रेता क्रेता को माल देने से इन्कार कर सकता है यदि उसे पूर्ण भुगतान न दिया जाय ।
माल का पुन: विक्रय	विक्रय कि दशा मे माल का क्रेता माल का पुन: विक्रय आसानी से कर सकता है ।	विक्रय के ठहराव कि दशा में माल के पुन: विक्रय मे कठिनाई आती है क्योंकि विक्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग कर देने पर पुन : विक्रय के ठहराव को पूरा करना कठिन ही जाता है ।

11.7 विक्रय तथा अन्य प्रकार के अनुबन्धों में अन्तर

विक्रय तथा अन्य प्रकार के अनुबन्धों में अन्तर को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।

(अ) विक्रय व किराया-क्रय ठहराव में अन्तर

किराया क्रय अनुबन्ध ऐसा अनुबन्ध है जिसमें क्रेता द्वारा निश्चित किश्तों में वस्तु का मूल्य चुकाने की शर्त पर वस्तु विक्रेता द्वारा क्रेता को हस्तान्तरित कर दी जाती है और पूरी किश्तों को भुगतान होने पर ही विक्रेता, क्रेता को वस्तु का स्वामित्व हस्तान्तरण करने का वचन देता है । किश्तों के भुगतान में गलती होने की दशा में विक्रेता वस्तु को वापिस ले सकता है एवं चुकाई गयी किश्तों को किराया समझकर रख सकता है ।

विक्रय व किराया-क्रय ठहराव में अन्तर

क्र.सं.	अन्तर का आधार	विक्रय	किराया क्रय का ठहराव
1.	स्वामित्व का हस्तान्तरण	विक्रय में स्वामित्व का हस्तान्तरण अनुबन्ध करते ही हो जाता है ।	इसमें क्रेता को स्वामित्व का हस्तान्तरण पूरी किश्तों का भुगतान होने पर ही होता है ।
2.	जोखिम	वस्तु में प्रत्येक प्रकार की जोखिम के लिए क्रेता उत्तरदायी है ।	इसमें जोखिम के लिये वस्तु स्वामी (विक्रेता) उत्तरदायी होता है ।
3.	क्रेता की स्थिति	विक्रय में क्रेता की स्थिति माल के स्वामी की होती है ।	किराया क्रय में क्रेता की स्थिति निक्षेपगृहीता के समान होती है ।
4.	भुगतान का तरीका	मूल्य का भुगतान जरूरी नहीं कि किश्तों में किया जाय ।	किराया क्रय में मूल्य का भुगतान सदैव किश्तों में किया जाता है ।

5.	वस्तु लौटाना	क्रेता को वस्तु लौटाने का विकल्प नहीं होता है ।	इसमें क्रेता इच्छानुसार वस्तु को वापिस करके अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है ।
6.	मूल्य के भुगतान में त्रुटि	मूल्य भुगतान न करने पर क्रेता पर मूल्य के वाद प्रस्तुत किया जा सकता है ।	इसमें विक्रेता, क्रेता से वस्तु वापिस प्राप्त करने का अधिकार रखता है ।
7.	लिखित ठहराव	विक्रय अनुबन्ध लिखित मौखिक अथवा गर्भित हो सकता है ।	किराया क्रय का ठहराव लिखित तथा हस्ताक्षरयुक्त होना आवश्यक है ।
8.	अधिनियम	इस पर वस्तु विक्रय अधिनियम 1930 लागू होता है ।	इस पर किराया क्रय अधिनियम, 1972 लागू होता है ।

(ब) विक्रय तथा निक्षेप में अन्तर

निक्षेप अनुबन्ध के अन्तर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी अस्थायी उद्देश्य के लिए अपनी वस्तु इस शर्त पर सौंपता है कि वह दूसरा पक्षकार उस उद्देश्य के समाप्त होने पर वह वस्तु पहले पक्षकार को पुनः लौटा देगा अथवा उसके निर्देशानुसार उस वस्तु की व्यवस्था कर देगा । "विक्रय में वस्तु के, स्वामित्व का मूल्य के बदले विक्रेता से क्रेता को हस्तान्तरण किया जाता है । "

विक्रय तथा निक्षेप में अन्तर

क्र.सं.	**अन्तर का आधार**	**विक्रय**	**निक्षेप**
1.	उद्देश्य	विक्रय का उद्देश्य माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करना होता है ।	निक्षेप का उद्देश्य किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए माल की सुपुर्दगी करना होता है ।
2.	हस्तान्तरण का समय	इसमें माल का स्थायी हस्तान्तरण होता है ।	इसमें माल का कुछ समय के लिए हस्तान्तरण होता है ।
3.	स्वामित्व का हस्तान्तरण	विक्रय के अन्तर्गत स्वामित्व का हस्तान्तरण होता है ।	निक्षेप के स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं होता है ।
4.	वस्तु का प्रयोग	विक्रय होने पर क्रेता वस्तु का इच्छानुसार प्रयोग कर सकता है।	निक्षेप के अन्तर्गत निक्षेपग्रहीता वस्तु का इच्छानुसार प्रयोग नहीं कर सकता है । वह निक्षेप की शर्तों के अनुसार ही वस्तु का प्रयोग कर सकता है ।
5.	प्रतिफल	विक्रय में प्रतिफल का होना	निक्षेप निःशुल्क भी हो सकता है।

		आवश्यक है।	
6.	अधिनियम	इस पर भारतीय वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 लागू होता हैं ।	इसपर भी भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 लागू होता है।
7.	वस्तु का अधिकार	विक्रय के बाद भी वस्तु पर विक्रेता का अधिकार हो सकता है ।	निक्षेप के बाद वस्तु पर अधिकार निक्षेपग्रहीता का हो जाता है ।

(स) विक्रय और गिरवी में अन्तर:

गिरवी अनुबन्ध के अन्तर्गत किसी ऋण के भुगतान अथवा किसी वचन के नि पादन के लिए प्रतिभूति के रूप में माल का निक्षेप करना होता है । जब विक्रेता निश्चित मूल्य के बदले क्रेता को वस्तु का पूर्ण स्वामित्व हस्तान्तरित करता है तो उसे विक्रय कहेंगे । इन दोनों के अन्तर को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

विक्रय और गिरवी में अन्तर

क्र.सं.	अन्तर का आधार	विक्रय	गिरवी
1.	स्वामित्व का हस्तान्तरण	विक्रय में क्रेता को स्वामित्व का हस्तान्तरण तुरन्त हो जाता है ।	इसमे गिरवी रख लेने वाले को स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं होता है ।
2.	अधिकार का हस्तान्तरण	विक्रय में क्रेता को वस्तु के अधिकार का हस्तान्तरण तत्काल होना आवश्यक नहीं है ।	इसमें वस्तु के अधिकार का हस्तान्तरण गिरवी रख लेने वाले को तत्काल होना आवश्यक है ।
3.	वस्तु का प्रयोग करना	विक्रय में क्रेता को वस्तु के प्रयोग का स्वतंत्र अधिकार है।	गिरवी में गिरवी रख लेने वाला वस्तु का प्रयोग नहीं कर सकता है ।
4.	वस्तु हस्तान्तरण का उद्देश्य	विक्रय में वस्तु हस्तान्तरण का उद्देश्य क्रेता को वस्तु का स्वामित्व हस्तान्तरित करना होता है ।	गिरवी में वस्तु हस्तान्तरण का उद्देश्य गिरवी रख लेने वाले को सुरक्षा प्रदान करना होता है ।
5.	उद्देश्य कि प्रकृति	विक्रय में वस्तु हस्तान्तरण का उद्देश्य स्थायी होता है ।	गिरवी में वस्तु हस्तान्तरण का उद्देश्य अस्थायी होता है ।
6.	वस्तु कि वापसी	विक्रय में क्रेता द्वारा विक्रेता को वस्तु वापिस नहीं की जाती है ।	गिरवी के अस्थायी उद्देश्य के पूरा हो जाने पर वस्तु गिरवी रखने वाले को वापिस करनी होती है ।

11.8वस्तु-विक्रय अनुबन्ध की विषय-वस्तु: माल

(अ) माल की परिभाषा

विक्रय के अनुबन्ध की विषय-वस्तु 'माल' है । 'माल' की परिभाषा धारा 2(7) में इस प्रकार दी गई है- "माल में प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति है, किन्तु इसमें वाद योग्य दावे और मुद्रा सम्मिलित नहीं है, परन्तु इसमें स्टॉक, शेयर, खड़ी, फसलें, घास और अन्य वस्तुएं जो भूमि से संलग्न हों या भूमि के अंग के रूप में हो तथा जिन्हें विक्रय से पूर्व भूमि से अलग कर दिया गया हो, सम्मिलित हैं । "

वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 6(1)के अनुसार, "माल जो विक्रय के अनुबन्ध की विषय-वस्तु है-विद्यमान माल हो सकता है जिस पर विक्रेता का स्वामित्व अथवा अधिकार होता है अथवा भावी माल हो सकता है । "

(ब) माल का वर्गीकरण

धारा 6 के अनुसार 'माल' का वर्गीकरण अग्रलिखित रूप में किया जा सकता है :-

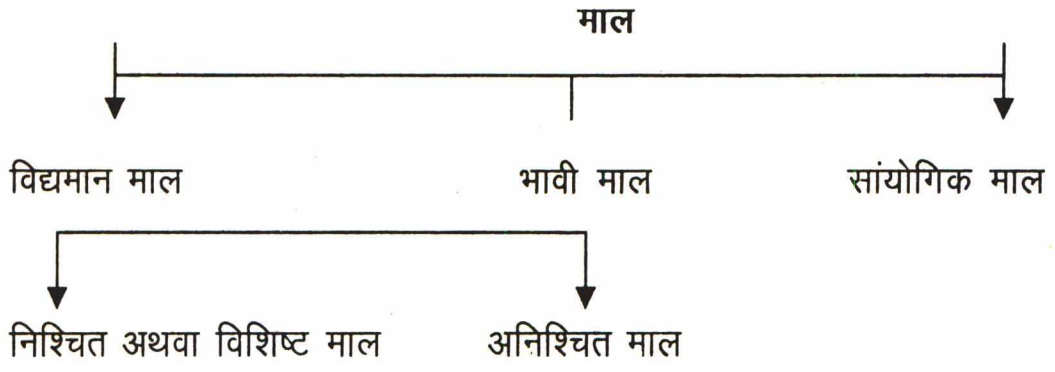

1. विद्यमान माल :-

विद्यमान माल वह है जो 'विक्रय के अनुबन्ध' के समय विक्रेता के स्वामित्व में अथवा अधिकार में हो तथा वास्तव में विद्यमान हो । अत: विद्यमान माल का निर्माण करना शेष नहीं रहता । विद्यमान माल दो प्रकार का हो सकता है :-

(i) निश्चित अथवा विशिष्ट माल -

वह विद्यमान माल जो विक्रय अनुबन्ध के समय ही अनुबन्ध के पक्षकारों द्वारा निश्चित किया जा चुका है और पहचाना जा चुका है और जिसके सम्बन्ध में अनुबन्ध किया गया है, 'निश्चित माल' कहलाता है । उदाहरणार्थ अ ब से कहता है- 'मैं वह पीला सूट खरीदूंगा जो आपके शो केस में टंगा हुआ है ।'

(ii) अनिश्चित माल -

विद्यमान माल 'अनिश्चित' उस समय कहलाता है जब उसके बेचने का अनुबन्ध केवल विवरण द्वारा किया गया हो और अनुबन्ध के समय पक्षकार एवं पक्षकारों द्वारा माल निश्चित न किया गया हो । उदाहरण के लिए, एक बड़े पीपे में से कुछ तेल बेचने का अनुबन्ध, अथवा गोदाम में से कुछ कपड़ा बेचने का अनुबन्ध, अनिश्चित माल की बिक्री के अनुबन्ध हैं ।

2. भावी माल -

धारा 2(6) के अनुसार भावी माल ऐसा माल है जो विक्रय अनुबन्ध होने के समय विक्रेता के पास नहीं है और अनुबन्ध करने के पश्चात विक्रेता -

(i) यदि निर्माता है तो निर्माण करता है,

(ii) यदि कृषक है तो उत्पादन करता है,

(iii) यदि व्यापारी है तो अन्य व्यक्तियों से प्राप्त करता है ।

यह उल्लेखनीय है कि भावी माल का 'विक्रय' नही हो सकता, वरन् उसके 'विक्रय का ठहराव' ही होता है । अत: स्पष्ट है कि भावी माल और अनिश्चित माल पृथक-पृथक हैं क्योंकि अनिश्चित माल वास्तव में विद्यमान माल का रूप होता है ।

3. सांयोगिक माल :-

जब विक्रेता द्वारा माल प्राप्त करना किसी विशेष घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर होता है तो वह 'सांयोगिक माल' कहलाता है । उदाहरण के लिए किसी विशेष जहाज के सुरक्षित आ जाने पर उसमें आये माल का विक्रय 'सांयोगिक माल' का विक्रय' होगा । इसी प्रकार ऐसी फसल जो अभी बोई नहीं गई है, के विक्रय का अनुबन्ध 'सांयोगिक माल' के विक्रय का अनुबन्ध होगा ।

स. माल के नष्ट हो जाने का विक्रय अनुबन्ध पर प्रभाव

निश्चित (अथवा विशिष्ट) माल, विक्रय का अनुबन्ध करने से पूर्व नष्ट हो सकता है अथवा उसके पश्चात् भी नष्ट हो सकता है । धारा 7 में अनुबन्ध करने के पूर्व माल नष्ट हो जाने के सम्बन्ध में और धारा 8 में अनुबन्ध के पश्चात माल नष्ट हो जाने के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है ।

1. अनुबन्ध करने के पूर्व माल का नष्ट होना (धारा 7) :-

यदि विशिष्ट माल के विक्रय के लिए अनुबन्ध किया जाता है और अनुबन्ध करने के समय अथवा उससे पहले, विक्रेता की जानकारी के बिना नष्ट हो चुका हो अथवा इतना खराब हो चुका हो कि वह अपने उस वर्णन के जो कि अनुबन्ध 'में दिया गया है, अनुसार न हो, तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ होगा । उदाहरण के लिए,सीमेन्ट का पत्थर के समान कठोर हो जाना अथवा चीनी का तरल हो जाना आदि ।

प्रस्तुत धारा इस सिद्धान्त पर आधारित है यदि माल अनुबन्ध करते समय नष्ट हो चुका है तो उसके लिए अनुबन्ध नहीं किया जा सकता है । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 20 में भी इस प्रकार का उल्लेख है कि यदि ठहराव के दोनों पक्षकार ठहराव के लिए किसी आवश्यक तथ्य के विषय में गलती पर हों, तो ठहराव व्यर्थ होगा ।

उदाहरण के लिए :- ए एक विशेष घोड़ा बी से खरीदने का ठहराव करता है किन्तु ठहराव के समय घोड़ा मर चुका था, जिसका पता क्रेता अथवा विक्रेता को नहीं था, तो यह ठहराव 'व्यर्थ' है ।

2. **'विक्रय' के पूर्व बिन्दु 'विक्रय के ठहराव' के पश्चात् माल नष्ट होना । [(धारा 8)] :-**

यदि किसी विशिष्ट माल के विक्रय का ठहराव किया जाता है और ठहराव करने के पश्चात् किन्तु क्रेता को स्वामित्व हस्तान्तरण के पूर्व ही, विक्रेता और क्रेता की ओर से बिना

किसी त्रुटि के, माल नष्ट हो जाता है अथवा इतना खराब हो जाता है कि वह अपने उस वर्णन के, जो कि ठहराव में दिया गया है, अनुसार नहीं 'रहता, तो ऐसी दर्शा में ठहराव' व्यर्थ हो जाता है ।

इस धारा का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि ठहराव को व्यर्थ मान लेने के पूर्व निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है :-

(i) अनुबन्ध विक्रय का ठहराव मात्र हो, वास्तविक विक्रय नहीं,

(ii) माल विशिष्ट तथा निश्चित होना चाहिए,

(iii) हानि निश्चित होनी चाहिए,

(iv) हानि पक्षकारों में से किसी की भी त्रुटि से हानि होनी चाहिए अन्यथा जिस पक्षकार की त्रुटि से हानि होगी, वह पक्षकार उत्तरदायी होगा,

(v) क्रेता के पास माल का स्वामित्व हस्तान्तरित होने के पूर्व ही ऐसी हानि होनी चाहिए ।

उदाहरण के लिए -एक्स ने एक घोड़ा वाई से 5 दिन के परीक्षण के लिए इस शर्त पर लिया कि यदि वह की आवश्यकताओं के अनुकूल होगा तो वह 5000/- रूपयों में खरीद लेगा । वह घोड़ा 8 दिन की अवधि में ही बिना किसी पक्षकार की त्रुटि के मर गया । यह निर्णय दिया गया कि एक्स उस घोड़े का मूल्य नहीं चुकायेगा क्योंकि माल का स्वामित्व अभी तक एक्स के पास हस्तान्तरित नहीं हुआ ।

11.9 मूल्य निर्धारण (धाराएं 9-10)

मूल्य का आशय - वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 2(10) में 'मूल्य' की परिभाषा दी गई है । इसके अनुसार माल की बिक्री में उसका मौद्रिक प्रतिफल उसका 'मूल्य' कहलाता है ।

मूल्य निर्धारण की विधियां

वस्तु-विक्रय अधिनियम की धाराएं 9 और 10 में विक्रय अनुबन्ध में, मूल्य निर्धारण सम्बन्धी विधियों का उल्लेख है, जो निम्न हैं :-

(1) **अनुबन्ध द्वारा निर्धारित मूल्य :-**वस्तु विक्रय अनुबन्ध में मूल्य निर्धारित करके देखा, है तो माल के लिए उसी मूल्य का भुगतान किया जा सकता है । (धारा-9)

(2) **अनुबन्ध में निर्धारित रीति द्वारा :-** मूल्य का निर्धारण, अनुबन्ध के बाद किया जा सकता है किन्तु मूल्य निर्धारण की रीति अनुबन्ध के द्वारा ही निर्धारित की जायेगी (धारा-9)

(3) **पारस्परिक सहयोग तथा प्रचलित रीति द्वारा -** यदि अनुबन्ध में कोई स्पष्ट मूल्य नहीं दिया है और न उसमें मूल्य निश्चित करने की कोई स्पष्ट रीति ही दी है तो मूल्य पक्षकारों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा तथा उस व्यापार में प्रचलित रीति के अनुसार निश्चित किया जाएगा (धारा-9)

(4) **उचित मूल्य -** यदि मूल्य का निर्धारण उपर्युक्त किसी भी प्रकार से नहीं किया जा सकता, तो क्रेता, विक्रेता को उचित मूल्य का भुगतान करेगा । उचित मूल्य क्या है यह प्रत्येक

मामले कि परिस्थिति पर निर्भर करता है । यह आवश्यक नहीं है कि 'उचित मूल्य' किसी विशेष स्थान अथवा समय का बाजार मूल्य अथवा चालू मूल्य ही हो । (धारा-9)

(5) **तृतीय पक्षकार द्वारा :-** यदि माल-विक्रय का ठहराव इस शर्त पर किया गया है कि माल का मूल्य कोई विशेष तीसरा पक्षकार निर्धारित करेगा तो ऐसे तीसरे पक्षकार द्वारा निश्चित किया मूल्य ही मान्य होगा । (धारा-10)

(6) **अनुबन्ध व्यर्थ :-** यदि उपर्युक्त दशा में, तीसरा पक्षकार माल का मूल्य निश्चित नहीं करता, अथवा नहीं कर सकता, तो ठहराव व्यर्थ हो जाता है और दोनों पक्षकार अपने-अपने दायित्व से मुक्त हो जायेंगे । (धारा-10)

(7) **यदि मूल्य निर्धारण की असमर्थता में किसी पक्षकार का दोषी होना :-** यदि तीसरा पक्षकार जिसे मूल्य का निर्धारण करना है, क्रेता अथवा विक्रेता के दोष के कारण, मूल्य निर्धारण नहीं कर पाता, तो निर्दोष-पक्ष दोषी-पक्ष के विरूद्ध हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है । (धारा-10)

(8) **भुगतान देश की प्रचलित मुद्रा में :-** क्रेता को चाहिए कि मूल्य का भुगतान देश की प्रचलित मुद्रा में करें क्योंकि विक्रेता को देश में प्रचलित मुद्रा के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में भुगतान प्राप्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता । इस आधार पर विक्रेता चैक द्वारा भुगतान स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता ।

(9) **कर वृद्धि या कमी का मूल्य निर्धारण पर प्रभाव :-** यदि मूल्य निश्चित हो जाने के पश्चात् किन्तु क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने के पूर्व कर में वृद्धि हो जाती है ऐसे कर का भुगतान विक्रेता को करना है तो विक्रेता को अधिकार है कि कर की इस वृद्धि को मूल्य में जोड़ दे। इस प्रकार यदि कर कम कर दिया जाता है अथवा हटा दिया जाता है यदि कर का भुगतान विक्रेता को करना है तो क्रेता को अधिकार है कि मूल्य में से इसे कम करवा ले।

11.10 सारांश

वस्तु विक्रय अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा विक्रेता निश्चित मूल्य के बदले क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करता है अथवा हस्तान्तरण के लिए सहमत होता है ।

जब विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को अनुबन्ध करते समय ही हो जाता है तो यह अनुबन्ध विक्रय कहलाता है ।

विक्रय का ठहराव एक शर्त-सहित विक्रय अनुबन्ध है जिसमें वस्तु के स्वामित्व का हस्तान्तरण किसी भावी समय पर अथवा किसी शर्त के पूरा होने पर होता है ।

'माल' वस्तु विक्रय अनुबन्ध की विषय वस्तु माना जाता है । माल का आशय केवल चल-सम्पत्ति से है और चल सम्पत्ति में सामान्य वस्तुओं के अतिरिक्त अंश, ऋणपत्र, व्यापार चिन्ह, पेटेन्ट राईट, न्यायालय की डिक्री आदि को शामिल किया जाता है । अचल सम्पत्ति के विक्रय के अनुबन्ध इस अधिनियम के क्षेत्र के बाहर माने जाते हैं । इसी प्रकार सेवा के विक्रय के अनुबन्ध भी इस अधिनियम में शामिल नहीं किये जाते हैं ।

11.11 स्व-परख प्रश्न

(1) वस्तु विक्रय अनुबन्ध को परिभाषित कीजिए । 'विक्रय' तथा विक्रय के ठहराव में अन्तर बताइए ।

(2) वस्तु विक्रय अनुबन्ध के आवश्यक तत्वों का उल्लेख कीजिए ।

(3) 'माल' के अर्थ को स्पष्ट कीजिए । माल कितने प्रकार का होता है । वर्णन कीजिए ।

(4) विक्रय मूल्य निर्धारण की विभिन्न विधियों का उल्लेख कीजिए ।

इकाई-12

शर्तों तथा आश्वासन (Conditions and Warranties)

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 शर्त तथा आश्वासन

अ शर्त की परिभाषा

ब आश्वासन की परिभाषा

स शर्त तथा आश्वासन में अन्तर

12.4 शर्त भंग को आश्वासन भंग मानना

12.5 शर्त तथा आश्वासन के प्रकार

12.6 गर्भित शर्तें

12.7 गर्भित आश्वासन

12.8 'क्रेता सावधानी' का सिद्धान्त एवं इसके अपवाद ।

12.9 सारांश

12.10 स्वपरख प्रश्न

12.1 उद्देश्य

- इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि
- शर्त और आश्वासन के अर्थ को स्पष्ट कर सके
- गर्भित शर्तों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सके
- गर्भित आश्वासन का विश्लेषण कर सके
- 'क्रेता की सावधानी' के सिद्धान्त को समझ सके तथा इसे सिद्धान्त विभिन्न अपवादों की जानकारी प्राप्त कर सके ।

12.2 प्रस्तावना

एक विक्रेता वस्तुओं का विक्रय करते समय वस्तुओं के गुणों तथा विशेषताओं के बारे में अनेक बातें कहता है । कुछ बातें वह वस्तु की प्रशंसा में कहता है अथवा अपने विचार व्यक्त करता है । विक्रेता द्वारा वस्तुओं के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर की गई बातों का महत्व नहीं होता है । किन्तु इन बातों में से जिन बातों को विक्रय अनुबन्ध का हिस्सा बना लिया जाता है, वे बन्धन कहलाते हैं । इन बन्धनों में से कुछ बन्धन विक्रय अनुबन्ध की शर्तों के रूप में तथा कुछ अन्य बन्धन आश्वासनों के रूप में हो सकते हैं । विक्रय अनुबन्ध में बन्धन मुख्य तौर पर दो प्रकार के होते हैं ।

(1) स्पष्ट बन्धन

(2) गर्भित बन्धन

स्पष्ट बन्धन वे होते हैं जो कि अनुबन्ध के पक्षकारों ने अनुबन्ध करते समय स्पष्ट कर लिए हैं तथा गर्भित बन्धन वे है जो कि अनुबन्ध के पक्षकारों द्वारा अनुबन्ध करते समय स्पष्ट नहीं किए है बल्कि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ये बन्धन हमेशा अनुबन्ध पर लागू होते है।

विक्रय अनुबन्ध में माल, जो कि अनुबन्ध की विषय-वस्तु है, के सम्बन्ध में बन्धन या तो शर्त होती है अथवा आश्वासन (धारा- 12(1)

माल के सम्बन्ध में बन्धनों को दो भागों में बांटा जा सकता है,

1. शर्त
2. आश्वासन

12.3 शर्त तथा आश्वासन

अ शर्त की परिभाषा

इंग्लैण्ड के वस्तु-विक्रय अधिनियम में शर्त की परिभाषा नहीं दी गई है । भारत मे वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 12(2) में 'शर्त' की परिभाषा बतलाई है जो इस प्रकार है ।

"शर्त एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध, के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है और जिसके भंग होने पर अनुबन्ध को परित्याग करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है । "

उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तीन तत्व ज्ञात होते हैं-

1. शर्त एक बन्धन है;
2. यह बन्ध अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है ।
3. शर्त के भंग होने की दशा में अनुबन्ध परित्याग किया जा सकता है ।

विक्रय अनुबन्ध में अनेक बन्धन हो सकते हैं, किन्तु उन सब का समान महत्त्व नहीं होता है । कुछ बन्धन जो शर्त कहलाते हैं, अनुबन्ध के लिए इतने आवश्यक होते हैं कि यदि उनको पूरा न किया जाये तो दूसरे पक्षकार को यह मानने का अधिकार होता है कि अनुबन्ध का निष्पादन ही नहीं किया गया; अत: वह अनुबन्ध, का परित्याग कर सकता है । एक लेखक ने इस सम्बन्ध में कहा है**, 'वास्तव में शर्तें उन मुख्य स्तम्भों की भाँति होती हैं जिन पर सम्पूर्ण भवन टिका होता- हैं, और मुख्य स्तम्भों में से किसी एक के टूट जाने पेर सम्पूर्ण भवन धराशायी हो जाता है ।**

निष्कर्ष तौर पर कह सकते हैं कि कोई भी बन्धन, बात अथवा तथ्य जो अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक हो तथा जिस पर अनुबन्ध टिका हुआ हो, शर्त कहलाता है ।

उदाहरण के लिए- राम अपनी मारूति कार श्याम को बेचने का प्रस्ताव करता है । श्याम कहता है कि यदि यह कार सन् 2004 अथवा बाद की निर्मित है तो मैं खरीद लूँगा । कार देखने पर पता चला कि वह सन् 2000 की निर्मित थी । श्याम परित्याग कर सकता है ।

ब आश्वासन की परिभाषा

इंग्लैण्ड के वस्तु-विक्रय अधिनियम,1899 की धारा 62 में 'आश्वासन' की परिभाषा दी गई है और इसी परिभाषा को भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम,1930 की धारा 12(3) में ले लिया गया है ।

धारा 12 (3) के अनुसार, **'आश्वासन एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए सहायक (समपार्श्विक) है और जिसके भंग होने की दशा में केवल हर्जाने के लिए याद प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त होता है किन्तु माल को अस्वीकार करने तथा अनुबन्ध को परित्याग करने का अधिकार नहीं होता है । "**

उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि इसमें निम्नलिखित तत्व विद्यमान होते हैं ।

1. आश्वासन एक बन्धन होता है ।
2. यह बन्धन, अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक नहीं होता है, वरन् केवल सहायक होता है ।
3. ऐसे बन्धन के भंग होने की दशा में माल को अस्वीकार करने तथा अनुबन्ध को परित्याग करने का अधिकार नहीं होता है ।
4. ऐसे बन्धन के भंग होने की दशा में केवल क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करने का ही अधिकार होता है ।

विक्रय अनुबन्ध में कुछ बन्धन इस प्रकार के भी हो सकते हैं, जो इतने अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होते कि यदि उनको पूरा न किया जाये तो अनुबन्ध भंग हुआ मान लिया जाये । अत: आश्वासन के भंग होने पर केवल, क्षति की पूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत किया जा सकता है । एक लेखक ने कहा है, **"आश्वासन की तुलना उन सहायक स्तम्भों से की जा सकती है जो मुख्य बड़े स्तम्भ के समानान्तर खड़े हो, जिसमें से किसी एक के टूटने से मुख्य स्तम्भ को कुछ भी नुकसान नहीं होता और भवन गिर नहीं पड़ता । है"**

उदाहरण के लिए अ -अपनी अपने चीनी की फैक्ट्री ब को बेचता है और कहता है कि इसमें एक दिन में 1000क्विंटलचीनी तैयार होती है । किन्तु बाद में अ को ज्ञात हुआ कि केवल 800 क्विंटल चीनी प्रतिदिन तैयार होती है । ऐसी दशा में ब का कथन 'आश्वासन' है क्योंकि पक्षकारों का अभिप्राय यह नहीं था कि फैक्ट्री का विक्रय 1000 क्विंटल प्रतिदिन चीनी उत्पादन पर आधारित है ।अत: ब अनुबन्ध को का नहीं कर सकता, केवल क्षति-पूर्ति के लिए दावा कर सकता है । यदि ब,अ से यह कहता है कि "फैक्ट्री में यदि 1000 क्विंटल चीनी का उत्पादन होता है तो ही मैं फैक्ट्री खरीदूँगा अन्यथा नहीं और उसके उत्तर में यदि अ कहता कि, "हाँ, फैक्ट्री में व 1000 क्विंटल चीनी का उत्पादन होता है" तो उस दशा में यह शर्त होती और ब अनुबन्ध का परित्याग कर सकता था ।

स शर्तें व आश्वासनों में अन्तर

वस्तु-विक्रय अनुबन्ध के भंग होने पर पक्षकारों के अधिकारों का निश्चय करने के लिए 'शर्त व आश्वासन' का अन्तर महत्वपूर्ण है । एक लेखक ने इन दोनों का अन्तर प्रभावशाली ढंग से इन शब्दों में किया है- "वास्तव में शर्त का मुख्य स्तम्भों की भाँति होती है जिन पर सम्पूर्ण भवन टिका होता है और मुख्य स्तम्भों में से किसी एक के कम जाने पर सम्पूर्ण भवन धराशायी हो जाता है, दूसरी ओर आश्वासन उन सहायक स्तम्भों की श्रृंखला की भाँति हैं जो मुख्य स्तम्भ की श्रृंखला के समानान्तर खड़ी हो, जिनमें से किसी एक के टूटने से मुख्य स्तम्भ को कुछ भी

हानि नहीं होती और भवन धराशायी नहीं होता । " शर्त तथा आश्वासन के अन्तर को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।

क्र.सं.	**अन्तर का आधार**	**शर्त**	**आश्वासन**
1.	प्रकृति	शर्त एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है ।	आश्वासन एक ऐसा बन्धन है जो कि अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए सहायक होता है ।
2.	अनुबन्ध के परित्याग का अधिकार	शर्त के भंग हो जाने पर पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध का परित्याग का करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है ।	आश्वासन के भंग होने पर निर्दोष पक्षकार को अनुबन्ध के परित्याग का अधिकार नहीं होता ।
3.	स्वत्व का हस्तान्तरण	शर्त के पालन के बिना स्वत्व का हस्तान्तरण नहीं किया जा सकता है ।	आश्वासन का पालन किए बिना ही स्वत्व का हस्तान्तरण किया जा सकता है ।
4.	उपचार	शर्त के भंग होने पर निर्दोष पक्षकार के पास दो उपचार होते हैं-पहला अनुबन्ध को समाप्त करना, दूसरा अनुबन्ध को स्वीकार करके क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करना ।	आश्वासन के भंग होने पर अनुबन्ध को समाप्त नहीं किया जा सकता । क्रेता को यह (अनुबन्ध) स्वीकार करना पड़ेगा और वह (क्रेता) केवल क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है ।
5.	महत्त्व	अनुबन्ध में 'शर्त' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है । शर्त उन मुख्य स्तम्भों की भाँति होती है जिस पर सम्पूर्ण भवन (अनुबन्ध) टिका हुआ है और जिसके टूटने से भवन ही धराशायी हो जाता है ।	अनुबन्ध में 'आश्वासन' का उतना अधिक महत्त्व नहीं होता है क्योंकि आश्वासन तो केवल सहायक स्तम्भों की भाँति है जिसके टूटने से भवन (अनुबन्ध) की कुछ क्षति हो सकती है किन्तु वह धराशायी (समाप्त) नहीं होता है ।
6.	शर्त-भंग और आश्वासन भंग	विशेष परिस्थितियों में शर्त-भंग को आश्वासन-भंग माना जा सकता है, और अनुबन्ध को प्रवर्तित करवाया जा सकता है ।	किसी भी परिस्थिति में आश्वासन-भंग को शर्त-भंग नहीं माना जा सकता है ।
7.	संख्या	गर्भित आश्वासनों की तुलना में गर्भित शर्तों की संख्या अधिक है।	गर्भित शर्तों की तुलना में गर्भित आश्वासनों की संख्या कम है ।

12.4 शर्त को आश्वासन के रूप में माना जाना अथवा शर्त-भंग को आश्वासन भंग मानना (धारा 13)

निम्नलिखित दशाओं में 'शर्त' को 'आश्वासन' के रूप में समझा जाएगा ।

1. जब शर्त की पूर्ति विक्रेता को करनी है -

जहाँ किसी विक्रय अनुबन्ध में कोई ऐसी शर्त है जिसे विक्रेता द्वारा पूरा किया जाना है और विक्रेता उसे पूरा नहीं करता तो ऐसी दशा में क्रेता (1) उस शर्त का त्याग कर सकता है । यह ध्यान रहे कि क्रेता ने एक बार उस शर्त को त्याग दिया है, तो बाद में वह उस शर्त की पूर्ति के लिए बाध्य नहीं कर सकता; अथवा (2) उस शर्त को शर्त-भंग न समझे तथा केवल आश्वासन भंग समझ सकता है जिसके फलस्वरूप अनुबन्ध को निरस्त न करके निष्पादन स्वीकार कर सकता है, यदि उसे इसके फलस्वरूप कोई हानि नहीं हुई है ।

उदाहरण के लिए अ ने ब को 250 क्विंटल गेहूं 18 मार्च को सुपुर्द करने का अनुबन्ध किया । इस अनुबन्ध का सारतत्व 'समय' है । अ ने वह गेहूँ 20 मार्च को सुपुर्द किया । यहाँ ब गेहूँ को स्वीकार कर सकता है और अनुबन्ध को निरस्त करने का अधिकार त्याग सकता है । यहाँ व इस शर्त-भंग को 'आश्वासन-भंग' मान सकता है ।

2. क्रेता द्वारा माल को स्वीकार करने पर -

जहाँ विक्रय-अनुबन्ध को अलग-अलग भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता तथा क्रेता ने सम्पूर्ण माल को अथवा उसके किसी भाग को स्वीकार कर लिया है, तो 'शर्त-भंग' को आश्वासन भंग माना जायेगा और क्रेता को अनुबन्ध भंग करने का अथवा माल को अस्वीकार करने का अधिकार नहीं होगा, यदि अनुबन्ध में इसके विपरीत कोई बात नहीं हो ।

3. विशिष्ट माल, जिसका स्वामित्व हस्तान्तरित हो चुका हो -

यदि विक्रय अनुबन्ध किसी ऐसे विशिष्ट माल के लिए किया गया है जिसका स्वामित्व क्रेता के पास हस्तान्तरित हो जाता है और ऐसी दशा में कोई शर्त जो विक्रेता द्वारा पूरी की जानी है पूरी नहीं की जाती तो शर्त के भंग होने को आश्वासन का भंग होना ही माना जाएगा और क्रेता को न तो अनुबन्ध-भंग करने का अधिकार होगा और न ही उसे माल अस्वीकार करने का अधिकार होगा । किन्तु यदि अनुबन्ध में इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट अथवा गर्भित विपरीत बात होती है तो उपर्युक्त प्रावधान लाग नहीं होगा ।

यह ध्यान रहे कि यदि किसी कानून द्वारा, असम्भवता अथवा किसी घटना के कारण, अनुबन्ध की शर्त या आश्वासन को पूरा करना क्षम्य कर दिया जाये तो इस धारा का प्रभाव न होगा ।

12.5 शर्त तथा आश्वासन के प्रकार

शर्त तथा आश्वासन के प्रकार को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:-

(1) स्पष्ट शर्त तथा आश्वासन

स्पष्ट शर्त तथा आश्वासन वे है जो अनुबन्ध करते समय पक्षकारों द्वारा स्पष्ट रूप से तय कर दी जाती है।

(2) गर्भित शर्त तथा आश्वासन : -

गर्भित शर्त तथा आश्वासन वे हैं जो अनुबन्ध करते समय पक्षकारों द्वारा स्पष्ट रूप से नहीं बतलाई जाती है बल्कि अधिनियम द्वारा अथवा व्यापार की प्रथा द्वारा अनुबन्ध में पहले से ही विद्यमान मान ली जाती है ।

12.6 गर्भित शर्तें

वस्तु-विक्रय अनुबन्ध में अग्रलिखित गर्भित शर्तें (धारा 14 से 17) होती है ।

1. माल के अधिकार सम्बन्धी गर्भित शर्तें-

प्रत्येक विक्रय के अनुबन्ध में यह गर्भित शर्त है की (क) 'विक्रय' की दशा में विक्रेता को माल बेचने का अधिकार है ; और यदि (ख) विक्रेता 'माल बेचने का ठहराव करता है तो जब माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित होना है उस समय उसे माल बेचने का अधिकार होगा । [धारा 14(a)]

इससे स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु का स्वामित्व तो हो किन्तु उसे माल विक्रय करने का अधिकार न हो, फिर भी यदि उस माल का विक्रय कर देता है तो इसे शर्त-भंग माना जायेगा और क्रेता द्वारा अनुबन्ध को भंग किया जा सकता है

उदाहरणार्थ : अ ने ब से एक कार खरीदी और कुछ महीने प्रयोग की । वह कार चुराई हुई थी । अ को वह कार वास्तविक स्वामी को लौटानी पड़ी। अ ने ब पर मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत किया । यह निर्णय किया गया कि ब ने माल के अधिकार सम्बन्धी शर्त को भंग किया है,अत: चाहे अ ने कार का प्रयोग कुछ महीने ही किया हो,वह ब से पूरा मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी है ।

2. वर्णन द्वारा विक्रय की दशा मे -

वर्णन द्वारा विक्रय' उन समस्त मामलों में लागू होता हैं जिसमें क्रेता ने माल नहीं देखा है और वह केवल माल के वर्णन पर ही निर्भर है ।यदि माल को विक्रय का अनुबन्ध वर्णन द्वारा' किया गया है तो वह गर्भित-शर्त हैं कि माल;वर्णन के अनुसार ही होगा । यदि माल बेचने का अनुबन्ध नमूने व वर्णन दोनों के द्वारा ही किया गया है तो यह गर्भित शर्त है कि माल नमूने व वर्णन दोनों ही के अनुसार हो।

[धारा 15]

इस धारा को अध्ययन की सुविधा के लिए दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - (1)यदि माल का विक्रय अनुबन्ध वर्णन द्वारा हो , और (2) माल की विक्रय अनुबन्ध वर्णन और नमूने दोनों के द्वारा हो ।

(क) यदि माल का विक्रय-अनुबन्ध वर्णन द्वारा हो -

यदि माल का विक्रय अनुबन्ध वर्णन द्वारा हो तो यह गर्भित-शर्त है कि माल 'वर्णन' के अनुसार ही होना चाहिए। साधारण सिद्धान्त स्पष्ट है, "यदि आप मटर बेचने का अनुबन्ध करते है तो आप उस पक्षकार को सेम (एक प्रकार की सब्जी फली, बालौर) लेने के लिए बाध्य नहीं कर सकते । " इसका आशय यह है कि यदि माल की सपुर्दगी दी जाती और माल वर्णन के अनुसार नहीं होता है तो वह 'माल' नहीं कहा जा सकता जिसके लिए अनुबन्ध किया गया था और इस आधार पर दूसरा पक्षकार ऐसे माल को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है । वह अनुबन्ध का परित्याग कर सकता है ।

उदाहरण - अ ने ब से परमल चावल बेचने का अनुबन्ध किया; किन्तु सुपुर्दगी श्रेष्ठ किस्म का वैस्टर्न बासमती चावल की दी । ब ने उसे अस्वीकार कर दिया, क्योंकि माल वर्णन के अनुसार नहीं था तथा विक्रेता अर्थात् अ ने गर्भित-शर्त को भंग किया है ।

(ख) नमूने तथा वर्णन द्वारा विक्रय की दशा में -

यदि माल नमूने तथा वर्णन दोनों के ही द्वारा बेचा गया है तो केवल यही पर्याप्त नहीं होगा कि माल नमूने के अनुसार हो बल्कि यह आवश्यक है कि वह वर्णन के अनुसार भी हो । उदाहरण के लिए, तेल के नमूने व वर्णन के द्वारा बेचने का अनुबन्ध किया गया । किन्तु जो तेल दिया गया वह नमूने के अनुसार तो था किन्तु उसमें सरसों के तेल की मिलावट थी । अत: क्रेता ने माल स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह वर्णन के अनुसार नहीं था ।

3. नमूने के सम्बन्ध में गर्भित शर्त :-

जब अनुबन्ध में स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से यह बताया गया हो कि माल नमूने के आधार पर बेचा जाएगा तो माल नमूने के अनुसार ही होना चाहिए । नमूने के आधार पर विक्रय अनुबन्ध की दशा में यदि सुपुर्द माल नमूने से मेल नहीं खाता है क्रेता शर्त भंग मानकर अनुबन्ध परित्याग कर सकता है तथा विक्रेता से क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है । इसके अलावा यदि माल का कुछ भाग नमूने के अनुसार है तथा शेष माल नमूने के अनुसार नहीं है तो क्रेता चाहे तो सम्पूर्ण माल को लेने से मना कर सकता है किन्तु यदि सम्पूर्ण माल को स्वीकार करता है तथा वह नमूने के अनुरूप नहीं है तो वह माल के लिए विक्रेता से क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है । (धारा 17)

इस सम्बन्ध में इ. एण्ड एम रूबेन लि. बनाम फेयर ब्रदर्स एण्ड क.लि. का मामला उल्लेखनीय है । इस मामले में एक विशेष प्रकार के रबड़ के विक्रय का ठहराव नमूने के आधार पर किया । माल एक निश्चित लम्बाई तथा चौड़ाई का देना था । माल का नाप नमूने के नाप से भिन्न था किन्तु सामान्य प्रक्रिया से उसे नमूने के अनुरूप बनाया जा सकता था । निर्णय दिया गया कि माल नमूने के अनुसार नहीं होने से अस्वीकार किया जा सकता है ।

4. विशेष आशय के लिए वस्तु की किस्म अथवा उपयुक्तता

[धारा 16(i)**]**

अधिनियम के प्रावधानों के अधीन तथा किसी अन्य प्रचलित सन्नियम के अधीन माल के विक्रय के अनुबन्ध के अन्तर्गत माल की किस्म अथवा किसी उद्देश्य विशेष के लिए उपयुक्तता के सम्बन्ध में कोई गर्भित शर्त (अथवा आश्वासन) नहीं होता । इसका कारण यह है "क्रेता की सावधानी" का नियम लागू होता है जिसके अनुसार क्रेता का यह उत्तरदायित्व है कि माल खरीदने के पूर्व उस वस्तु की किस्म व उपयुक्तता के सम्बन्ध में जांच कर ले कि वह उसके उद्देश्यों की पूर्ति करेगी अथवा नहीं ।

[धारा 16(i)**]**

किन्तु जहाँ क्रेता स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से विक्रेता को यह विशेष उद्देश्य बतला देता है जिसके लिए उसे उस वस्तु की आवश्यकता है तथा यह भी प्रकट कर देता है कि वह विक्रेता की कुशलता तथा निर्णय पर विश्वास करता है माल इस प्रकार का है जो विक्रेता द्वारा अपने साधारण व्यापार के अन्तर्गत बेचा जाता है तो उसमें यह गर्भित शर्त है कि माल उस उद्देश्य के लिए यथोचित रूप से उपयुक्त होगा ।

इस प्रकार माल के विशेष उद्देश्य के लिए यथोचित रूप से उपयुक्ता होना एक 'गर्भित शर्त' होगी । वे परिस्थितियाँ निम्नलिखित हैं-

(i) किसी विशेष उद्देश्य को प्रकट करना -

क्रेता द्वारा उस विशेष उद्देश्य को प्रकट कर देना चाहिए जिसके लिए उसे माल चाहिए यदि उद्देश्य स्पष्ट रूप से अथवा गर्भित रूप से प्रकट किया जा सकता है । यदि माल अनेक उद्देश्यों की पूर्ति करने वाला है तो क्रेता को चाहिए कि विक्रेता को स्पष्ट रूप से बतला दे कि उसे विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए माल चाहिए । उदाहरण - प्रिस्ट बनाम लास्ट के मामले में अ ने गर्म पानी रखने की बोतल एक केमिस्ट ब से खरीदी जिसके लिए ब कहता है यद्यपि यह बोतल गरम पानी रखने की बोतल है लेकिन यह उबलता हुआ पानी सहन नहीं करेगी । कुछ दिन काम लेने के पश्चात् बोतल फट गई अ को चोट पहुंचती है । बाद में पता चलता है कि बोतल गरम पानी की बोतल के रूप में काम में लाने के योग्य नहीं था । अत: विक्रेता ने शर्त भंग की है और क्रेता को पहुंची हानि की पूर्ति के लिए बाध्य है ।

(ii) कुशलता तथा निर्णय पर विश्वास होना -

विक्रेता की कुशलता तथा निर्णय पर क्रेता द्वारा विश्वास किया जाना चाहिए। यदि अ विक्रेता ब से कहता है कि उसे भोजन बनाने के लिए गैस का चूल्हा चाहिए और ब, अ को ऐसा गैस का चूल्हा देता है जो भोजन बनाने के अयोग्य है तो व गैस के चूल्हे की अनुपयुक्तता के लिए उत्तरदायी है । किन्तु इसका भी एक अपवाद है: यदि माल व्यापारिक चिन्ह के आधार पर खरीदा जाता है तो विक्रेता का दायित्व नहीं रहता । यदि अ ने भोजन बनाने के लिए 'सनफ्लेम' गैस चूल्हा ब से खरीदा है, जो कि भोजन बनाने के अयोग्य सिद्ध होता है तो उसके लिए ब का दायित्व नहीं है :

(iii) साधारण व्यापार के अन्तर्गत माल बेचा जाना -

माल ऐसा होना आवश्यक है जो विक्रेता द्वारा सामान्य रूप से बेचा जाता है । यह महत्वहीन है कि वह (विक्रेता) निर्माता अथवा उत्पादक है अथवा नहीं है, जैसे यदि डेरी से दूध, कोयला विक्रेता से कोयला, वस्त्र विक्रेता से वस्त्र आदि खरीदे जायें ।

(iv) वस्तु की व्यापार योग्यता [धारा 16(2)] -

यदि माल विवरण द्वारा किसी ऐसे विक्रेता द्वारा बेचा जाता है जो उस विवरण के माल में व्यापार करता है (चाहे वह उसका निर्माता तथा उत्पादक है अथवा नहीं) तो इस दशा में यह एक गर्भित शर्त होगी कि माल व्यापार-योग्य दशा में हो । सीमेण्ट यदि भीगकर पत्थर हो गया है, व्यापार-योग्य दशा में नहीं है ।

(v) व्यापार की रीति के विषय में [धारा 16 (3)] -

किसी विशेष उद्देश्य के लिए किस्म अथवा उपयुक्तता के सम्बन्ध में कोई गर्भित-शर्त व्यापार की परम्परा द्वारा भी लगाई जा सकती है, जैसे किसी निर्माता को माल का आदेश दिया गया तो यह गर्भित शर्त होगी कि विक्रय किया जाने वाला माल उसी निर्माता द्वारा निर्मित होगा।

5. माल के हानि रहित होने के सम्बन्ध में गर्भित शर्तें :-

यह शर्त खाद्य पदार्थो के विक्रय अनुबन्धों पर लागू होती है । इस शर्त के अनुसार बेचा जाने वाला माल व्यक्ति के स्वास्थ्य के अनुकूल होना चाहिए । यदि माल स्वास्थ्यकर नहीं होता है तो क्रेता अनुबन्ध का परित्याग कर सकता है और विक्रेता से क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है।

इस सम्बन्ध में फोस्ट बनाम आइलेसबरी डेयरी क.लि. का मामला उल्लेखनीय है । इस मामले के अनुसार एफ ने ए से दूध खरीदा जिसमें टाइफाइड के कीटाणु थे । इस दूध को पीने से एफ की पत्नी बीमार हो गई और उसकी मृत्यु हो गई । न्यायालय ने निर्णय दिया कि एफ क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी है ।

12.7 गर्भित आश्वासन

वस्तु विक्रय अनुबन्धों में निम्नलिखित गर्भित-आश्वासन होते हैं-

1. वस्तु पर शान्तिपूर्ण अधिकार का गर्भित आश्वासन -

प्रत्येक विक्रय अनुबन्ध में क्रेता को गर्भित आश्वासन दिया जाता है कि वह उस माल को विक्रेता अथवा अन्य किसी पक्षकार की ओर से बिना बाधा के शान्तिपूर्वक रख सकेगा और उसका उपयोग कर सकेगा । इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि माल पर विक्रेता के दूषित अधिकारों के फलस्वरूप क्रेता को कोई क्षति होती है तो वह आश्वासन भंग समझा जाता है और क्रेता को यह अधिकार है कि विक्रेता से क्षतिपूर्ति प्राप्त कर ले । [(धारा 14(b)]

2. वस्तु के भार-मुक्त होने का गर्भित आश्वासन -

दूसरा गर्भित आश्वासन यह होता है कि माल, किसी तीसरे पक्षकार के ऐसे भार से मुक्त होगा जो अनुबन्ध करने से पूर्व अथवा अनुबन्ध करते समय घोषित न किया गया हो अथवा जिसका ज्ञान क्रेता को नहीं था । [(धारा 14 (c)]

उदाहरणार्थ :- ए ने बी को एक स्कूटर बेचा जिसमें यह स्पष्ट नहीं था कि स्कूटर सी के पास गिरवी रखा हुआ है । बाद में जब बी को इस तथ्य की जानकारी हुई तो बी ए को सी के ऋण का भुगतान करने के लिए बाध्य कर सकता है अथवा स्वयं सी के ऋण का भुगतान करने ए से ऋण प्राप्त कर सकता है ।

3. गर्भित आश्वासन की उपस्थिति -

यदि कोई विक्रेता अपने-आप को गर्भित आश्वासनों से मुक्ता रखने की घोषणा करता है तो वह मुक्त नहीं हो सकता । यदि एक विक्रेता अपनी दुकान पर यह सूचना लगा देता है कि यहाँ किसी भी प्रकार से कोई आश्वासन नहीं दिये जाते हैं' तो इसका अर्थ यह है कि 'कोई भी स्पष्ट आश्वासन नहीं दिया जाता है । 'इस प्रकार की सूचना से उसका दायित्व गर्भित आश्वासन के सम्बन्ध से समाप्त नहीं हो जाता ।

4. व्यापार की रीति के अनुसार -

व्यापार की रीति के अनुसार माल की किस्म अथवा किसी विशेष उद्देश्य के लिए गर्भित आश्वासन प्राप्त हो सकता है । व्यवहार में कई बार यह देखा जाता है कि कई खतरनाक वस्तुओं के प्रयोग में सावधानी बरतने की सूचना व्यापार की रीति के अनुसार दी जाती है । अत: ऐसी सूचना नहीं देने पर आश्वासन भंग माना जाता है ।

क्लार्क बनाम आर्मी एण्ड नेवी को-ऑपरेटिव सोसायटी लि. के मामले में ए एक कीटनाशक दवा का डिब्बा बी को बेचता है । वह जानता है यदि डिब्बे को सावधानी से नहीं खोल गया तो वह बी के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है । लेकिन वह इस तथ्य की जानकारी बी को नहीं देता है । बी ने डिब्बा खोला तो दवा से उसकी आँख क्षतिग्रस्त हो गई । निर्णय दिया गया कि ए द्वारा बी की क्षतिपूर्ति की जायेगी, क्योंकि ए ने बी को विशेष सावधानी की जानकारी न देकर 'आश्वासन-भंग' किया है ।

12.8 क्रेता की सावधानी का सिद्धान्त

किसी भी वस्तु या माल के विक्रय के सम्बन्ध में सामान्यत: 'क्रेता की सावधानी' का सिद्धान्त या नियम क्रियाशील होता है, जब तक कि अनुबन्ध में उसके विपरीत आशय प्रकट न हो । इस सिद्धान्त का आशय यह है कि माल खरीदते समय क्रेता का यह कर्तव्य है कि वह स्वंय माल की उपयुक्तता देखे और माल की किस्म व उपयुक्तता आदि से सन्तुष्ट होकर माल खरीदे ।

विक्रेता का यह कर्तव्य नहीं है कि वह क्रेता को माल की अनुपयुक्तता अथवा दोषों को बतलाए । जब कोई क्रेता माल को अपनी इच्छानुसार देखकर खरीदता है, तो ऐसे माल के किसी भी दोष अथवा किसी कार्य के लिए, अनुपयुक्तता के लिए विक्रेता का कोई दायित्व नहीं है । साधारण सिद्धान्त यह है कि अपनी आवश्यकता को जानते हुए क्रेता माल खरीदते समय स्वयं सावधान रहे ।

इस नियम को लैटिन भाषा में Caveat Emptor, कहते हैं :- Caveatशब्द का अंग्रेजी भाषा में अर्थ 'beware' और हिन्दी भाषा में अर्थ है 'सावधान रहो', इस प्रकार Caveat Emptor का अंग्रेजी भाषा में अर्थ हुआ 'Buyer Beware' जिसका हिन्दी अर्थ हुआ 'क्रेता सावधान रहे । '

अत: जब तक कोई विपरीत अनुबन्ध नहीं होता है तो इस सिद्धान्त का यह अर्थ होता है कि वस्तु क्रय करते समय क्रेता को स्वयं सतर्क रहना चाहिए । माल क्रय करते समय ही क्रेता स्वयं वस्तु की उपयुक्तता को देखे कि वस्तु उसके उद्देश्य को पूरी करने वाली है या नहीं । यहां विक्रेता का यह कर्तव्य नहीं है कि वह क्रेता के सामने अपनी अनुपयुक्तता या दोषों का वर्णन

करें। अत: देखकर क्रय करता है तो ऐसे माल के किसी भी दोष के लिए विक्रेता उत्तरदायी नहीं होगा।

यदि क्रेता माल खरीदते समय विक्रेता को यह बतला देता है कि वह किसी विशेष उद्देश्य अथवा कार्य के लिए माल खरीदना चाहता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि वह ऐसे विक्रेता की कुशलता चतुराई में विश्वास करके (वस्तु के क्रेता के कार्य की उपयोगिता के लिए) ही माल खरीद रहा है । यहां 'क्रेता सावधान रहा' का सिद्धान्त क्रियाशील नहीं होगा और विक्रेता को ऐसा माल देने के लिए बाध्य होना पड़ेगा जो क्रेता की शर्तों की पूर्ति करता है ।

सिद्धान्त के अपवाद

आधुनिक युग में व्यापार का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया है जिसमें न तो क्रेता को सभी वस्तुओं का पूरा ज्ञान संभव है और न ही यह आवश्यक है कि वह प्रत्येक वस्तु को ध्यानपूर्वक देख कर खरीदे । या तो वह विक्रेता के चातुर्य पर विश्वास करता है या उसे बिना देखे वस्तु को क्रय करना पड़ता है । इसी सन्दर्भ में इस नियम के कुछ अपवादों को जन्म मिला जिससे कि क्रेता के हितों की रक्षा की जा सकती है । इस नियम के प्रमुख अपवाद निम्नलिखित हैं -

1. विक्रेता द्वारा मिथ्यावर्णन :-

यदि विक्रय की जाने वाली वस्तु के संदर्भ में विक्रेता ने मिथ्यावर्णन किया है अर्थात उसने कुछ ऐसे तथ्य बतलाये हैं जिनकी सत्यता के बारे में विक्रेता विश्वास रखता है यद्यपि वे सत्य नहीं हैं । इस स्थिति में क्रेता की सावधानी का सिद्धान्त लागू नहीं होगा और अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार के इच्छा पर व्यर्थनीय होगा ।

2. विक्रेता द्वारा कपट :-

जब विक्रेता जानबूझकर क्रेता को धोखा देने के उद्देश्य से कुछ कार्य करता है तो इसे विक्रेता का कपट कहेंगे । कपट के आधार पर किये गये व्यवहारों में क्रेता सावधानी का नियम लागू नहीं होगा अर्थात् विक्रेता को इस नियम के अन्तर्गत कोई भी सुरक्षा प्राप्त नहीं होगी ।

3. गर्भित शर्तें एवं आश्वासन :-

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित अपवाद आते हैं, जिनका विस्तृत विवेचन इसी अध्याय में गर्भित शर्त एवं गर्भित आश्वासन के शीर्षक में किया जा चुका है ।

1. वस्तु के स्वत्व सम्बन्धी दोष के सम्बन्ध मे ।
2. वर्णन द्वारा माल क्रय करना ।
3. विक्रेता को वस्तु के गुण तथा उपयुक्तता संबंधी विशेष उद्देश्य की जानकारी देना
4. वस्तु की व्यापारिक योग्यता।
5. नमूने द्वारा माल क्रय करना ।
6. वस्तु का स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिरहित होना ।
7. नमूने एवं विवरण द्वारा माल क्रय करना ।
8. वस्तु को शान्तिपूर्ण गर्भित आश्वासन ।
9. वस्तु पर किसी भी प्रकार का प्रभार नहीं होना चाहिए ।
10. वस्तु के प्रयोग में विशेष सावधानी की जानकारी ।

12.9 सारांश

एक विक्रेता वस्तुओं का विक्रय करते समय वस्तु के बारे में अनेक बातें बताता है । इन बातों में जिनको विक्रय अनुबन्ध का हिस्सा बना लिया जाता है, वे बन्धन कहलाते हैं । बन्धन मुख्य तौर पर दो प्रकार के होते है :-

शर्त एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है जिसे भंग होने पर क्रेता को अनुबन्ध के परित्याग का अधिकार मिल जाता है ।

आश्वासन एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए समपार्श्विक होता है जिसके भंग होने पर क्षतिपूर्ति हेतु वाद प्रस्तुत किया जा सकता है किन्तु माल को अस्वीकार करने या अनुबन्ध के परित्याग का अधिकार नहीं मिलता **है ।**

निम्नलिखित गर्भित शर्तें होती हैं ।

1. माल के अधिकार सम्बन्धी शर्त
2. वर्णन द्वारा विक्रय
3. नमूने के सम्बन्ध में
4. वर्णन तथा नमूने के सम्बन्ध में
5. विशेष आशय के लिए वस्तु की उपयुक्तता
6. माल के हानि रहित होने के सम्बन्ध में

निम्नलिखित गर्भित आश्वासन होते हैं ।

1. शान्तिपूर्ण अधिकार का आश्वासन ।
2. वस्तु के भार-मुक्त होने का गर्भित आश्वासन ।
3. व्यापार की रीति के अनुसार ।
4. गर्भित आश्वासन की उपस्थिति ।

क्रेता की सावधानी का सिद्धान्त के अनुसार क्रेता को वस्तु क्रय करते समय स्वयं सावधान रहना चाहिए । किन्तु विक्रेता द्वारा मिथ्यावर्णन या कपट एवं गर्भित शर्त तथा आश्वासन की स्थिति में यह सिद्धान्त क्रियाशील नहीं होता है

12.10 स्व-परख प्रश्न

1. शर्त तथा आश्वासन में अन्तर को स्पष्ट कीजिए ।
2. शर्त को परिभाषित कीजिए । भारतीय वस्तु विक्रय अधिनियम में कौन सी गर्भित शर्त होती 'है । स्पष्ट कीजिए।
3. क्रेता की सावधानी के सिद्धान्त को समझाइए । इस सिद्धान्त के कौन-कौन से अपवाद ?
4. वस्तु विक्रय अनुबन्ध में शर्त तथा आश्वासन में अन्तर बताइए । वस्तु का क्रेता शर्त भंग को आश्वासन भंग कब मान सकते हैं?

इकाई व 13

स्वामित्व का हस्तान्तरण तथा सुपुर्दगी (Transfer of Ownership and Delivery)

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण का महत्व

13.4 माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण के वैधानिक प्रावधान

13.5 सुपुर्दगी का अर्थ तथा प्रकार

13.6 सुपुर्दगी से सम्बन्धित नियम

13.7 सारांश

13.8 स्व-परख प्रश्न

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :-

- माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण के महत्व को समझ सकें ।
- माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण के वैधानिक प्रावधानों को विस्तार से स्पष्ट कर सकें
- सुपुर्दगी का अर्थ तथा इसके प्रकारों का विश्लेषण कर सके
- सुपुर्दगी से सम्बन्धित नियमों का वर्णन कर सके

13.2 प्रस्तावना

विक्रेता से क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रय अनुबन्ध की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है क्योंकि इसके आधार पर क्रेता एवं विक्रेता के अनेक अधिकार तथा दायित्व निश्चित होते हैं । साधारण नियम तो यह है कि 'माल के स्वामित्व के साथ जोखिम भी हस्तान्तरित होती है अर्थात् (Risk Follows the Ownership) अत: यह निश्चित करना आवश्यक हो जाता है कि किस समय माल का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता के पास हस्तान्तरित हो जाता है । इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रहे कि 'स्वामित्व का हस्तान्तरण' विक्रय अनुबन्ध में इतना महत्वपूर्ण तत्व है कि इसके बिना विक्रय अनुबन्ध ही नहीं हो सकता है । लेकिन विक्रय अनुबन्ध में यह आवश्यक है कि विक्रेता से क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हो जाए, माल पर अधिकार क्रेता का हो या विक्रेता का । यहां स्वामित्व तथा अधिकार में अन्तर स्पष्ट करना आवश्यक है कि क्योंकि विक्रय अनुबन्ध में स्वामित्व का हस्तान्तरण आवश्यक है न कि अधिकार का हस्तान्तरण ।

स्वामित्व का तात्पर्य क्रेता द्वारा क्रय किए माल का स्वामी बनने तथा माल से सम्बन्धित सभी अधिकार तथा दायित्व प्राप्त करने से है । मालपर अधिकार माल के स्वामित्व से भिन्न है, क्योंकि माल के अधिकार में वह केवल माल का धारक ही बनता है, स्वामी नहीं ।

उदाहरण के लिए, निक्षेपगृहीता, गिरवग्राही, खोई हुई वस्तु पाने वाला, एजेन्ट आदि को केवल माल पर अधिकार प्राप्त होता है, स्वामित्व नहीं ।

13.3 माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण का महत्व

माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण के लिए विक्रय अनुबन्ध किया जाता है । अत: विक्रय अनुबन्ध में माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण कई कारणों से महत्वपूर्ण माना जाता है । संक्षेप में, माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण निम्नांकित कारणों से महत्वपूर्ण माना गया है । :-

1. जोखिम प्राय: स्वामित्व के साथ ही हस्तान्तरित होती है ।

जोखिम प्राय: माल के स्वामित्व के साथ ही हस्तान्तरित होती है । अत: माल की जोखिम विक्रेता के पास तब तक ही बनी रहती है जब तक कि माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण क्रेता को होता है बशर्ते पक्षकारों ने इसके विपरीत कोई अनुबन्ध न किया हो । जब माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो जाता है, तो जोखिम भी उसे ही वहन करनी पड़ती है चाहे माल की सुपुर्दगी दी गई हो अथवा नहीं । किन्तु, यदि माल की सुपुर्दगी क्रेता या विक्रेता में से किसी एक की त्रुटि के कारण नहीं हो पायी हो तो माल की जोखिम उस दोषी पक्षकार पर ही होगी । **(धारा 26)**

उदाहरण के लिए :-ए बी से कुछ माल खरीदता है और उस माल को बी के गोदाम में ही पड़ा रहने देता है । कुछ दिनों बाद गोदाम में आग लगने से ए का खरीदा हुआ माल भी जल जाता है । यहां ए को माल के मूल्य का भुगतान करना पड़ेगा क्योंकि ए को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हो गया था ।

2. क्रेता-विक्रेता के दिवालिया होने पर माल प्राप्त करने के लिए :-

यदि माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो गया हो किन्तु माल विक्रेता के अधिकार में हो तो विक्रेता के दिवालिया होने पर क्रेता उसके राजकीय प्रापक से माल प्राप्त कर सकेगा । यदि क्रेता दिवालिया हो गया हो तथा माल के स्वामित्व का हस्तान्तरित हो गया हो तो भी विक्रेता माल को तब तक अपने पास रोक कर रख सकता है जब तक कि उसके मूल्य का भुगतान नहीं कर दिया जाता है ।

3. मूल्य के लिए याद :

माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण के बाद ही विक्रेता क्रेता पर माल के मूल्य के लिए वाद कर सकता है ।

4. माल का पुन: हस्तान्तरण :-

माल पर स्वामित्व रखने वाला व्यक्ति ही किसी अन्य व्यक्ति को माल हस्तान्तरित कर सकता है । अत: क्रेता को जब माल का स्वामित्व हस्तान्तरित हो जाता है तभी वह पुन: आगे हस्तान्तरित कर सकता है । वह माल का पुन: विक्रय करके या गिरवी रखकर या निक्षेप द्वारा, दान या भेंट द्वारा माल का हस्तान्तरण कर सकता है ।

13.4 माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण के वैधानिक प्रावधान

माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण के सम्बन्ध में क्रेता तथा विक्रेता स्वतन्त्रतापूर्वक निश्चित कर सकते हैं, किन्तु अनेक परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हो जाती है कि वे परस्पर कुछ

निश्चित नहीं करते हैं अथवा नहीं कर पाते हैं तो ऐसी दशा में इस अधिनियम की धाराएं 18 से 25 द्वारा निश्चित किया जाता है ।

माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधानों को निम्नलिखित चार भागों में बांटा जा सकता है।

1. निश्चित अथवा विशिष्ट माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण
2. अनिश्चित माल के दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण
3. अनुमोदन अथवा वापसी की शर्त पर भेजे गए माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण
4. व्यवस्थापन के अधिकार को सुरक्षित रखने की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण ।

1. निश्चित अथवा विशिष्ट माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण :-

निश्चित अथवा विशिष्ट माल से आशय ऐसे माल से है जो विक्रय अनुबन्ध के समय पक्षकारों द्वारा निश्चित अथवा पहचाना जा चुका है । उदाहरण के लिए ए, बी से कहता है मैं वह नीला स्कूटर खरीदूँगा जो आपके शोरूम में रखा है । इस प्रकार दोनों पक्षकारों ने विषय-वस्तु को पहचान लिया है तथा उसी के सम्बन्ध में विक्रय अनुबन्ध किया गया है ।

निश्चित अथवा विशिष्ट माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण उस समय होता है जब अनुबन्ध के पक्षकार स्वामित्व-हस्तान्तरण का अभिप्राय रखते हों । (धारा- 19) किन्तु यदि पक्षकारों का अभिप्राय स्पष्ट न हो तो निम्न परिस्थितियों के अनुसार स्वामित्व के हस्तान्तरण का समय माना जाता है

(i) जब माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में है (धारा-20)

जब अनुबन्ध ऐसे निश्चित माल के सम्बन्ध में किया गया है जो सुपुर्दगी योग्य स्थिति में है तथा ऐसा अनुबन्ध शर्तरहित है तो क्रेता को माल का स्वामित्व उसी समय हस्तान्तरित माना जाएगा जब अनुबन्ध किया गया है ।

यह महत्वहीन है कि मूल्य का भुगतान का समय अथवा माल की सुपुर्दगी का समय अथवा दोनों ही स्थगित कर दिए गए हैं ।

उदाहरण के लिए :-ए अपनी गाय बी को 500 रूपयों में 1 जनवरी को बेचने का प्रस्ताव करता है । गाय की सुपुर्दगी तथा मूल्य का भुगतान 15 जनवरी को देना निश्चित हुआ । बी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । सुपुर्दगी देने के पूर्व ही गाय मर गई । लेकिन बी को इसका मूल्य चुकाना पड़ेगा क्योंकि गाय के स्वामित्व का हस्तान्तरण बी के पास उस समय ही हो गया था जब अनुबन्ध किया गया था । यह महत्वहीन है कि गाय ए के पास है तथा बी ने इसका मूल्य नहीं चुकाया है ।

(ii) जब माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में नहीं है (धारा-21)

यदि विक्रय अनुबन्ध ऐसे निश्चित माल के सम्बन्ध में किया गया है जो सुपुर्दगी योग्य स्थिति में नहीं है तो ऐसे माल का स्वामित्व का हस्तान्तरण क्रेता को तब तक नहीं होता जबतक कि माल को सुपुर्दगी योग्य स्थिति में नहीं लाया जाता तथा क्रेता को इराकी सूचना नहीं दे दी जाती है ।

1. **उदाहरण के लिए -**ए अपने बाग के 5 विशेष वृक्ष, जो सूखे हुए हैं बी 1 अगस्त को को बेचने का अनुबन्ध करता है । बी द्वारा ले जाने से पूर्व ए उन्हें 10 अगस्त को 4 बजे तक

कटवा देता है और उसी समय बी को इसकी सूचना दे देता है । 10 अगस्त को 4 बजे माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो गया और जोखिम बी का है, सूचना मिलने से पूर्व तक माल का स्वामित्व हस्तान्तरित नहीं हुआ था और जोखिम ए की ही था ।

(iii) माल सुपुर्दगी योग्य-स्थिति में हो, किन्तु मूल्य निर्धारण के लिए कुछ करना शेष है (धारा 22)

यदि विक्रय का अनुबन्ध ऐसे निश्चित माल के लिए है जो सुपुर्दगी योग्य स्थिति में है, किन्तु मूल्य निर्धारण के उद्देश्य से विक्रेता को उसे तोलना, नापना, परीक्षण करना अथवा कोई अन्य कार्य करना शेष है तो स्वामित्व का हस्तान्तरण उस समय तक नहीं होता जब तक कि यह कार्य अथवा बात पूर्ण नहीं कर दी जाती और क्रेता को इसकी सूचना प्राप्त नहीं हो जाती ।

उदाहरण के लिए : ए गेहूं का ढेर 200 रुपये प्रति टन के हिसाब से बी को बेचने का अनुबन्ध करता है । ए को वह ढेर मूल्य निश्चित करने के लिए तोलना है । जब यह ढेर तोल दिया जायेगा और बी को सूचित कर दिया जाएगा तभी ए के पास गेहूं का स्वामित्व का हस्तान्तरण हो जायेगा ।

(2) अनिश्चित माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण :-

अनिश्चित माल का अर्थ :- अनिश्चित माल से आशय ऐसे माल से जो अनुबन्ध करते समय वर्णन द्वारा ही बनाया जा सके ।

भावी माल का अर्थ :- भावी माल से आशय ऐसे माल से है जो विक्रय अनुबन्ध करने के पश्चात् निर्मित अथवा उत्पन्न होते हैं अथवा विक्रेता द्वारा कहीं से प्राप्त किए जाते हैं ।

अनिश्चित माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण तब तक नहीं किया जा सकता है । जब तक कि माल निश्चित नहीं कर लिया जाए । (धारा 18) अनिश्चित या भावी माल की दशा में स्वामित्व के हस्तान्तरण के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम लागू होते हैं -

i जब अनिश्चित या भावी माल के लिए विक्रय अनुबन्धन वर्णन द्वारा किया जाता है और वह माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में भी है और उसे या तो विक्रेता द्वारा क्रेता की सहमति से अनुबन्ध के अनुसार बिना किसी शर्त के सम्पूर्ण माल से अलग कर लिया जाता है तो ऐसा कर देने से ही माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो जाता है । [(धारा 23(1)]

उदाहरण के लिए :-एक व्यापारी के गोदाम में से 1000 मीटर कपड़ा खरादने का ठहराव करता है । ए 500 मीटर कपड़ा ले जा चुका तथा शेष 500 मीटर ले जाना है । व्यापारी ने वह कपड़ा अलग कर दिया तथा ए को इस बात की सूचना दे दी तथा उसने कपड़ा ले जाने की स्वीकृति दे दी । किन्तु ए द्वारा कपड़ा ले जाने से पूर्व ही गोदाम में आग लग जाती है । यहां 500 मीटर कपड़े के जल जाने के बाद भी ए उस व्यापारी को इसकी राशि चुकाने के लिए बाध्य है क्योंकि विक्रेता ने क्रेता की सहमति से माल का विनियोजन या माल को निश्चित कर लिया था । अत: माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हो गया था ।

ii जब अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार क्रेता ने विक्रेता को अथवा किसी वाहक को अथवा किसी अन्य निक्षेपग्रहीता (चाहे क्रेता ने उसका नाम स्पष्ट रूप से बतलाया हो या नहीं बतलाया हो) को सौंपा है कि उसे क्रेता तक पहुँचा दे और अपना अधिकार सुरक्षित नहीं रखा है, तो यह माना जाता है कि उसने अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार, बिना शर्त के माल विनियोजन कर लिया

है और ऐसा करने में माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो जाता है । किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात महत्वपूर्ण है कि विक्रेता का उस माल पर अधिकार नहीं होना चाहिए । यदि विक्रेता माल पर अपना अधिकार सुरक्षित रख लेता है तो माल का विनियोजन हुआ नहीं माना जाएगा तथा माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं हुआ माना जाएगा । [(धारा 23(2)]

उदाहरण के लिए :- ए 10,000 लीटर डीजल बी से खरीदता है । विक्रेता बी ए के कहने के अनुसार उस डीजल को एक किराये के डीजल टैंक में भरकर ए के पास भिजवा देता है । रास्ते में डीजल टैंक में आग लग जाती है । यहाँ यह क्षति ए को ही सहन करनी पड़ेगी क्योंकि विक्रेता ने क्रेता को उसकी स्वीकृति से डीजल 'माल-वाहक' को सौंप दिया था । अत: माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हो गया था ।

यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि यदि विक्रेता माल की बिल्टी क्रेता को हस्तान्तरण कर देता है अथवा पोस्ट ऑफिस में माल सौंप देता है तो भी माल का विनियोजन माना जाता है तथा क्रेता को स्वामित्व का हस्तान्तरण पूरा हो जाता है ।

(3) अनुमोदन अथवा वापसी की शर्त पर भेजे गए माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण (धारा 24)

जब विक्रय अनुबन्ध में विक्रेता माल का हस्तान्तरण क्रेता को इस शर्त पर देता है कि यदि माल उसे पसंद आ जाये तो वह उसे रख ले अन्यथा वापिस कर दे । ऐसी दशा में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण तभी होता है जबकि माल क्रेता को पसन्द आ जाए । अनुमोदन या वापसी की शर्त पर विक्रय की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण निम्नलिखित दशाओं में हो सकता है ।

(i) क्रेता को सूचित करना

जब क्रेता अपना अनुमोदन या स्वीकृति के बारे में विक्रेता को सूचित कर देता अथवा कोई ऐसा कार्य करता है जिससे मालूम हो कि उसने व्यवहार को स्वीकार कर लिया है तो विक्रेता को सूचना प्राप्त होने के साथ ही क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हो जाएगा ।

(ii) सूचना नही देने पर

जब क्रेता अपना अनुमोदन अथवा स्वीकृति के बारे में विक्रेता को सूचना नही देता है किन्तु अस्वीकृति की सूचना दिए बिना ही माल को अपने पास रोक कर रखता है तो यदि माल वापसी का कोई समय निश्चित किया गया है तो निश्चित समय व्यतीत हो जाने पर तथा यदि समय निश्चित नही किया गया है तो उचित समय व्यतीत होने पर माल का स्वामित्व क्रता को हस्तान्तरित हो जाएगा । उचित समय क्या होगा यह अनुबन्ध के समय, स्थान तथा परिस्थितियों पर निर्भर करता हैं ।

उदाहरण के लिए :- ए एक कार बी को पसन्दगी की शर्त पर बेचने का ठहराव करता है तथा उसे पसन्द करने के लिए दस दिन तक कार ब को दे देता है । वह कार चौथे दिन ही एक्सीडेन्ट में क्षतिग्रस्त हो जाती है तो यहाँ ए को ही कार की क्षति उठानी पड़ेगी क्योंकि माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण नही हुआ था ।

(iii) क्रेता द्वारा स्वयं कोई कार्य अथवा भूल करने पर

जब क्रेता कोई ऐसा कार्य या भूल करता है जिसके कारण क्रेता को माल को वापसी असम्भव हो जाती है तो भी माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हुआ माना जाता है ।

उदाहरण के लिए:- ए एक सोने का हार बी को पसन्दगी की शर्त पर देता है । बी से हार खो जाता है और उसे हार लौटाना असम्भव हो जाता है । लेकिन बी को ही स्वामित्व का हस्तान्तरण माना जाएगा तथा वह उस हार के मूल्य के लिए उत्तरदायी होगा ।

(4) विक्रेता द्वारा माल के व्यवस्थापन के अधिकार को सुरक्षित रखने की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण

इस सम्बन्ध में प्रमुख नियम निम्नलिखित हैं :-

I. जहाँ अनुबन्ध किसी विशिष्ट माल के विक्रय के लिए है अथवा अनिश्चित माल के विक्रय के लिए है (जब माल को अनुबन्ध के लिए बाद में नियोजित या निश्चित करना है) विक्रेता अनुबन्ध की शर्तों अथवा नियोजन की शर्तों के अनुसार माल के व्यवस्थापन का अधिकार उस समय तक अपने पास सुरक्षित रख सकता है जब तक कुछ शर्त पूरी न कर दी जायें । ऐसी स्थिति में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण उस समय तक क्रेता के पास नही जायेगा जब तक कि विक्रेता द्वारा लगाई गई शर्तों को पूरा नही कर दिया जायें, चाहे माल की सुपुर्दगी माल वाहक को अथवा किसी अन्य निक्षेपगृहीता को क्रेता के पास पहुँचाने के उद्देश्य से दे दी गई है । **धारा 25(1)**

II. यदि माल जहाज अथवा रेल द्वारा भेजा जा रहा है और जहाज-बिल्टी अथवा रेल्वे-बिल्टी के अनुसार माल विक्रेता अथवा उसके एजेण्ट के आदेश पर सुपुर्द किया जा सकता है तो स्पष्टत: समझा जाता है कि विक्रेता ने व्यवस्थापन का अधिकार अपने पारा सुरक्षित रखा है । **धारा 25(2)**

III. यदि विक्रेता माल के मूल्य के लिए क्रेता पर एक विनिमय-पत्र लिखता है और विनिमय पत्र तथा रेल्वे-बिल्टी अथवा जहाजी-बिल्टी एक साथ क्रेता के पास भेजता है ताकि विनिमय-पत्र की स्वीकृति (अथवा भुगतान) प्राप्त हो तो ऐसी दशा में माल का स्वामित्व क्रेता के पास उस समय तक हस्तान्तरित नहीं होता जब तक कि वह विनिमय-पत्र को स्वीकार नही कर लेता अथवा उसका भुगतान नहीं कर देता है । यदि क्रेता ने विनिमय-पत्र को स्वीकार किये बिना या भुगतान किये बिना रेल्बे-बिल्टी अथवा जहाजी-बिल्टी को रोक लिया है तो माल का स्वामित्व क्रेता के पारा हस्तान्तरित नही होगा । **धारा 25(3)**

13.5 सुपुर्दगी का अर्थ तथा प्रकार

सुपुर्दगी की परिभाषा

धारा 2 (2) के अनुसार "एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छा से माल के हस्तान्तरण को सुपुर्दगी कहते है । " अत: वस्तु की सुपुर्दगी उस समय मानी जाती है जबकि

(i) वस्तु का अधिकार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित हो जाता है तथा

(ii) अधिकार का हस्तान्तरण स्वैच्छिक है ।

धारा 33 के अनुसार "बेचे हुए माल की सुपुर्दगी कोई भी ऐसा कार्य करके दी जा सकती है जिसे पक्षकार सुपुर्दगी मान ले अथवा जिसका प्रभाव यह हो कि माल क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि के अधिकार में आ जावें । "

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि सुपुर्दगी के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात यह है कि माल क्रेता के अधिकार में आ जायें, या उसका प्रभाव यह हो जिसमें क्रेता ऐसा मान ले कि माल उसके अधिकार में आ चुका है

सुपुर्दगी के प्रकार :

सुपुर्दगी निम्न तीन प्रकार की हो सकती है

सुपुर्दगी के प्रकार

वास्तविक सुपुर्दगी रचनात्मक सुपुर्दगी सांकेतिक सुपुर्दगी

(1) वास्तविक सुपुर्दगी

जब अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार माल भौतिक रूप से क्रेता अथवा उसके अधिकृत एजेन्ट के पास पहुँच जाता है तो इसे वास्तविक सुपुर्दगी कहते है ।

(2) रचनात्मक सुपुर्दगी

इस प्रकार की सुपुर्दगी में माल का भौतिक रूप से आदान-प्रदान नही होता हैं । इसमें माल तो विक्रेता अथवा उसके एजेन्ट के पास ही पड़ा रहता है जबकि क्रेता सुपुर्दगी होने का प्रभाव रखता हैं । दूसरे शब्दों में, जब माल विक्रेता अथवा उसके एजेन्ट के पास ही पड़ा हो किन्तु क्रेता को सुपुर्दगी हुई मानी जाती तो इसे रचनात्मक सुपुर्दगी कहते है ।

(3) सांकेतिक सुपुर्दगी

जब विक्रेता के पास माल का अधिकार पत्र (रेल्वे-बिल्टी, जहाज-बिल्टी) हो तो उसके द्वारा अधिकार पत्र क्रेता को सौप देना ही सांकेतिक सुपुर्दगी कहलाती है । इसी प्रकार गोदाम की चाबी, कार की चाबी क्रेता को देना, सांकेतिक सुपुर्दगी कहलाती है ।

13.6 सुपुर्दगी से सम्बन्धित नियम

किसी वस्तु की सुपुर्दगी उस समय पूर्ण मानी जाती है, जब सुपुर्दगी वैधानिक रूप से की जाती है । इस सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधान निम्नलिखित हैं -

(1) **आंशिक सुपुर्दगी का प्रभाव :-** माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण के उद्देश्य से सम्पूर्ण माल की सुपुर्दगी देने के उद्देश्य से माल की आंशिक सुपुर्दगी दी जाती है तो उसका वही प्रभाव होता है जो सम्पूर्ण माल की सुपुर्दगी का होता है । किन्तु, यदि आंशिक-माल की सुपुर्दगी उसे (आंशिक माल को) शेष माल से पृथक् करने के उद्देश्य से की गई है तो ऐसी आंशिक सुपुर्दगी का प्रभाव सम्पूर्ण माल की सुपुर्दगी का प्रभाव नहीं रखती । **(धारा-34)**

(2) **अनुबन्ध के अनुसार सुपुर्दगी :-** माल की सुपुर्दगी अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार दी जानी चाहिए, तभी सुपुर्दगी वैध मानी जाएगी । **(धारा-31)**

(3) **सुपुर्दगी के लिए तैयार रहना -** प्रत्येक विक्रेता को मूल्य के भुगतान के बदले क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने के लिए तैयार रहना चाहिए । इसी प्रकार क्रेता को माल की सुपुर्दगी के बदले मूल्य के भुगतान हेतु तैयार रहना चाहिए । **(धारा-32)**

(4) **सुपुर्दगी का तरीका :-** माल की सुपुर्दगी के प्रमुख रूप से तीन तरीके यथा वास्तविक, सांकेतिक तथा रचनात्मक सुपुर्दगी है । विक्रेता क्रेता को इनमें से किसी भी तरीके से सुपुर्दगी दे सकता है ।

(5) सुपुर्दगी का दायित्व :- माल की सुपुर्दगी क्रेता को प्राप्त करनी है, अथवा उस माल को क्रेता के पास भिजवाना विक्रेता का दायित्व है - यह दोनों पक्षकारों के मध्य स्पष्ट अथवा गर्भित अनुबन्ध पर निर्भर करता है । **[धारा 36(1)]**

(6) **सुपुर्दगी का स्थान -** यदि विक्रय अनुबन्ध में 'सुपुर्दगी के स्थान' के सम्बन्ध में कुछ न हो तो माल की सुपुर्दगी का स्थान वही माना जाता है जहाँ वह माल विक्रय अनुबन्ध करने के समय था । यदि विक्रय अनुबन्ध के समय माल विद्यमान नहीं है (अर्थात् निर्मित अथवा उत्पादित नहीं हुआ है) तो उसकी सुपुर्दगी का स्थान वह होगा जहाँ उसका निर्माण अथवा उत्पादन किया जाता है । इंग्लैण्ड के वस्तु-विक्रय अधिनियम में माल की सुपुर्दगी के स्थान के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं है । **[धारा 36(1)]**

(7) **सुपुर्दगी का समय :-** यदि विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत विक्रेता द्वारा क्रेता को माल भेजना निश्चित हुआ है किन्तु माल की सुपुर्दगी के समय के विषय में कोई उल्लेख नहीं हुआ है तो विक्रेता माल को उचित समय के भीतर भेजने के लिए बाध्य है । इसका कारण यह है कि क्रेता असीमित समय तक माल की प्रतीक्षा नहीं कर सकता । यदि उचित समय में क्रेता को सुपुर्दगी नहीं मिलती है तो क्रेता को अधिकार है कि अनुबन्ध की समाप्ति कर दे; किन्तु अनुबन्ध-समाप्ति की उचित सूचना विक्रेता को देनी होगी । **[धारा 36(2)]**

(8) यदि माल तीसरे पक्षकार के पास हो :-विक्रय के समय यदि माल किसी तीसरे पक्षकार के पास हो तो विक्रेता द्वारा सुपुर्दगी उस समय तक नही मानी जायेगी जब तक ऐसा तीसरा पक्षकार क्रेता को यह सूचित न कर दे कि माल क्रेता की ओर से उसके पास है किन्तु माल के अधिकार पत्रों रेल्वे-रसीद, जहाजी-बिल्टी, गोदाम की रसीद, आदि को विक्रेता द्वारा क्रेता को सौंपने मात्र से ही क्रेता को माल की मान्य सुपुर्दगी हो जाती है । **[धारा 36(3)]**

(9) सुपुर्दगी सम्बन्धी व्यय :- जब तक कि कोई विपरीत अनुबन्ध न हो, माल सुपुर्दगी योग्य दशा में लाने से सम्बन्धित समस्त व्यय विक्रेता को ही वहन करने पडेगें । यदि क्रेता ने कोई ऐसे व्यय किये है तो वह उनको विक्रेता से प्राप्त करने का अधिकारी है । किन्तु माल की सुपुर्दगी लेने में सम्बन्धित व्यय क्रेता को वहन करने पड़ेगें । **[धारा 36(5)]**

(10) **गलत मात्रा में माल की सुपुर्दगी -** माल की जितनी मात्रा का विक्रय अनुबन्ध किया गया है, कभी-कभी उतनी मात्रा में सुपुर्दगी न दी जाकर, गलत मात्रा में माल की सुपुर्दगी दे दी जाती हैं । ऐसी दशा मे निम्नलिखित नियम लागू होते हैं :- **(धारा 37)**

(i) कम मात्रा में माल की सुपुर्दगी

यदि विक्रेता अनुबन्ध किये गये माल की मात्रा में कम माल की सुपुर्दगी दे देता है तो क्रेता माल को अस्वीकार कर सकता है । यदि क्रेता सुपुर्दगी किए गए माल को स्वीकार कर लेता है तो उसको अनुबन्ध की दर से उसके मूल्य का भुगतान करना पड़ेगा । [धारा 37(1)]

(ii) अधिक मात्रा में माल की सुपुर्दगी

यदि विक्रेता अनुबन्ध से अधिक मात्रा में माल की सुपुर्दगी करता है तो क्रेता को दो अधिकार होते हैं (1) वह अनुबन्ध में उल्लिखित माल को स्वीकार कर सकता है, तथा शेष माल को अस्वीकार कर सकता है, अथवा (2) समस्त माल को अस्वीकार कर सकता है । यदि क्रेता ने

सुपुर्दगी किए गए सम्पूर्ण माल को स्वीकार कर लिया है तो उसको अनुबन्ध की दर से उसके मूल्य का भुगतान करना पड़ेगा । [धारा 37(2)]

(iii) भिन्न वर्णन के माल के साथ सुपुर्दगी

यदि विक्रेता अनुबन्ध के माल के साथ भिन्न वर्णन के माल को मिला कर क्रेता को सुपुर्दगी देता है (जो अनुबन्ध में नहीं है) तो क्रेता को दो अधिकार उपलब्ध हैं (1) यह अनुबन्ध के अनुसार माल को स्वीकार करके शेष माल को अस्वीकार कर सकता हैं अथवा (2) सम्पूर्ण माल को ही अस्वीकार कर सकता है । [(धारा 37(3)]

(11) किस्तों में सुपुर्दगी

जब तक कोई विपरीत अनुबन्ध नहीं है, क्रेता वस्तु की सुपुर्दगी किस्तों में लेने को बाध्य नहीं है ।

उदाहरण के लिए : अ ने ब से 50 टन गेहूँ जुलाई या अगस्त में सुपुर्दगी की शर्त पर खरीदा । ब ने 25 टन गेहूँ अगस्त में व शेष 25 टन गेहूँ नवम्बर में भेज दिया । यही अमाल को अस्वीकार कर सकता है ।

यदि अनुबन्ध के अनुसार माल की सुपुर्दगी किस्तों में होनी है और उसका भुगतान अलग-अलग होना है और यदि एक या अधिक किस्तें नहीं दी जाती हैं या दोषपूर्ण तरीके से दी जाती हैं और क्रेता सुपुर्दगी को अस्वीकार कर देता है तो यह अनुबन्ध की शर्त व परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि इस अनुबन्ध के खण्डन को सम्पूर्ण का परित्याग माना जावे या इस खण्डन को सम्पूर्ण अनुबन्ध से अलग करने योग्य मानकर क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार दिया जाए । **(धारा 38)**

(12) वाहक या घाटपाल को माल की सुपुर्दगी

(अ) जब विक्रय अनुबन्ध के अनुसार विक्रेता को क्रेता के लिए माल भेजना है, विक्रेता के इस अभिप्राय से माल वाहक को (चाहे क्रेता ने वाहक का नाम बताया है अथवा नहीं) सुपुर्द करने या सुरक्षित रखने के लिए घाट के स्वामी को देना है तो इसे क्रेता को सुपुर्दगी के समान माना जायेगा । **[धारा 39(1)]**

(ब) जब तक कोई विपरीत अनुबन्ध नहीं है विक्रेता को क्रेता की ओर से वाहक या घाटपाल के साथ ऐसा अनुबन्ध करना चाहिए जो माल की प्रकृति एवं अन्य परिस्थितियों को देखते हुए उचित हो । यदि विक्रेता इसकी अवहेलना करता है और माल रास्ते में क्षतिग्रस्त हो जाता है तो क्रेता वाहक या घाटपाल को दी गई सुपुर्दगी को स्वयं को दी गई सुपुर्दगी मान लेने से इनकार कर सकता है और विक्रेता ऐसी हानि के लिए उत्तरदायी होगा । **[धारा 39(2)]**

(स) जब तक कोई विपरीत अनुबन्ध नहीं है और यदि वस्तु विक्रेता से क्रेता को समुद्री मार्ग से भेजी जानी है और ऐसी स्थिति में वस्तु का बीमा करवाया जाता है तो विक्रेता क्रेता को पर्याप्त सूचना देगा ताकि क्रेता समुद्री मार्ग के दौरान वस्तु के बीमा की व्यवस्था कर सके । यदि विक्रेता ऐसा करने में असफल रहता है तो समुद्री मार्ग में माल विक्रेता की जिम्मेदारी पर ही माना जायेगा । **[धारा 39(3)]**

(13) क्रेता को माल जाँचने का अधिकार

जब क्रेता को ऐसा माल सुपुर्द किया जाता है जिसकी उसने पहले जाँच नहीं की थी की थी तो उस समय तक माल की सुपुर्दगी अथवा माल की स्वीकृति नहीं मानी जाएगी जब तक कि उसे माल की जाँच करने का उचित अवसर न दिया जाये कि वह यह निश्चित कर सके कि माल अनुबन्ध के अनुसार है अथवा नही । विक्रेता को चाहिए कि वह क्रेता को ऐसा अवसर दे । यदि ऐसा उचित अवसर प्रदान करने के बाद भी क्रेता माल की जाँच नहीं करता तो माल क्रेता द्वारा स्वीकृत समझा जायेगा । **(धारा-41)**

(14) सुपुर्द माल की स्वीकृति :

सुपुर्द माल की क्रेता द्वारा स्वीकृति तब मानी जाएगी जबकि क्रेता ने इसकी सूचना विक्रेता को दे दी है अथवा जब क्रेता माल की सुपुर्दगी प्राप्त करने के बाद कोई ऐसा कार्य करता है जो विक्रेता के हितों के विपरीत हो जैसे माल का पुन: विक्रय करना, माल का उपयोग करना तथा माल में परिवर्तन करना आदि ।

इसी प्रकार जब क्रेता उचित अवधि व्यतीत होने के बाद भी माल अपने पास रखता है और विक्रेता को सूचित नहीं करता है तो भी सुपुर्द माल की स्वीकृति मानी जाएगी । **(धारा-42)**

(15) अस्वीकृत माल के प्रति क्रेता का कर्त्तव्य

जब क्रेता को माल सुपुर्द किया जाता है और यदि वह माल अस्वीकार करने का अधिकार है, यदि माल अस्वीकार कर देता है क्रेता तो उस माल को विक्रेता के पास पहुँचाने के लिए बाध्य नही है । क्रेता के लिए केवल इतना ही आवश्यक है कि वह विक्रेता को यह सूचना दे दे कि उसने माल अस्वीकार कर दिया है । इसका अर्थ यह है कि माल को लौटाने का व्यय तथा जोखिम विक्रेता को ही वहन करने पडेगें । **(धारा-43)**

(16) क्रेता द्वारा सुपुर्दगी लेने में उपेक्षा

यदि विक्रेता सुपुर्दगी देने के लिए इच्छुक एवं तत्पर है और क्रेता से सुपुर्दगी लेने के लिए प्रार्थना करता है और क्रेता इस प्रार्थना के पश्चात् सुपुर्दगी लेने में उपेक्षा अथवा इनकार कर सकता है तो विक्रेता उसकी उपेक्षा अथवा इनकार से होने वाली हानि का हर्जाना एवं माल को रखने एवं उसकी सुरक्षा के सम्बन्ध में किए गए उचित व्यय की राशि क्रेता से प्राप्त करने का अधिकारी है । **(धारा-44)**

13.7 सारांश

माल के स्वामित्व हस्तान्तरण का तात्पर्य माल से सम्बन्धित समस्त अधिकार तथा दायित्व क्रेता को हस्तान्तरित करने से है ।

स्वामित्व हस्तान्तरण का महत्व निम्न दृष्टिकोणों से होता है -

1. माल की जोखिम स्वामित्व के साथ ही हस्तान्तरित होती है ।
2. तृतीय पक्षकारों के विरूद्ध कार्यवाही करने हेतु
3. माल के मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत नहीं करने हेतु ।
4. माल का पुन: हस्तान्तरण करने के लिए ।

माल के स्वामित्व हस्तान्तरण के वैधानिक प्रावधान

माल के स्वामित्व हस्तान्तरण के वैधानिक प्रावधानों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है :-

1. निश्चित अथवा विशिष्ट माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण
2. अनिश्चित माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण
3. अनुमोदन अथवा वापसी की शर्त पर भेजे गये माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण
4. व्यवथापन के अधिकार को सुरक्षित रखने की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण

सुपुर्दगी से आशय-

एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल का हस्तान्तरण ही सुपुर्दगी कहलाता है ।

सुपुर्दगी के तीन प्रकार होते हैं ।

1. वास्तविक सुपुर्दगी
2. रचनात्मक सुपुर्दगी
3. सांकेतिक सुपुर्दगी

13.8 स्व-परख प्रश्न

1. निश्चित तथा अनिश्चित माल से क्या आशय है?
2. वस्तु विक्रय अनुबन्ध में विक्रेता से क्रेता के पास माल का स्वामित्व कब हस्तान्तरित होता है?
3. वस्तु विक्रय अनुबन्ध में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण इतना महत्वपूर्ण क्यों है? कारण दीजिये । स्वामित्व के हस्तान्तरण के नियमों की स्पष्ट रूप से व्याख्या कीजिये ।
4. "माल के स्वामित्व के साथ जोखिम भी हस्तान्तरित होती है' ' विवेचना कीजिये ।
5. वस्तु विक्रय अनुबन्ध में सुपुर्दगी का अर्थ समझाईये और वस्तु की सुपुर्दगी सम्बन्धी नियमों का वर्णन कीजिये।
6. 'सुपुर्दगी के प्रकार' पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिये ।

इकाई 14

अदत्त विक्रेता (Unpaid Seller)

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 अदत्त विक्रेता का अर्थ एवं परिभाषा

14.4 अदत्त विक्रेता के अधिकार

अ. क्रेता के विरूद्ध अधिकार

ब. माल के विरूद्ध अधिकार

14.5 सारांश

14.6 स्वपरख प्रश्न

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :-

- अदत्त विक्रेता के अर्थ को स्पष्ट कर सके
- अदत्त विक्रेता के क्रेता के विरूद्ध तथा माल के विरूद्ध अधिकारों के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त सके।

14.2 प्रस्तावना:

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति मिल कर एक अनुबन्ध का निर्माण करते हैं तो एक निश्चित तिथि पर अनुबन्ध का समापन होना होता है । अनुबन्ध का समापन निम्न दो विधियों द्वारा किया जा सकता है :

1. निष्पादन द्वारा

निष्पादन अनुबन्ध के समापन का सर्वोत्तम तरीका है । इसके द्वारा अनुबन्ध के अधीन दिये गये वचनों को पूरा किया जाता है । विक्रेता निष्पादन तिथि पर क्रेता को वस्तु की सुपुर्दगी कर देता है व क्रेता वस्तु की सुपुर्दगी प्राप्त करके मूल्य का भुगतान कर देता है ।

2. अनुबन्ध खण्डन द्वारा -

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अनुबन्ध के दोनों पक्षकार या कोई एक पक्षकार अपने वचन को पूरा नहीं करता है या पूरा करने में असमर्थ रहता है तो यह अनुबन्ध का खण्डन माना जाता है । अनुबन्ध का खण्डन निम्न दो प्रकार से हो सकता है :-

(1) वास्तविक खण्डन

(2) प्रत्याशित खण्डन

(1) वास्तविक खण्डन :-

जब निष्पादन तिथि पर एक अथवा दोनों पक्षकार अपने वचनों का निष्पादन नहीं करते या करने में असमर्थ रहते हैं तो अनुबन्ध का वास्तविक खण्डन कहेंगे ।

उदाहरण :- ए ने बी को एक जनवरी को 10 टन चावल देने का वचन दिया । एक जनवरी को (निष्पादन के समय) ए चावल की सुपुर्दगी बी को नहीं दे पाया । यह अनुबन्ध का वास्तविक खण्डन माना जायेगा ।

(2) प्रत्याशित खण्डन -

जब अनुबन्ध का कोई पक्षकार निष्पादन में असमर्थता व्यक्त कर देता है तो यह अनुबन्ध का प्रत्याशित खण्डन माना जायेगा, जिसके सम्बन्ध में इस अधिनियम की धारा 60 में निम्न प्रकार स्पष्टीकरण दिया गया है "यदि विक्रय अनुबन्ध का पक्षकार, सुपुर्दगी की तिथि से पूर्व अनुबन्ध का परित्याग करता है तो दूसरा पक्षकार या तो अनुबन्ध को चालू मान सकता है और सुपुर्दगी को तिथि तक इन्तजार कर सकता है, या अनुबन्ध को भंग हुआ मान सकता है और खण्डन से हुई क्षति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है ।"

उदाहरण :-ए, बी को अपनी कार बेचने का ठहराव करता है जिसके अनुसार उसे कार 1 सितम्बर को सुर्पुद करनी है । ए 30 अगस्त को ही बी को अपनी कार बेचने रो इनकार कर देता है । यह प्रत्याशित खंडन है क्योंकि समय से पूर्व ही कार बेचने से इनकार करके खंडन कर दिया गया है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विक्रेता का कर्त्तव्य माल की सुपुर्दगी देना या क्रेता का कर्त्तव्य सुपुर्दगी स्वीकार करके मूल्य का भुगतान करना होता है । यदि अनुबन्ध का निष्पादन नहीं हुआ है, अर्थात् अनुबन्ध का खण्डन हुआ है तो निश्चित ही यह खण्डन एक अथवा दोनों पक्षकारों की गलती का परिणाम है । अत: अनुबन्ध खण्डन के दोषी पक्षकार के विरूद्ध पीड़ित पक्षकार को उपचार प्राप्त होते हैं जो निम्न हैं:-

(1) विक्रेता के विरूद्ध क्रेता के अधिकार

(2) अदत्त विक्रेता के अधिकार

प्रस्तुत अध्याय में हम अदत्त विक्रेता तथा उसके अधिकारों का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे ।

14.3 अदत्त विक्रेता का अर्थ एवं परिभाषा

वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 45 (1) के अनुसार के विक्रेता निम्नलिखित दो परिस्थितियों में 'अदत्त विक्रेता' (Unpaid Seller) माना जाता है :-

(i) जबकि उसे विक्रय किए गए माल का पूरा मूल्य नहीं चुकाया गया है या पूरा मूल्य प्रस्तुत नहीं किया गया है, अथवा

(ii) जब उसे मूल्य के भुगतान में कोई विनिमय-विपत्र अथवा अन्य विनिमय-साध्य पत्र (जैसे चैक, प्रतिज्ञापत्र, हुण्डी आदि) दिया गया है किन्तु यह अप्रतिष्ठित हो गया है ।

अदत्त विक्रेता की विशेषताएँ :-

एक अदत्त विक्रेता की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं ।

(1) ऐसा विक्रेता द्वारा दूसरे व्यक्ति (क्रेता) को माल का विक्रय करता है और माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हो चुका है । यह महत्वहीन है कि उसने माल की सुपुर्दगी क्रेता को दी हो अथवा नहीं दी हो ।

(2) विक्रय किए गए माल के पूरे मूल्य का भुगतान विक्रेता को नहीं किया गया हो अथवा भुगतान प्रस्तुत नही किया गया हो ।

(3) यदि विक्रेता को विक्रय किए गए माल के मूल्य का आशिक भुगतान हुआ हो तथा आशिक भुगतान प्राप्त करना शेष है तो भी वह अदत्त-विक्रेता कहलायेगा ।

(4) यदि विक्रय किए गए माल के मूल्य के भुगतान में विक्रेता को विनिमय बिल, चैक, हुण्डी अथवा प्रतिज्ञा-पत्र दिया गया हो किन्तु वह अप्रतिष्ठित हो गया हो ।

(5) एक बार दत्त विक्रेता पुन: अदत्त-विक्रेता बन जाता है यदि भुगतान में दिया गया विनिमय बिल, चैक आदि अप्रतिष्ठित हो गया हो । यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा विनिमय-बिल या चैक आदि माल की सुपुर्दगी के पूर्व ही अप्रतिष्ठित हुआ हो । यदि क्रेता को माल की सुपुर्दगी के पश्चात् विनियम बिल अप्रतिष्ठित हुआ है तो वह अदत्त विक्रेता कहलायेगा किन्तु वह माल के विरूद्ध अपने अधिकार खो देगा ।

14.4 अदत्त विक्रेता के अधिकार

अदत्त विक्रेता के अधिकारों को निम्न दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

(I) क्रेता के विरूद्ध अधिकार

(1) निष्पादन से मुक्ति

(2) मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करना

(3) क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करना

(4) ब्याज, के लिए वाद प्रस्तुत करना ।

(II) माल के विरूद्ध अधिकार

(1) ग्रहणाधिकार

(2) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार ।

(3) माल के पुन: विक्रय का अधिकार

(I) क्रेता के विरूद्ध अदत्त विक्रेता के अधिकार

वस्तु विक्रय अधिनियम के अन्तर्गत अदत्त विक्रेता को क्रेता के विरूद्ध कुछ अधिकार प्रदान किये गये हैं जिनसे वह अपनी सुरक्षा कर सकता है । ये अधिकार व्यक्तिगत हैं । क्रेता के विरूद्ध प्रमुख अधिकार निम्नलिखित हैं ।

1. निष्पादन से मुक्ति (धारा-32) :

यदि अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार वस्तु की सुपुर्दगी और मूल्य का भुगतान समवर्ती शर्तें हैं और क्रेता मूल्य का भुगतान नहीं करता है या अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार क्रेता को मूल्य का भुगतान पहले करना है एवं क्रेता मूल्य का भुगतान करने में असमर्थ रहता है तो विक्रेता द्वारा क्रेता को वस्तु की सुपुर्द्दगी देना आवश्यक नहीं है ।

2. मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करना (धारा : 55) :

(अ) वस्तु विक्रय अनुबन्ध के अनुसार वस्तु के स्वामित्व का हस्तान्तरण यदि क्रेता को हो चुका है व क्रेता दोषपूर्ण तरीके से मूल्य भुगतान उपेक्षा करता या मना करता है तो विक्रेता पर मूल्य भुगतान का दावा कर सकता है । **(धारा 55(1)**

(ब) जब विक्रय अनुबन्ध के अनुसार वस्तु की सुपुर्दगी को ध्यान दिये बिना मूल्य का भुगतान एक निश्चित तिथि को होना है और क्रेता दोषपूर्ण तरीके से विक्रेता को मूल्य के भुगतान की उपेक्षा करता है या मना करता है तो विक्रेता मूल्य के लिए क्रेता पर वाद प्रस्तुत कर सकता है चाहे क्रेता को वस्तु का स्वामित्व हस्तांतरित हुआ या नहीं।

(धारा 55(2))

3. क्षति के लिए वाद प्रस्तुत करना (धारा 56) :

जब क्रेता ने दोषपूर्ण तरीके से सुपुर्दगी की स्वीकृति या मूल्य के भुगतान की उपेक्षा की है या मना किया है तो विक्रेता, क्रेता पर ऐसी अस्वीकृति से उत्पन्न हानि की पूर्ति के लिए दावा कर सकता है ।

4. ब्याज के लिए याद प्रस्तुत करना :

यदि विक्रेता तथा क्रेता के बीच माल के मूल्य के भुगतान को कोई तिथि निश्चित है तो इस तिथि के बाद भुगतान नहीं करने की दशा में क्रेता द्वारा ब्याज चुकाने का प्रावधान है तो विक्रेता क्रेता से ब्याज की राशि वसूल कर सकता है ।

(धारा 61 (1))

किसी लिखित अनुबन्ध के अभाव में न्यायालय माल के मूल्य का उचित दर से ब्याज चुकाने के लिए भी अपना निर्णय दे सकता है । यह ब्याज उस तिथि से जबकि वस्तु की सुपुर्दगी दी जानी थी, भुगतान की निर्धारित तिथि के बीच के समय के लिए लगाया जा सकता है ।

(धारा 61 (2))

II. अदत्त विक्रेता के माल के विरूद्ध अधिकार

अदत्त विक्रेता का माल के विरूद्ध अधिकार (धारा 46 के अनुसार) निम्न चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है

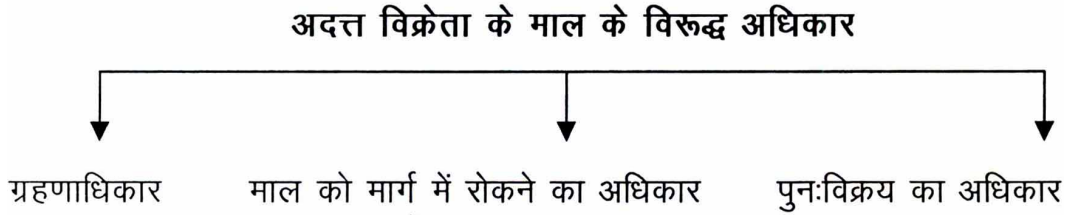

1. ग्रहणाधिकार :-

ग्रहणाधिकार एक ऐसा अधिकार है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के माल को तब तक रोककर रख सकता है जब तक कि उसकी किन्ही निश्चित मांगों को पूरा नहीं कर दिया जाता है । अतः यह एक ऐसा अधिकार है, जिसका प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है, जबकि माल, अदत्त विक्रेता के पास हो अर्थात उसने माल क्रेता को सुर्पुद नहीं किया हो ।

अदत्त विक्रेता कुछ परिस्थितियों में विक्रय किए गए माल को तब तक रोक कर रख सकता है जब कि कि उसे माल के मूल्य का भुगतान नहीं कर दिया जाए । (धारा 47) अदत्त विक्रेता माल पर निम्न दशाओं में ग्रहणाधिकार रख सकता है ।

I. **माल उधार न बेचा गया हो :-** जब माल बिना किसी उधार की शर्त के बेचा गया हो अर्थात् माल के मूल्य का नकद भुगतान होना तय हुआ हो तो ऐसी दशा में विक्रेता माल

को उस समय तक रोककर रख सकता है जब तक उसका मूल्य न चुका दिया जाए । **(धारा 47)**

II. **माल उधार बेचा गया हो लेकिन उधार की अवधि समाप्त हो गई हो :-** यदि माल उधार बेचा गया हो और उधार की अवधि समाप्त हो गई हो तो विक्रेता माल पर ग्रहणाधिकार रख सकता है किन्तु जब तक उधार की अवधि समाप्त नहीं हो जाती, विक्रेता माल पर ग्रहणाधिकार नहीं रख सकता है । **(धारा 47)**

III. **माल का क्रेता का दिवालिया हो गया हो :-** जब क्रेता माल के मूल्य का भुगतान करने से पूर्व ही दिवालिया हो गया हो तथा माल अदत्त विक्रेता के पास पड़ा हो तो भी अदत्त विक्रेता को ग्रहणाधिकार प्राप्त हो जाता है । **(धारा 47)**

IV. **अदत्त-विक्रेता का क्रेता के एजेण्ट अथवा निक्षेपगृहीता होने की दशा में :-** यदि अदत्त-विक्रेता के पास माल क्रेता के एजेण्ट अथवा निक्षेपगृहीता के रूप में है तो वह भी ग्रहणाधिकार का प्रयोग कर सकता है ।

V. **ग्रहणाधिकार व्यक्तिगत अधिकार है :-** यह ध्यान रहे कि ग्रहणाधिकार व्यक्तिगत अधिकार है, अर्थात यह अधिकार स्वयं विक्रेता द्वारा अथवा उसके एजेण्ट द्वारा (जो विक्रेता की ओर से माल पर अधिकार रखता है) प्रयोग में लाया जा सकता है तथा अन्य किसी व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता ।

VI. **अविभाज्य अधिकार :-** ग्रहणाधिकार अविभाज्य होता है, क्योंकि वह विक्रेता के अधिकार में समस्त माल पर लागू होता है और जिस भाग के लिए क्रेता ने भुगतान कर दिया है उस भाग की सुपुर्दगी के लिए भी क्रेता बाध्य नहीं कर सकता है, क्योंकि उस भाग पर भी विक्रेता का ग्रहणाधिकार होता है ।

VII. **माल पर अदत्त-विक्रेता का अधिकार होना चाहिए -** ग्रहणाधिकार की यह सबसे महत्वपूर्ण शर्त है कि उस माल पर अदत्त-विक्रेता का अथवा उसके एजेण्ट का अधिकार होना चाहिए । यदि माल पर क्रेता अथवा उसके एजेण्ट का वैध अधिकार हो चुका है तो अदत्त-विक्रेता का माल पर ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है ।

VIII. **माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण क्रेता को हो जाना चाहिए :-** यह एक अन्य महत्वपूर्ण शर्त है कि अदत्त-विक्रेता का माल पर तभी ग्रहणाधिकार हो सकता है जबकि माल का स्वामित्व क्रेता (अथवा उसके एजेण्ट) को हस्तान्तरित हो चुका हो तथा माल नैसर्गिक रूप से अदत्त-विक्रेता अथवा उसके एजेण्ट के अधिकार में हो ।

IX. **माल के मूल्य के लिए -** अदत्त-विक्रेता को यदि माल का मूल्य न प्राप्त हुआ हो तो वह उसके लिए ग्रहणाधिकार प्राप्त कर सकता है, वह अन्य व्ययों की प्राप्ति के लिए ग्रहणाधिकार प्रयोग नहीं सकता है ।

X. **माल की आशिक सुपुर्दगी की दशा में :-** यदि विक्रेता ने सम्पूर्ण माल में से आशिक माल की सुपुर्दगी क्रेता को कर दी है तो माल के शेष भाग पर जो कि विक्रेता के पास है, वह अपना ग्रहणाधिकार प्रयोग कर सकता है।

ग्रहणाधिकार का अन्त या समाप्ति

ग्रहणाधिकार का अन्त निम्नलिखित परिस्थितियों में किया जा सकता है ।

I. माल वाहक को माल सौंपना :-

जब कोई अदत्त विक्रेता माल पर अपने अधिकार को सुरक्षित रखे बिना ही किसी माल वाहक को माल क्रेता के पास भेजने के लिए दे देता है तो ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है । **(धारा 49(1) a)** के अनुसार जब विक्रेता माल वाहक को माल सौंपते समय माल पर अपने अधिकार को सुरक्षित रख लेता है तो अदत्त विक्रेता का उस माल पर ग्रहणाधिकार तब तक बना रहता है जब तक कि माल उस मालवाहक के पास है ।

उदाहरण :

(i) अ ब से माल खरीदता है । व माल को क्रेता के पास भेजने के लिए रेलवे को सौंपता है तथा बिल्टी अपने स्वयं के नाम से बनवाता है । यहां माल पर विक्रेता का ग्रहणाधिकार है ।

(ii) अ ब से माल खरीदता है तथा ब उसे अ के पास भेजने के लिए रेलवे को सौंपता है जिसकी बिल्टी अ (क्रेता) नाम से बनवाता है । यहां ब का माल पर ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है क्योंकि माल पर अधिकार को सुरक्षित रखे बिना ही माल रेलवे को सौंपा गया है ।

II. क्रेता को माल मिल जाने पर :-

जब माल क्रेता अथवा उसके एजेन्ट के पास पहुंच जाता है तो अदत्त विक्रेता का माल पर ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है । किन्तु यह आवश्यक है कि उसने माल वैधानिक तरीकों से ही प्राप्त किया हो । **(धारा 49(1) (b))**

III. विक्रेता द्वारा अधिकार का परित्याग करना :-

जब माल का अदत्त विक्रेता ही माल पर से ग्रहणाधिकार का परित्याग कर देता है तथा माल सौंप देता है तो ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है । ऐसा परित्याग विक्रेता द्वारा स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से किया जा सकता है । **(धारा 49(1) (c))**

IV. आंशिक सुपुर्दगी :-

यदि विक्रेता क्रेता को माल की आशिक सुपुर्दगी देता है और उससे यह प्रकट होता है कि उसने अपने ग्रहणाधिकार का परित्याग कर दिया है तो भी ग्रहणाधिकार समाप्त हुआ माना जावेगा । (धारा 48)

V. माल का पुन: विक्रय करने पर :-

यदि विक्रेता की सहमति से क्रेता माल का पुन: विक्रय करता है अथवा उसका अन्य किसी प्रकार से व्यवस्थापन कर देता है तो भी विक्रेता का ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है । (धारा 53)

VI. माल के स्वत्व के प्रलेख तृतीय पक्षकार को हस्तान्तरित करने पर :-

जब क्रेता वैधानिक तरीकों से माल पर अधिकार प्राप्त कर माल के स्वत्व के प्रलेख को किसी तृतीय पक्षकार को हस्तान्तरित कर देता है, तो भी ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है । (धारा 53)

VII. मूल्य का भुगतान प्राप्त हो जाने पर :-

यदि अदत्त विक्रेता को माल के मूल्य का भुगतान मिल जाता है, तो मूल्य के प्राप्त होते ही ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है ।

VIII. भुगतान अस्वीकार करने पर :-

यदि क्रेता अदत्त विक्रेता को उचित रूप में उचित समय पर मूल्य का भुगतान करता है अथवा भुगतान करने का प्रस्ताव करता है और विक्रेता उसको स्वीकार नहीं करता है तो ऐसी दशा में अदत्त विक्रेता का ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है ।

2. माल को मार्ग में रोकने का अधिकार -

अदत्त विक्रेता का माल के विरूद्ध द्वितीय अधिकार माल को मार्ग में रोकने का है । दूसरे शब्दों में, एक अदत्त विक्रेता कुछ दशाओं में माल को मार्ग में रोक सकता है । वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 50 के अनुसार, "इस अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत, जब क्रेता दिवालिया हो जाता है और अदत्त विक्रेता जिसने माल किसी वाहक को दे दिया है तो उसे माल को मार्ग में रोक लेने का अधिकार होता है, अर्थात् जब तक माल मार्ग में है वह उसे रोक कर अपने अधिकार में ले सकता है और फिर मूल्य के भुगतान होने तक अपने पास रख सकता

माल को मार्ग में रोकने के अधिकार की आवश्यक शर्तें ।

धारा 50 की विवेचना करने पर ज्ञात होता है कि विक्रेता को मार्ग में माल रोकने का अधिकार निम्नलिखित दशाओं में प्राप्त होता है ।

1. विक्रेता को अदत्त होना चाहिए अर्थात् क्रेता ने विक्रेता को माल को सम्पूर्ण अथवा आशिक मूल्य न चुकाया हो ।
2. विक्रेता ने उस माल को अपने से पृथक कर दिया हो, अर्थात् माल, क्रेता को पहुँचाने के लिए भेज दिया गया है ।
3. माल मार्ग में होना चाहिए अर्थात् माल क्रेता अथवा उसके एजेण्ट के अधिकार में वैधानिक रूप से न हो ।
4. क्रेता दिवालिया हो गया हो ।
5. क्रेता के दिवालिया होने की सूचना विक्रेता को प्राप्त हो गई हो ।
6. विक्रेता के पास से माल का स्वामित्व क्रेता के पास हस्तान्तरित हो चुका हो ।
7. माल क्रेता अथवा उसके एजेण्ट के अधिकार में नहीं पहुँचा हो ।

ग्रहणाधिकार तथा मार्ग में माल रोकने के अधिकार में अन्तर

ग्रहणाधिकार तथा माल को मार्ग में रोकने का अधिकार दोनों ही अदत्त विक्रेता के हितों की सुरक्षा के साधन है । यदि अदत्त विक्रेता के अधिकार में माल है तो उसे मूल्य प्राप्त न होने तक माल को अपने पास रोके रखने के अधिकार को ग्रहणाधिकार माना जाता है, इसके विपरीत जब क्रेता दिवालिया हो गया है और विक्रेता के अधिकार से माल निकल गया है लेकिन क्रेता के अधिकार में नहीं पहुंचा है अर्थात् माल मार्ग में है तो यह विक्रेता द्वारा उसे पुन: अपने अधिकार में लेने का अधिकार है ।

ग्रहणाधिकार एवं माल को मार्ग में रोकने के अधिकार में अन्तर

क्र. सं.	अन्तर का आधार	अदत्त-विक्रेता का ग्रहणाधिकार	माल को मार्ग में रोकने का अधिकार
1.	ग्रहणाधिकार की उत्पत्ति	अदत्त-विक्रेता द्वारा ग्रहणाधिकार का प्रयोग क्रेता द्वारा मूल्य नहीं चुकाने की स्थिति में प्राप्त होता है ।	अदत्त-विक्रेता को माल को मार्ग में रोकने का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब क्रेता दिवालिया हो गया है ।
2.	माल पर अधिकार	अदत्त-विक्रेता को ग्रहणाधिकार उसी दशा में प्राप्त होता है जब माल वास्तविक रूप में अथवा रचनात्मक रूप में विक्रेता के पास हो ।	माल को मार्ग में रोकने का अधिकार अदत्त-विक्रेता को उस समय मिलता है जब माल ऐसे विक्रेता के अधिकार में नहीं होता अर्थात विक्रेता से माल पृथक हो चुका होता है और माल का अधिकार विक्रेता के एजेंट के पास हो और क्रेता को माल प्राप्त नहीं हुआ हो ।
3.	उद्देश्य	ग्रहणाधिकार के अन्तर्गत उस माल को, जो अदत्त विक्रेता के अधिकार में है । भुगतान होने तक रोके रखना है ।	मार्ग में माल रोकने के अधिकर का उद्देश्य उस माल को पुन: अधिकार में लेना होता है जो पहले विक्रेता के अधिकार मे था किन्तु अब उससे पृथक हो गया है तथा अब तीसरे पक्षकार (विक्रेता के वाहक अथवा विक्रेता के एजेन्ट) के पास है।
4.	प्रारम्भ व अन्त	जब माल का ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है, उसके पश्चात ही माल को मार्ग में रोकने का अधिकार उत्पन्न होता है ।	जब माल को मार्ग में रोकने का अधिकार प्रारम्भ होता है तब माल पर ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है ।
5.	अनुक्रम	अदत्त-विक्रेता के अधिकारों के क्रम में पहले ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है ।	अदत्त-विक्रेता के अधिकारों के क्रम में ग्रहणाधिकार की समाप्ति के पश्चात माल को मार्ग में रोकने का अधिकार प्राप्त होता है।
6.	समाप्ति अधिकार	ग्रहणाधिकार समाप्त होने की दशा में अदत्त-विक्रेता को	माल को मार्ग मे रोक लेने पर अदत्त-विक्रेता को माल पर पुन: ग्रहणाधिकार प्राप्त हो जाता है ।

		माल के विरुद्ध कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है ।	
7.	क्षेत्र	ग्रहणाधिकार का क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित है क्योंकि इसमे माल अदत्त-विक्रेता के पास ही होता है ।	इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत है, क्योंकि इसमे पहले माल को मार्ग में रोका जाता है और फिर ग्रहणाधिकार प्रयोग किया जाता है ।

माल के मार्ग में रहने की अवधि

अदत्त-विक्रेता द्वारा माल मार्ग में रोकने का अधिकार उस समय तक ही प्रयोग किया जा सकता है जबकि माल मार्ग में ही हो । अत: यह निश्चित करना कि माल का मार्ग में रहना कब तक समझ जायेगा, एक महत्वपूर्ण प्रश्न हैं । धारा 51 में इससे सम्बन्धित निम्न नियम दिये गये हैं -

1. वाहक या निक्षेपगृहीता को माल सौंपने पर

माल उस समय मार्ग में समझा जायेगा जब विक्रेता ने किसी वाहक या निक्षेपगृहीता को यह माल क्रेता के पास पहुँचने के अभिप्राय से सुपुर्द कर दिया है और वह माल उस समय तक मार्ग में समझा जाएगा जब तक क्रेता अथवा उसका एजेण्ट वैधानिक रूप से उस वाहक अथवा निक्षेपगृहीता रो उसकी सुपुर्दगी न ले लेवें । केवल गन्तव्य स्थान पर माल के पहुँच जाने से ही विक्रेता का यह अधिकार समाप्त नहीं हो जाता है । उदाहरण के लिए अ ने जयपुर से माल ब के पास रेल द्वारा कोटा को भेजा । यदि माल कोटा स्टेशन पर पहुँच गया और ब ने उसकी सुपुर्दगी अभी तक नही ली है तो भी माल मार्ग में ही समझा जायेगा ।

2. नियत स्थान पर पहुँचने से पूर्व ही क्रेता द्वारा सुपुर्दगी

यदि क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि ने माल की सुपुर्दगी, माल के नियत स्थान पर पहुँचने के पूर्व ही, वाहक से वैधानिक ढंग से ले ली है, तो माल का मार्ग में रहना समाप्त हो जाता है ।

3. क्रेता की ओर से वाहक द्वारा माल को रखना

यदि माल के नियत स्थान पर पहुँच जाने के पश्चात् वाहक अथवा निक्षेपगृहीता, क्रेता अथवा उसके एजेण्ट से यह स्वीकार कर लेता है कि वह माल को अब उसकी (क्रेता की) ओर से अपने पास रखता है तो माल का मार्ग मे समाप्त हो जाता है । यदि इसके पश्चात् भी माल मार्ग में रहता है (यथा, क्रेता उसे अन्य किसी नियत स्थान पर भेजे) तो इसका कोई प्रभाव नहीं होता है, अर्थात् विक्रेता माल को मार्ग में नही रूकवा सकता है ।

4. क्रेता द्वारा माल को अस्वीकार करना

यदि क्रेता माल का अस्वीकार कर देता है और माल वाहक अथवा निक्षेपगृहीता के अधिकार में ही है, तो माल का मार्ग में रहना समाप्त नही होता, चाहे विक्रेता ने भी उस माल को वापस लेने से इनकार कर दिया हो ।

5. जहाज को माल की सुपुर्दगी

जब विक्रेता द्वारा किराये पर लिए हुए जहाज पर विक्रेता ने माल सुपुर्द कर दिया है तो यह प्रत्येक मामले की परिस्थिति पर निर्भर होगा कि जहाज का स्वामी माल को वाहक के रूप में रखता है अथवा क्रेता के एजेण्ट के रूप में ।

उदाहरण

I. लन्दन के एक व्यापारी अ ने बम्बई के एक व्यापारी ब को रूई की 100 गाँठे भेजने का आदेश दिया । अ ने इन रूई की गाँठों को लाने के लिए स्वयं अपना जहाज बम्बई भेजा । माल का मार्ग में रहना उस समय ही समाप्त हो जायेगा जब ब गाँठे जहाज पर लदवा देता है ।

II. लन्दन में एक व्यापारी अ ने बम्बई के एक व्यापारी ब को रूई की 100 गांठे भेजने का आदेश दिया । अ ने इस रूई की गांठों को लाने के लिए स्वयं अपना जहाज बम्बई भेजा । ब ने रूई की गांठे जहाज पर लदवा दीं । ब ने जहाजी-बिल्टी अपने नाम में बनवाई ताकि माल उसे (अर्थात् ब को) अथवा उसके आदेश पर सुपुर्द किया जाये । जहाज लन्दन पहुंच जाता है । किन्तु अ द्वारा माल की सुपुर्दगी लेने के पूर्व वह दिवालिया हो जाता है और ब को अभी तक मूल्य का भुगतान नहीं हुआ है । माल को मार्ग में समझा जायेगा और ब माल को रूकवा सकता है ।

6. वाहन की त्रुटि :

यदि वाहक या निक्षेपगृहीता दोषपूर्ण रूप से क्रेता अथवा उसके एजेन्ट को माल सुपुर्द करने से इन्कार कर देता है, तो यद्यपि माल वाहक के पारा ही है, तथापि माल का मार्ग में रहना समाप्त हो जायेगा ।

7. क्रेता द्वारा आंशिक सुपुर्दगी ले लेना :-

जबकि माल की आंशिक सुपुर्दगी क्रेता अथवा उसके एजेन्ट को दे दी जाती है तो भी शेष माल को मार्ग में रोका जा सकता है, किन्तु आंशिक सुपुर्दगी से ऐसा प्रतीत होता है कि कि उसने माल की सम्पूर्ण सुपुर्दगी दे दी है तो माल का मार्ग में होना समाप्त हो जायेगा और और माल को मार्ग में नहीं रोक सकता ।

उदाहरण - स्टेशन पर चीनी की 100 पेटियों में से 50 आ गई हैं और शेष दूसरी गाड़ी से आ रही है । सुपुर्दगी देते समय केवल 50 पेटियां ही मिलीं, जिनकी सुपुर्दगी ले ली गई । बाद में क्रेता शेष 50 पेटियों को नहीं रूकवा सकता है ।

माल को मार्ग में रोकने की विधियाँ

धारा 52 के अनुसार, अदत्त-विक्रेता माल को मार्ग में रोकने के अपने अधिकार को दो प्रकार से प्रयोग में ला सकता हैं ।

(1) माल को वास्तविक रूप में अपने अधिकार में लेकर, अथवा

(2) उस वाहक अथवा निक्षेपगृहीता को, जिसके पास माल है, अपनी सूचना देकर विक्रेता अपने दावे की सूचना या तो उस व्यक्ति को दे सकता है जिनके पास माल वास्तविक रूप में अथवा उसके स्वामी को दे सकता है ।

3. पुन: विक्रय का अधिकार

(धारा 54)

अदत्त विक्रेता का माल के सम्बन्ध में तीसरा अधिकार माल के पुन: विक्रय का अधिकार है । इसको 'पुन: विक्रय' इसलिए कहते है कि एक बार माल का स्वामित्व क्रेता के पास

हस्तान्तरित किया जा चुका है और (मूल्य न मिलने के कारण) अब उसी विक्रेता द्वारा उसी माल का स्वामित्व दूसरे नये क्रेता को हस्तान्तरित किया जा सकता है अथवा किया जा रहा है ।

1. जब माल नष्ट होने वाले स्वभाव का हैं

यद्यपि 'नष्ट होने वाले माल' की परिभाषा किसी भी अधिनियम (इंग्लैण्ड के अधिनियम में भी) में नही दी गई हैं, तथापि इससे तात्पर्य वस्तुओं के केवल भौतिक विनाश से ही वरन् इसके अन्तर्गत व्यापार की दृष्टि से नाश होने वाली वस्तुएँ भी सम्मिलित है, यथा सीमेण्ट यदि पानी से भीगकर कड़ा हो जाए तो व्यापार की दृष्टि से नष्ट हो गया माना जायेगा । जबकि माल नष्ट होने वाले स्वभाव का है और अदत्त विक्रेता ने अपने ग्रहणाधिकार अथवा माल को मार्ग में रोकने का अधिकार प्रयोग कर लिया है तो निम्नलिखित नियम क्रियाशील होगें-

(अ) सूचना देने पर

यदि ऐसे अदत्त विक्रेता ने माल को पुन: विक्रय के अपने विचार की सूचना क्रेता को दे दी है तो यदि वह उचित समय में ऐसे माल के मूल्य का भुगतान नहीं करता है अथवा मूल्य प्रस्तुत नही करता है तो वह (अदत्त विक्रेता) ऐसे माल को उचित समय में पुन: बेच सकता है । यदि अदत्त विक्रेता को अनुबन्ध के खण्डन से कोई हानि हुई तो वह हानि का हर्जाना मूल क्रेता से वसूल कर सकता है । यदि इस प्रकार के पुन: विक्रय से कोई लाभ हुआ है तो ऐसा लाभ विक्रेता का होगा, क्रेता का नही । इसका कारण यह है कि मूल क्रेता अपनी उपेक्षा अथवा त्रुटि का लाभ नही उठा सकता, अत: ऐसे लाभ का अधिकार नही है वरन् हानि होने की दशा में मूल क्रेता द्वारा उसकी पूर्ति करनी होगी ।

(ब) सूचना नही देने पर

यदि ऐसे अदत्त विक्रेता ने माल के पुन: विक्रय के अपने विचार की सूचना क्रेता को नहीं दी है और अदत्त विक्रेता माल का पुन: विक्रय कर देता है तथा उचित समय में ऐसे माल का पुन: विक्रय नही किया हैं (अर्थात् बाद में करता है) तो पुन: विक्रय से प्राप्त होने वाला लाभ मूल-क्रेता का होगा, विक्रेता का नही और हानि के लिए स्वयं विक्रेता उत्तरदायी होगा । इसका आधार यह है कि अदत्त विक्रेता द्वारा क्रेता को माल के पुन: विक्रय की सूचना देना इसलिए आवश्यक है कि क्रेता को एक अवसर और देना न्यायसंगत होगा कि वह (पुन: विक्रय के पहले) माल का मूल्य चुका दे । इसके अतिरिक्त, क्रेता यह देख सके कि उस माल का पुन: विक्रय उचित का से किया जा रहा है, क्योंकि हानि-पूर्ति के लिए क्रेता उत्तरदायी है ।

(2) नये क्रेता को अच्छा अधिकार

यदि अपने ग्रहणाधिकार अथवा माल को मार्ग में रोकने का अधिकार को अदत्त-विक्रेता प्रयोग करके माल को पुन: बेच देता है तो नया क्रेता मूल-क्रेता के विरूद्ध अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेता है, चाहे ऐसे विक्रेता द्वारा मूल-क्रेता को पुन: विक्रय की सूचना दी गई हो अथवा नहीं दी गई हो ।

(3) मूल अनुबन्ध का खण्डित होना

जब क्रेता द्वारा त्रुटि करने की दशा में विक्रेता ने माल के पुन: विक्रय का अधिकार स्पष्ट रूप से प्राप्त कर लिया है और क्रेता की त्रुटि करने की दशा में माल की पुन: बिक्री कर देता है तो ऐसा करने से ही विक्रय के मूल अनुबन्ध का परित्याग हो जाता है मूल अनुबन्ध के

खण्डित हो जाने पर यदि विक्रेता को कोई हानि होती है तो वह मूल-क्रेता से हर्जाना प्राप्त कर सकता है।

(4) पुनः विक्रय अदत्त विक्रेता की इच्छा पर

पुनः विक्रय का अधिकार अदत्त-विक्रेता के विकल्प पर होता है । अतः मूल क्रेता, अदत्त-विक्रेता को ऐसे माल के पुनः विक्रय के लिए बाध्य नहीं कर सकता ।

14.5 सारांश

धारा 45 के अनुसार एक विक्रेता निम्न परिस्थितियों में अदत्त विक्रेता माना जाता है :-

(1) उसे विक्रय किए गए माल का पूरा मूल्य नहीं चुकाया गया है अथवा सम्पूर्ण मूल्य प्रस्तुत नहीं किया गया है, अथवा

(2) उसे मूल्य के भुगतान में कोई विनिमय पत्र अथवा अन्य विनिमय साध्य विलेख दिया गया है किन्तु वह अप्रतिष्ठित हो गया है ।

अदत्त विक्रेता के अधिकार अदत्त विक्रेता को निम्न दो प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं ।

1. क्रेता के विरूद्ध अधिकार
2. माल के विरूद्ध अधिकार

अदत्त विक्रेता के माल के विरूद्ध निम्न तीन अधिकार प्राप्त होते हैं :-

1. ग्रहणाधिकार
2. माल को मार्ग में रोकने का अधिकार
3. पुनविक्रय का अधिकार

14.6 स्वपरख प्रश्न

1. अदत्त विक्रेता से क्या आशय है । एक अदत्त विक्रेता के अधिकारों को स्पष्ट कीजिए ।
2. अदत्त विक्रेता के ग्रहणाधिकार तथा माल को मार्ग में रोकने के अधिकार में अन्तर बताइये ।
3. अदत्त विक्रेता के क्रेता के विरूद्ध अधिकारों की विवेचना कीजिए ।
4. माल को मार्ग में रोकने से क्या आशय है? इसका प्रयोग किन दशाओं में और कैसे किया जा सकता है?
5. एक अदत्त विक्रेता माल का पुनः विक्रय कब कर सकता है?

इकाई- 15

विनिमय साध्य विलेख एवं इनके पक्षकार (Negotiable Instruments and its Parties)

इकाई की रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 विनिमय साध्य विलेख का आशय एवं विशेषताएं

15.4 विनिमय साध्यता

15.5 विनिमयसाध्य विलेखों की मान्यतायें

15.6 विनिमयसाध्यता तथा हस्तान्तरणशीलता में अन्तर

15.7 विनिमयसाध्य प्रपत्रों के प्रकार

15.8 विनिमयसाध्य प्रपत्रों के पक्षकार

15.9 धारक

15.10 मूल्यवान धारक

15.11 यथाविधिधारी

15.12 यथाविधिधारी के विशेष अधिकार

15.13 धारक एवं यथाविधिधारी में अन्तर

15.14 सारांश

15.15 स्व-परख प्रश्न

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

- विनिमयसाध्य विलेख का अर्थ समझ सकेंगे ।
- विनिमयसाध्य विलेख की विशेषताएं जान सकेंगे ।
- विनिमयसाध्यता का वर्णन कर सकेंगे ।
- विनिमयसाध्यता एवं हस्तान्तरण में अन्तर कर सकेंगे ।
- धारक एवं यथाविधिधारी में अन्तर कर सकेंगे ।

15.2 प्रस्तावना

भारत में विनिमय-साध्य विलेख से सम्बन्धित विधेयक सर्वप्रथम वर्ष 1867 में नियुक्त विधि आयोग ने तैयार किया किया था । इसके पश्चात् वर्ष 1879 में तत्कालीन सचिव श्री आर्थर फिलिप्स ने पुन: एक विधेयक वाणिज्य संस्थाओं, बैंकों तथा प्रमुख उद्योगपतियों के सुझाव के आधार पर प्रस्तुत किया । इसके पश्चात् उपर्युक्त विधेयकों में पर्याप्त संशोधन कर वर्ष 1881 में विनिमयसाध्य विलेख अधिनियम पारित किया गया ।

यह अधिनियम **विनिमयसाध्य लेखपत्रों का अधिनियम,**1881 कहलाता है । [धारा 1] यह अधिनियम सारे भारत में लागू होता है । यह प्रतिज्ञापत्र, विनिमय बिल तथा चैक सम्बन्धी अधिनियम है । इस अधिनियम के नियम भारतीय पत्र-मुद्रा अधिनियम, 1871 की धारा 21 (अब विद्यमान रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट, 1934) तथा किसी स्थानीय रीति-रिवाज को प्रभावित नहीं करते । [धारा 1]

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 के सामान्य नियम,यदि वे इस अधिनियम द्वारा निरस्त नहीं कर दिये गये हैं, विनिमयसाध्य लेखपत्रों पर भी लागू होते हैं । साधारणतया हुण्डी पर स्थानीय रीति-रिवाज लागू होते हैं और विनिमय साध्य लेखपत्रों का अधिनियम उनके सम्बन्ध में केवल किसी रीति-रिवाज के अभाव में ही लागू होता है

[धारा 1]

15.3 विनिमयसाध्य विलेख का आशय एवं विशेषताएं

विनिमयसाध्य विलेख एक ऐसा हस्तान्तरणीय प्रपत्र है जो कुछ शर्तों की पूर्ति करता है तथा किसी व्यक्ति के पक्ष में अधिकार को दर्शाता है ।

न्यायाधीश के. सी. विलिस के अनुसार, " विनिमयसाध्य विलेख वह सम्पत्ति है जो सद्भाव से तथा मूल्य के प्रतिफल में प्राप्त करने वाले व्यक्ति को उन दोषों से मुक्त रखती है जो हस्तान्तरणकर्त्ता के स्वामित्व में है ।

न्यायाधीश थामस के अनुसार, " कोई प्रपत्र तब विनिमय-साध्य होता है जब विधि अनुसार या किसी मान्यता प्राप्त व्यापारिक प्रथा द्वारा, जिसका हस्तान्तरण उसके उत्तरदायी पक्षकार को सूचना दिये बिना, सुपुर्दगी अथवा बेचान इस तरह किया जा सकता है कि (अ) उसका तत्कालीन धारक अपने नाम से उसके बारे में वाद प्रस्तुत कर सके, और (ब) उसमें निहित सम्पत्ति मूल्य के बदले सद्भावपूर्ण अन्तरिति को इस प्रकार से हस्तान्तरित हो जाये कि उसमें अन्य हिस्सा बाँट न रहे और जिस व्यक्ति से उसने यह प्रपत्र लिया है उसके स्वामित्व के प्रत्येक दोष से मुक्त रहे ।

विनिमयसाध्य विपत्र अधिनियम की धारा 13 में" विनिमय-साध्य विपत्र से अभिप्राय प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय बिल अथवा चैक से है, जो कि वाहक को अथवा किसी व्यक्ति को आदेशानुसार देय है । "

अर्थात् चैक, विनिमय बिल तथा प्रतिज्ञा पत्र ही विनिमय-साध्य विलेख होते हैं । भारत में इन तीनों के अलावा लाभांश वारन्ट, रेलवे रसीद, सुपुर्दगी आदेश, हुण्डियाँ आदि को भी विनिमय-साध्य विपत्र माना जाता है । अत: यह स्पष्ट है कि विनिमय-साध्य विपत्र एक लिखित प्रपत्र होता है जिसे सम्बन्धित विधि के अन्तर्गत अन्तरित किया जा सकता है अर्थात् विनिमय-साध्य विपत्र वह है जिसमें विनिमय साध्यता होती है ।

विनिमय-साध्य विलेख में निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं ।

1. **लिखित-**विनिमय-साध्य विलेख का लिखित होना आवश्यक है । मौखिक शब्दों का कोई महत्त्व नहीं होता है अर्थात् मौखिक रूप से की गई प्रतिज्ञा अथवा आदेश को विनिमयसाध्य विलेख नहीं कहा जा सकता है ।

2. **लेखक के हस्ताक्षर-**लेखक अथवा वचनदाता के हस्ताक्षर होने पर ही विनिमय-साध्य विलेख विधि मान्य होता हैं । इसके साथ ही यह आवश्यक है कि विनिमय-साध्य विलेख पर किये गये हस्ताक्षर बैंक को नमूने के रूप में दिये गये हस्ताक्षर के अनुरूप हूबहू होने चाहिए ।

3. **भुगतान का समय-**विनिमय प्रलेखों के भुगतान का समय निर्धारित नहीं किया जा सकता है वह माँग पर देय होता है । निश्चित अवधि के पश्चात् देय होने वाले विलेख पर आदेशिती की स्वीकृति लेना आवश्यक होता है।

4. **श्रेष्ठ अधिकार-**एक विनिमय-साध्य विलेख पर हस्तान्तरित को हस्तान्तरक से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त ह। जाते हैं, चाहे हस्तान्तरक ने उस विलेख को अवैधानिक तरीके से प्राप्त करके ही हस्तान्तरित को क्यों न दिया हो।

5. **हस्तान्तरणशीलता-**विनिमय-साध्य विलेख का स्वामित्व वैधानिक रूप से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित किया जा सकता है ।

6. **निश्चित राशि-**ऐसे विलेख जो कि वस्तुओं और सेवाओं के भुगतान के आदेश देते हैं उन्हें विनिमय-साध्य विलेख नहीं कहा जा सकता है । विनिमय-साध्य विलेख में केवल एक निश्चित राशि के भुगतान का आदेश होता है।

7. **स्वामित्व परिवर्तन-**यदि विलेख वाहक विलेख होता है तो विलेख के हस्तान्तरण होने के साथ-साथ उसके स्वामित्व का भी हस्तान्तरण हो जाता है, परन्तु यदि विलेख ' आदेश पर देय ' है तो पृष्ठांकन एवं सुपुर्दगी के द्वारा स्वामित्व दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित हो जाता है ।

15.4 विनिमयसाध्यता

विनिमयसाध्य लेखपत्रों का ' विनिमयसाध्य ' होना उनकी वैधता के लिए आवश्यक है । लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जो लेखपत्र ' विनिमयसाध्य नहीं होते उनमें उपर्युक्त लक्षण भी नहीं होते । अत: जो लेखपत्र, विनिमयसाध्य नहीं है उनका हस्तान्तरण साधारण वस्तुओं की तरह ही होता है, विनिमयसाध्य लेखपत्रों की तरह नहीं ।

कानून के अनुसार केवल ऐसे लेखपत्र, जिनमें निम्नलिखित शब्द हों, विनिमयसाध्य होते हैं तथा उनका हस्तान्तरण विनिमयसाध्य लेखपत्रो की तरह होता है ।

(1) 'अ' को भुगतान करो (Pay A); (2) 'अ' को अथवा उसके आदेशानुसार भुगतान करो (Pay A or order); (3) 'अ' के आदेशानुसार भुगतान करो (Pay to the order of A), (4) 'अ और 'ब' को भुगतान करो (Pay A and B), (5) 'अ' अथवा 'ब' को भुगतान करो (Pay A or B); (6) 'अ' अथवा वाहक को भुगतान करो (Pay A or bearer); (7) वाहक को भुगतान करो (Pay Bearer) ।

15.5 विनिमयसाध्य विलेखों की मान्यताएँ

विनिमयसाध्य विपत्र अधिनियम की धारा 118 व 119 में कुछ मूलभूत मान्यताओं का वर्णन किया गया है । ये मान्यताएँ निम्नलिखित हैं

(1) प्रत्येक विनिमय-साध्य विपत्र के बारे में यह माना जायेगा कि वह प्रतिफल के बदले में लिखा गया है, स्वीकार किया गया है एवं पृष्ठांकित किया गया है ।

(2) जो दिनांक विनिमय-साध्य विपत्र पर होती है उसे उसी दिनांक का लिखा हुआ माना जाता है ।

(3) प्रत्येक स्वीकृत विनिमय बिल उसमें निर्दिष्ट दिनांक के बाद परन्तु उसकी अवधि पूरी होने से पहले समुचित समय के अन्दर स्वीकार किया गया है ।

(4) ऐसे विपत्र, जो मांग पर देय नहीं है, का प्रत्येक अन्तरण उसकी अवधि समाप्ति से पूर्व किया जाता है ।

(5) जिस क्रम में विपत्र पर पृष्ठांकन किये जाते हैं वे उसी क्रम में स्वीकार किये जाते हैं ।

(6) खोये हुये विनिमय-साध्य विपत्र पर विधिवत् स्टाम्प लगी हुई है ।

(7) प्रत्येक धारक, यथाविधिधारी है जब तक कि उसके विरुद्ध यह सिद्ध न हो जाये कि उसने प्रतिफल के बिना अथवा स्वतन्त्र सहमति से विलेख प्राप्त किया है ।

(8) आनादृत विलेख के सम्बन्ध में वाद प्रस्तुत करने पर अप्रमाणित होने पर न्यायालय यह मानता है कि विलेख आनादृत किया गया है ।

15.6 विनिमय-साध्यता तथा हस्तान्तरणशीलता में अन्तर

हस्तान्तरणशीलता विनिमय-साध्य विलेख की एक विशेषता है लेकिन फिर भी हस्तान्तरणशीलता तथा विनिमयसाध्यता के बीच कुछ अन्तर है । किसी भी माल अथवा वस्तु के सम्बन्ध में, जिसका हस्तान्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हो सकता है, हस्तान्तरणकर्त्ता माल अथवा वस्तु के प्राप्तकर्त्ता को अपने से उत्तम अधिकार या स्वामित्व हस्तान्तरित नहीं कर सकता है । उदाहरणार्थ-'अ' पूरा मूल्य देकर 'ब' से गहने खरीदता है परन्तु 'ब' ने वे गहने 'स' के घर से चुराये हैं । ऐसी स्थिति में, यदि 'ब' पकड़ लिया जाए और चुराये हुये गहने 'अ' के पास मिल जाये तो 'अ' का अधिकार 'ब' के अधिकार से अधिक अच्छा नहीं माना जाएगा । उक्त मामले में 'ब' का गहनों पर कोई अधिकार नहीं था, इसलिए 'अ' का भी उन गहनों पर कोई अधिकार नहीं माना जा सकता ।

विनिमय-साध्य विलेखों के सम्बन्ध में ऐसी स्थिति नहीं होती है । यदि विलेख के यथाविधिधारी ने विलेख प्रतिफल के बदले, सद्भावना के साथ तथा सावधानीपूर्वक प्राप्त किया है, तो विलेखों का प्राप्तकर्ता हस्तान्तरणकर्त्ता से अच्छा अधिकार रखता है ।

15.7 विनिमयसाध्य लेखपत्रों के प्रकार

विनिमयसाध्य लेखपत्र दो प्रकार के हो सकते हैं ।

(1) कानून द्वारा विनिमयसाध्य

(2) अन्य या रीति-रिवाजों के अनुसार विनिमयसाध्य

(1) **कानून द्वारा विनिमयसाध्य-**विनिमयसाध्य अधिनियम की धारा 13 के अनुसार, चैक, प्रतिज्ञापत्र तथा विनिमय बिल ही विनिमयसाध्य होते हैं अत: इनको कानून द्वारा विनिमयसाध्य कहा जा सकता है ।

(2) **अन्य या रीति-रिवाजों के अनुसार विनिमयसाध्य-**विनिमयसाध्य लेखपत्रों के अधिनियम में सिर्फ प्रतिज्ञापत्र, विनिमय-बिल तथा चैक का उल्लेख है । किन्तु दूसरे लेखपत्र; जैसे डिवीडेण्ट

वारण्ट, रेलवे रसीद, शेयर वारण्ट, स्टॉक इत्यादि भी व्यापारिक प्रथा अथवा दूसरे अधिनियमों (जैसे भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956) के अन्तर्गत विनिमयसाध्य लेखपत्र माने जाते हैं । जब कोई लेखपत्र निम्नलिखित दो शर्तों को पूरा करता है तो न्याय की दृष्टि में वह विनिमयसाध्य माना जाता है- (क) यदि धारक अपने नाम में उसका प्रयोग कर सके अथवा अपने नाम में वाद प्रस्तुत कर सके, तथा (ख) यदि वह नकद की तरह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित किया जा सके ।

विनिमयसाध्य लेखपत्र सम्बन्धी नियम- धारा 13 के अनुसार जब किसी लेखपत्र में ऐसे कोई शब्द न हों जो कि हस्तान्तरण का विरोध करते हों अथवा जिनसे यह इच्छा प्रकट होती है कि यह हस्तान्तरित नहीं किया जाना चाहिए तो यह आदेशानुसार देय विनिमयसाध्य लेखपत्र कहलाता है ।

15.8 विनिमयसाध्य लेखपत्रों के पक्षकार

(अ) विनिमय-बिल के पक्षकार (Parties to Bills of Exchange) -विनिमय-बिल में प्राय : निम्नलिखित पक्षकार होते हैं :

(1) **बिल का लेखक -**वह व्यक्ति है जो ड्राफ्ट तैयार करता है और उसे देनदार के पास स्वीकृति के लिए भेजता है । [धारा 7]

(2) देनदार (Drawee) -वह व्यक्ति है जिस पर बिल लिखा जाता है । [धारा 7]

(3) **स्वीकर्ता**(Acceptor) -वह व्यक्ति है जो बिल का देनदार होता है और लेखक द्वारा भेजे गये बिल को स्वीकार करता है । अन्य शब्दों में, स्वीकृत कर देने पर देनदार स्वीकर्ता कहलाता है । [धारा 7]

(4) **लेनदार** (Payee) -वह व्यक्ति है जिसे बिल की रकम भुगतान की जाती है । प्राय: लेखक अथवा उसका आदेशित व्यक्ति लेनदार होता है । [धारा 7]

(5) **धारक** (Holder) -वह व्यक्ति है जो बिल का अधिकारी होता है तथा जिसे भुगतान लेने का अधिकार होता है, चाहे भले ही उसने बिल अपने नाम से न खरीदा हो । [धारा 8]

(6) **पृष्ठांकक** (Endorser) -जब बिल का धारक बिल का पृष्ठांकन दूसरे व्यक्ति के नाम करता है, तो उसे पृष्ठांकक कहते हैं । [धारा 15]

(7) **पृष्ठांकिती**(Endorsee) -वह व्यक्ति है जिसके नाम से बिल का पृष्ठांकन होता है । [धारा 16]

(8) **आवश्यकता की दशा में देनदार**(Drawee in case of need) -जब किसी बिल पर इसका पृष्ठांकन करते समय मूल देनदार के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति का नाम लिखा रहता है, जिसके पास धारक आवश्यकता पड़ने पर भुगतान के लिए जा सकता है, तो इस दूसरे व्यक्ति को ' आवश्यकता की दशा में देनदार ' कहते हैं ।[धारा 7]

(9) **धारा 7 के अनुसार प्रतिष्ठा हेतु स्वीकर्ता** (Acceptor for honour) -विनिमय-बिल की अस्वीकृति होने पर या किसी अच्छी जमानत के लिए बिल का नोटिंग या प्रोटेस्ट कराने पर, यदि

बिल के लेखक अथवा किसी पृष्ठांकक की प्रतिष्ठा के लिए कोई अपरिचित व्यक्ति श्रेष्ठ प्रोटेस्ट द्वारा बिल को स्वीकार कर ले, तो उसे ' प्रतिष्ठा हेतु स्वीकर्ता ' कहते हैं ।

(ब) प्रतिज्ञापत्र के पक्षकार (Parties to Promissory Notes)

प्रतिज्ञापत्र में भा प्राय: निम्नलिखित पक्षकार होते हैं ।

(1) लेखक (Maker) -वह व्यक्ति है जो किसी दूसरे व्यक्ति से एक निश्चित रकम का भुगतान करने की लिखित प्रतिज्ञा करता है ।

(2) लेनदार (Payee),

(3) धारक(Holder),

(4) पृष्ठांकक (Endorser), तथा

(5) (पृष्ठांकिती (Endorsee) ।

(स) चैक के पक्षकार (Parties to Cheques)

चैक के भी निम्नलिखित पक्षकार होते हैं :

(1) लेखक (Drawer) -वह व्यक्ति जो कि किसी बैंक का ग्राहक है तथा जो उस बैंक के नाम में चैक लिखता है।

(2) देनदार (Drawee) -वह बैंक होता है, जिस पर चैक लिखा जाता है ।

(3) लेनदार (Payee),

(4) धारक (Holder),

(5) पृष्ठांकक (Endorser), तथा

(6) पृष्ठांकिती (Endorsee) ।

नजदीकी पक्षकार(Immediate Parties) -किसी विलेख के नजदीकी पक्षकार वे होते हैं जिनका एक-दूसरे के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो । उदाहरणार्थ; (क) बिल के लेखक तथा स्वीकर्ता, (ख) प्रतिज्ञापत्र के लेखक तथा लेनदार, (ग) चैक का लेखक तथा लेनदार, और (घ) किसी विलेख के पृष्ठांकक तथा पृष्ठांकिती भी ठहराव द्वारा धारक के नजदीकी पक्षकार हो सकते हैं । [धारा 44 की व्याख्या]

15.9 धारक

परिभाषा (Definition)

" प्रतिज्ञापत्र, विनिमय बिल तथा चैक का धारक वह व्यक्ति है जो ऐसे लेखपत्र को अपने पास रखने तथा जिसके ऊपर भुगतान का दायित्व है उससे उसके भुगतान पाने और वसूल करने का अधिकारी है । " अंग्रेजी विनिमय पत्र अधिनियम के अनुसार, " धारक से आशय एक बिल अथवा विपत्र के उस आदाता अथवा पृष्ठांकिती से है जिसके अधिकार में वह होता है अथवा उसके वाहक से । " यदि प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय-बिल या चैक खो जाय या नष्ट हो जाय, तो उसका अधिकारी वही व्यक्ति होता है जिसे खोने या नष्ट होने के पहले उसके ऊपर वास्तविक अधिकार था । " [धारा 8]

विनिमय साध्य लेखपत्रों का अधिनियम 1881 के अनुसार धारक में दो गुणों का होना आवश्यक है।

(1) धारक को लेखपत्र अपने नाम में रखने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए ।

(2) लेखपत्र की रकम का भुगतान देनदार से अपने नाम में कराने का अधिकार होना चाहिए । अत: धारक का लेखपत्र पर वैधानिक रूप से अधिकार होना चाहिए । वास्तव में, धारक का नाम लेखपत्र पर लेनदार या पृष्ठांकिती के रूप में होना चाहिए । धारक की मृत्यु हो जाने पर उसका उत्तराधिकारी यथाविधिधारक होता है । खोये हुए लेखपत्र को पाने वाला तथा चोरी द्वारा लेखपत्र पाने वाला, धारक नहीं हो सकता है । इसी प्रकार, मालिक की तरफ से लेखपत्र को रखने वाला नौकर भी लेखपत्र का धारक नहीं है ।

15.10 मूल्य के लिए धारी

यदि कोई व्यक्ति ऐसे लेखपत्र का धारक है जिसके लिए मूल्य किसी समय दिया जा चुका है (चाहे मूल्य लेखपत्र के धारक ने स्वयं नहीं दिया हो) तो वह ' मूल्य के लिए धारी ' कहलाता है । ऐसा धारी किसी प्रतिफल के बदले लेखपत्र प्राप्त नहीं करता है । चाहे मूल्य के लिए धारी ने स्वयं मूल्य दिया हो अथवा नहीं किन्तु उसे लेखपत्र से सम्बद्ध सभी पूर्व-पक्षकारों के विरुद्ध वे सभी अधिकार प्राप्त होते हैं जो कि उस व्यक्ति को प्राप्त थे जिससे उसने लेखपत्र प्राप्त किया है । किन्तु जब उसने स्वयं मूल्य न दिया हो तो उसे उस व्यक्ति के विरुद्ध कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा, जिससे कि उसने लेखपत्र प्राप्त किया है । ऐसा धारी हस्तान्तरक से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता ।

15.11 यथाविधिधारी

परिभाषा- "यथाविधिधारी वह व्यक्ति है जो कि प्रतिफल के बदले में विलेख में लिखित धन के देय होने के पहले विलेखपत्र को प्राप्त करता है, तथा जिस व्यक्ति से उसने अधिकार प्राप्त किया है, उसके अधिकार में दोष विद्यमान होने का विश्वास न रखते हुए ऐसे प्रतिज्ञापत्र विनिमय बिल अथवा चैक का अधिकारी हो जाता है जो कि वाहक को देय है अथवा आदेशानुसार देय है । तथा वह ऐसे विलेखपत्र का लेनदार तथा पृष्ठांकिती हो जाता है । ''

यथाविधिधारी के लिए निम्नलिखित बात सिद्ध करनी होती है :

(1) लेखपत्र यदि वाहक को देय है, तो उसका अधिकारी, अथवा, यदि आज्ञा पर देय है तो उसका लेनदार या पृष्ठांकिती बनने के पहले उसके द्वारा प्रतिफल दे दिया गया है ।

(2) लेखपत्र देय होने के पहले प्राप्त किया गया है ।

(3) उसे इस बात का कुछ भी सन्देह न था कि उस व्यक्ति के अधिकार में जिससे कि उसने अपना अधिकार प्राप्त किया है, कोई दोष था अर्थात् लेखपत्र सद्विश्वास से प्राप्त किया गया था।

(4) वह लेखपत्र का धारक है अर्थात् लेखपत्र उसके अधिकार में है ।

(5) लेखपत्र पूर्ण एवं नियमित होना चाहिए । ऐसा मुख और पृष्ठ दोनों ओर होना चाहिए । यदि इसके ' प्रारूप में कोई महत्वपूर्ण दोष है तो धारक, यथाविधिधारी नहीं हो सकता ।

यथाविधिधारी बनने से पहले धारक को ग्रहण करने वाले लेखपत्र के विषय में यथोचित परिश्रम द्वारा, ईमानदारी से तथा पूरी सतर्कता के साथ इस बात की जानकारी कर लेनी चाहिए कि हस्तान्तरक का अधिकार श्रेष्ठ है । यदि कोई व्यक्ति इस नियम के अनुसार, लेखपत्र धारण करता है, तो वह पूर्व धारकों के विरुद्ध श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त करेगा तथा वह बेचान द्वारा दूसरे क्रेता को भी विशुद्ध अधिकार प्रदान कर सकता है ।

15.12 यथाविधिधारी के विशेष अधिकार

यथाविधिधारी के विशेष अधिकार निम्नलिखित हैं :

(1) जब कोई व्यक्ति हस्ताक्षरित तथा स्टाम्प लगा हुआ अपूर्ण लेखपत्र किसी दूसरे व्यक्ति को देता है, तो वह यथाविधिधारी के विरुद्ध यह नहीं कह सकता है कि लेखपत्र उसके द्वारा दिये गये अधिकारों के अनुसार पूर्ण नहीं किया गया है; यदि स्टाम्प लेखपत्र की रकम के लिए पर्याप्त मात्रा में है । [धारा 20]

(2) विनिमयसाध्य लेखपत्र का प्रत्येक पूर्व पक्षकार (लेखक, आहर्ता, स्वीकर्ता, पृष्ठांकक) यथाविधिधारी के प्रति उस समय तक उत्तरदायी रहता है, जब तक कि लेखपत्र का यथोचित रूप से भुगतान न हो जाय । [धारा 36]

(3) जब कोई विनिमय-बिल लेखक के आदेशानुसार कल्पित नाम से देय है और उसी व्यक्ति द्वारा लेखक के हस्ताक्षर के रूप में पृष्ठांकित किया गया है तो स्वीकर्ता यथाविधिधारी के विरुद्ध यह नहीं कह सकता है कि वह नाम कल्पित था । अत: किसी कल्पित नाम से बिल लिखे जाने पर भी यथाविधिधारी को स्वीकर्ता से बिल का भुगतान कराने का अधिकार है । [धारा 42]

(4) जब कोई लेखपत्र किसी यथाविधिधारी को परक्रामित किया गया है, तो उससे सम्बद्ध दूसरे पक्षकार अपने दायित्व से यह कहकर मुक्त नहीं हो सकते कि लेखपत्र की सुपुर्दगी प्रतिबन्धित थी अथवा किसी विशेष प्रयोजन के लिए की गयी थी । [धारा 46]

(5) यद्यपि लेखपत्र की सुपुर्दगी कपट के आधार, पर हुई है किन्तु जब यथाविधिधारी उसे प्राप्त करता है या अन्य व्यक्ति को देता है तो लेखपत्र सम्पूर्ण दोषों से रहित हो जाता हैं । यथाविधिधारी से ऐसे लेखपत्र को प्राप्त करने वाला व्यक्ति भी इसे सम्पूर्ण दोषी से रहित प्राप्त करता है । [धारा 53]

(6) किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र, परे दायी व्यक्ति यथाविधिधारी के विरुद्ध यह नहीं कह सकता कि लेखपत्र खो गया था कपट द्वारा, अपराध द्वारा अथवा अवैध प्रतिफल के बदले प्राप्त किया गया था । [धारा 58]

(7) विनिमयसाध्य लेखपत्र को प्रत्येक धारी विधान के अनुसार यथाविधिधारी ही माना जाता है, जब तक कि उक्त धारणा का खण्डन नहीं कर दिया जाता है । इसका भार दूसरे पक्षकार पर होता है और जब तक ऐसी नहीं कर दिया जाता प्रत्येक धारक यथाविधिधारी माना जाता है । [धारा 18 (जी)]

(8) प्रतिज्ञापत्र लिखने वाला तथा विनिमय-बिल अथवा चैक के लेखक तथा विनिमय-बिल के लेखक की प्रतिष्ठा के लिए विनिमय-बिल का स्वीकर्ता, यथाविधिधारी द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर लेखपत्र के ' मूल रूप में लिखे जाने ' की वैधता को स्वीकार नहीं कर सकते हैं । [धारा 120]

(9) प्रतिज्ञापत्र लिखने वाला तथा आज्ञा पर देय विनिमय-बिल के स्वीकर्ता यथाविधिधारी के द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर प्रतिज्ञापत्र अथवा विनिमय-बिल की तिथि पर उसको पृष्ठांकन करने की लेनदार की 'क्षमता को अस्वीकार नहीं कर सकते । [धारा 121]

15.13 धारक और यथाविधिधारी में अन्तर

क्र. सं.	**अन्तर का**	**धारक**	**यथाविधिधारी**
1.	आवश्यकता	धारक के लिए यथाविधिधारी होना आवश्यक नहीं है ।	यथाविधिधारी के लिए विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारक होना आवश्यक है ।
2.	प्रतिफल	धारक विनिमयसाध्य लेखपत्र बिना प्रतिफल के अर्थात् दानस्वरूप बदले प्राप्त कर सकता है ।	यथाविधिधारी को विनिमयसाध्य लेखपत्र केवल प्रतिफल के बदले प्राप्त करना चाहिए ।
3.	परिपक्वता	विनिमय साध्य लेखपत्र की परिपक्वता के बाद भी कोई व्यक्ति लेखपत्र प्राप्त कर धारक बन सकता है ।	यथाविधिधारी को लेखपत्र परिपक्वता के पहले ही प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।
4.	स्वत्व	धारक का स्वत्व लेखपत्र के हस्तान्तरक की भांति होता है और वह लेखपत्र हस्तान्तरक के विरुद्ध उसके अधिकारों के अधीन ही प्राप्त करता है ।	यथाविधिधारी का स्वत्व हस्तान्तरक के स्वत्व से अच्छा होता है, क्योंकि यथाविधिधारी का स्वत्व हस्तान्तरक के स्वत्व से स्वतन्त्र होता है ।

15.14 सारांश

विनिमयसाध्य विपत्र अधिनियम की धारा 13 में "विनिमय-साध्य विपत्र से अभिप्राय प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय बिल अथवा चैक से है, जो कि वाहक को अथवा किसी व्यक्ति को आदेशानुसार देय है । "

विनिमयसाध्य लेखपत्रों का ' विनिमयसाध्य ' होना उनकी वैधता के लिए आवश्यक है । लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जो लेखपत्र ' विनिमयसाध्य नहीं होते उनमें उपर्युक्त लक्षण भी नहीं होते । अत: जो लेखपत्र, विनिमयसाध्य नहीं है उनका हस्तान्तरण साधारण वस्तुओं की तरह ही होता है, विनिमयसाध्य लेखपत्रों की तरह नहीं ।

हस्तान्तरणशीलता विनिमय-साध्य विलेख की एक विशेषता है लेकिन फिर भी हस्तान्तरणशीलता तथा विनिमयसाध्यता के बीच कुछ अन्तर है । किसी भी माल अथवा वस्तु के सम्बन्ध में, जिसका हस्तान्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हो सकता है, हस्तान्तरणकर्त्ता माल अथवा वस्तु के प्राप्तकर्त्ता को अपने से उत्तम अधिकार या स्वामित्व हस्तान्तरित नहीं कर सकता है ।

विनिमयसाध्य अधिनियम की धारा 13 के अनुसार, चैक, प्रतिज्ञापत्र तथा विनिमय बिल ही विनिमयसाध्य होते हैं अत' इनको कानून द्वारा विनिमयसाध्य कहा जा सकता है ।

"यथाविधिधारी वह व्यक्ति है जो कि प्रतिफल के बदले में विलेख में लिखित धन के देय होने के पहले विलेखपत्र को प्राप्त करता है, तथा जिस व्यक्ति से उसने अधिकार प्राप्त किया है, उसके अधिकार में दोष विद्यमान होने का विश्वास न रखते हुए ऐसे प्रतिज्ञापत्र विनिमय बिल अथवा चैक का अधिकारी हो जाता है जो कि वाहक को देय है अथवा आदेशानुसार देय है । तथा वह ऐसे विलेखपत्र का लेनदार तथा पृष्ठांकिती हो जाता है । "

15.15 स्व-परख प्रश्न

1. विनिमयसाध्य विलेख का अर्थ एवं इसकी विशेषतायें समझाइये ।
2. विनिमयसाध्य विलेखों की क्या-क्या मान्यतायें हैं बतलाइये ।
3. विनिमयसाध्य से क्या आशय है समझाइये ।
4. विनिमयसाध्य लेखपत्रों के कौन-कौन से प्रकार हैं । बतलाइये ।
5. एक विनिमयसाध्य लेखपत्र के कौन-कौन से पक्षकार होते हैं, समझाइये?

इकाई- 16

प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय विपत्र विनिमय साध्य प्रलेख एवं चैक

(Promissory Note-Bills of Exchange-Cheque)

इकाई की रूपरेखा

16.1 उद्देश्य
16.2 प्रस्तावना
16.3 प्रतिज्ञापत्र
16.4 विनिमय विपत्र
16.5 चैक
16.6 विनिमय विपत्र तथा चैक में अन्तर
16.7 प्रतिज्ञापत्र तथा विनिमय विपत्र में अन्तर
16.8 बैंक ड्राफ्ट
16.9 सारांश
16.10 स्व-परख प्रश्न

16.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह समझ सकेंगे कि-

- प्रतिज्ञापत्र का अर्थ क्या है ।
- प्रतिज्ञापत्र की विशेषतायें एवं प्रारूप क्या है?
- विनिमय विपत्र क्या है?
- विनिमय विपत्र के प्रकार एवं स्वरूप क्या है?
- चैक किसे कहते हैं?

16.2 प्रस्तावना

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 13 के अनुसार विनिमय -साध्य विलेखों के तीन मुख्य रूप है-

1. प्रतिज्ञा पत्र
2. विनिमय विपत्र
3. चैक

इनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है ।

16.3 प्रतिज्ञा पत्र

विनिमय- साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 4 के अनुसार प्रतिज्ञा पत्र से तात्पर्य " एक ऐसे लिखित विपत्र (बैंक नोट या करेन्सी नोट नहीं) से है जिस पर उसका लेखक अपने हस्ताक्षर कर यह शर्तरहित प्रतिज्ञा करता है कि वह किसी व्यक्ति विशेष या उसके आदेशानुसार

किसी अन्य व्यक्ति को अ अथवा उस विपत्र के वाहक को एक निश्चित राशि का भुगतान करेगा । "

एक वैध प्रतिज्ञापत्र में निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं ।

(1) लिखित, (2) शर्त-विहीन, (3) भुगतान की प्रतिज्ञा, (4) लेखक द्वारा हस्ताक्षरित, (5) निश्चित लेखक, (6) निश्चित प्रापक, (7) निश्चित राशि एवं (8) मुद्रा में भुगतान ।

इस प्रकार प्रतिज्ञा पत्र में ऋणी अपने हस्ताक्षर के साथ प्रतिज्ञा पत्र लिखिता है तथा उसमें यह वचन देता है कि वह ऋणदाता को एक निश्चित रकम का भुगतान करेगा । प्रतिज्ञा पत्र भी दो प्रकार के होते हैं, प्रथम-मांग पर देय प्रतिज्ञा पत्र, त था द्वितीय-सावधि प्रतिज्ञा पत्र । भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 31 के तहत केवल केन्द्रीय सरकार अथवा रिजर्व बैंक के अतिरिक्त अन्य किसी को भी ' वाहक को देय ' प्रतिज्ञा पत्र विनिमय पत्र लिखने का अधिकार नहीं होता है अत : मांग पर वाहक को देय प्रतिज्ञा पत्र विनिमय पत्र व्यर्थ होता है ।

मांग पर देय प्रतिज्ञा पत्र का प्रारूप

Rs. 50000

USA

Jan. 15, 2007

On demand I promise to pay Sri Himanshu the sum of Rupees Fifty Thousand only for value received.

To,
Sri Himanshu
314, L.S. Ka Rasta
Jaipur

Stamp

Sd/-
Ravi

सावधि प्रतिज्ञा पत्र का नमूना

Rs. 50000

USA

April 20, 2007

One month after date, I promise to pay Sri Himanshu or order the sum of Rupees Fifty Thousand only for value received.

To,
Sri Himanshu
314, L.S. Ka Rasta
Jaipur

Stamp

Sd/-
Ravi

16.4 विनिमय विपत्र

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 5 के अनुसार, ' विनिमय विपत्र एक शर्तरहित आज्ञा पत्र है जिसमें लिखने वाले के हस्ताक्षर होते हैं तथा लेखक विलेख में वर्णित निश्चित धनराशि किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा इसमें लिखित किसी अन्य व्यक्ति को उसके आदेशानुसार अथवा वाहक को भुगतान करने का आदेश देता है । ' विनिमय बिल में ऋणदाता ऋणी को यह अनुदेश देता है कि वह अनुदेशित व्यक्ति को एक निश्चित धनराशि का भुगतान कर दे । यहां पर बिल का लेखक आहरणकर्ता **(Drawer)**तथा जिस व्यक्ति को भुगतान करने का आदेश दिया जाता है वह आहर्ती **(Drawee)** तथा वह व्यक्ति जो भुगतान लेने का अधिकारी है आदाता या पाने वाला **(Payee)** कहलाता है ।

16.5 विनिमय विपत्र के प्रकार -

विनियम विपत्र निम्न प्रकार के होते हैं ।

(1) **सावधि तथा मांग पर देय विपत्र-**जिन विनिमय पत्रों का भुगतान निश्चित अवधि के पश्चात् किया जाता है उसे सावधि विनिमय विपत्र कहा जाता है । जब मांगने पर, देखने पर या प्रस्तुत करने पर विनिमय विपत्र का भुगतान किया जाता है उसे मांग विपत्र कहा जाता है । सावधि विनिमय विपत्र तथा मांग पर देय विपत्र का नमूना निम्न प्रकार है ।

सावधि विनिमय विपत्र का नमूना

Shivam Book House, Jaipur

Rs. 50000 Jaipur

Jan. 15, 2007

Stamp

Three month after date, pay to Ucchav or hisorder the sum of Rupees Fifty Thousand, value received.

To,

M/s Shyam Distributors
Chaura Rasta
Jaipur

for Shivam Book House
Himanshu
Partner

मांग पर देय विनिमय विपत्र का नमूना

Shivam Book House, Jaipur

Rs. 50000 Jaipur

Jan. 15, 2007

Stamp

On demand pay to Ucchav or order the sum of Rupees Fifty Thousand, value paid.

To,

M/s Shyam Distributors
Chaura Rasta
Jaipur

for Shivam Book House
Himanshu
Partner

(2) **व्यापारिक तथा अनुग्रह विपत्र-**जो विपत्र वस्तुओं के क्रय-विक्रय के आधार पर लिखे व स्वीकृत किये जाते हैं, उन्हें व्यापारिक विपत्र कहा जाता है । ये विपत्र देशी, विदेशी, दर्शनी, सावधि, प्रलेखीय अथवा गैर-प्रलेखीय हो सकते हैं । ये विपत्र स्वयं शोध्य होते हैं क्योंकि स्वीकर्ता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह देय तिथि तक खरीदे गये माल को बेचकर अपने विपत्र का भुगतान कर देगा । व्यापारिक बैंक सामान्यत: ऐसे विपत्रों की ही कटौती करते हैं ।

(3) **देशी तथा विदेशी विनिमय विपत्र-**विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 11 में देशी विनिमय विपत्र के सम्बन्ध में प्रावधान किया गया है । इस धारा के अनुसार कोई विपत्र देशी विनिमय विपत्र तब कहलायेगा, जबकि-

1. वह विपत्र भारत में ही लिखा गया हो तथा इसका स्वीकर्ता भारत का निवासी हो । विपत्र का भुगतान भारत में भी हो सकता है तथा विदेश में भी हो सकता है ।
2. वह विपत्र भारत में लिखा गया हो तथा इसका स्वीकर्ता विदेश में रहता है लेकिन विपत्र का भुगतान भारत में ही होना निश्चित हुआ हो ।

विदेशी विनिमय विपत्र धारा 12 के अनुसार कोई भी विनिमय विपत्र जो देशी विनिमय विपत्र नहीं है विदेशी विनिमय विपत्र की श्रेणी में आता है, लेकिन इसके लिए निम्न तथ्य महत्वपूर्ण है:

1. वह भारत में लिखा गया हो किन्तु स्वीकर्ता विदेशी हो तथा उसका भुगतान भी विदेश में होना है ।
2. वह विपत्र जो विदेश में लिखा गया है लेकिन भारत में इसका भुगतान हो ।
3. वह विपत्र जो विदेश में लिखा गया है तथा किसी विदेशी व्यक्ति पर लिखा गया हो ।
4. वह विनिमय विपत्र जो विदेश में लिखा गया हो तथा उसका भुगतान भी विदेश में ही होना हो ।
5. वह विनिमय विपत्र जो विदेश में लिखा गया हो तथा भुगतानकर्ता भारत में रहता हो ।

विदेशी विनिमय विपत्र तीन प्रतिलिपियों में तैयार किया जाता है । प्रत्येक प्रतिलिपि में अन्य प्रतिलिपियों से सम्बन्धित संकेत दिया जाता है तथा लेखक के हस्ताक्षर सभी प्रतिलिपियों पर होते हैं । इस विपत्र की प्रतिलिपि को **'Via'**कहा जाता है । अगर विदेशी विनिमय विपत्र केवल एक ही प्रतिलिपि में लिखा गया हो तो वह **"Sola"**कहलाता है । विनिमय विपत्र की प्रत्येक प्रतिलिपि अन्य प्रतिलिपियों के लिए एक प्रतिनिधि का कार्य करती है । स्वीकर्ता को तीनों प्रतिलिपि अलग-अलग माध्यम तथा समय में भेजी जाती है जिससे एक प्रतिलिपि के मार्ग में खो जाने पर दूसरी प्रतिलिपि प्रस्तुत की जा सके । किसी एक प्रतिलिपि के भुगतान होने पर अन्य प्रतिलिपियाँ रद्द मान ली जाती हैं । स्वीकर्ता केवल एक ही प्रतिलिपि को स्वीकार करता है ।

तथा यदि स्वीकर्ता एक से अधिक प्रतिलिपियों को स्वीकार करता है तथा उनका बेचान करता है तो वह प्रत्येक का धारक यथा विधिधारी होता है अर्थात् स्वीकर्ता सभी प्रतिलिपियों के भुगतान के लिए उत्तरदायी होता है । यदि एक ही व्यक्ति द्वारा किसी विदेशी विनिमय विपत्र की एक से अधिक प्रतिलिपियों को भुगतान में प्राप्त करता है तो वह प्रत्येक के लिए यथाविधिधारी होगा तथा उसे यह अधिकार होगा कि वह प्रत्येक प्रतिलिपि का भुगतान प्राप्त करें।

विदेशी विनिमय विपत्र का नमूना

Rs. 50000	USA
	Jan. 15, 2007
Sixty days after the sight of first bill of exchange (Second and third of the same tenor and date unpaid) pay to the order of M/s Shivam & Co., Jaipur, the sum of Rupees Fifty Thousand only, value received.	
	Stamp
To,	
M/s Shyam	For Bill Gates & Co.
L.S. Ka Rasta	Bush
Jaipur	Partner

(4) **विलेख सहित तथा विलेख रहित बिल** (Documentary and Clean Bills) -वह विनिमय प्रपत्र जिसके साथ आहरणकर्ता माल के स्वामित्व से सम्बन्धित कोई विलेख अथवा दस्तावेज जैसे जहाजी बिल्टी आदि लगा देता है तो उस प्रपत्र को विलेख सहित बिल कहा जाता है । बिल का भुगतान हो जाने पर या उसकी स्वीकृति मिल जाने पर बैंकर द्वारा यह विलेख आहर्ती को दे दिया जाता है । यदि विनिमय प्रपत्र के साथ कोई दस्तावेज अथवा विलेख नहीं लगाया जाता है तो उसे प्रलेख रहित बिल कहा जाता है ।

16.5 चैक (Cheque)

विनिमय-साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 6 के अनुसार, ' चैक एक विनिमय विपत्र है, जो किसी विशिष्ट बैंक पर लिखा जाता है तथा जो मांग के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से देय नहीं है । ' इस प्रकार चैक एक शर्त रहित आज्ञापत्र होता है जिसमें लेखक बैंक को आदेश देता है कि वह एक निश्चित राशि, निश्चित व्यक्ति को अथवा आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा वाहक को दे दे ।

चैक में एक विपत्र की समस्त विशेषतायें होती हैं -

(1) लिखित, (2) शर्तविहीन आदेश, (3) लेखक द्वारा हस्ताक्षरित, (4) निश्चित प्रापक, (5) निश्चित राशि, (6) मुद्रा में देय, (7) तिथि व (8) सुपुर्दगी । ये सब एक धनादेश के आवश्यक तत्व होते हैं ।

चैक मुख्यत : दो प्रकार के होते है ।

(क) आदेश चैक -चैक को आदेश पर देय तब माना जाता है जबकि यह स्पष्ट रूप से इस प्रकार देय हो और जिसमें हस्तान्तरण पर रोक लगाने की भावना से कोई शब्द न लिखा गया हो । ' आदेश ' शब्द का चैक में प्रयोग किया जाना आवश्यक नहीं है ।

चैक का नमूना

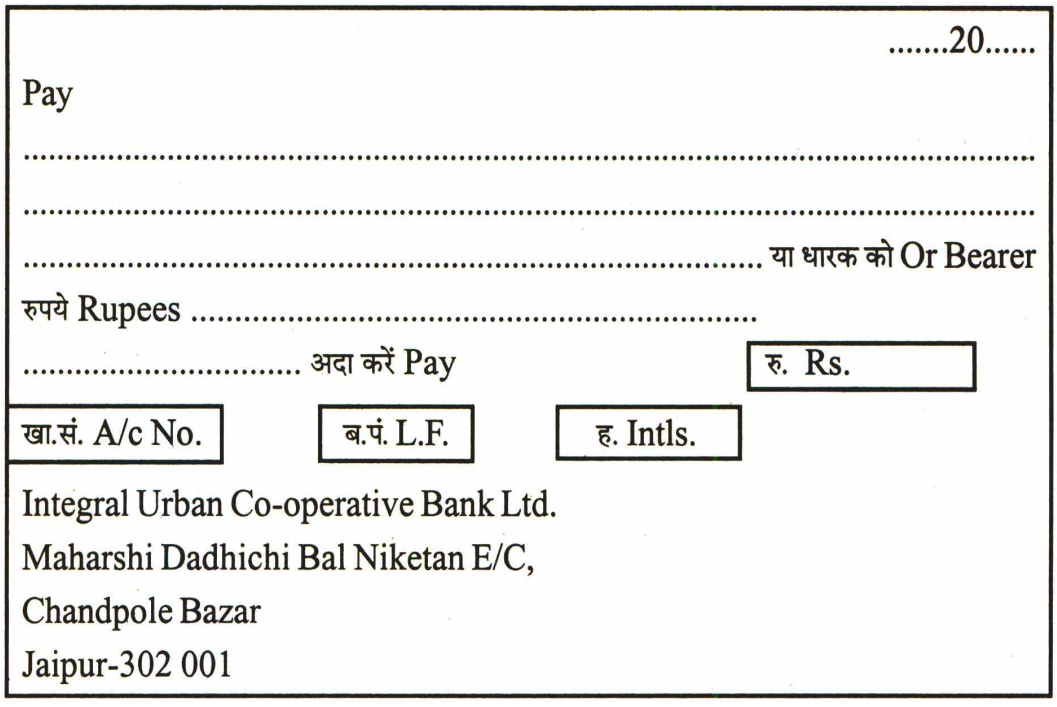
.....20.....

Pay

.....

.....

..... या धारक को Or Bearer

रुपये Rupees .....

..... अदा करें Pay रु. Rs.

खा.सं. A/c No. ब.पं. L.F. ह. Intls.

Integral Urban Co-operative Bank Ltd.
Maharshi Dadhichi Bal Niketan E/C,
Chandpole Bazar
Jaipur-302 001

(ख) वाहक चैक-जब चैक पर स्पष्ट रूप से यह अंकित होता है कि वह वाहक को देय है, तब चैक वाहक को देय माना जाता है । वाहक को देय चैक का भुगतान प्राप्त कर लिए जाने पर, लेनदार अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है ।

चैक में वे सभी बाते निहित होती हैं जो कि एक विनिमय पत्र अथवा बिल में होती है । केवल दो बातों में यह अलग होता है । प्रथम तो यह है कि चैक सदा किसी बैंक पर लिखा जाता है जबकि बिल किसी व्यक्ति पर भी लिखा जा सकता है । दूसरा यह है कि चैक सदा दर्शनी होता है अर्थात्(चैक का भुगतान सदैव मांग पर ही होता है जबकि बिल का भुगतान मांग पर अथवा कुछ अवधि के उपरान्त किया जाता है ।

16.6 विनिमय विपत्र तथा चैक में अन्तर

अन्तर का आधार	विनिमय विपत्र	चैक
1. भुगतानकर्ता	विनिमय विपत्र किसी व्यक्ति अथवा बैंक पर लिखा जा सकता है ।	चैक सदैव किसी बैंक पर लिखा जाता है ।
2. भुगतान का क्षेत्र	इसका भुगतान देश में अथवा देश के बाहर किया जा सकता है ।	इसका उपयोग साधारणतया देशी भुगतानों के लिए किया जाता है ।
3. स्वीकृति	मांग पर देय विनिमय विपत्र की स्वीकृति अनिवार्य है तथा इसके अभाव में देनदार भुगतान के लिए बाध्य नहीं होता है ।	चैक में किसी प्रकार की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है । खाते में धन होने पर बैंक चैक के भुगतान के लिए बाध्य हैं ।
4. प्रकृति	विनिमय विपत्र सावधि तथा मांग पर	चैक का रेखांकन आवश्यक नहीं है ।

	देय, या दोनों प्रकार के हो सकते है।	
5. रेखांकन	विनिमय विपत्र का रेखांकन होना आवश्यक है ।	चैक सदैव मांग पर ही देय होते है ।
6. वाहक को देय	सावधि विनिमय विपत्र वाहक को देय हो सकता है ।	चैक सदैव मांग पर ही देय होते है ।
7. अनुग्रह अवधि	सावधि विनिमय विपत्र के भुगतान के लिए प्रस्तुत किये जाने पर 3 दिन का अनुग्रह दिया जाता है ।	चैक को भुगतान केलिए प्रस्तुत किये जाने पर बैंक तत्काल भुगतान के लिए बाध्य है ।
8. मुद्रांक	सावधि विनिमय विपत्र में उचित मूल्य के मुद्रांक का होना आवश्यक है।	चैक मे कोई मुद्रांक की आवश्यकता नहीं है ।
9. भावना	यस सत्त हस्तान्तरण की भावना से दिया जाता है ।	चैक के पीछे भुगतान की भावना होती है ।
10. दायित्व की समाप्ति	यदि उचित समय में विपत्र देनदार के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाता है तो विपत्र का लेखक तथा अन्य पक्षकार दायित्व से मुक्त हो जाते है।	चैक में लेखक तभी दायित्व से समाप्ति मुक्त होता है जब प्राप्तकर्ता चैक को उचित समय में प्रस्तुत नहीं करता या बैंक फेल हो जाती है ।
11. लेखक की मृत्यु	इसके अन्तगर्त लेखक की मृत्यु होने के पर उसके उत्तराधिकारी उत्तरदायी होते है ।	बैंक मृत्यु की सूचना मिलते ही भुगतान को स्थगित कर देता है ।
12. भुगतान रोकना	लेखक देनदार को विपत्र का भुगतान रोकने की आज्ञा देकर, धारक को हानि नहीं पहुंचा सकता है ।	चैक के लेखक को भुगतान रोकने का पूर्ण अधिकार है ।
13. अनादरण	अनादरण होने पर विनिमय विपत्र के धारक को पूर्व पक्षकारों को सूचित करना आवश्यक है ।	चैक के अनादरण में धारक को सूचना भेजने की आवश्यकता नहीं होती ।

16.7 प्रतिज्ञा पत्र तथा विनिमय विपत्र में अन्तर

अन्तर का आधार	**विनिमय विपत्र**	**प्रतिज्ञा पत्र**
1. पक्षकारों की संख्या	विनिमय विपत्र में तीन पक्षकार लेखक,स्वीकर्ता तथा लेनदार होते हैं ।	प्रतिज्ञापत्र में केवल दो ही पक्षकार लेखक व लेनदार होते हैं ।
2. प्राप्तकर्त्ता	इसमें प्राप्तकर्त्ता व लेखक एक व्यक्ति हो सकते हैं ।	इसमें लेखक स्वयं प्राप्तकर्ता नहीं हो सकता ।

3. प्रकृति	इसमें लेनदार-देनदार को भुगतान का आदेश देता है ।	इसमें देनदार स्वयं लेनदार को भुगतान की प्रतिज्ञा करता है।
4. स्वीकृति	मांग पर देय विपत्र की स्वीकृति आवश्यक है ।	इसमे स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं है ।
5. दायित्व	स्वीकर्ता द्वारा यदि धारक को भुगतान नहीं किया जाता है तो लेखक पर भुगतान दायित्व आ जाता है ।	इसमें लेखक का ही प्रारम्भिक दायित्व होता है ।
6. सम्बन्ध	इसमें लेखक तथा स्वीकर्ता का सम्बन्ध सीधा होता है एवं भुगतान प्राप्तकर्ता तथा स्वीकर्त्ता का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है ।	इसमें लेखक का सीधा सम्बन्ध भुगतान प्राप्तकर्ता से होता है ।
7. अनादरण	इसमें अनादरण की सूचना लेखक तथा सभी पूर्व पक्षकारों को दी जाती है ।	प्रतिज्ञा पत्र में अनादरण होने पर धारक पूर्व पक्षकारों को सूचना देने के लिए बाध्य नहीं होता है ।

16.8 बैंक ड्राफ्ट

विनिमय साध्य विलेख 1881 अधिनियम की धारा 13 में बैंक ड्राफ्ट को विनिमय-साध्य विलेख नहीं माना गया है लेकिन उच्च न्यायालय के एक वाद के अन्तर्गत निर्णय में बैंक ड्राफ्ट को विनिमय बिल माना गया है क्योंकि उसमें वे सभी आवश्यकतायें होती हैं जो कि विनिमय बिल में होनी चाहिये ।

विनिमय-साध्य विलेख अधिनियम की धारा 85 (ए) में बैंक ड्राफ्ट का वर्णन किया गया है । बैंक ड्राफ्ट से हमारा आशय है कि ' यह किसी बैंक की एक शाखा द्वारा उसी बैंक की दूसरी शाखा के नाम लिखा गया एक आदेश होता है जिसमें लिखी हुई रकम को आदेशानुसार व्यक्ति को मांगने पर भुगतान करने के लिए आदेश दिया जाता है । ' इन्हें बैंकर द्वारा पूरा मूल्य चुका दिये जाने के बाद ही जारी किया जाता है । बैंक इस धन प्रेषण की प्रक्रिया के लिए ग्राहक से कुछ कमीशन लेते हैं । एक बैंक ड्राफ्ट के चार पक्ष होते हैं, यथा (1) निर्गमक अधिकोष या शाखा कार्यालय (2) क्रेता (3) प्रापक (4) शोधा अधिकोष या शाखा कार्यालय ।

बैंक ड्राफ्ट का नमूना

No. K. 54231

STATE BANK OF BIKANER AND JAIPUR

Chandpole Bazar, Jaipur

Rs. .....

Date .....

On demand pay to .....

or order Rupees .....

for value received.

To, For State Bank of Bikaner and Jaipur

The State Bank of Bikaner & Jaipur Sd.....Accountant

.....Sd.....Manager

16.9 सारांश

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 13 के अनुसार विनिमय-साध्य विलेखों के तीन मुख्य रूप हैं-

1. प्रतिज्ञा पत्र
2. विनिमय विपत्र
3. **चैक-** यद्यपि बैंक ड्राफ को उक्त अधिनियम के अन्तर्गत विनिमय साध्य विलेख नहीं माना गया है परन्तु एक विवाद के निर्णय में इसे भी विनिमय विपत्र माना गया है ।

16.10 स्व-परख प्रश्न

1. प्रतिज्ञा पत्र किसे कहते है? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए ।
2. विनिमय साध्य विलेख क्या है?
3. चैक क्या है? चैक के प्रकार बताइये ।
4. अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

   अ. विनिमय विपत्र एवं चैक में अन्तर

   ब. प्रतिज्ञा पत्र एवं विनिमय पत्र में अन्तर ।

इकाई- 17

चैक का रेखांकन, चैक रेखांकन के प्रकार एवं प्रभाव

(Crossing of Cheques, their types and Effects)

इकाई की रूपरेखा

17.1 उद्देश्य

17.2 प्रस्तावना

17.3 रेखांकित चैक का आशय

17.4 चैक रेखांकन के प्रकार

17.5 चैक रेखांकन का अधिकार

17.6 रेखांकन का रह होना

17.7 रेखांकित चैक एवं बैंक के अधिकार एवं दायित्व

17.8 यथाविधि भुगतान का आशय

17.9 यथाविधि भुगतान की शर्तें

17.10 रेखांकन के प्रभाव

17.11 सारांश

17.12 स्व-परख प्रश्न

17.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद

- आप चैक रेखांकन का अर्थ समझ सकेंगे ।
- चैक रेखांकन के प्रकार जान सकेंगे ।
- चैक रेखांकन कौन कर सकता है, यह जान सकेंगे ।
- रेखांकित चैक के बारे में बैंक के अधिकार एवं दायित्व जान सकेंगे ।
- चैक रेखांकन के प्रभाव जान सकेंगे ।

17.2 प्रस्तावना

जिन चैकों पर टेडी अथवा समानान्तर रेखाएं नहीं होती हैं उन्हें खुला चैक (Open Cheque) कहते हैं और वे बैंक के काउण्टर पर ही देय होते हैं । किन्तु रेखांकित चैक का भुगतान काउण्टर पर नहीं किया जाता । रेखांकन का उद्देश्य चैक द्वारा भुगतान को सुरक्षित बनाना है । रेखांकन द्वारा चैक सुरक्षित रहता है और चैक की चोरी हो जाने पर अथवा खो जाने पर कोई नुकसान नहीं हो सकता और चैक के वास्तविक लेनदार का पता भी लग जाता है । रेखांकित चैक का भुगतान बैंक केवल बैंक खाते में ही करता है ।

17.3 रेखांकित चैक का आशय

रेखांकित चैक (Crossed Cheques) - [धारा 123 -131] "रेखांकित चैक वह चैक है जिसके मुख (face) पर दो टेढ़ी समानान्तर रेखाएं रेखाओं के बीच कुछ शब्दों के साथ अथवा बिना शब्दों से खींची गयी हों । "इसके बारे में अधिनियम के धारा 123 - 131 में विस्तृत विवरण दिया गया है ।

17.4 चैक रेखांकन के प्रकार

रेखांकन दो प्रकार का होता है- (1) साधारण रेखांकन (general crossing), तथा विशेष रेखांकन (special crossing) । केवल रेखांकन, चैक की विनिमयसाध्यता को सीमित नहीं करता अत: वाहक को देय रेखांकित चेक बिना बेचान के ही एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को दिया जा सकता है । विनिमयसाध्यता को सीमित करने के लिए रेखांकन के साथ-साथ "not negotiable' शब्द का भी होना आवश्यक है ।

1. **साधारण रेखांकन-** धारा 123 के अनुसार जब चैक के मुख पर दो टेढ़ी समान्तर रेखाओं के बीच ' एण्ड कम्पनी ' (and company or & Co.) अथवा दो समानान्तर रेखाएं "not negotiable"शब्द के साथ अथवा बिना इन शब्दों के ही खींची गयी हों, तो यह साधारण रेखांकन कहलाता है ।

2. **विशेष रेखांकन-** धारा 124 के अनुसार जब किसी चैक के मुख पर "not negotiable"शब्द के साथ अथवा इन शब्दों के बिना किसी बैंक का नाम लिखा हो, तो इसे विशेष रेखांकन कहते हैं । कानून की दृष्टि में विशेष रेखांकन से तात्पर्य किसी चैक के मुख पर टेढ़ी रेखाओं के बिना किसी बैंक का नाम लिखने से है । किन्तु चलन के अनुसार बैंक का नाम दो टेढ़ी रेखाओं के बीच में ही लिखा जाता है । इस तरह के रेखांकन में चैक पर लिखे हुए बैंक को ही भुगतान दिया जाता है ।

विशेष रेखांकन के निम्नलिखित प्रकार हैं-

(अ) सीमित रेखांकन-इस प्रकार के रेखांकन में साधारण या विशेष रेखांकन के साथ-साथ कुछ ऐसे शब्द जोड़ दिये जाते हैं जिससे लेनदार के नाम का बोध होता है, जैसे "A/c payee"अथवा "A/c payee only"। जब "A/c payee"अथवा इसी प्रकार के दूसरे शब्दों का प्रयोग होता है, तो ये विनिमयसाध्यता (negotiability) को प्रभावित नहीं करते हैं ।

(ब) अपरक्राम्य रेखांकन-यदि कोई व्यक्ति एक साधारण अथवा विशेष रेखांकित चैक जिस पर "not negotiable"शब्द लिखा हुआ है, प्राप्त करता है तो वह चैक पर उस व्यक्ति से, जिससे उसने वह चैक प्राप्त किया है, अच्छा अधिकार नहीं पा सकता तथा वह दूसरों को भी इससे अच्छा अधिकार नहीं दे सकता । अत: चैक के हस्तान्तरित (transferee) को हस्तान्तरक (transferor) के समान ही अधिकार प्राप्त होता है । यदि हस्तान्तरक चोर है तो हस्तान्तरित भी चोर कहलायेगा ।

धारा 130 के अनुसार चैक को "not negotiable"शब्द के थ रेखांकित करने का उद्देश्य चैक को लिखने वाला तथा उसके धारक को, चैक के गुम जाने पर या चोरी हो 1 जाने पर,

सुरक्षा प्रदान करता है । अपरक्राम्य रेखांकित चैक का दोषयुक्त अधिकार वाला धारक बाद वाले यथाविधिधारी को अच्छा अधिकार नहीं दे सकता है । फिर भी ऐसे चैक को हस्तान्तरित किया जा सकता है । इसका परक्रामण (negotiation) तथा पृष्ठांकन (endorsement) भी हो सकता है । इस प्रकार अपरक्राम्यता का अर्थ यह नहीं कि चैक का परक्रामण नहीं किया जा सकता । यह केवल धारक को सुरक्षार्थ लिखा जाता है ।

17.5 चैक का रेखांकन कौन कर सकता है?

चैक पर निम्नलिखित व्यक्ति रेखांकन कर सकते हैं :

(1) **चैक लिखने वाला-**चैक लिखने वाला चैक पर साधारण या विशेष रेखांकन कर सकता है ।

(2) **चैक का धारक-**यदि चैक अरेखांकित है, तो धारक इस पर साधारण अथवा विशेष रेखांकन कर सकता है ।

(3) **धारक द्वारा विशेष रेखांकन-**जब चैक पर साधारण रेखांकन है, तो धारक इस पर बैंक का नाम जोड़कर विशेष रेखांकन कर सकता है ।

(4) **धारक द्वारा अपरक्राम्यता रेखांकन-**चैक के साधारण अथवा विशेष रेखांकित होने पर भी धारक “not negotiable”शब्द लिख सकता है ।

(5) **बैंक द्वारा रेखांकन-**वह बैंक जिसके नाम से चैक रेखांकित है, दूसरे बैंक के नाम अपने एजेण्ट के रूप में संग्रह कराने के लिए विशेष रेखांकन कर सकता है ।

(6) **धारा 125** के अनुसार यदि चैक अरेखांकित है या उस पर साधारण रेखांकन हो चुका है, तो ऐसे चैक को किसी बैंकर को देने पर वह इस पर साधारण तथा विशेष रेखांकन कर सकता है।

17.6 रेखांकन का रद्द होना

जब कोई चैक लिखने वाले के द्वारा रेखांकित है, तो उसे केवल उसी चैक के ऊपर पूरे हस्ताक्षर के साथ 'नकद भुगतान करो' (pay cash) लिखकर रेखांकन को रद्द करने का अधिकार है । अन्य कोई व्यक्ति रेखांकन को समाप्त नहीं कर सकता ।

17.7 रेखांकित चैक एवं बैंक के अधिकार तथा दायित्व

1. **रेखांकित चैक का भुगतान-** धारा 162 के अनुसार रेखांकित चैक का भुगतान बैंकर को ही होना चाहिए । फिर विशेष रेखांकित चैक का भुगतान उसी बैंकर को अथवा उसके वसूल करने वाले एजेण्ट को ही होना चाहिए; जिसके नाम में चैक रेखांकित किया गया है।

2. **एक से अधिक विशेष रेखांकन -** धारा 127 के अनुसार जब चैक वसूली के उद्देश्य से एजेण्ट के प्रति रेखांकित होने के अलावा एक से अधिक बैंकर के लिए विशेष रेखांकित है, तो जिस बैंक के ऊपर एक चैक लिखा गया है, वह इसका भुगतान देने से इंकार कर देगा ।

3. **बैंकर की रक्षा-** धारा 128 के अनुसार वह बैंक जिसके ऊपर रेखांकित चैक लिखा गया है, अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है, यदि वह ' साधारण प्रगति ' (due course) में लेखक के आदेशानुसार भुगतान कर दे, यद्यपि धन वास्तविक स्वामी के पास न पहुंचा हो । भुगतान देने वाले बैंक को, भुगतान की गयी रकम से चैक के लेखक के नाम करने का अधिकार है ।

17.8 यथाविधि भुगतान का आशय

धारा 10 के अनुसार यथाविधि भुगतान का आशय लेखपत्र के आदेशानुसार सद्भावना से तथा बिना उपेक्षा के विलेख के धारक को बिना किसी सन्देह के भुगतान करना होता है ।

इस प्रकार किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र का भुगतान यथाविधि निम्न शर्तों के पूरा होने पर ही किया जा सकता है।

(1) **लेखपत्र की स्पष्ट शर्तों के अनुसार भुगतान होना चाहिए-**यह अति आवश्यक है कि भुगतान लेखपत्र की शर्तों के अनुसार हो । लेखपत्र पर एक महत्वपूर्ण शर्त समय के बारे में होती है अत: आवश्यक है कि भुगतान उस समय पर ही किया गया हो । समय से पूर्व भुगतान यथाविधि नहीं माना जायेगा ।

(2) **भुगतान सद्भाव से होना चाहिये में किया गया हों-**यह भी आवश्यक है कि भुगतान यह समझते हुए किया गया है कि भुगतान लेने वाला व्यक्ति भुगतान लेने के लिए अधिकार रखता है।

(3) **भुगतान सावधानी से किया जाना चाहिये -**यह बहुत महत्वपूर्ण है कि भुगतान सावधानी से किया गया है । अगर कोई बैंक रेखांकित चैक का भुगतान खिड़की पर कर देता है या लेनदार के आदेश पर देय चैक का भुगतान बिना उचित जांच किये ही कर देता है या चैक लिखने वाले के हस्ताक्षर मिलाये बिना चैक का भुगतान कर देता है तो यह माना जायेगा कि भुगतान असावधानी में किया गया है और यह भुगतान यथाविधि नहीं होगा ।

(4) **लेखपत्र पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति को ही भुगतान किया जाना चाहिये-** भुगतान उसी व्यक्ति को होना चाहिए जिसके अधिकार में वह लेखपत्र है । एक चोर लेखपत्र पर अधिकार नहीं रख सकता अत: उसे किया हुआ भुगतान यथाविधि नहीं माना जाता ।

(5) **केवल मुद्रा में ही भुगतान होना चाहिए-** वास्तव में भुगतान मुद्रा में होना चाहिए और भुगतान लेने वाले व्यक्ति को किसी अन्य रूप में भुगतान लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता । परन्तु चैक या विनिमय बिल द्वारा ही भुगतान यथाविधि मान लिया जाता है । यदि भुगतान लेने वाला उसे स्वीकार कर लेता है ।

(6) **यथाविधि भुगतान होने पर भुगतान देने वाला अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है-** भुगतान ऐसी परिस्थितियों में होना चाहिए कि यह सन्देह न हो कि भुगतान पाने वाला व्यक्ति अनाधिकृत व्यक्ति है ।

17.9 रेखांकन के प्रभाव

जब कोई बैंकर गलती से किसी दूसरे व्यक्ति को अथवा जाली हस्ताक्षर के आधार पर भुगतान कर देता है, तो उसे भुगतान पाने वाले व्यक्ति के प्रति उपचार प्राप्त होता है । किन्तु बैंक ऐसे रुपये वसूल नहीं कर सकता है, यदि रुपया वसूल करने से रुपया पाने वाले को किसी प्रकार की हानि पहुंचे ।

धारा 129 के अनुसार बैंकर यदि रेखांकन के स्वभाव के आदेशानुसार चैक का भुगतान नहीं करता है, तो वह वास्तविक स्वामी के प्रति उत्तरदायी होगा । ऐसी स्थिति में बैंक गलत

भुगतान करने से होने वाली क्षति की पूर्ति चैक के वास्तविक स्वामी को करने के लिए उत्तरदायी है ।

संग्रहकर्ता बैंकर को संरक्षण - धारा 131 के अनुसार यदि कोई बैंकर अच्छी नीयत से (in good faith), सावधानी के साथ किसी रेखांकित चैक का, चाहे रेखांकन साधारण हो अथवा उसी के नाम से विशेष रेखांकन हो, अपने ग्राहक के लिए भुगतान प्राप्त कर लेता है, और बाद में यदि प्रमाणित हो जाता है कि उस पर ग्राहक का खराब अधिकार था, तो भी बैंकर चैक के वास्तविक स्वामी के प्रति केवल इस भुगतान को प्राप्त कर लेने के कारण ही उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता ।

17.10 सारांश

रेखांकित चैक वह चैक है जिसके मुख (face) पर दो टेढ़ी समानान्तर रेखाएं रेखाओं के बीच कुछ शब्दों के साथ अथवा बिना शब्दों से खींची गयी हों । ''

1. **साधारण रेखांकन-** धारा 123 के अनुसार जब चैक के मुख पर दो टेढ़ी समान्तर रेखाओं के बीच' एण्ड कम्पनी ' (and company or & Co.) अथवा दो समानान्तर रेखाएं "not negotiable"शब्द के साथ अथवा बिना इन शब्दों के ही खींची गयी हों, तो यह साधारण रेखांकन कहलाता है ।

2. **विशेष रेखांकन-** धारा 124के अनुसार जब किसी चैक के मुख पर"not negotiable" शब्द के साथ अथवा इन शब्दों के बिना किसी बैंक का नाम लिखा हो, तो इसे विशेष रेखांकन कहते हैं । कानून की दृष्टि में विशेष रेखांकन से तात्पर्य किसी चैक के मुख पर टेढ़ी रेखाओं के बिना किसी बैंक का नाम लिखने से है । किन्तु चलन के अनुसार बैंक का नाम दो टेढ़ी रेखाओं के बीच में ही लिखा जाता है । इस तरह के रेखांकन में चैक पर लिखे हुए बैंक को ही भुगतान दिया जाता है ।

चैक पर निम्नलिखित व्यक्ति रेखांकन कर सकते हैं :

1. **चैक लिखने वाला-**चैक लिखने वाला चैक पर साधारण या विशेष रेखांकन कर सकता है ।

2. **चैक का धारक-**यदि चैक अरेखांकित है, तो धारक इस पर साधारण अथवा विशेष रेखांकन कर सकता है ।

3. **धारक द्वारा विशेष रेखांकन-**जब चैक पर साधारण रेखांकन है, तो धारक इस पर बैंक का नाम जोड़कर विशेष रेखांकन कर सकता है ।

4. **धारक द्वारा अपरक्राम्यता रेखांकन-**चैक के साधारण अथवा विशेष रेखांकित होने पर भी धारक "not negotiable"शब्द लिख सकता है ।

5. **बैंक द्वारा रेखांकन-**वह बैंक जिसके नाम से चैक रेखांकित है, दूसरे बैंक के नाम अपने एजेण्ट के रूप में संग्रह कराने के लिए विशेष रेखांकन कर सकता है ।

6. **धारा 125** के अनुसार यदि चैक अरेखांकित है या उस पर साधारण रेखांकन हो चुका है, तो ऐसे चैक को किसी बैंकर को देने पर वह इस पर साधारण तथा विशेष रेखांकन कर सकता है।

जब कोई चैक लिखने वाले के द्वारा रेखांकित है, तो उसे केवल उसी चैक के ऊपर पूरे हस्ताक्षर के साथ ' नकद भुगतान करो ' (pay cash) लिखकर रेखांकन को रद्द करने का अधिकार है । अन्य कोई व्यक्ति रेखांकन को समाप्त नहीं कर सकता ।

रेखांकित चैक का भुगतान- धारा 162 के अनुसार रेखांकित चैक का भुगतान बैंकर को ही होना चाहिए । फिर विशेष रेखांकित चैक का भुगतान उसी बैंकर को अथवा उसके वसूल करने वाले एजेण्ट को ही होना चाहिए; जिसके नाम में चैक रेखांकित किया गया है ।

धारा 10 के अनुसार यथाविधि भुगतान का आशय लेखपत्र के आदेशानुसार सद्भावना से तथा बिना उपेक्षा के विलेख के धारक को बिना किसी सन्देह के भुगतान करना होता है ।

17.11 स्व-परख प्रश्न

1. चैक रेखांकन से क्या आशय है? समझाइये ।
2. चैक रेखांकन के कौन-कौन से प्रकार हैं?
3. चैक रेखांकन कौन कर सकता है?
4. रेखांकित चैक के भुगतान के सम्बन्ध में बैंक के अधिकार एवं दायित्व क्या है?
5. यथाविधि भुगतान का अर्थ समझाइये इसकी क्या शर्तें हैं?

इकाई- 18

परक्रामण, प्रस्तुति एवं दायित्व से मुक्ति (Negotiation, Presentation and Discharge)

इकाई की रूपरेखा

18.1 उद्देश्य

18.2 प्रस्तावना

18.3 परक्रामण का अर्थ एवं परिभाषा

18.4 परक्रामण का अधिकार

18.5 विनिमयसाध्य लेखपत्र के परक्रामण की विधि

18.6 विनिसाध्य लेखपत्र की प्रस्तुति

18.7 विनिमयसाध्य बिल की स्वीकृति के लिये प्रस्तुति सम्बन्धी नियम

18.8 स्वीकृति के प्रकार

18.9 भुगतान के लिये प्रस्तुति

18.10 भुगतान के लिये प्रस्तुति सम्बन्धी नियम

18.11 प्रस्तुति कब अनावश्यक है

18.12 पक्षकारों की दायित्व से मुक्ति

18.13 सारांश

18.14 स्व-परख प्रश्न

18.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे कि-

- परक्रामण का अर्थ एवं परिभाषा ।
- परक्रामण कौन कर सकता है?
- परक्रामण की विधि समझ सकेंगे ।
- विनिमयसाध्य बिल की स्वीकृति के लिये प्रस्तुति जान सकेंगे ।
- प्रस्तुति सम्बन्धी नियम जान सकेंगे ।

18.2 प्रस्तावना

लेखपत्र का धारक वह व्यक्ति होता है जो कि लेखपत्र को अपने नाम में रखने का और उस लेखपत्र से सम्बन्धित पक्षकारों से धन प्राप्त करने अथवा वसूल करने का अधिकारी होता है। परक्रामण एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे एक व्यक्ति अधिकृत रूप से किसी प्रतिज्ञापत्र, बिल अथवा चैक का धारक बन जाता है । एक वाहक लेखपत्र केवल सुपुर्दगी द्वारा हस्तान्तरित किया जा सकता है परन्तु आदेशित लेखपत्र के हस्तान्तरण के लिये उसका बेचान तथा सुपुर्दगी दोनों ही होना आवश्यक है । अत: आदेशित लेखपत्र पर केवल अधिकार पाने से कोई व्यक्ति उसका धारक नहीं कहलाता है ।

18.3 परक्रामण का अर्थ एवं परिभाषा

परक्रामण का आशय किसी व्यक्ति को प्रतिज्ञापत्रा बिल अथवा चैक के ऐसे हस्तान्तरण से है जिससे वह व्यक्ति उसका धारक हो जाय । एक वाहक लेखपत्र केवल सुपुर्दगी द्वारा हस्तान्तरित किया जा सकता है किन्तु एक आदेशित लेखपत्र के हस्तान्तरण के लिए बेचान तथा सुपुर्दगी दोनों ही आवश्यक होते हैं ।

लेखपत्र का धारक वह व्यक्ति है जो कि लेखपत्र को अपने पास अपने ही नाम में रखने का और उससे सम्बद्ध पक्षकारों से उस पर देय धन प्राप्त करने अथवा वसूल करने का अधिकारी है । अत: किसी लेखपत्र के ऊपर केवल अधिकार पाने से ही कोई व्यक्ति उसका धारक नहीं कहलाता है ।

18.4 परक्रामण कौन कर सकता है?

धारा 51 के अनुसार जब तक परक्रामण का अधिकार स्पष्ट शब्दों द्वारा संकुचित न कर दिया गया हो, प्रत्येक लेखक, आहर्ता, या पृष्ठांकिती लेखपत्र का पृष्ठांकन व परक्रामण कर सकते हैं । किन्तु प्रतिज्ञापत्र का लेखक या बिल का लेखक, जब तक यह उनकी आज्ञा देय न हो अथवा जब तक वे परक्रामण की प्रगति में इसके धारक न बन जायें, इसका पृष्ठांकन नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार कोई व्यक्ति किसी लेखपत्र पर तब तक पृष्ठांकन नहीं कर सकता है, जब तक कि वह इसका वास्तविक धारक न हो । जब किसी लेखपत्र के संयुक्त लेखक, आहर्ता या पृष्ठांकिती हों तो उन सभी को पृष्ठांकन करना चाहिए ।

परक्रामण की निरन्तरता- धारा 60 के अनुसार जब तक किसी लेखपत्र का भुगतान लेखक, देनदार अथवा स्वीकृर्ता द्वारा न हो जाय, तब तक परक्रामण जारी रहता है ।

सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण- धारा 46 के अनुसार सुपुर्दगी, अधिकार का वास्तविक अथवा रचनात्मक हस्तान्तरण मात्र ही है । वास्तविक सुपुर्दगी से तात्पर्य आधिपत्य में वास्तविक परिवर्तन से है, किन्तु रचनात्मक सुपुर्दगी में लेखपत्र हस्तान्तरित की ओर से उसके एजेण्ट, कर्मचारी इत्यादि के अधिकार में रहता है । सुपुर्दगी स्वेच्छापूर्वक तथा इस आशय से की जानी चाहिए कि लेखपत्र की सम्पत्ति हस्तान्तरिती को हस्तान्तरित हो जाय ।

डाक द्वारा सुपुर्दगी-डाक द्वारा सुपुर्दगी की जा सकती है । किन्तु यह लेखपत्र के पक्षकारों की प्रार्थना पर अथवा उनके साथ ठहराव द्वारा की जानी चाहिए । यदि कोई प्रपत्र बिना अधिकार के डाक द्वारा भेजा जाय और वह खो जाय तो उसका स्वत्व प्रपत्र भेजने वाले के पास ही रहेगा तथा उसे ही प्रपत्र के खो जाने की हानि सहन करनी पड़ेगी । किन्तु जब निवेदित व्यक्ति स्पष्ट या गर्भित रूप से डाक द्वारा सुपुर्दगी की मांग करे, तो सुपुर्दगी देने वाला व्यक्ति हानि के लिए उत्तरदायी नहीं होगा ।

18.5 विनिमयसाध्य लेख के परक्रामण की विधि

परक्रामण द्वारा विनिमयसाध्य लेख का हस्तान्तरण दो तरीकों से हो सकता है :

1. **केवल सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण-** धारा 47 के अनुसार यदि प्रतिज्ञापत्र, विनिमय बिल या चैक वाहक को देय है तो केवल सुपुर्दगी द्वारा उसका परक्रामण हो सकता है । किन्तु किसी

लेखपत्र को कपट पूर्वक प्राप्त करके उसे किसी दूसरे व्यक्ति को सुपुर्द कर देने से परक्रामण नहीं हो सकता । इसी प्रकार किसी लेखपत्र को किसी व्यक्ति के पास सुरक्षित रखने के उद्देश्य से सुपुर्दगी देना परक्रामण नहीं कहलाता । इसके अतिरिक्त जब किसी लेखपत्र को किसी घटना के घटित हो जाने की शर्त पर सुपुर्द किया गया है, तो जब तक उक्त घटना घटित नहीं हो जाती तब तक केवल सुपुर्दगी द्वारा लेखपत्र का परक्रामण नहीं समझा जा सकता ।

सुपुर्दगी द्वारा हस्तान्तरण का अभाव-लेखपत्र का वाहक जो कि केवल सुपुर्दगी द्वारा इसका परक्रामण करता है, ' सुपुर्दगी द्वारा हस्तान्तरक ' कहलाता है । जब हस्तान्तरण केवल सुपुर्दगी द्वारा तथा बिना पृष्ठांकन के किया जाता है और जब हस्तान्तरिती का नाम लेखपत्र के ऊपर न हो तो उसके तथा बाद वाले किसी दूसरे हस्तान्तरिती के बीच किसी प्रकार के अनुबन्ध की प्राथमिकता नहीं होती और हस्तान्तरिती लेखपत्र की अप्रतिष्ठा के बाद वाले धारक के प्रति उत्तरदायी नहीं होता ।

सुपुर्दगी अधिकृत व्यक्ति द्वारा- धारा 46 के अनुसार, सुपुर्दगी लेखपत्र के लेखक, स्वीकर्ता अथवा पृष्ठांकक अथवा इन पक्षकारों द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा होनी चाहिए । धारा 57 के अनुसार, जब किसी मृत व्यक्ति द्वारा कोई लेखपत्र पृष्ठांकित किया जा चुका है, किन्तु सुपुर्दगी न हुई हो तो ऐसे मृत व्यक्ति का वैध उत्तराधिकारी केवल सुपुर्दगी द्वारा ही लेखपत्र का परक्रामण कर सकता है ।

शर्तपूर्ण सुपुर्दगी- धारा 46 के अनुसार, विलेख को यथाविधिधारी के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति को उचित प्रतिफल के बदले शर्तपूर्ण अथवा किसी विशेष उद्देश्य के लिए तथा सम्पत्ति को हस्तान्तरित करने के उद्देश्य से सुपुर्द किया जा सकता है ।

2. **पृष्ठांकन द्वारा परक्रामण-** धारा 48 के अनुसार, कपटमय अथवा दोषपूर्ण विलेखों के अतिरिक्त कोई दूसरा विलेख जब किसी व्यक्ति को आदेशानुसार देय है, तो इसके परक्रामण के लिए पृष्ठांकन तथा सुपुर्दगी दोनों आवश्यक होती हैं । जब विलेख की रकम किसी विशेष व्यक्ति को देय होती है, तो इसे आदेशित विलेख कहते हैं । इस प्रकार के विलेख को केवल पृष्ठांकन द्वारा ही हस्तान्तरित किया जाता है ।

18.6 विनिमयसाध्य लेखपत्र की प्रस्तुति

किसी भी बिल की प्रस्तुति दो प्रकार की होती है: (1) स्वीकृति के लिए प्रस्तुति तथा, (2) भुगतान के लिए प्रस्तुति।

1. **स्वीकृति के लिए प्रस्तुति** (Presentment for Acceptance)

विनिमय-बिलों को ही स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है । ऐसा करने से भुगतान के लिए देय तिथि निर्धारित हो जाती है । विनिमय बिल में भुगतान के पहले उसे स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक हो अथवा नहीं दोनों ही स्थितियों में स्वीकृति लेना ही उचित होता है, क्योंकि स्वीकृति लेने से देनदार की साख विनिमय बिल से जुड़ जाती है तथा स्वीकर्ता बिल के लिये प्रतिभू के रूप में दायी हो जाता है ।

प्रस्तुति का समय- धारा 61 के अनुसार, स्वीकृति की मांग करने वाले व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि दर्शनी बिल को व्यापार के दिन तथा व्यापार के घण्टों में देनदार के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करें साथ ही विनिमय बिल की प्रस्तुति यथोचित समय में होनी चाहिए ।

18.7 विनिमय बिल की स्वीकृति के लिए प्रस्तुति सम्बन्धी नियम

1. **निर्दिष्ट अथवा उचित स्थान पर प्रस्तुत करना-**साधारणत: विनिमय-बिल को व्यापार के स्थान पर प्रस्तुत करना चाहिए । किन्तु जब बिल में प्रस्तुति के लिए निर्दिष्ट स्थान दिया गया हो, तो ऐसी अवस्था में धारक का यह कर्तव्य है कि वह बिल को निर्दिष्ट स्थान पर ही प्रस्तुत करें ।

2. **देनदार अथवा उसके एजेन्ट को प्रस्तुत करना-**बिल यथोचित रीति से देनदार या उसके एजेण्ट को प्रस्तुत किया जाय या प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाय ।

3. **निम्नलिखित बिल स्वीकृति के लिए प्रस्तुत नहीं किये जा सकते-** (1) ऐसे बिलों को, जो कि मांगने पर देय हैं (2) एक निश्चित समय के बाद देय है (3) जो एक नियत तिथि पर देय है, स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है ।

4. **निम्नलिखित परिस्थितियों में प्रस्तुति आवश्यक नहीं है-** (1) जब देनदार कल्पित व्यक्ति हो; (2) यदि यथोचित तलाशी के बाद भी देनदार न मिलता हो; (3) जब देनदार अनुबन्ध करने के अयोग्य हो; (4) जब देनदार दिवालिया हो गया हो या मर गया हो और (5) जब प्रस्तुति को किसी अन्य कारण से अस्वीकार कर दिया गया हो ।

स्वीकृति कौन दे सकते हैं?

विनिमय-बिल पर निम्नलिखित व्यक्ति स्वीकृति दे सकते हैं :

देनदार- धारा 34 के अनुसार, जब एक से अधिक देनदार हों, तो सभी अथवा कुछ देनदार भी स्वीकृति दे सकते हैं । लेकिन कई देनदारों में से किसी एक देनदार के द्वारा स्वीकृति देने पर केवल उसी की जिम्मेदारी होगी । लेकिन यदि उन देनदारों में से कोई एक देनदार दूसरों को तभी बाध्य कर सकता है, जबकि उसे दूसरे देनदारों द्वारा स्वीकृति देने का विशेष अधिकार प्राप्त है । जब किसी बिल के अनेक देनदार हों और वे सभी किसी फर्म के साझेदार हों तो उनमें से किसी एक देनदार द्वारा स्वीकृति फर्म को बाध्य कर सकती है, यदि स्वीकृति फर्म के नाम में दी गयी हो ।

18.8 स्वीकृति के प्रकार

धारा 86 के अनुसार, स्वीकृति दो प्रकार की होती है- (1) साधारण स्वीकृति तथा (2) विशेष स्वीकृति । धारक को पूर्ण तथा शर्तरहित स्वीकृति पाने का अधिकार है । यदि उसे शर्तयुक्त स्वीकृति प्राप्त हो, तो वह बिल को अप्रतिष्ठित मानकर प्रोटेस्ट करा सकता है । लेकिन धारक अपनी इच्छानुसार शर्तयुक्त स्वीकृति भी स्वीकार कर सकता है । यदि वह इस प्रकार की स्वीकृति अपने पूर्व पक्षकारों की सम्मति के बिना स्वीकार करता है, तो उसके पूर्व वाले पक्षकार दायित्व से मुक्त हो जाते हैं ।

(1) **साधारण स्वीकृति** (General Acceptance) -जब देनदार बिल के मुख्य पृष्ठ पर या पीठ पर अपना हस्ताक्षर ' स्वीकृत ' लिखकर या बिना लिखे, कर देता है, तो ऐसी स्वीकृति को साधारण या शर्त-रहित स्वीकृति कहते हैं । यहां पर देनदार बिल में दी हुई शर्तों के आधार पर ही स्वीकृति देता है ।

(2) **विशेष स्वीकृति** (Special Acceptance) -जब देनदार बिल पर स्वीकृति के लिए हस्ताक्षर करते समय कोई शर्त लगा देता है, तो इसको विशेष या मर्यादित स्वीकृति कहते हैं । अत: देनदार ऐसी स्वीकृति में बिल में दी गयी शर्तों को बदल देता है । विशेष स्वीकृति निम्न ढंगों से हो सकती है-

(**अ) शर्तयुक्त स्वीकृति**-जब भुगतान के पहले किसी शर्त के पूरा हो जाने के लिए बिल लिखा जाता है, तो इसे शर्तयुक्त स्वीकृति कहते हैं ।

(ब) आंशिक स्वीकृति-जब बिल में लिखी हुई रकम से कम रकम के लिए स्वीकृति दी जाती है तो इसे आंशिक स्वीकृति कहते हैं ।

(स) स्थानीय स्वीकृति-जब किसी विशेष स्थान पर ही भुगतान देने के लिए लिख दिया जाता है तो इसे स्थानीय स्वीकृति कहते हैं । उदाहरणार्थ, ' केवल राजस्थान बैंक जयपुर में ही भुगतान मिलेगा और कहीं नहीं ' जिस जगह भुगतान दिया जायेगा उस जगह का नाम लिख देने से बिल स्थानीय बिल कहलाता है ।

(4) **समय से मर्यादित स्वीकृति-**जब बिल में दी हुई अवधि से अलग किसी दूसरी अवधि पर बिल का भुगतान करने की स्वीकृति दी जाती है, तो इसे समय से मर्यादित स्वीकृति कहते हैं । जैसे यदि कोई बिल दो महीने बाद देय हो लेकिन स्वीकर्ता उसे चार साह बाद देने के लिए स्वीकार करें ।

18.9 भुगतान के लिए प्रस्तुति

नियमानुसार धारक का यह कर्तव्य होता है कि वह भुगतान के लिए विनिमयसाध्य लेखपत्र प्रस्तुत करे । धारक की ओर से उसका एजेण्ट भी लेखपत्र प्रस्तुत कर सकता है । साधारणत: भुगतान के लिए लेखपत्र को देनदार के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए निम्न नियमों का पालन करना पड़ता है:

धारा 62 के अनुसार, जब कोई प्रतिज्ञापत्र देखने के कुछ समय बाद देय है, तो धारक को ऐसे प्रतिज्ञापत्र को लेखक के सम्मुख यथोचित समय के अन्दर साधारण व्यापार के दिन व्यापार करने के समय में प्रस्तुत करना चाहिए ।

धारा 64 के अनुसार, प्रतिज्ञापत्र विनिमय बिल तथा चैक के भुगतान के लिए परिपक्वता पर उन्हें धारक द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा क्रमश: उनके लेखक, स्वीकर्ता अथवा देनदार के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने चाहिए । प्रस्तुति में त्रुटि करने पर लेखपत्र के दूसरे पक्षकार धारक के प्रति उत्तरदायी नहीं रहते । पक्षकारों के बीच ठहराव के अनुसार तथा व्यापार की प्रथा के अनुसार लेखपत्र की प्रस्तुति डाक द्वारा भी की जा सकती है । किन्तु जब प्रतिज्ञापत्र मांग पर देय होता है और उसमें किसी निश्चित स्थान पर देय होने का निर्देश नहीं है तो लेखक को बाध्य करने के उद्देश्य से उसका भुगतान के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होता ।

18.10 भुगतान के लिए प्रस्तुति सम्बन्धी नियम

धारा 65 के अनुसार, भुगतान के लिए लेखपत्र को साधारण कारोबारी समय में प्रस्तुत करना चाहिए और यदि देनदार बैंक है, तो बैंक के सम्मुख लेखपत्र को बैंक से लेन-देन के समय प्रस्तुत करना चाहिए ।

धारा 66 के अनुसार, जब कोई प्रतिज्ञापत्र या विनिमय-बिल किसी निश्चित दिन या देखने के बाद किसी निश्चित समय में देय है तो उसे परिपक्व होने पर भुगतान के लिए प्रस्तुत करना चाहिए ।

धारा 67 के अनुसार, **यदि कोई प्रतिज्ञापत्र किस्तों में देय है** तो प्रत्येक किस्त के भुगतान के निश्चित तिथि के तीसरे दिन बाद इसे प्रस्तुत करना आवश्यक है । इसी प्रकार मांग पर देय प्रतिज्ञापत्र तथा बिल भुगतान उसे प्राप्त करने के उचित समय के पश्चात् प्रस्तुत करना चाहिए ।

धारा 74 के अनुसार, **यदि लेखपत्र मांग पर देय है** तो धारक को उसे प्राप्त करने के बाद यथोचित समय के भीतर भुगतान के लिए प्रस्तुत करना चाहिए ।

धारा 105 के अनुसार, यथोचित समय को निश्चित करते समय लेखपत्र की प्रकृति तथा उसी प्रकार के दूसरे लेखपत्र के सम्बन्ध में व्यवहार को साधारण प्रगति का ध्यान रखा जाना चाहिए ।

धारा 75ए के अनुसार, **प्रस्तुति सम्बन्धी क्षम्य विलम्ब**-यदि प्रस्तुति में विलम्ब, दुराचरण, उपेक्षा या दोष के अतिरिक्त ऐसे कारणों से हुआ हो, जिन पर धारक का कोई अधिकार नहीं था तो इस प्रकार का विलम्ब क्षम्य होता है । अत: जब विलम्ब होने का कोई कारण न हो तो लेखपत्र को यथोचित समय के अन्दर प्रस्तुत करना चाहिए ।

विलम्बन काल-संकटकाल में कोई भी देश कानून द्वारा बिल के भुगतान की तिथि तथा दूसरे दायित्व को निश्चित समय के लिए स्थगित कर सकता है । अत: इस निश्चित काल के लिए जो विलम्ब होता है उसे विलम्ब काल कहते हैं । जब कोई लेखपत्र इस विलम्ब काल के मध्य परिपक्व हो जाता है तो ऐसे लेखपत्र की प्रस्तुति में विलम्ब काल के कारण जो विलम्ब होता है वह क्षम्य होता है ।

धारा 68 के अनुसार, **प्रस्तुति का स्थान**-यदि प्रतिज्ञापत्र, विनिमय-बिल या चैक किसी निश्चित स्थान पर देय है, तो उनके पक्षकारों को उत्तरदायी बनाने के लिए उसी स्थान पर प्रस्तुत करना चाहिए ।

धारा 69 के अनुसार, **निश्चित स्थान पर देय लेखपत्र**-प्रतिज्ञापत्र या बिल के लेखक एवं आहर्ता को उत्तरदायी बनाने के लिए उन्हें उसी स्थान पर भुगतान के लिए प्रस्तुत करना चाहिए जो कि लेखपत्र में दिया गया है ।

धारा 70 के अनुसार, **यदि प्रतिज्ञापत्र या बिल के भुगतान के लिए कोई विशेष स्थान निर्धारित न किया गया हो** तो उन्हें व्यापार के स्थान पर या देनदार के निवास-स्थान पर प्रस्तुत करना चाहिए ।

धारा 71 के अनुसार, जब लेखपत्र के लेखक, देनदार या स्वीकर्ता या व्यापार-स्थान या निवास-स्थान अज्ञात हो, या अनिश्चित हो तथा लेखपत्र में यदि भुगतान के लिए प्रस्तुति का कोई स्थान भी न दिया गया हो, तो लेखपत्र के पक्षकार जहां कहीं भी मिलें, प्रस्तुति वहीं की जा सकती है ।

धारा 72 के अनुसार, **देनदार को उत्तरदायी ठहराने के लिए चैक की प्रस्तुति-**बैंकर को उत्तरदायी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि धारक चैक को भुगतान के लिए चैक के लेखक तथा देनदार के सम्बन्ध में किसी प्रकार का परिवर्तन होने के पहले बैंक के सम्मुख प्रस्तुत करें ।

धारा 73 के अनुसार, **अन्य पक्षकार को बाध्य करने के लिए चैक की प्रस्तुति-**लेखक के अतिरिक्त अन्य पक्षकारों को बाध्य बनाने के लिए बैंक की सुपुर्दगी प्राप्त करने के बाद, उसे यथोचित समय के भीतर प्रस्तुत करना चाहिए ।

धारा 74 के अनुसार, चैक के धारक का यह कर्तव्य है कि वह उसे यथोचित समय के अन्दर भुगतान के लिए बैंक के सम्मुख प्रस्तुत करे । यदि ऐसा करने में कोई त्रुटि करे और इसी बीच चैक के लेखक तथा बैंक में किसी प्रकार का व्यावहारिक परिवर्तन हो जाय तो क्षति होने पर चैक का धारक स्वयं इस क्षति के लिए उत्तरदायी होगा ।

धारा 75 के अनुसार, **प्रस्तुति किसको होनी चाहिए ?-** (1) लेखपत्र को स्वीकृति अथवा भुगतान के लिए लेखक या स्वीकर्ता के यथोचित अधिकृति एजेण्ट के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सकता है, तथा (2) उपर्युक्त व्यक्तियों की मृत्यु पर लेखपत्र उनके वैध प्रतिनिधि को प्रस्तुत किया जा सकता है । (3) उक्त व्यक्तियों के दिवालिया हो जाने पर लेखपत्र को उनके अभिहस्तांकिती या राजकीय प्रापक के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सकता है ।

धारा 77 के **अनुसार, भुगतान के लिए प्रस्तुत बिल के सम्बन्ध में उपेक्षापूर्ण व्यवहार के लिए बैंकर का दायित्व-**जब विनिमय-बिल किसी विशेष बैंक द्वारा देय है तथा उसे भुगतान के लिए उस बैंक के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है, किन्तु अप्रतिष्ठित कर दिया गया है, तो बैंक उसके उपेक्षापूर्ण या अनुचित ढंग से रखने तथा प्रयोग करने के लिए अथवा इस प्रकार से हस्तान्तरित करने के लिए जिससे धारक को क्षति पहुंचे, धारक की क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होता है ।

18.11 प्रस्तुति कब अनावश्यक है?

निम्नलिखित परिस्थितियों में धरा 76 के अनुसार, भुगतान के लिए प्रस्तुति की आवश्यकता नहीं होती तथा लेखपत्र प्रस्तुति की तिथि के दिन अप्रतिष्ठित समझा जाता है ।

(1) **जब प्रस्तुति रोक दी गयी हो-**जब लेखक, लेनदार या स्वीकर्ता स्वयं लेखपत्र की प्रस्तुति को सके अथवा जब वह खोयी हुई हुण्डी की प्रतिलिपि देने से इंकार करे तो प्रस्तुति अनावश्यक हो जाती है ।

(2) **जब व्यापारिक स्थान बन्द हो-**जब लेखपत्र, लेखक, स्वीकर्ता अथवा देनदार के व्यापार के स्थान पर देय है और यदि वे उस स्थान को व्यापार के दिन तथा व्यापार के समय बन्द रखें तो भुगतान के लिए प्रस्तुति अनावश्यक होती है ।

(3) **जब पक्षकार न मिल सके-**जब लेखपत्र किसी विशेष या निश्चित स्थान पर देय है और यदि लेखपत्र का लेखक, स्वीकर्ता या देनदार इन लोगों का एजेण्ट उक्त स्थान पर उपस्थित न हो तो प्रस्तुति अनावश्यक होती है ।

(4) **जब उचित खोज के बाद भी पक्षकारों का पता न लगे-**जब लेखपत्र किसी निर्दिष्ट स्थान पर देय न हो, किन्तु उचित तलाश के बाद भी लेखक, स्वीकर्ता अथवा देनदार का कहीं पता न लगे तो प्रस्तुति अनावश्यक होते हैं ।

(5) **जब भुगतान करने की प्रतिज्ञा की गयी हो-**जब प्रस्तुति मांगने का अधिकारी पक्षकार प्रस्तुति न होने पर भी भुगतान देने की प्रतिज्ञा करे ।

(6) **जब लेखक, स्वीकर्ता या देनदार इस बात को जानते हुए कि लेखपत्र देय तिथि पर भुगतान के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया-** (क) आंशिक भुगतान करता है, या (ख) पूर्ण अथवा आंशिक रूप से भुगतान करने का वचन देता है, या (ग) किसी अन्य रीति से प्रस्तुति मांगने के अधिकार का परित्याग कर देता है ।

(7) **जब लेखक को कोई क्षति न हो-**यदि अप्रस्तुति के फलस्वरूप लेखक को किसी प्रकार की क्षति न हो, तो प्रस्तुति न करना अनावश्यक होता है ।

(8) जब कोई प्रतिज्ञापत्र मांगने पर देय हो, परन्तु किसी निर्दिष्ट तिथि पर देय न हो ।

(9) जब देनदार कोई कल्पित व्यक्ति है अथवा ठहराव करने के अयोग्य है ।

(10) जब दनेदार और लेनदार एक ही व्यक्ति है ।

(11) जब कोई विनिमय-बिल को अस्वीकृति के कारण अप्रतिष्ठित हो गया हो ।

(12) जब युद्ध छिड़ने के कारण अथवा किसी दूसरी वजह से प्रस्तुति करना असम्भव हो जाय।

18.12 पक्षकारों की दायित्व से मुक्ति

[धारा 82 - 90]

लेखपत्र के ऊपर बाकी रकम का भुगतान करके उत्तरदायित्व से मुक्ति पायी जा सकती है ।

लेखपत्र से मुक्ति पाने के साधारणतया दो अर्थ है :

(क) लेखपत्र का उन्मुक्त होना-जब लेखपत्र से सम्बद्ध प्रत्येक पक्षकार का अधिकार समाप्त हो जाता है तथा उस लेखपत्र का पराक्रमण भविष्य में नहीं हो सकता है, तो ऐसी दशा में लेखपत्र उन्मुक्त हुआ समझा जाता है ।

(ख) लेखपत्र के पक्षकारों का उत्तरदायित्व से मुक्त होना-जब किसी एक अथवा एक से अधिक पक्षकारों के दायित्व से मुक्त हो जाने पर अन्य पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त नहीं होते हैं तथा लेखपत्र का परक्रामण होता है तो लेखपत्र के कुछ पक्षकारों को ही दायित्व से मुक्ति मिल जाती है, शेष को नहीं ।

निम्नलिखित अवस्थाओं में किसी लेखपत्र का लेखक, देनदार या स्वीकर्ता अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो सकता है :

(1) **भुगतान द्वारा-**जब किसी लेखपत्र का लेखक, स्वीकर्ता अथवा देनदार लेखपत्र के धारक को भुगतान कर देता है, तब सभी पक्षकार अपने-अपने दायित्व से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाते हैं ।

(2) **जब कोई लेखपत्र वाहक को देय है,** तो ऐसी दशा में लेखपत्र रखने वाले को जो भले ही धारक न हो, यथाविधि भुगतान कर देने से मुक्ति मिल जाती है ।

(3) **विलोपन द्वारा-** धारा82ए के अनुसार, जब लेखपत्र का धारक, स्वीकर्ता अथवा किसी पृष्ठांकक का नाम उसको मुक्त करने के उद्देश्य से काट देता है, तो वे पक्षकार, धारक तथा ऐसे धारक के अधीन अधिकार पाने वाले सभी पक्षकारों के प्रति दायित्व से मुक्त हो जाते हैं ।

(4) **धारा 40 के अनुसार,**इस प्रकार स्वीकर्ता या पृष्ठांकक की मुक्ति उन सभी पक्षकारों को मुक्ति दिला सकती है, जिन्हें इस प्रकार स्वेच्छा से मुक्त किये जाने वाले पक्षकारों के प्रति उपचार पाने का अधिकार है ।

परन्तु किसी पक्षकार का नाम अनिच्छापूर्वक या गलती से कट जाय, तो यह उक्त पक्षकार को उत्तरदायित्व से मुक्ति नहीं दिला सकती । पुन' सभी पक्षकारों की राय से अवधि को बढ़ाना विलोपन नहीं समझा जाता ।

(5) **छुटकारे द्वारा-**जब धारक विलोपन के अतिरिक्त किसी अन्य रीति से जैसे- लेखपत्र की आंशिक रकम का भुगतान पाकर अथवा कोई नया लेखपत्र लेकर स्वीकर्ता या पृष्ठांकक को मुक्ति दे देता है, तब इस प्रकार मुक्ति पाने वाले पक्षकार, धारक तथा उसके अधीन ऐसी मुक्ति की सूचना के अधिकार पाने वाले पक्षकारों के प्रति दायित्व से मुक्त हो जाता है ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धरा 62 तथा 63 के अनुसार, पक्षकारों के बीच ठहराव द्वारा भी मुक्ति दिलायी जा सकती है ।

(6) **वैधानिक प्रावधानों द्वारा-**ऋणी के दिवालिया होने पर, उपचार के प्रवर्तन करने की निश्चित अवधि के बीत जाने पर या बिक्री के बाद लेखपत्र का संविलयन हो जाने पर दायित्व से मुक्ति मिल सकती है । इसे वैधानिक प्रावधानों द्वारा मुक्ति कहते हैं ।

(7) **देनदार की 48 घंटे से अधिक बिल की स्वीकृति के लिए समय देकर-** धारा 83, के अनुसार, यदि किसी बिल का धारक देनदार को बिल की स्वीकृति के लिए 48 घंटे से अधिक समय (सार्वजनिक छुट्टियों के अतिरिक्त) देता है, तो सभी पूर्व पक्षकार जो ऐसी छूट से सहमत नहीं है, ऐसे धारक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं ।

(8) **मर्यादित स्वीकृति को मान लेने पर- धारा 86 के अनुसार,**जब किसी बिल का धारक देनदार से मर्यादित स्वीकृति बिना अन्य पक्षकारों की सहमति से लेता है, तो अन्य पूर्व पक्षकार दायित्व से मुक्त होते हैं ।

(9) **महत्वपूर्ण परिवर्तन द्वारा-** धारा 87 के अनुसार, जब कोई लेखपत्र धारक के अधिकार में है, तथा उसमें बिना अन्य पक्षकारों की स्वीकृति के कोई ऐसा महत्वपूर्ण परिवर्तन किया जाय जो कि मूल पक्षकारों की सामान्य इच्छा को पूरा न करे, तो वे सभी पक्षकार जिनकी सहमति से यह परिवर्तन नहीं हुआ है, अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं ।

धारा 88 के अनुसार, लेकिन किसी लेखपत्र के ऐसे स्वीकर्ता या पृष्ठांकक जो कि परिवर्तन के बाद लेखपत्र के पक्षकार हुए हैं, लेखपत्र के ऊपर उत्तरदायी होते हैं । [धारा 88]

(10) **ऐसे लेखपत्र का भुगतान जिस पर परिवर्तन दिखायी नहीं देता हो-** धारा 89 के अनुसार, यदि किसी लेखपत्र के ऊपर परिवर्तन किया गया है, किन्तु लेखपत्र के मुख-पृष्ठ को देखने से

परिवर्तन स्पष्ट रूप से मालूम नहीं होता अथवा यदि लेखपत्र के ऊपर रेखांकन किया गया है और वह मिट गया है, तो देनदार भुगतान कर देने पर समस्त उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है ।

18.13 सारांश

परक्रामण का आशय किसी व्यक्ति को प्रतिज्ञापत्रा बिल अथवा चैक के ऐसे हस्तान्तरण से है जिससे वह व्यक्ति उसका धारक हो जाय । एक वाहक लेखपत्र केवल सुपुर्दगी द्वारा हस्तान्तरित किया जा सकता है किन्तु एक आदेशित लेखपत्र के हस्तान्तरण के लिए बेचान तथा सुपुर्दगी दोनों ही आवश्यक होते हैं ।

धारा 51 के अनुसार जब तक परक्रामण का अधिकार स्पष्ट शब्दों द्वारा संकुचित न कर दिया गया हो प्रत्येक लेखक, आहर्ता, या पृष्ठांकिती लेखपत्र का पृष्ठांकन व परक्रामण कर सकते हैं । किन्तु प्रतिज्ञापत्र का लेखक या बिल का लेखक, जब तक यह उनकी आज्ञा देय न हो अथवा जब तक वे परक्रामण की प्रगति में इसके धारक न बन जायें, इसका पृष्ठांकन नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार कोई व्यक्ति किसी लेखपत्र पर तब तक पृष्ठांकन नहीं कर सकता है, जब तक कि वह इसका वास्तविक धारक न हो । जब किसी लेखपत्र के संयुक्त लेखक, आहर्ता या पृष्ठांकिती हों तो उन सभी को पृष्ठांकन करना चाहिए ।

विनिमय-बिलों को ही स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है । ऐसा करने से भुगतान के लिए देय तिथि निर्धारित हो जाती है । विनिमय बिल में भुगतान के पहले उसे स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक हो अथवा नहीं दोनों ही स्थितियों में स्वीकृति लेना ही उचित होता है, क्योंकि स्वीकृति लेने से देनदार की साख विनिमय बिल से जुड़ जाती है तथा स्वीकर्ता बिल के लिये प्रतिभू के रूप में उत्तरदायी हो जाता है ।

देनदार- धारा 34 के अनुसार, जब एक से अधिक देनदार हों, तो सभी अथवा कुछ देनदार भी स्वीकृति दे सकते हैं । लेकिन कई देनदारों में से किसी एक देनदार के द्वारा स्वीकृति देने पर केवल उसी की जिम्मेदारी होगी । लेकिन यदि उन देनदारों में से कोई एक देनदार दूसरों को तभी बाध्य कर सकता है, जबकि उसे दूसरे देनदारों द्वारा स्वीकृति देने का विशेष अधिकार प्राप्त है । जब किसी बिल के अनेक देनदार हों और वे सभी किसी फर्म के साझेदार हों तो उनमें से किसी एक देनदार द्वारा स्वीकृति फर्म को बाध्य कर सकती है, यदि स्वीकृति फर्म के नाम में दी गयी हो ।

धारा 62 के अनुसार, जब कोई प्रतिज्ञापत्र देखने के कुछ समय बाद देय है, तो धारक को ऐसे प्रतिज्ञापत्र को लेखक के सम्मुख यथोचित समय के अन्दर साधारण व्यापार के दिन व्यापार करने के समय में प्रस्तुत करना चाहिए ।

लेखपत्र के ऊपर बाकी रकम का भुगतान करके उत्तरदायित्व से मुक्ति पायी जा सकती है ।

लेखपत्र से मुक्ति पाने के साधारणतया दो अर्थ है :

(क) **लेखपत्र का उन्मुक्त होना-**जब लेखपत्र से सम्बद्ध प्रत्येक पक्षकार का अधिकार समाप्त हो जाता है तथा उस लेखपत्र का पराक्रमण भविष्य में नहीं हो सकता है, तो ऐसी दशा में लेखपत्र उन्मुक्त हुआ समझा जाता है ।

(ख) **लेखपत्र के पक्षकारों का उत्तरदायित्व से मुक्त होना-**जब किसी एक अथवा एक से अधिक पक्षकारों के दायित्व से मुक्त हो जाने पर अन्य पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त नहीं होते हैं तथा लेखपत्र का परक्रामण होता है तो लेखपत्र के कुछ पक्षकारों को ही दायित्व से मुक्ति मिल जाती है, शेष को नहीं ।

18.14 स्व-परख प्रश्न

1. परक्रामण का अर्थ समझाइये एवं परक्रामण की विधि बतलाइये ।
2. स्वीकृति से क्या आशय है? स्वीकृति के लिये प्रस्तुति सम्बन्धी नियम क्या है?
3. भुगतान के लिये प्रस्तुति सम्बन्धी नियम क्या है?
4. पक्षकार कब अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं?

इकाई -9

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (Consumer Protection Act, 1986)

इकाई की रूपरेखा

19.1 उद्देश्य
19.2 प्रस्तावना
19.3 उपभोक्ता संरक्षण का अर्थ एवं परिभाषा
19.4 उपभोक्ता के सामान्य अधिकार
19.5 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के उद्देश्य
19.6 उपभोक्ता संरक्षण परिषदें
19.7 उपभोक्ता विवाद निवारण एजेन्सी
19.8 सारांश
19.9 शब्दावली
19.10 स्व परख प्रश्न

19.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप

- उपभोक्ता संरक्षण का अर्थ बता सकेंगे ।
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में उपभोक्ताओं को प्राप्त विभिन्न अधिकारों को जान सकेंगे ।
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के प्रमुख उद्देश्यों को समझ सकेंगे ।
- उपभोक्ता संरक्षण परिषद की संरचना एवं उद्देश्य को बता सकेंगे ।
- उपभोक्ता विवाद निवारण एजेन्सी की संरचना एवं इनमें उपभोक्ता विवादों का किस प्रकार निपटारा किया जाता हैए इसकी समझ पैदा कर सकेंगे ।

19.2 प्रस्तावना

प्रत्येक देश में आज उपभोक्तावाद जन-आन्दोलन का रूप धारण कर चुका है । आज उपभोक्ता को व्यापारिक क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु माना जाता है । **'ग्राहक सदैव सही है', 'उपभोक्ता बाजार का राजा है'**जैसी अवधारणा औद्योगिक गलियारों में प्रचलित होने के बावजूद दूसरी ओर उपभोक्ता के हित एवं अधिकारों की सुरक्षा की बात भी कही जा रही है । आज उपभोक्ता स्वयं अपनी प्रभुसत्ता की रक्षा हेतु संगठित होकर आवाज उठा रहा है तथा सरकार भी उसके हित संवर्द्धन हेतु नियम एवं अधिनियमों को हथियार के रूप में काम में ले रही है किन्तु वास्तविकता किसी से भी छिपी हुई नहीं है । आज का उपभोक्ता बहुत पीड़ित और अपने को ठगा हुआ सा महसूस करता है । वस्तुओं और सेवाओं की घटिया किस्म, कम नाप-तौल, मिलावट, नकली वस्तुओं की उपलब्धता, सेवा दोष, मात्रा दोष, शुद्धता का अभाव एवं अधिक मूल्य वसूलना

आदि ऐसे उदाहरण है, जो सामान्यतया सुनने और देखने में आते रहते है । ऐसी स्थिति में उपभोक्ताओं को अन्याय और शोषण से मुक्ति दिलाने हेतु भारत सरकार ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 को संसद में पारित करवाकर एक ठोस प्रयास किया है ।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम चार अध्यायों में बँटा हुआ है जिसमें कुल 31 धाराएँ हैं । इस अधिनियम को भारतीय संसद के दोनों सदनों ने दिसम्बर, 1986 को, पारित किया था तथा 1 जुलाई, 1987 से इस सम्पूर्ण अधिनियम को जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर समस्त भारत पर लागू कर दिया गया । इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात् उत्पन्न अनेक कमियों के कारण सन् 1991, 1993 तथा 2002 में महत्त्वपूर्ण संशोधन एवं परिवर्तन किये गये ।

19.3 उपभोक्ता संरक्षण का अर्थ

सामान्य शब्दों में, उपभोक्ता संरक्षण से आशय उन सभी उपायों से है जो उपभोक्ता के साथ हो रहे विभिन्न अन्याय एवं शोषण से मुक्ति दिलवाने में मदद प्रदान करते हैं । **अतः उपभोक्ताओं के मूलभूत अधिकारों व हितों की सुरक्षा प्रदान करने को ही उपभोक्ता संरक्षण कहा जाता हैं ।**

19.4 उपभोक्ता के सामान्य अधिकार

अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति जॉन एफ.कैनेडी व जॉनसन के द्वारा कांग्रेस को **'उपभोक्ता के हितों की सुरक्षा'** के सम्बन्ध में एक सन्देश भेजा था जिसमें उपभोक्ता अधिकारों का उल्लेख किया गया था, वो निम्नांकित हैं

1. **सुरक्षा का अधिकार (Right to Safety) -** इस अधिकार के तहत प्रत्येक उपभोक्ता को ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं के क्रय करने के पश्चात् इनसे उसके स्वास्थ्य एवं जीवन को खतरा अथवा हानि उत्पन्न हो जैसे-घटिया एवं विकृत यन्त्र एवं उपकरण, मिलावटी सामान, नकली दवाइयाँ एवं खतरनाक रसायन आदि, तो उसे पूर्ण सुरक्षा का अधिकार है । अत: उपभोक्ता को दूषित माल के सेवन से हुई बीमारी या अन्य क्षति से सुरक्षा प्रदान की जाती है ।

2. **चयन करने का अधिकार (Right to Choose) -** उपभोक्ता को यह अधिकार है कि वह बाजार में उपलब्ध तरह-तरह की किस्म, मूल्य एवं गुण वाली वस्तुओं एवं सेवाओं में से स्वतन्त्रता के साथ अपनी मनपसन्द चीजों का चयन कर सकता हैं । कोई व्यक्ति उसकी पसन्द या चयन को अनुचित तरीके से प्रभावित करता है तो यह उसके अधिकार में विघ्न माना जाता हैं ।

3. **सूचना प्राप्त करने का अधिकार (Right to be Informed) -** उपभोक्ता वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद के पूर्व विविध जानकारी जैसे - वस्तु के मूल्य, उपयोग, किस्म, मात्रा, शुद्धता आदि प्राप्त कर सकता हैं । इस प्रकार की सूचना प्राप्ति से कोई भी उपभोक्ता एक व्यापारी के अनुचित व्यवहारों के नुकसान से भी बच जाता हैं ।

4. **सुनवाई का अधिकार (Right to be heard) -** उपभोक्ता का यह अधिकार है कि उसकी परिवेदना अथवा शिकायत पर सक्षम अधिकारी तुरन्त एवं समुचित ध्यान दें । यदि

उपभोक्ता के हितों को क्षति होती है तो वह इसकी शिकायत उपयुक्त मंच पर प्रस्तुत करने का अधिकार रखता हैं ।

उपरोक्त चार अधिकारों में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के तहत निम्न उपभोक्ता अधिकारों को और जोड़ दिया गया है.

5. **उपचार का अधिकार (Right to be redressed) -** यह अधिकार उपभोक्ता को किसी वस्तु या सेवा के उपयोग के फलस्वरूप किसी भी प्रकार का असन्तोष उत्पन्न होने पर उसकी शिकायत का उचित एवं न्यायपूर्ण उपचार या समाधान प्रदान करता है । यदि व्यवसायी के अनैतिक व्यवहारों से उपभोक्ता को कोई हानि होती है तो उसकी क्षतिपूर्ति करवाने का अधिकार होता है ।

6. **उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार (Right of Consumer) -**उपभोक्ताओं को सावचेत एवं जागरूक रहने में यह अधिकार मददगार साबित हुआ है । इस अधिकार के तहत एक उपभोक्ता को वस्तु व सेवा व उसकी उपयोग विधि, रख-रखाव आदि के सम्बन्ध में ज्ञान एवं शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होता है ।

7. **स्वच्छ वातावरण का अधिकार (Right to clean Atmosphere) -** व्यावसायिक गतिविधियों के व्यक्तिगत स्वार्थ एवं लाभ हेतु उपयोग के कारण बढ़ते प्रदूषण (वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि) एवं उनके दुष्प्रभावों की रोकथाम एवं मानव जीवन किस्म में सुधार हो सकें, इस हेतु यह अधिकार उपभोक्ताओं को प्रदान किया गया हैं । वर्तमान सन्दर्भ में यह अधिकार अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है ।

19.5 अधिनियम के उद्देश्य

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में इसके उद्देश्यों को निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया हैं ।

1. उपभोक्ता के हितों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना ।
2. उपभोक्ता अधिकारों की सुरक्षा करना ।
3. उपभोक्ताओं को व्यावसायियों के शोषण एवं उत्पीड़न से बचाना ।
4. उपभोक्ताओं के विवादों तथा उनसे सम्बन्धित मामलों के सुलझाने या निपटारे हेतु परिषदों या संस्थाओं का गठन करना ।
5. उपभोक्ता विवादों का शीघ्रता एवं सरलता से निपटारा करने हेतु अर्द्धसरकारी न्यायिक-तन्त्र (Quasi Judicial Machinery)की व्यवस्था करना ।

19.6 उपभोक्ता संरक्षण परिषदें

उपभोक्ता के अधिकार एवं हितों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करने तथा इस उद्देश्य हेतु सरकार को सलाह देने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना करने का प्रावधान है:

I. केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद ।
II. राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद ।
III. जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद ।

I. **केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद (The Central Consumer Protection Council):** उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की **धारा 4(1)**के अनुसार केन्द्रीय सरकार अधिसूचना के माध्यम से केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद की स्थापना करेगी । इस परिषद को उस तिथि से प्रभावी माना जावेगा जो कि अधिसूचना में घोषित की जायेगी ।

संरचना (Constitution): इस परिषद का कार्यकाल तीन वर्ष का होगा । इसमें कुल 150 सदस्य होते है जो कि निम्नानुसार है

(i) अध्यक्ष - जो केन्द्रीय सरकार के खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति मन्त्रालय का मन्त्री होगा ।

(ii) उपाध्यक्ष - जो केन्द्रीय सरकार के खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति मन्त्रालय का राज्य मन्त्री या उपमन्त्री होगा ।

(iii) समस्त राज्यों के खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति विभाग के प्रभारी मन्त्री ।

(iv) संसद सदस्य आठ - इनमें 5 लोक सभा के एवं 3 राज्य सभा के सदस्य ।

(v) अनुसूचित जाति व जनजातियों के राष्ट्रीय आयोग का आयुक्त ।

(vi) उपभोक्ता हितों से सम्बन्धित केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभागों एवं स्वायत्तशासी संगठनों के अधिकतम बीस सदस्य ।

(vii) उपभोक्ता संगठनों के कम से कम 35 प्रतिनिधि ।

(viii) महिला प्रतिनिधि-दस से कम नहीं ।

(ix) किसानों, व्यापारियों एवं उद्योग के प्रतिनिधि-बीस से अधिक नहीं ।

(x) ऐसे सक्षम व्यक्ति जो उपभोक्ता हितों का प्रतिनिधित्व कर सकते हो, जिनकी संख्या 15 से अधिक नहीं होंगी ।

(xi) केन्द्रीय सरकार के उपभोक्ता मामलों के विभाग का प्रभारी सचिव इसका सदस्य एवं सचिव होगा ।

इस परिषद का कोई भी सदस्य अध्यक्ष को लिखित सूचना प्रस्तुत कर अपने पद को त्याग सकता है । ऐसे रिक्त पद पर केन्द्रीय सरकार पुन: उसी वर्ग में से प्रतिनिधि की नियुक्ति के द्वारा पूरा करेगी ।

उद्देश्य (Objects) (धारा-6) - केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं के हित और अधिकारों की रक्षा एवं संवर्द्धन करना है । ये अधिकार निम्नानुसार है:

(i) जीवन व सम्पत्ति के लिए जोखिम पहुँचाने वाला माल एवं सेवा के विरूद्ध सुरक्षा पाने का अधिकार ।

(ii) वस्तु तथा सेवा की किस्म, मात्रा, शुद्धता, प्रमाप तथा मूल्य के बारे में सूचना का अधिकार जिससे कि उपभोक्ता को अनुचित व्यापार व्यवहारों से बचाया जा सके ।

(iii) उपभोक्ताओं को प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर विभिन्न प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं की प्राप्ति के आश्वासन का अधिकार।

(iv) उपभोक्ता को सुने जाने तथा विश्वास दिलवाने का अधिकार कि उपभोक्ता के हितों का उचित मंचों पर पर्याप्त ध्यान दिया जायेगा ।

(v) अनुचित व्यापार व्यवहार या अनैतिक शोषण के विरूद्ध निवारण पाने का अधिकार ।

(vi) उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार ।

(II) **राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद (The State Consumer Protection Council) :**उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 7(1) के अनुसार राज्य सरकार अधिसूचना में निर्दिष्ट प्रक्रिया द्वारा राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद की स्थापना कर सकती है । यह परिषद उस तिथि से प्रभावी मानी जायेगी जो तिथि अधिसूचना में घोषित की गई है ।

संरचना (Constitution) [धारा 7 (2)] : राज्य परिषद में निम्न सदस्य होंगे :

(i) राज्य सरकार का उपभोक्ता मामलों का प्रभारी मंत्री इस राज्य परिषद का अध्यक्ष होगा।

(ii) विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले निर्धारित संख्या में सरकारी अथवा गैर-सरकारी सदस्य जो राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर अधिसूचित किये जाये ।

(iii) केन्द्रीय सरकार द्वारा सरकारी या गैर-सरकारी नामित सदस्य जिनकी संख्या अधिकतम 10 हो सकती हैं ।

सभाएँ (Meetings):राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद की आवश्यकतानुसार जब चाहे सभा बुला सकते है, परन्तु प्रतिवर्ष कम से कम दो सभाएँ होना आवश्यक हैं ।

राज्य परिषद की सभाएँ ऐसे समय एवं स्थान पर आयोजित की जायेगी जो अध्यक्ष की दृष्टि में उपयुक्त हो । ऐसी सभा के कार्यो का निपटारा करने के सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा निर्धारित कार्यविधि अपनाई जायेगी ।

उद्देश्य (objects) [धारा 8] : राज्य परिषद का उद्देश्य राज्य के उपभोक्ताओं के अधिकारों एवं हितों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना होगा । इन्हें केन्द्रीय परिषद के उद्देश्यों (धारा 6) में स्पष्ट किया जा चुका है ।

(III) **जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद (The District Consumer Protection Council):** उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 8A(1)के अनुसार राज्य सरकार अधिसूचना के माध्यम से प्रत्येक जिले में जिला उपभोक्ता परिषद की स्थापना कर सकती है । इस परिषद की स्थापना अधिसूचना में निर्दिष्ट तिथि से प्रभावी मानी जायेगी।

संरचना (Constitution) [धारा 8A(2)] :जिला परिषद में सदस्य निम्नानुसार होंगे.

(i) इस परिषद का अध्यक्ष जिले का जिलाधीश होगा ।

(ii) राज्य सरकार द्वारा निर्धारित विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले सरकारी या गैर-सरकारी सदस्य ।

सभाएँ (Meetings): जिला परिषद जरूरी हो तो कितनी ही बार सभाएँ आयोजित कर सकती है किन्तु प्रत्येक वर्ष में कम से कम दो सभाएँ करना अनिवार्य होगा ।

समय एवं स्थान (Time and Place) : जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद की सभाएँ कब और किस स्थान पर आयोजित की जायेगी, यह अध्यक्ष पर निर्भर करता है । इसमें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कार्यो का निपटारा किया जायेगा ।

उद्देश्य (Objects) [धारा 8 B] : इस परिषद का प्रमुख उद्देश्य जिले के उपभोक्ताओं के अधिकारों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना होगा ।

19.7 उपभोक्ता विवाद निवारण अभिकरण

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 9 के अन्तर्गत उपभोक्ता की शिकायतों (Complaints) के समाधान या निवारण हेतु अर्द्ध न्यायिक त्रिस्तरीय व्यवस्था (Three-tier Quasi-Judicial Machinery) की गई है, जो निम्न प्रकार से है-

(i) जिला मंच;

(ii) राज्य आयोग,

(iii) राष्ट्रीय आयोग ।

I. जिला मंच (District Forum):

स्थापना [धारा 9 (a)] : राज्य सरकार अधिसूचना जारी करके प्रत्येक जिले में एक 'उपभोक्ता विवाद निवारण मंच' की स्थापना कर सकती है । इस मंच को 'जिला मंच' के नाम से जाना जायेगा ।

राज्य सरकार यदि उचित समझे तो एक जिले के लिए एक से अधिक जिला मंच भी स्थापित कर सकती है ।

संरचना (Composition) [धारा 10] -प्रत्येक जिला मंच में सदस्य निम्नानुसार होंगे ।

(i) ऐसा व्यक्ति जो जिला न्यायाधीश है या रहा हो या न्यायाधीश बनने की योग्यता रखता हो, इसका अध्यक्ष बनाया जा सकता है ।

(ii) दो सदस्य, इनमें से एक का महिला होना आवश्यक है । इनकी योग्यताएँ निम्नानुसार होंगी :

(क) 35 वर्ष से कम आयु के न हो;

(ख) मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि धारक हो;

(ग) ये योग्यता, विश्वसनीयता एवं प्रतिष्ठा वाले लोग हो, जिन्हें अर्थशास्त्र, कानूनी, वाणिज्य, लेखाकर्म, उद्योग, जनसम्पर्क या प्रशासनिक ज्ञान अथवा अनुभव हो ।

इन सदस्यों की नियुक्तियाँ राज्य सरकार द्वारा एक चयन समिति की अनुशंसा पर की जायेंगी । इस समिति का गठन निम्नानुसार होगा :

(i) राज्य आयोग का अध्यक्ष - अध्यक्ष ।

(ii) राज्य के विधि विभाग का सचिव - सदस्य ।

(iii) राज्य के उपभोक्ता मामलों के विभाग का प्रभारी सचिव - सदस्य ।

कार्यकाल एवं पुनर्नियुक्ति : जिला मंच के प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल 5 वर्ष अथवा 65 वर्ष की आयु (इनमें से जो भी पहले हो) तक पद धारण करता है । वह पुनर्नियुक्ति के लिए योग्य नहीं होगा ।

वेतन तथा सेवा शर्तें : जिला मंच के सदस्यों को दिया जाने वाला वेतन या मानदेय, अन्य भत्ते एवं सेवा शर्तें आदि राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जायेंगी ।

क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) :जिला मंच को अपने क्षेत्र की शिकायतों को स्वीकार करने का क्षेत्राधिकार तब होगा जब निम्न शर्तों को पूरा किया जाता हो -

(i) जब दावे की वस्तुओं एवं सेवाओं की लागत या क्षतिपूर्ति का मूल्य **बीस लाख रूपये** से अधिक न हो ।

(ii) जिला मंच में उसके क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के अन्तर्गत शिकायत दर्ज की जा सकती है

(अ) विरोधी पक्षकारों में कोई पक्षकार शिकायत करते समय वास्तव में रह रहा हैं या व्यवसाय कर रहा है या उसका बीच कार्यालय है या व्यक्तिगत लाभ के लिए कार्य कर रहा है, अथवा

(ब) विरोधी पक्षकारों में से कोई भी (जब एक से अधिक विरोधी पक्षकार हो) पक्षकार वास्तविक रूप से या स्वेच्छापूर्वक रहते हों या व्यवसाय का संचालन करते हो या ब्राँच कार्यालय हो या लाभ के लिए व्यक्तिगत रूप से कार्य करते हो; अथवा

(स) वाद आंशिक या पूर्ण रूप में उत्पन्न होता हो ।

शिकायत प्रस्तुत करने का तरीका इसमें शिकायत प्रस्तुत करने की निम्न विधि है ।

शिकायत कौन व्यक्ति कर सकता है? (धारा 12): विक्रय किये गये अथवा सुपुर्द किये माल अथवा प्रदत्त सेवा के बारे में शिकायत निम्नलिखित के द्वारा प्रस्तुत की जा सकती है:

(i) ऐसा उपभोक्ता जिसे कोई माल विक्रय किया गया हो या सेवा प्रदान की गई हो;

(ii) कोई मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संघ जो कम्पनी अधिनियम, 1956 या अन्य कानून द्वारा पंजीकृत है ।

(iii) जिला मंच की अनुमति से एक या एक से अधिक उपभोक्ता जिनका समान हित हो ।

(iv) केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार ।

शिकायत प्रस्तुत करने हेतु दिशा निर्देश -

(अ) जिला मंच को प्रस्तुत प्रत्येक शिकायत निर्धारित फीस सहित लिखित में होगी ।

(ब) शिकायतकर्ता स्वयं या उसका अधिकृत एजेन्ट शिकायत डाक द्वारा या प्रत्यक्ष व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुत कर सकता हैं ।

(स) शिकायत सादा कागज पर की जा सकती है क्योंकि शिकायत प्रस्तुत करने हेतु कोई निर्धारित प्रारूप नहीं है ।

(द) शिकायत की ग्राह्यता (Admissibility) का निपटारा शिकायत प्राप्ति के 21 दिन के भीतर कर दिया जाना चाहिए।

(य) जिला मंच शिकायत की प्राप्ति पर स्वीकृति या अस्वीकृति के आदेश दो सकेगा, लेकिन शिकायतकर्ता की सुनवाई बिना इसे अस्वीकार नहीं किया जायेगा ।

उपभोक्ता शिकायत को निपटाने की कार्य विधि (Procedure of Settling consumer Complaints) :उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 13 के अनुसार उपभोक्ता शिकायतों के निपटाने हेतु जिला मंच में अपनाई जाने वाली कार्यविधि निम्नानुसार है -

(अ**) माल सम्बन्धी शिकायतों की निपटान कार्यविधि :** जिला मंच द्वारा शिकायत स्वीकार करने के पश्चात् 21 दिन के भीतर उस शिकायत की प्रति विरोधी पक्षकार को प्रदान

करेगा एवं 30 दिनों के भीतर या मंच द्वारा बढ़ाई गई अवधि, जो अधिकतम 15 दिन हो सकती है, के भीतर अपना पक्ष प्रस्तुत करने के निर्देश दे सकता है । विरोधी पक्षकार द्वारा प्राप्त शिकायत में लगाये गये आरोपों को अस्वीकार करता है या दिये गये निर्धारित समय में अपना पक्ष प्रस्तुत करने में त्रुटि करता है तो जिला मंच उपभोक्ता शिकायत का निम्न प्रकार निपटारा करेगा -

(i) **माल का नमूना प्राप्त करना -** शिकायत में माल खराब होने का आरोप लगाया गया हो तथा उस माल की जाँच या विश्लेषण के बिना दोष या खराबी का पता नहीं लगा पाते है तो जिला मंच माल का नमूना प्राप्त करेगा, उसे सील करके उसे जाँच हेतु उपयुक्त प्रयोगशाला को भिजवायेगा । प्रयोगशाला अपनी रिपोर्ट 45 दिन के भीतर या बढ़ी हुई अवधि के भीतर जिला मंच को प्रस्तुत करेगी ।

(ii) **शुल्क का भुगतान -** जब प्रयोगशाला को माल के नमूने जाँच या विश्लेषण हेतु भेजे जाते है तो शिकायतकर्ता को निर्धारित शुल्क जिला मंच के पास जमा कराने के निर्देश देगा । इस शुल्क को मंच प्रयोगशाला को भिजवा देगा ।

(iii) **रिपोर्ट प्राप्त करना -** जिला मंच प्रयोगशाला से रिपोर्ट प्राप्त कर एक प्रति अपनी टिप्पणी सहित विरोधी पक्षकार के पास भेज देगा ।

(iv) **आपत्तियों को जानना -** यदि शिकायतकर्ता प्रयोगशाला की रिपोर्ट या जाँच प्रक्रिया के विरूद्ध आपत्ति उठाते हैं तो वह जिला मंच को लिखित में प्रस्तुत करेगा ।

(v) **सुनवाई का अवसर देना -** शिकायतकर्ता को प्रयोगशाला के निष्कर्षों एवं अन्य आपत्तियों के सम्बन्ध में अपना पक्ष प्रस्तुत करने का उचित अवसर प्रदान किया जायेगा ।

(ब) सेवा सम्बन्धी शिकायतों की निपटान प्रक्रिया:

(i) जिला मंच को सेवा में त्रुटि सम्बन्धी शिकायत लिखित में की जाती है । शिकायत स्वीकार करने के पश्चात् जिला मंच उस शिकायत की एक प्रति विरोधी पक्षकार के पास भिजवाता है । मंच उसे इस शिकायत का स्पष्टीकरण 30 दिनों के भीतर प्रस्तुत करने को कहेगा । मंच इस समय अवधि को 15 दिन के लिए बढ़ा सकता है ।

(ii) जब विरोधी पक्षकार निर्धारित समय में इस शिकायत को अस्वीकार कर देता है तो जिला मंच विवादों का निपटारा हेतु -

(अ) शिकायतकर्ता एवं विरोधी पक्षकार द्वारा उसकी जानकारी में लाये गये प्रमाणों व गवाही के आधार पर विवाद का निपटारा करेगा, अथवा

(ब) जहाँ विरोधी पक्षकार दिये गये समय के भीतर आरोपों का प्रतिवाद नहीं करने पर शिकायतकर्ता द्वारा जानकारी में लाये गये सबूतों के आधार पर एक पक्षीय निर्णय दे देगा ।

(स) शिकायतकर्ता सुनवाई की तिथि को जिला मंच के समक्ष उपस्थित होने में असमर्थ रहता है तो मंच उस शिकायत को या तो रह कर देगा अथवा गुणों के आधार पर निर्णय करेगा।

उपर्युक्त प्रक्रिया के औचित्य को इस आधार पर कि इसमें नैसर्गिक न्याय (Natural Justice) के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया है, किसी भी न्यायालय में नही उठाया जा सकेगा।

जिला मंच के आदेश (Order of District Forum) :जिला मंच शिकायत की सुनवायी के पश्चात् सन्तुष्ट हो जाता है तथा शिकायत में वस्तु या सेवा से सम्बन्धित शिकायत की बातें सत्य है तो वह विरोधी पक्षकार को निम्नलिखित में से एक या अधिक बातों का पालन करने के लिए कह सकता है ।

(i) उपयुक्त प्रयोगशाला द्वारा उजागर किये गये दोषों को दूर करना

(ii) दोषपूर्ण माल को उसी प्रकार के नये दोषरहित माल से प्रतिस्थापित करना

(iii) शिकायतकर्ता को माल की कीमत अथवा किये गये खर्चो को लौटाना,

(iv) विरोधी पक्षकार की लापरवाही से उपभोक्ता को हुई क्षति या नुकसान के लिए भुगतान करना,

(v) माल एवं सेवा के दोषों या कमियों को दूर करने के लिए

(vi) प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अथवा अनुचित व्यवहार को बन्द करने या उसकी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए

(vii) घातक या हानिकारक वस्तुओं को बेचने के लिए प्रस्तुत करने पर रोक,

(viii) खतरनाक माल के विक्रय के प्रस्ताव को वापिस लेने के लिए

(ix) दोषपूर्ण विज्ञापन के प्रभाव को नकारने के लिए सुधारात्मक विज्ञापन देना,

(x) पीड़ित पक्षकारों को उचित खर्चे (Costs) दिलाने का आदेश देना ।

जिला मंच की शक्तियाँ (Powers Of District Forum) :उपभोक्ता विवादों की सुनवाई के सम्बन्ध में जिला मंच को वे समस्त शक्तियाँ प्राप्त होगी जो कि एक दीवानी न्यायालय (Civil Court) को प्राप्त होती है, जो निम्नानुसार है :

(i) किसी प्रतिवादी या गवाह को बुलाना और उसे आवश्यक रूप से उपस्थित होने के लिए बाध्य करना और शपथपूर्वक पूछताछ करना,

(ii) साक्ष्य हेतु प्रपत्र अथवा किसी वस्तु को प्राप्त करना या प्रस्तुत करना,

(iii) किसी भी व्यक्ति से शपथपूर्वक साक्ष्य स्वीकार करने की शक्ति रखता है

(iv) जिला मंच को उपयुक्त प्रयोगशाला या अन्य स्त्रोत से सम्बन्धित माल के विश्लेषण या जाँच की रिपोर्ट प्राप्त करने का अधिकार है ।

(v) प्रत्येक जिला मंच इस अधिनियम के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किसी भी व्यक्ति से जरूरी सूचनायें प्राप्त कर सकता है ।

(vi) अन्य विषय जो भी निर्धारित और निश्चित किया जावें ।

II. राज्य आयोग (State Commission) :

स्थापना - प्रत्येक राज्य सरकार उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग की स्थापना अधिसूचना द्वारा कर सकेगी, जिसे राज्य आयोग के नाम से जाना जाता है ।

संरचना (Composition) :राज्य आयोग में निम्नलिखित सदस्य होंगे?

(i) उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या पूर्व में रह चुका हो और जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाये, वह व्यक्ति राज्य आयोग का अध्यक्ष होगा ।

(ii) न्यूनतम दो अन्य सदस्य किन्तु राज्य सरकार द्वारा निर्धारित संख्या से अधिक सदस्य नहीं होने चाहिए । जिनमें से एक महिला सदस्य भी होंगी ।

इन सदस्यों की योग्यताएँ निम्नानुसार है :

(क) ये सदस्य 35 वर्ष से कम उस के न हो;

(ख) मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि धारक हो;

(ग) ऐसे व्यक्ति योग्यता, ख्याति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त होने के अलावा उन्हें अर्थशास्त्र, विधि, लेखा-शास्त्र, उद्योग, सार्वजनिक मामले या प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं के निवारण का कम से कम 10 वर्षो का अनुभव प्राप्त हो ।

सदस्यों की नियुक्ति : सदस्यों की नियुक्ति चयन समिति की अनुशंसा पर राज्य सरकार द्वारा की जायेगी जिसमें निम्नलिखित सदस्य होंगे :

(i) राज्य आयोग अध्यक्ष - सभापति;

(ii) राज्य के विधि विभाग का सचिव - सदस्य;

(iii) उपभोक्ता मामलों से सम्बन्धित विभाग सचिव - सदस्य ।

कार्यकाल एवं पुनर्नियुक्ति : राज्य आयोग के सदस्य का कार्यकाल 5 वर्ष अथवा 67 वर्ष की आयु पूर्ण होने पर जो भी कम हो, होगा । इस आयोग का सदस्य अगले 5 वर्षो के लिए या उसकी 67 वर्ष की आयु पूर्ण होने तक के लिए पुनर्नियुक्त किया जा सकेगा ।

वेतन या सेवा शर्तें आदि : राज्य आयोग के सदस्यों को वेतन या मानदेय, भत्ते एवं सेवा शर्तें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित निर्देशों के अन्तर्गत किया जायेगा ।

राज्य आयोग का क्षेत्राधिकार (Jurisdiction of the State Commission) :राज्य आयोग का क्षेत्राधिकार (धारा 17) इस प्रकार है :

(i) इस प्रकार की शिकायत जिसमें माल या सेवा का मूल्य और क्षतिपूर्ति जिसका दावा किया गया है उसका मूल्य 20 लाख रूपये से अधिक किन्तु 1 करोड़ रू. तक हो ।

(ii) राज्य के किसी जिला मंच के आदेश के विरूद्ध की गई अपील की सुनवाई करना ।

(iii) यदि राज्य आयोग को ये एहसास हो कि जिला मंच ने अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया है या कोई अनियमितता बरती हो तो जिला मंच से सम्बन्धित अभिलेखों को मंगवाकर उपयुक्त आदेश दे सकेगा ।

शिकायतों का निपटारा [धारा 18] : राज्य आयोग उपभोक्ता शिकायतों के निपटारे हेतु उसी प्रक्रिया को अपनायेगी जो जिला मंच द्वारा अपनायी जाती है । इसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका हैं ।

राज्य आयोग के विरूद्ध अपील : राज्य आयोग के आदेश से असन्तुष्ट कोई भी व्यक्ति आदेश के विरूद्ध आदेश की तिथि के 30 दिन के भीतर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील कर सकेगा । राष्ट्रीय आयोग अपील को निर्धारित 30 दिन की अवधि समाप्त हो जाने के बाद भी स्वीकार कर सकता है, यदि वह अपील करने में हुई देरी के कारणों से सन्तुष्ट हो जाये ।

अपीलार्थी द्वारा राज्य आयोग के आदेश में निर्दिष्ट राशि का 50 प्रतिशत या 35,000रूपये में जो कम हो, जमा करवा दिया हो, तब तक राष्ट्रीय आयोग उसकी अपील को स्वीकार नहीं करेगा ।

राज्य आयोग अथवा राष्ट्रीय आयोग अपील की जहाँ तक सम्भव हो शीघ्र सुनवाई करेगा। इसके द्वारा यह प्रयास किया जायेगा कि अपील स्वीकारने के 90 दिन के भीतर अपील का निपटारा कर दिया जाए ।

अपील की सुनवाई की प्रक्रिया राज्य आयोग के आदेश के विरूद्ध राष्ट्रीय आयोग में प्रस्तुत अपील की सुनवाई उपभोक्ता संरक्षण नियम 1987 के नियम 15 के तहत निम्नानुसार तरीके से की जा सकेगी :

(i) अपीलार्थी या उसके द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि को राष्ट्रीय आयोग के समक्ष स्मरण-पत्र (Memorandum) प्रस्तुत करना होता है । यह अपील व्यक्तिशः रजिस्टर्ड डाक से भेज सकते है ।

(ii) स्मरण-पत्र पठनीय लेख या टाइप किया हुआ एवं शीर्षकों में विभाजित किया होगा । इसमें अपील के आधारों का उल्लेख अत्यावश्यक है ।

(iii) संलग्न किये जाने चाहिए ।

(iv) यदि अपील स्वीकार करने की निर्धारित अवधि समाप्त हो गई है तो स्मरण-पत्र के साथ शपथ-पत्र विवरण भी संलग्न करना होगा, जिनके आधार पर अपीलार्थी देरी होने के कारणों से राष्ट्रीय आयोग को सन्तुष्ट करना चाहता है ।

(v) आयोग में अपीलार्थी स्मरण-पत्र की 6 प्रतियाँ प्रस्तुत करेगा ।

(vi) राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपीलार्थी या उसके प्रतिनिधि को निर्धारित तिथि पर सुनवाई हेतु उपस्थित होना आवश्यक है अन्यथा आयोग उस अपील को निरस्त कर सकता है या बचाव पक्ष के अनुपस्थित रहने पर एक पक्षीय सुनवाई के आदेश दे सकता है ।

(vii) स्मरण-पत्र में दिये गये आधारों के अतिरिक्त अन्य आधारों या कारणों को अपीलार्थी निर्णय का आधार नहीं बना सकता है । आयोग स्मरण-पत्र में दिये गये कारणों के अलावा अन्य कारणों को भी ध्यान में रखकर निर्णय दे सकता है ।

(viii) राष्ट्रीय आयोग जब चाहे अपील की सुनवाई को स्थगित कर सकता है ।

(ix) राष्ट्रीय आयोग अपील के आदेश का संवहन सभी पक्षकारों में निःशुल्क करेगा ।

(III) राष्ट्रीय आयोग (National Commission) :

स्थापना-केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा 'राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग' की स्थापना कर सकेगी जिसे राष्ट्रीय आयोग के रूप में जाना जायेगा ।

संरचना : राष्ट्रीय आयोग में सदस्य निम्नानुसार होंगे ।

(i) उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश या पूर्व में रह चुका हो एवं जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती हो, वह व्यक्ति इस आयोग का अध्यक्ष होगा ।

(ii) न्यूनतम चार सदस्य और अधिक से अधिक जो केन्द्रीय सरकार निर्धारित करें, होंगी । इनमें से एक सदस्य महिला होंगी ।

इन सदस्यों की योग्यताएँ निम्न प्रकार होंगी :

(अ) इन सदस्यों की उम्र 35 वर्ष से कम नहीं हो;

(ब) किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि धारक हो;

(स) ये सदस्य योग्यता, विश्वसनीय एवं प्रतिष्ठा प्राप्त होने के अतिरिक्त अर्थशास्त्र, विधि, लेखाकर्म, वाणिज्य, उद्योग, सार्वजनिक मामलों एवं प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं के निवारण का न्यूनतम 10 वर्ष का अनुभव प्राप्त हो ।

वेतन तथा सेवा शर्तें आदि : राष्ट्रीय आयोग के सदस्यों का वेतन या मानदेय, भत्ते एवं सेवा शर्तें आदि केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित की जायेंगी ।

कार्यकाल एवं पुनर्नियुक्ति : राष्ट्रीय आयोग के प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल 5 वर्ष या 70 वर्ष की आयु तक, जो भी पहले हो, सदस्य बना रहेगा । ऐसे व्यक्ति की सदस्य के रूप में पुनर्नियुक्ति नहीं की जा सकेगी ।

राष्ट्रीय आयोग का क्षेत्राधिकार (Jurisdiction of National commission) :राष्ट्रीय आयोग का क्षेत्राधिकार (धारा 21) इस प्रकार है :

(i) इस प्रकार की शिकायत जिसमें माल या सेवा का मूल्य और क्षतिपूर्ति जिसकी दावा राशि 1 करोड रू. से अधिक हो ।

(ii) किसी राज्य आयोग के आदेश के विरूद्ध प्रस्तुत अपील की सुनवाई करना ।

(iii) यदि राष्ट्रीय आयोग को ये एहसास हो कि किसी राज्य आयोग ने अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया है या कोई अनियमितता बरती हो तो राज्य आयोग से सम्बन्धित अभिलेखों को मंगवाकर उपयुक्त आदेश दे सकेगा।

शिकायतों का निपटारा (धारा 22) : राष्ट्रीय आयोग उपभोक्ता विवादों का निपटारा केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अन्तर्गत करेगा ।

उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1987 की धारा 14 में राष्ट्रीय आयोग की वर्तमान में लागू प्रक्रिया का उल्लेख किया हुआ है, जो निम्नानुसार हैं.

I. **शिकायत प्रस्तुत करना -** राष्ट्रीय आयोग के समक्ष शिकायत में निम्नलिखित बातों को प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है ।

(i) शिकायत स्वयं या उसके प्रतिनिधि द्वारा प्रस्तुत की जानी चाहिए;

(ii) शिकायत व्यक्तिश: या रजिस्टर्ड डाक से प्रस्तुत की जा सकती है;

(iii) शिकायतकर्ता का नाम, पता एवं विवरण होना चाहिए;

(iv) शिकायत सम्बन्धित तथ्य, शिकायत उत्पन्न होने का समय एव स्थान आदि;

(v) शिकायत में दर्शाये आरोपों को पुष्ट करने वाले दस्तावेज;

(vi) शिकायतकर्ता द्वारा चाही गई अपेक्षित राहत ।

2. **निपटारे की प्रक्रिया -** राष्ट्रीय आयोग शिकायत के निपटारे के लिए धारा 13(1) तथा 13(2) में दी गई, प्रक्रिया को अपनायेगा ।

3. **सुनवाई की तिथि पर उपस्थित होना -** राष्ट्रीय आयोग के समक्ष प्रत्येक पक्षकार या उसके प्रतिनिधि को उपस्थित होना अनिवार्य है । यदि शिकायतकर्ता या उसका प्रतिनिधि अनुपस्थित रहते है तो आयोग शिकायत को निरस्त कर सकेगा । यदि विरोधी पक्ष या उसका प्रतिनिधि उपस्थित नहीं होता है तो आयोग एक पक्षकार की उपस्थिति में निर्णय कर देगा ।

4. **निर्णय का स्थगन तथा समयावधि :** राष्ट्रीय आयोग जब चाहे कार्यवाही को स्थगित कर सकेगा परन्तु शिकायत का निर्णय विरोधी पक्षकार को सूचना प्राप्ति के तीन माह के भीतर देना होगा, यदि प्रयोगशाला में वस्तु की जाँच की आवश्यकता न हो ।
5. **आदेश देना :** राष्ट्रीय अयोग उपभोक्ता की शिकायत से सन्तुष्ट होकर वस्तु व सेवा के दोषों को दूर करने, वस्तु को प्रतिस्थापन करने, मूल्य वापिस करने तथा क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के आदेश दे सकेगा ।

19.8 सारांश

देश के सभी उपभोक्ताओं के हित एवं अधिकारों के संरक्षण हेतु केन्द्रीय सरकार ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 पारित करवाया जो जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़ कर सम्पूर्ण भारत में लाग है । इस अधिनियम को बनाने का प्रमुख उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना एवं उपभोक्ता विवादों के निपटारे की त्वरित एवं सरल व्यवस्था करना है ।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में उपभोक्ताओं को प्राप्त अधिकार निम्नानुसार है :

(1) सुरक्षा का अधिकार (2) चयन करने का अधिकार (3) सूचना प्राप्त करने का अधिकार (4) सुनवाई का अधिकार (5) उपचार का अधिकार (6) उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार (7) स्वच्छ वातावरण का अधिकार ।

उपभोक्ता हितों की सुरक्षा एवं संवर्द्धन हेतु तथा सरकार को परामर्श देने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत निम्न स्तरों पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना का प्रावधान है -

(1) **केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद :** केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद की स्थापना केन्द्रीय सरकार अधिसूचना के द्वारा करेगी । केन्द्रीय सरकार के नागरिक आपूर्ति एवं उपभोक्ता मामले के प्रभारी मंत्री इसका अध्यक्ष होगा । इसके अतिरिक्त विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग इसके सदस्य होंगे । इस परिषद का उद्देश्य उपभोक्ता हित एवं अधिकार का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना होगा । इस परिषद की बैठक वर्ष में कम से कम एक बार अनिवार्य रूप से की जायेगी ।

(2) **राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद :** राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद की स्थापना प्रत्येक राज्य सरकार अधिसूचना जारी करके कर सकती है । इस परिषद का मुख्य उद्देश्य राज्य के उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा एवं संवर्द्धन करना होगा । इस परिषद की कार्यविधि एवं सदस्यों की संख्या आदि का निर्धारण राज्य सरकार तय करेगी।

(3) **जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद :** राज्य के प्रत्येक जिले हेतु जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद की स्थापना राज्य सरकार अधिसूचना के माध्यम से करेगी । इस परिषद का मुख्य उद्देश्य जिले के उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा एवं संवर्द्धन प्रदान करना होगा । इस परिषद की क्रिया-विधि एवं सदस्यों की संख्या आदि का निर्धारण राज्य सरकार करेगी।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत उपभोक्ताओं के विवादों के निवारण के लिए जिला मंच (District forum) राज्य आयोग (State Commission) एवं राष्ट्रीय आयोग (National Commission) की स्थापना की गई हैं ।

जिला मंच : राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले में एक जिला मंच की स्थापना करेगी । इसमें एक अध्यक्ष सहित दो अन्य सदस्य होंगे । इसका क्षेत्राधिकार जिले की सीमा तक सीमित रहेगा । वस्तु या सेवा से सम्बन्धित शिकायत होने पर क्षतिपूर्ति की राशि 20 लाख रूपये से अधिक न हो । सामान्यतया कोई भी उपभोक्ता अपनी शिकायत उपभोक्ता परिषद तथा केन्द्रीय या राज्य सरकार जिला मंच में दर्ज करा सकेगा ।

जिला मंच दावों के निवारण हेतु एक निर्धारित क्रियाविधि अपनायेगा । इसे दीवानी न्यायालय जैसे अधिकार एवं शक्तियाँ प्राप्त हैं ।

राज्य आयोग : राज्य आयोग की स्थापना राज्य सरकार की अधिसूचना द्वारा हो सकेंगी। इस आयोग में एक अध्यक्ष और कम से कम दो और अधिक से अधिक जो तय किये जायें सदस्य हो सकते हैं । इसका अध्यक्ष उच्च न्यायालय का वर्तमान एवं भूतपूर्व न्यायाधीश हो सकता है । इस आयोग में 20 लाख रूपये से अधिक किन्तु 1 करोड़ रूपये तक माल एवं सेवाओं के मूल्य तथा क्षतिपूर्ति के मामले एवं जिला मंच के आदेशों के विरूद्ध अपीलों की सुनवाई भी कर सकता है । राज्य आयोग के आदेश से पीड़ित व्यक्ति उक्त आदेश के विरूद्ध आदेश के 30 दिन के भीतर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील कर सकता है ।

राष्ट्रीय आयोग : केन्द्रीय सरकार अधिसूचना जारी कर 'राष्ट्रीय आयोग' की स्थापना कर सकती है । इस आयोग में एक अध्यक्ष तथा कम से कम चार सदस्य होंगे तथा जिनमें से एक सदस्य महिला होगी । इस आयोग में 1 करोड़ रूपये से अधिक के माल एवं सेवाओं के मूल्य तथा क्षतिपूर्ति के दावे प्रस्तुत किये जा सकते है । इस आयोग का अध्यक्ष उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश या न्यायाधीश बनने की योग्यता रखता हो, बन सकता है । इस आयोग के सदस्यों को हटाने एवं उन रिक्त स्थान पर नियुक्त करने का केन्द्रीय सरकार को पूर्ण अधिकार है । इस आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय के आदेश की तिथी से 30 दिन के भीतर की जा सकेगी ।

इन अभिकरणों के आदेशों को दीवानी न्यायालय के आदेशों के अनुरूप माना जाएगा और जहाँ तक इनके विरूद्ध अपील न की जायें तब तक ये आदेश आखिरी होंगे । राष्ट्रीय आयोग, राज्य आयोग एवं जिला मंच को प्रथम श्रेणी के ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेट के अधिकार प्रदान किये गये है ।

19.9 शब्दावली

उपभोक्ता (Consumer) :उपभोक्ता से आशय एक ऐसे व्यक्ति से है जो वस्तु अथवा सेवा का क्रय या सेवा को किराये पर प्रतिफल के बदले में प्राप्त करता है । यदि वस्तु की प्राप्ति पुन: विक्रय या वाणिज्यिक उपयोग के लिए की जाती है तो वह उपभोक्ता नहीं कहलाता है । इसी प्रकार सेवाओं को वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त करने वाला भी उपभोक्ता नहीं कहा जा सकता हैं ।

शिकायत (Complaint) : व्यापारी या सेवा प्रदाता द्वारा अनुचित या प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार (Unfair or Restrictive Trade Practice), क्रय की गई वस्तु या सेवा में दोष या कमी होने, पैकेज पर प्रदर्शित 1 मूल्य से अधिक लेने, मूल्य सूची में दर्शाये मूल्य से अधिक मूल्य लेने, समझौते से अधिक मूल्य लेने, जीवन एवं सुरक्षा के लिए घातक माल के विक्रय का प्रस्ताव करने तथा खतरनाक बातों सम्बन्धी सूचनाओं के प्रगट न करने की स्थिति में

शिकायतकर्ता लिखित में शिकायत करता है जिसका उद्देश्य क्षतिपूर्ति प्राप्त करना हो, तो इसे शिकायत कहा जायेगा ।

शिकायतकर्ता (Complainant) : शिकायतकर्ता से आशय एक या एक से अधिक उपभोक्ता या प्रतिनिधि या पंजीकृत स्वयंसेवी संस्था या केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार अथवा उपभोक्ता की मृत्यु की दशा में उसका वैधानिक उत्तराधिकारी या प्रतिनिधि से है ।

उपयुक्त प्रयोगशाला (Appropriate Laboratory) : उपयुक्त प्रयोगशाला से तात्पर्य ऐसी प्रयोगशाला या संगठन से है जो कि केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हो और जिसे वस्तु के दोषपूर्ण होने या न होने की जाँच एवं विश्लेषण करने हेतु केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा स्थापित किया गया है या वित्त पोषित या सहायता प्रदान की जाती हैं ।

उपभोक्ता विवाद (Consumer Dispute) : उपभोक्ता विवाद से आशय ऐसे विवाद से है जहाँ कि वह व्यक्ति जिसके विरूद्ध शिकायत की गई है, शिकायत में सम्मिलित आरोपों से इन्कार करता है या प्रतिपाद करता है ।

दोष (Defect) : दोष से तात्पर्य किसी गर्भित अथवा स्पष्ट अनुबन्ध के अन्तर्गत माल की किस्म, मात्रा शुद्धता या प्रमाप में किसी प्रकार की त्रुटि, या कमी या अपूर्णता से हैं ।

कमी (Deficiency) : कमी का अर्थ किसी निष्पादन के दोष, अपूर्णता, कमी अथवा किस्म, मात्रा, शुद्धता या प्रमाप जो प्रचलित राजनियम द्वारा अपेक्षित हो या अनुबन्ध के तहत व्यक्ति ने प्रदान करना स्वीकार किया हो या किसी सेवा के सम्बन्ध में अपर्याप्तता से है ।

माल (Goods) : माल से तात्पर्य सभी प्रकार की चल सम्पत्ति (Moveable Property) से है । जिसमें स्कन्ध, अंश-पत्र, खड़ी फसलें तथा अन्य वस्तुयें जो भूमि से जुड़ी हुई हो किन्तु जिन्हें विक्रय पहले अथवा विक्रय के अनुबन्ध के तहत अलग करने का ठहराव कर लिया हो, सम्मिलित हैं ।

निर्माता (Manufacturer) :निर्माता वह व्यक्ति होता है जो किसी माल या उसके किसी भाग का निर्माण करता है अथवा अन्य व्यक्ति द्वारा बनाये गये निर्मित माल को एकत्रित या संयोजित (Assemble) करता है या अन्य व्यक्तियों द्वारा बनाये गये माल पर अपना मार्का या चिन्ह लगाता है ।

व्यक्ति (Person) : फर्म, अविभाजित हिन्दू परिवार, सहकारी समिति तथा व्यक्तियों का समूह, चाहे समितियों के पंजीयन अधिनियम के अधीन पंजीकृत हो या नहीं, व्यक्ति में सम्मिलित होते है ।

अनुचित व्यापार व्यवहार (Unfair Trade Practice) : अनुचित व्यापार व्यवहार से आशय ऐसे व्यापारिक व्यवहार से है, जिसके द्वारा किसी माल के विक्रय, उपभोग या आपूर्ति संवर्द्धन के लिए या सेवा की व्यवस्था के लिए कोई कपटमय या अनुचित व्यवहार अपनाया जाता है ।

व्यापारी (Trader): माल के सन्दर्भ में, व्यापारी से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो विक्रय हेतु माल को बेचता है या उसका वितरण करता है । इसमें माल का निर्माता भी शामिल है । यदि

माल पैकेज के अन्तर्गत विक्रय अथवा वितरण किया जाता है तो ऐसा पैकिंग करने वाला व्यापारी भी सम्मिलित है ।

सेवा (Service) :सेवा से आशय किसी भी प्रकार की सेवा से है, जो सम्भावित उपयोगकर्ताओं के लिए उपलब्ध की गई हो । किन्तु, इसमें ऐसी सेवा को सम्मिलित नहीं किया गया है जो निःशुल्क हो अथवा व्यक्तिगत सेवा अनुबन्ध के अन्तर्गत प्रदान की गई हो ।

19.10 स्व.परख प्रश्न

1. उपभोक्ता से क्या आशय है? उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में वर्णित उपभोक्ता के अधिकारों का वर्णन कीजिए।
2. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत केन्द्रीय तथा राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषदों सम्बन्धी प्रावधान का वर्णन कीजिए ।
3. जिला मंच क्या है? जिला मंच द्वारा उपभोक्तो विवादों को निपटाने के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया को समझाइए ।
4. राज्य आयोग की रचना एवं क्षेत्राधिकार को स्पष्ट कीजिए ।
5. राष्ट्रीय आयोग के क्षेत्राधिकार एवं शिकायतों के निवारण की कार्यविधि का वर्णन कीजिए।

19.11 सन्दर्भ ग्रंथ/उपयोगी पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : डॉ0 आर0एल0 नौलखा, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
2. व्यापारिक सन्नियम : प्रो0 जी०एस0 सुधा, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर ।
3. व्यापारिक सन्नियम : आर0सी0 अग्रवाल, कोठारी, कॉलेज बुक आउस, जयपुर ।
4. व्यापारिक विधि : जे0पी0 सिंघल, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर ।
5. व्यापारिक सन्नियम : शुक्ला एवं नारायण, साहित्य भवन, आगरा ।

NOTES

NOTES

NOTES

BC-03

ISBN - 13/978-81-8496-193-5